एमएपीएसटी-04

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

लोकतंत्र में पुलिसिंग

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

लोकतंत्र में पुलिसिंग

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रोफेसर (डॉ.) नरेश दाधीच
निवर्तमान कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

संयोजक एवं समन्वयक

संयोजक

डॉ. अशोक शर्मा
सह आचार्य, राजनीति विज्ञान
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

1. **श्री ओ.पी.माथुर (आई.पी.एस.) संतोष शुक्ला**
   कुलपति
   रक्षा शक्ति विश्वविद्यालय, अहमदाबाद (गुजरात)
2. **श्री एम. एल. कुमावत (आई.पी.एस.)**
   कुलपति
   सरदार पटेल पुलिस सुरक्षा एवं आपराधिकन्याय विश्वविद्यालय, जोधपुर
3. **श्री भूपेन्द्र सिंह (आई.पी.एस.)**
   निदेशक
   राजस्थान पुलिस अकादमी, जयपुर
4. **श्री बी।एन.राय. (आई.पी.एस.)**
   निदेशक
   सरदार बल्लभ भाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद)
5. **श्री रिषिराज सिंह (आई.पी.एस.)**
   निदेशक
   केन्द्रीय अन्वेषनण ब्यूरो, मुम्बई
6. **श्री राजीव त्रिवेदी ((आई.पी.एस.)**
   निदेशक, आंध्र प्रदेश पुलिस अकादमी, हैदराबाद
7. **श्री निखिल जे. गुप्ता (आई.पी.एस.)**
   उपनिदेशक, महाराष्ट्र पुलिस अकादमी, नासिक
8. **प्रो. पी.डी. शर्मा**
   सेवानिवृत आचार्या
   राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
9. **डॉ. लीलराम गुर्जर**
   सह आचार्य राजनीति विज्ञान
   वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सम्पादन तथा पाठ लेखन

सम्पादक

प्रो. पी. डी. शर्मा
सेवानिवृत आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

1. **डॉ. मीनाक्षी विजय** **(1, 9)**
   व्यखयता, लोकप्रशासन
   संस्कार भर्ती महाविद्यालय, वगरु
2. **श्री हरीराम मीणा, आई. पी. एस.** **(2)**
   सेवानिवृत महानिरीक्षक, राजस्थान पुलिस, जयपुर
3. **प्रो. के. एल. शर्मा** **(3)**
   निवर्तमान, कुलपति
4. **प्रो. पी. डी. शर्मा** **(4, 19)**
   सेवानिवृत आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
   राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
5. **श्री रंजन द्विवेदी, आई. पी. एस.** **(5)**
   अतिरिक्त महनेदेशक पुलिस भर्ती एवं प्रोन्नति बोर्ड
   उत्तर प्रदेश पुलिस, लखनऊ
6. **श्री शंकर सुरोलिया, आई. पी. एस.** **(6,10,12,15)**
   सेवानिवृत महनिरीक्षक, राजस्थान पुलिस, जयपुर

भाषा सम्पादक

डॉ. अनुराधा शर्मा
सहायक, आचार्य, वनस्पति शास्त्र
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

7. **डॉ. विकास नौटियाल** **(7)**
   इन्चार्ज, सैन्टर ऑफ रिसर्च एण्ड पब्लिकेशन
   राजस्थान पुलिस अकादमी, जयपुर
8. **श्री एम. के. देवराजन, आई.पी. एस.** **(8)**
   सहायक, मानवाधिकार आयोग, जयपुर
9. **डॉ. के. डी. द्विवेदी** **(11)**
   उप महनिरीक्षक पुलिस, मुख्यालय, सैन्ट्रल फ्रेंटियर
   भारततिब्बत सीमा पुलिस, आर.ए. सी. भोपाल
10. **डॉ. प्रेरणा शेखावत** **(13, 14)**
    उप अधीक्षक पुलिस, आर. ए. सी. कोटा
11. **श्री राजेश व्यास** **(17)**
    उप अधीक्षक पुलिस, राजस्थान पुलिस, कोटा
12. **श्री संजय कुमार पाटील** **(18)**
13. विधि अधिकारी, महराष्ट्र पुलिस अकादमी, नासिक

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. विनय कुमार पाठक	**प्रो. (डॉ.) बी. के. शर्मा**	**प्रो. पवन कुमार शर्मा**
कुलपति	निदेशक, संकाय विभाग	निदेशक, क्षेत्रीय सेवा विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी,
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

लोकतंत्र में पुलिसिंग

इकाई संख्या	इकाई	पेज संख्या
1.	लोकतंत्र	6–27
2.	पुलिस, प्रजातंत्र एवं विधि का शासन	28–39
3.	भारतीय समाज : सामाजिक प्रतिमान एवं मूल्य	40–81
4.	पुलिस और भारत का जन साधारण	82–95
5.	पुलिस एवं सामाजिक कानून	96–106
6.	पुलिस एवं समाज के कमजोर वर्ग	107–122
7.	पुलिस एवं अल्पसंख्यक	123–133
8.	सामुदायिक पुलिस व्यवस्था	134–145
9.	मानव अधिकार	146–167
10.	पुलिस व मानवाधिकार	168–185
11.	पुलिस का विधिसम्मत उपयोग	186–198
12.	सुशासन के संदर्भ में पुलिस	199–211
13.	पुलिस-पारदर्शिता	212–220
14.	पुलिस-उत्तरदायित्व	221–229
15.	निर्णयन एवं विवेकाधिकार : पुलिस संदर्भ	230–243
16.	मीडिया एवं पुलिस	244–258
17.	गैर सरकारी संगठन एवं पुलिस	259–273
18.	पुलिस हिरासत में हिंसा एवं शारीरिक यातना विरोधी अधिनियम	274–284
19.	लोकतंत्र के पोषण में पुलिस की भूमिका	285–294

इकाई- 1
लोकतंत्र

इकाई संरचना

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 लोकतंत्र का अर्थ तथा परिभाषायें

1.3 लोकतंत्र की अवधारणा

1.4 लोकतंत्र का ऐतिहासिक विकास

1.5 लोकतंत्र सम्बन्धी विभिन्न दृष्टियाँ

1.5.1 पारम्परिक उदारवादी दृष्टि

1.5.2 विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त

1.5.3 बहुलवादी सिद्धान्त

1.5.4 मार्क्सवादी दृष्टि

1.5.5 समाजवादी दृष्टि

1.6 लोकतंत्र के प्रकार

1.7 लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक शर्तें

1.8 लोकतंत्र की उपयोगिता

1.9 लोकतंत्र की सीमाएँ

1.10 भारत में लोकतंत्र की चुनौतियाँ

1.11 सारांश

1.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- लोकतंत्र के अर्थ व उसकी अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
- लोकतंत्र के ऐतिहासिक विकास के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- लोकतंत्र सम्बन्धी विभिन्न दृष्टिकोणों के बारे में जान सकेंगे।
- लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक शर्तों को पहिचान सकेंगे।
- लोकतंत्र के गुण तथा सीमाओं का विवेचन कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

राज्य के अस्तित्व के लम्बे इतिहास में परिस्थितियों व काल विशेष की आवश्यकताओं के अनुरूप शासन के प्रकार परिवर्तित होते रहे है। राज्य के इतिहास में कभी भी ऐसा समय नहीं रहा जब विश्व के सभी राज्यों में शासन का कोई एक ही प्रकार सर्वत्र प्रचलित रहा हो। एक ही साथ राजतन्त्र, श्रेणीतन्त्र, अधिनायकतन्त्र व लोकतंत्र जैसे शासन के अनेक प्रकार के विभिन्न राज्यों में शासन शक्ति के प्रयोग के प्रतिमान रहे है। आज भी ऐसे अनेक राज्य है जहाँ राजतन्त्र या श्रेणीतंत्र का ढांचा विद्यमान है, परन्तु वर्तमान शताब्दी लोकतन्त्र व निरंकुशतन्त्र की दो बेमेल धाराओं के प्रचलन की कही जाती है। आज के राज्य या तो लोकतांत्रिक है या तानाशाही व्यवस्था में जकड़े होने पर भी लोकतान्त्रिक होने

का दावा करते हुए दिखाई देते है। 19वीं शताब्दी के आरम्भ से लोकतंत्र शासन को सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा। आज तो लोकतंत्र शासन का श्रेष्ठतम रूप बन गया है। लोकतंत्र से अभिप्राय अनिवार्यतः उस सरकार से है, जिसमें शासितों को शासन संबंधी निर्णय लेने की शक्ति प्राप्त रहती है। लोकतंत्र का सार जनता की सहभागिता एवं नियंत्रण में निहित है। प्रस्तुत अध्याय में हम लोकतंत्र के अर्थ व स्वरूप, विकास आदि पर विचार करेंगे, साथ ही इसके लक्षणों, गुणों व दोषों को देखने का प्रयास करेंगे।

1.2 लोकतंत्र का अर्थ तथा परिभाषायें

लोकतंत्र अंग्रेजी के Democracy शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है, डेमोक्रेसी शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक मूल के शब्द 'डेमोस' से हुई है, जिसका अर्थ है, 'जनसाधारण'। इसमें क्रेसी शब्द जोड़ा गया है, जिसका अर्थ है 'शासन' या सरकार'। इस प्रकार 'लोकतन्त्र शब्द का मूल अर्थ ही 'जन-साधारण' या 'जनता' का शासन है। लोकतंत्र के अर्थ पर सर्वाधिक मतभेद है। इसकी अनेक परिभाषाएँ व व्याख्याएँ की गयी है। इसको आडम्बरमय कहने से लेकर सर्वोत्कृष्ट तक कहा गया है। सारटोरी ने लोकतंत्र को ऐसी वस्तु के आडम्बरमय नाम के रूप में परिभाषित किया है, जिसका वास्तव में कोई अस्तित्व नहीं है। अत: लोकतन्त्र के अर्थ व परिभाषा पर सामान्य सहमति का प्रयास करना निरर्थक होगा।

अब्राहम लिंकन, "जनता के लिए, जनता के द्वारा, जनता का शासन लोकतंत्र है।"

सीले, "लोकतंत्र वह शासन है जिसमें हर व्यक्ति भाग लेता है। "

डायसी, "लोकतंत्र शासन का वह स्वरूप है जिसमें जनता का एक बड़ा भाग शासन करता है।"

सारटोरी, "लोकतंत्रीय व्यवस्था वह है जो सरकार को उत्तरदायी तथा नियंत्रणकारी बनाती हो तथा जिसकी प्रभावकारिता मुख्यत: इसके नेतृत्व की योग्यता व कार्यशीलता पर निर्भर हो।

शूम्पेटर, "लोकतन्त्रीय पद्धति राजनीतिक निर्णय लेने की ऐसी संस्थात्मक व्यवस्था है जिसमें व्यक्तियों को जनता के वोट के लिए प्रतियोगितात्मक संघर्ष के माध्यम से निर्णय लेने की शक्ति प्राप्त होती है।"

लिप्से, "लोकतंत्र की परिभाषा एक ऐसी राजनीतिक व्यवस्था के रूप में दी जा सकती है जहाँ सरकारी पदाधिकारियों को बदलने के नियमित संविधानिक अवसर उपलब्ध हो तथा ऐसी सामाजिक व्यवस्था विद्यमान हो जहाँ जनसंख्या का अधिकतम भाग, राजनीतिक शक्ति के संघर्ष में लगे व्यक्तियों को चुनकर, मुख्य निर्णयों को प्रभावित कर सके।

हर्नशा, "लोकतंत्र वह राज्य है जिसमें प्रभुत्व शक्ति जनता के हाथ में रहती है, जिसमें जनता शासन संबंधी मामलों पर अपना अंतिम नियन्त्रण रखती है तथा यह निर्धारित करती है कि राज्य में किस प्रकार का शासन सूत्र स्थापित किया जाए। राज्य के प्रकार के रूप में लोकतंत्र शासन की ही एक विधि नहीं है, अपितु वह सरकार की नियुक्ति करने, उस पर नियंत्रण रखने तथा उसे अपदस्थ करने की विधि भी है।

डॉ. बेनीप्रसाद. "लोकतंत्र जीवन का एक ढंग है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि प्रत्येक व्यक्ति के सुख का महत्व उतना ही है जितना अन्य किसी के सुख का महत्व हो सकता है तथा किसी को भी अन्य किसी के सुख का साधन मात्र नहीं समझा जा सकता। "

गिडिंग्ज, "लोकतंत्र केवल सरकार का ही रूप नहीं है वरन् राज्य और समाज का रूप अथवा इन तीनों का मिश्रण भी है।

मैक्सी, "बीसवीं सदी में लोकतंत्र से तात्पर्य एक राजनीतिक नियम, शासन की विधि व समाज के ढाँचे से ही नहीं है वरन् यह जीवन के उस मार्ग की खोज है, जिसमें मनुष्यों की स्वतंत्र व ऐच्छिक वृद्धि के आधार पर उनमें अनुरूपता व एकीकरण लाया जा सके।

ब्राइस, " लोकतंत्र शब्द का प्रयोग हेरोडोटस के जमाने से ही ऐसी शासन प्रणाली का संकेत देने के लिए होता है, जिसमें कानून की दृष्टि से राज्य की नियामक सत्ता किसी विशेष वर्ग या वर्गो के हाथों मे नहीं रहती, बल्कि समुदाय के सभी सदस्यों मे निहित होती है।

उपरोक्त परिभाषाएँ लोकतंत्र को शासन एवं राज्य के प्रकार के रूप में प्रदर्शित करने के साथही, लोकतंत्र को राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था के संदर्भ में भी दर्शित करती है। सामाजिक व्यवस्था के रूप में लोकतन्त्र से उस समाज का ज्ञान होता है, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति का मूल्य व्यक्ति के रूप में होता है और जाति, रंग, धर्म एंव सम्पत्ति के भेद के बिना सभी व्यक्ति समान समझे जाते है। आर्थिक व्यवस्था के प्रकार के रूप में लोकतंत्र का तात्पर्य आर्थिक समानता की स्थापना से है। लोकतंत्र राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का एक प्रकार ही नहीं है, वरन् यह तो जीवन के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण भी है। लोकतंत्र में सभी व्यक्तियों द्वारा दूसरे के प्रति वैसा ही व्यवहार किया जाना चाहिए जैसा व्यवहार वह अपने प्रति पसंद करता है।

इन परिभाषाओं का मूल अभिप्राय यह है कि, "लोकतंत्रीय प्रणाली में शासन या सत्ता का अंतिम सूत्र जनसाधारण के हाथों में रहता है ताकि सार्वजनिक नीति जनता की इच्छा के अनुसार और जनता के हित-साधन के उद्देश्य से बनाई जाए तथा कार्यान्वित की जाए।" इसमें शासन चलाने का काम जनसाधारण के प्रतिनिधियों को सौंपा जा सकता है, परंतु उन्हें निश्चित अंतराल के बाद फिर से जनसाधारण का विश्वास प्राप्त करना होता है।

उपरोक्त परिभाषाएँ लोकतंत्र को संकुचित एवं व्यापक दो अर्थों मे प्रदर्शित करती है। संकुचित अर्थ में, "लोकतंत्र एक प्रकार की शासन व्यवस्था का द्योतक है तथा वर्तमान शताब्दी में राजनीति विज्ञान के व्यवहारवादी तथा अनुभववादी लेखकों ने लोकतंत्र को मात्र एक शासन व्यवस्था के रूप में ही देखा है।

व्यापक अर्थ में, "लोकतंत्र को मात्र एक राजनीतिक व्यवस्था न मानकर एक ऐसा आदर्श माना जाता है जिसमें लोकतन्त्रीय मानव, चिंतन, व्यवहार, जीवन पद्धति, समाज, अर्थ व्यवस्था, नैतिकता आदि विचार शामिल है, यहाँ लोकतंत्र एक शासन व्यवस्था ही नहीं रहता है बल्कि एक उच्च मानवीय मूल्य बन जाता है।

संक्षेप में, लोकतन्त्र :- (1) एकविशेष प्रकार का शासन है (2) एक सामाजिक व्यवस्था है (3) एक विशेष प्रकार का आर्थिक तंत्र है (4) एक जीवन पद्धति या जीने का ढंग है (5) एक विशेष प्रकार की मनोवृति तथा (8) एक नैतिक अथवा आध्यात्मिक आदर्श है।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर लोकतंत्र की विशेषताएँ निम्नलिखित है-

(i) जनता की इच्छा की सर्वोच्चता
(ii) जनता के द्वारा चुनी हुई प्रतिनिधि सरकार
(iii) निष्पक्ष व आवधिक चुनाव
(iv) व्यस्क मताधिकार
(v) उत्तरदायी सरकार
(vi) सीमित तथा संविधानिक सरकार

(vii) सरकार के हाथों में राजनीतिक शक्ति जनता की अमानत के रूप में

(viii) सरकार के निर्णयों में सलाह, दबाव तथा जनमत के द्वारा जनता की सहभागिता

(ix) जनता के अधिकारों एवं स्वतंत्रता की रक्षा सरकार का कर्तव्य हो

(x) निष्पक्ष न्यायालय

(xi) कानून का शासन

(xii) विभिन्न राजनीतिक दलों एवं दबाव समूहों की उपस्थिति।

1.3 लोकतंत्र की अवधारणा

लोकतंत्र की अवधारणा या प्रत्यय के रूप में एक अर्थ नहीं है वरन् इसके तीन अन्त: सम्बन्धित अर्थ किए जाते है-

1. यह निर्णय करने की विधि है।
2. यह निर्णय लेने के सिद्धान्तों का समूह है
3. यह आदर्शात्मक मूल्यों का समूह है।

1. निर्णय करने की विधि के रूप में लोकतंत्र :- लोकतंत्र निर्णय करने की प्रक्रिया है। लोकतांत्रिक ढंग से लिया गया निर्णय सम्पूर्ण समाज के द्वारा लिया गया निर्णय ही कहा जा सकता है। इस सम्बन्ध में अरस्तु ने कहा था कि, "निर्णय लेने के लोकतांत्रिक ढंग से पदाधिकारियों का चुनाव सबमें से, सबके द्वारा तथा सबका हर एक पर तथा प्रत्येक का सब पर शासन होता है।" अर्थात् वे ही निर्णय शासन प्रणाली में लोकतांत्रिक ढंग से लिए हुए कहे जाते है, जिसमें - (1) विचार विनिमय एवं अनुनयता (2) जन-सहभागिता (3) बहुमतता (4) संवैधानिकता (5) अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण आदि तत्व होते है।

लोकतान्त्रिक ढंग से लिए गए निर्णयों का आधार खुला विचार विनिमय होता है। सम्पूर्ण राजनीतिक समाज के लिए किए जाने वाले निर्णयों में अनुनयन की बहुत बड़ी भूमिका रहती है। लोकतन्त्र में निर्णय चाहे किसी भी स्तर पर लिए जाएं, उनमें जोर-जबरदस्ती के तत्व के बजाय विचार-विमर्श, वाद-विवाद व समझाने बुझाने का अंश प्रधान रहता है। इस प्रकार निर्णय लेने के ढंग के रूप में लोकतंत्र का आशय विचार-विमर्श व सहमति से राजनीतिक समाज से सम्बन्धित सभी निर्णय लेना है।

विचार-विमर्श और सहमति की निर्णय प्रक्रिया में कुछ या अधिकांश लोगों का सम्मिलित होना किसी निर्णय के ढंग को लोकतान्त्रिक नहीं बनाता है। इसके लिए निर्णय प्रक्रिया में सारे जन-समाज की सहभागिता का होना अनिवार्य है, अर्थात निर्णय लेने में राजनीतिक व्यवस्था के सभी नागरिकों का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष सम्मिलन आवश्यक है। निर्णय प्रक्रिया में सम्पूर्ण समाज को सहभागी बनाने का दूसरा नाम ही लोकतन्त्र है। नियतकालिक चुनाव तथा व्यस्क मताधिकार, जन-सहभागिता के उपकरण है।

सैद्धान्तिक रूप में तो समस्त जनता की सहमति से लिया गया निर्णय आदर्श कहा जा सकता है, परव्यवहार में सबके सब निर्णयों पर सहमति असम्भव नहीं, तो दुष्कर अवश्य लगती है। इसलिए सबकी सहमति के अभाव मे निर्णय बहुमत के आधार पर किए जाते है। इस प्रकार बहुमत के आधार पर किए गए निर्णय लोकतांत्रिक ही माने जाते हैं, क्योंकि इन निर्णयों में अधिकांश लोगों की सहमति सम्मिलित रहती है। बहुमत के आधार पर निर्णय लेने को निर्णय लेने की श्रेष्ठतम विधि कहा जाता है।

हर लोकतान्त्रिक समाज में निर्णय लेने की प्रक्रियाओं के संरचनात्मक आधार संविधान द्वारा निर्धारित किए जाते है। लोकतान्त्रिक ढंग से लिया गया निर्णय संविधान द्वारा व्यवस्थित साधनों की

परिधि में ही किया जाता है। निर्णय प्रक्रिया को लोकतान्त्रिक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि संविधान में निम्न व्यवस्थाएँ हो (1) जनता के सामने प्रतियोगी पंसदों के अनेक विकल्प (2) मताधिकार की पूर्ण समानता (3) निर्वाचन व निर्वाचित होने की पूर्ण स्वतन्त्रता तथा (4) प्रतिनिधित्व की अधिकतम समरूपता हो (5) बिना किसी भेदभाव के सार्वजनिक पदों को धारण करने की क्षमता इस प्रकार किसी भी राजनीतिक व्यवस्था में निर्णय की विधि को लोकतान्त्रिक बनाने के लिए संवैधानिकता ही निर्णयों का एक मात्र आधार होती है।

जब किसी राजनीतिक समाज में बहुमत के आधार पर निर्णय लिए जाते है, तो यह सम्भावना रहती है कि कुछ लोग इन निर्णयों से सहमत न हो। अनेक समाजों में अनेक वर्ग, धर्म, जातियाँ तथा संस्कृतियाँ एक साथ विद्यमान रहती है। अत: निर्णय प्रक्रिया की लोकतान्त्रिकता के लिए आवश्यक है कि बहुमत द्वारा लिए गए निर्णयों में अल्पसंख्यकों के हितों की भी सुरक्षा की व्यवस्था निहित हो।

जिस राजनीतिक व्यवस्था में निर्णय लेने का ढंग उपरोक्त तथ्यों के अनुरूप रहता है तो वह राजनीतिक व्यवस्था लोकतान्त्रिक तथा उस समाज के लोगों द्वारा लिए गए निर्णय लोकतान्त्रिक ढंग से लिए गए निर्णय कहे जाएंगे। इस तरह, निर्णय लेने के ढंग के रूप में लोकतन्त्र ऐसी व्यवस्था है जिसमें समाज के लिए व्यवहार के मानदंड स्थापित होते है और व्यक्ति की राजनीतिक गतिविधियों का सुनिश्चित प्रतिमान प्रकट होता है।

2. निर्णय लेने के सिद्धान्त के रूप में लोकतंत्र :- लोकतान्त्रिक व्यवस्था कतिपय सिद्धान्तों पर आधारित होती है। लोकतांत्रिक व्यवस्था उस राजनीतिक पद्धति में विद्यमान रह सकती है, जहाँ सिद्धान्तों के आधार पर निर्णय लिए जाते है। लोकतंत्र के स्वतंत्र सिद्धान्त है-

(i) प्रतिनिधि सरकार का सिद्धान्त :- किसी भी शासन व्यवस्था को लोकतांत्रिक तभी कहा जा सकता है, जब राजनीतिक व्यवस्था में निर्णय लेने का कार्य जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा ही सम्पादित हो अर्थात् लोकतान्त्रिक व्यवस्था में सरकार का गठन प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त पर आधारित होना चाहिए। नियत कालिक चुनाव शासनकर्ताओं को सही अर्थों में जन -प्रतिनिधि बनाए रखने की व्यवस्था करना ही है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में अंतिम सत्ता जनता में निवास करती है। जनता की यह सत्ता निर्वाचन के माध्यम से प्रतिनिधियों को प्रदान कर दी जाती है। अत: प्रतिनिधि सरकार का होना लोकतंत्र की व्यवस्था करना है, क्योंकि राजनीतिक समाज में निर्णयकर्ता केवल जन प्रतिनिधि ही होता है।

(ii) उत्तरदायी सरकार का सिद्धान्त :- शासन का प्रतिनिधि स्वरूप ही किसी राजनीतिक व्यवस्था को लोकतान्त्रिक कहने के लिए पर्याप्त नहीं है। इसके लिए यह आवश्यक है कि शासन शक्ति के धारक अपने हर निर्णय व कार्य के लिए जनता के प्रति प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी रहे। लोकतन्त्र में शासकों को सत्ता जनता की धरोहर के रूप में प्राप्त रहती है तथा इस सत्ता का उन्हें जनता के हित में, जनता की उन्नति व प्रगति के लिए ही प्रयोग करना होता है। नियतकालिक चुनाव शासकों को प्रभावशाली ढंग से नियन्त्रित रखने का अवसर प्रदान करते है। यही कारण है कि स्वतन्त्र व नियतकालिक चुनाव व्यवस्था को "लोकतन्त्र की जीवनरक्षक डोर"का नाम दिया जाता है। चुनाव दोहरे ढंग से किसी व्यवस्था को लोकतान्त्रिक बनाने की भूमिका अदा करते है। प्रथम तो इससे लोकप्रिय नियन्त्रण की व्यवस्था होती है तथा दूसरे इससे जनता के प्रतिनिधि ही शासकों के रूप में रहते है।

(iii) संवैधानिक सरकार का सिद्धान्त :- सरकार किसी देश के प्रशासित होने की व्यवस्था का नाम हैं। ऐसी सरकार के गठन व कार्य करने की विधियों का निर्धारण मनमाने ढंग से होने पर शासन व्यवस्था लोकतान्त्रिक नहीं रहती है। सरकार को लोकतांत्रिक आधार प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि इसकी संरचनात्मक व्यवस्था व कार्य-प्रणाली संविधान द्वारा निरूपित की जाए। संविधान नियमों का

ऐसा संग्रह है जो उन उद्देश्यों की प्राप्ति करता है जिनके माध्यम से सरकार अपनी शक्ति का उत्तरदायित्व ढंग से प्रयोग करती है। अत: संविधान जनता के आदर्शों को व्यावहारिक बनाने के माध्यम के रूप में सरकार का संगठन कहा जा सकता है। मात्र वह सरकार ही लोकतान्त्रिक कही जाती है जो संविधान पर आधारित हो, संविधान द्वारा सीमित व नियन्त्रित हो व स्वेच्छापूर्वक के स्थान पर केवल विधि के अनुरूप ही संचालित हो। अत: लोकतान्त्रिक शासन के लिए संवैधानिक सरकार का होना आवश्यक है।

(iv) प्रतियोगी राजनीति का सिद्धान्त :- लोकतंत्र में हर व्यक्ति को राजनीतिक स्वतन्त्रता रहती है। वह अपने हितों की रक्षा के लिए किसी भी दल का सदस्य बन सकता है तथा किसी भी व्यक्ति को अपने प्रतिनिधि के रूप में निर्वाचित करने के लिए मत दे सकता है। राजनीतिक स्वतन्त्रता की व्यावहारिकता ही प्रतियोगी राजनीति कही जाती है। राजनीतिक व्यवस्था में प्रतियोगी राजनीति के लिए आवश्यक है कि अनेक संगठन, दल व समूह, प्रतियोगी रूप में उस व्यवस्था में सक्रिय रहे। राजनीतिक समाज में प्रतियोगी राजनीति की व्यवस्था करने के लिए अनिवार्यताएँ होती है- (1) राजनीतिक गतिविधियों की पूर्ण स्वतंत्रता (2) दो या दो से अधिक प्रतियोगी दलों या समूहों के रूप में वैकल्पिक पसन्दों की विद्यमानता (3) सर्वव्यापी व्यस्क मताधिकार की व्यवस्था (4) प्रतिनिधित्व की अधिकतम एकरूपता (5) नियतकालिक चुनाव। अत: लोकतंत्र की जीवन रेखा की प्रतियोगी राजनीति है। यह भी कहा जा सकता है कि लोकतंत्र की संजीवनी प्रतियोगी राजनीति ही होती है।

(v) लोकप्रिय सम्प्रभुता का सिद्धान्त :- राज्य में जनता सर्वोपरि एवं संप्रभु होती है, क्योंकि जनता की इच्छा के अनुसार ही राज्य शक्ति का प्रयोग होता है। मताधिकार के कारण, शासन सम्बन्धी अन्तिम शक्ति जनता में निहित होती है। अत: जनता को संप्रभु एवं उसमें निहित शक्ति को जनता की सम्प्रभुता कहा जा सकता है। लोकतान्त्रिक समाज की पहचान ही जनता की सम्प्रभुता है। इसके माध्यम से ही जनता सरकार को प्रतिनिधि, उत्तरदायी व संवैधानिक रख पाती है। अत: लोकतान्त्रिक व्यवस्था में जनता की सम्प्रभुता का सिद्धान्त अत्यधिक महत्व का है।

3. आदर्शात्मक मूल्यों के रूप में लोकतंत्र :- लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली की आधारभूत कसौटी इसकी मूल्य व्यवस्था में निहित है। इन्ही मूल्यों के आधार पर किसी व्यवस्था को लोकतान्त्रिकया अलोकतान्त्रिक कहा जा सकता है। लोकतान्त्रिक समाज के निम्न आदर्श है-

(i) व्यक्तिगत व्यक्तित्व का सम्मान :- व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए यह अनिवार्य है कि व्यक्तिगत का सम्मान किया जाए, जिससे हर व्यक्ति अपने ढंग से, बेरोकटोक अपनी पूर्णता के मार्ग पर आगे बढ़ सके। लोकतान्त्रिक समाज का यह आदर्श या मूल्य सर्वाधिक महत्व का माना जाता है। हर व्यक्ति के लिए स्व-अभिव्यक्ति का अवसर व साधन महत्व रखते है। लोकतन्त्र के दृष्टि कोण में, सर्वोच्च मूल्य व राजनीतिज्ञों का अन्तिम ध्येय, व्यक्ति की मुक्ति व व्यक्तित्व का सम्मान करना है। वास्तव में यह लोकतान्त्रिक व्यवस्था का ऐसा आधार स्तम्भ है जिसके सहारे अन्य मूल्य भी प्राप्त किए जा सकते है।

(ii) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता :- लोकतान्त्रिक समाज का दूसरा महत्वपूर्ण मूल्य स्वतन्त्रता का है। राजनीतिक आदर्श के रूप में स्वतन्त्रता के नकारात्मक रूप में इसका अर्थ जीवन की उन परिस्थितियों व स्थितियों के होने से लिया जाता है, जिसमें व्यक्ति अपने सही स्वरूप को प्राप्त कर सकता है। सीले के अनुसार "स्वतन्त्रता अति शासन का विलोम है"। लास्की "स्वतन्त्रता वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति बिना किसी बाधा केअपने जीवन के विकास के तरीके को चुन सकता है।" स्वतन्त्रता का लोकतान्त्रिक मूल्य के रूप में तात्पर्य व्यक्तिगत व्यवहार की नियमितता और मर्यादा से है। इसका सम्बन्ध आवश्यक

रूप से समाज की इकाई के रूप में व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास से होता है जिससे व्यक्तिगत व्यक्तित्व का सम्मान हो सके।

(iii) लोक विवेक में विश्वास :- कोरी तथा अब्राहम का कहना है कि "लोकतान्त्रिक आदर्श में यह धारणा निहित है कि मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है जो कार्य करने के सिद्धान्तों का निर्णय करने तथा अपनी निजी इच्छाओं को उन सिद्धान्तों के अधीनस्थ बनाए रखने में समर्थ है। बहुमत का कोरा सिद्धान्त भी उसी प्रकार अविवेकपूर्ण है, जिस प्रकार कि 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली धारणा। मनुष्य केवल विवेकी यन्त्र ही नहीं, बल्कि वह भावनाओं का पुतला भी है। अत: लोकतान्त्रिक आदर्श को यह मानकर चलना होगा कि प्रयत्नों से मनुष्य को भावनाओं के स्तर से विवेक के स्तर पर लाया जा सकता है। इस प्रकार लोकतान्त्रिक आदर्श में मनुष्य की विवेकशीलता की धारणा सन्निहित होनी चाहिए।

(iv) समानता :- समानता प्रजातन्त्र की स्थापना का एक प्रधान तत्व है। इसका सामान्य अर्थ उन विषमताओं के अभाव से लिया जाता है, जिसके कारण असमानता पनपती है। राजनीतिक समाज में समानता का अर्थ ऐसी परिस्थितियों के अस्तित्व से होता है, जिसके कारण सब व्यक्तियों को व्यक्तित्व विकास के समान अवसर प्राप्त हो सके। समानता के राजनीतिक रूप का अर्थ यह है कि राजनीतिक व्यवस्था में सभी व्यस्क नागरिकों को समान नागरिक और राजनीतिक अधिकार उपलब्ध हो। राजनीतिक समानता में सबको समान रूप से शासन में भाग लेने का अवसर मिल जाता है। अवसरों की समानता ही राजनीतिक समानता कही जाती है।

नागरिक समानता से तात्पर्य सभी को नागरिकता के समान अवसर प्राप्त होने से होता है। नागरिक समानता की अवस्था में व्यक्ति के मूल अधिकार सुरक्षित होने चाहिए तथा सभी को कानून का संरक्षण समान रूप से प्राप्त होना चाहिए। समानता का एक पक्ष आर्थिक समानता है, जिसका तात्पर्य सब मनुष्यों के पास आवश्यकतानुसार पर्याप्त सम्पत्ति हो और कोई सम्पत्ति के स्वामित्व की दृष्टि से ऐसी स्थिति में नहीं हो कि दूसरे का शोषण कर सके। आधुनिक लोकतन्त्रों में राजनीतिक व आर्थिक समानता का मूल्य सर्वाधिक महत्व का माना जाने लगा है। इसके बिना न व्यक्ति के व्यक्तिगत व्यक्तित्व का सम्मान हो सकता है और न ही व्यक्ति की स्वतन्त्रता की सच्चे अर्थों में व्यवस्था हो सकती है।

(v) न्याय :- लोकतान्त्रिक व्यवस्था न्याय पर आधारित होनी चाहिए। न्याय की प्राप्ति लोकतंत्र का आधार है। लोकतन्त्र में राजनीतिक स्वतन्त्रताएँ, समानताएँ एवं सुरक्षाएँ हर नागरिक को प्राप्त रहती है। इस कारण, हर व्यक्ति अन्याय की अवस्था से अपने आपको मुक्त करने के कारगर साधन रखता है। अत: न्याय की व्यवस्था उस समाज में स्वत: ही हो जाती है, जहाँ स्वतन्त्रता, समानता एवं व्यक्तिगत व्यक्तित्व का सम्मान करने की संस्थागत व्यवस्थाएँ होती है। राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टियों से लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं में हर नागरिक को न्याय प्राप्त होना लोकतांत्रिक मूल्यों को सुदृढ़ करना माना जाता है।

(vi) संविधानवाद :- विधि के शासन का आदर्श प्राप्त करने का साधन संविधानवाद है। यह उन विचारों एवं सिद्धान्तों की ओर संकेत करता है, जो उस संविधान का विवरण व समर्थन करते है। जिनके माध्यम से राजनीतिक शक्ति पर प्रभावशाली नियन्त्रण स्थापित किया जा सके। यह संविधान पर आधारित विचारधारा है, जिसका मूल अर्थ यही है कि शासन संविधान में लिखित नियमों व विधियों के अनुसार ही संचालित हो तथा उस पर प्रभावशाली नियन्त्रण स्थापित रहे, जिससे वे मूल्य व राजनीतिक आदर्श सुरक्षित रहें, जिससे जिनके लिए समाज राज्य के बंधन को स्वीकार करता है। साथ ही संविधानवाद ऐसा शासन है, जिसमें मनुष्य की आधारभूत मान्यताओं, आस्थाओं और मूल्यों की व्यवहार

में उपलब्धि सम्भव हो। अत: लोकतान्त्रिक व्यवस्था में प्राणवायु का संचार विधि का शासन या संविधानवाद का मूल्य ही करता हुआ कहा जा सकता है।

उपरोक्त वर्णन द्वारा लोकतन्त्र की अवधारणा के तीनों अर्थों का स्पष्टीकरण किया गया है। इस वर्णन ये यह स्पष्ट होता है कि निर्णय के ढंग के रूप में लोकतन्त्र, निर्णय लेने के सिद्धान्तों के रूप में लोकतन्त्र का पूरक है तथा यह दोनों आदर्श मूल्यों के रूप में लोकतन्त्र को यथार्थता प्रदान करते है।

1.4 लोकतंत्र का ऐतिहासिक विकास

लोकतांत्रिक विचारों का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि राजनीतिक विचारों का इतिहास प्राचीन यूनानी विचारकों में हेरोडोटस ने लोकतंत्र को बहुमत का ऐसा शासन माना था, जिसमें नागरिकों के अधिकारों की समानता हो तथा जिसमें राजनीतिक सत्ताधारी अपने कार्यो के लिए उत्तरदायी हो। यूनानी नगर राज्यों में विभिन्न प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाएँ प्रचलित थी - राजशाही, तानाशाही, कुलीनतंत्र, अल्पतंत्र एवं लोकतंत्र। यूनानी विचारकों प्लेटो एवं अरस्तु ने सर्वोत्तम राजनीतिक व्यवस्था का पता लगाने के लिए विभिन्न प्रकार की राजनीतिक व्यवस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया। जहाँ प्लेटो ने लोकतंत्र को उपयुक्त शासन के रूप में अमान्य करार दिया, वहाँ अरस्तु ने सीमित लोकतंत्र को उचित शासन माना।

आधुनिक युग का आरंभ पुनर्जागरण व धर्म सुधार के शक्तिशाली आंदोलनों से 17वीं व 18वीं शताब्दी में यूरोप में प्रारम्भ हुआ। इंग्लैण्ड प्रथम ऐसा देश था जिसमें लोकतांत्रिक पद्धति अपनायी। सन् 1640 के बाद इंग्लैण्ड में दीर्घकाल तक राजनैतिक अशांति तथा गृहयुद्ध होता रहा, सन् 1688 की क्रांति इसी का परिणाम थी। इस क्रांति से सरकार का एक नवीन सिद्धान्त भी प्रतिष्ठित हुआ जिसे 'उत्तरदायी सरकार'का सिद्धान्त कहते है। साथ ही इससे कानून के शासन की स्थापना हुई जिसका अर्थ है कानूनों के मानदण्ड पर आधारित सरकार, न कि ऐसी सरकार जो सत्तारूढ़ व्यक्ति की स्वेच्छाचारिता पर निर्भर हो।

आरम्भ में प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त के आधार पर लोकतंत्र का समर्थन किया गया, जो जॉन लॉक के दर्शन में अभिव्यक्त हुआ। 18वीं तथा 19वीं शताब्दी में बेंथम तथा मिल ने उपयोगिता "अधिकतम व्यक्तियों को अधिकतम सुख" के आधार पर लोकतंत्र का समर्थन किया। लोकतंत्र को मानव के चहुँमुखी विकास का साधन मानते हुए ग्रीन ने कल्याणकारी लोकतंत्रीय राज्यों का समर्थन किया। बीसवीं शताब्दी में पश्चिमी उदारवादी लोकतंत्र इसी कल्याणकारी लोकतंत्रीय विचारधारा से प्रेरित है।

18वीं शताब्दी में अमरीकी (1776) तथा फ्रांसीसी (1789) क्रांतियाँ आधुनिक लोकतंत्र के विकास का पहला महत्त्वपूर्ण चरण थी। 19वीं शताब्दी में कार्ल मार्क्स ने समाजवादी लोकतंत्र का विचार किया जिसमें मानव द्वारा मानव का शोषण न हो। पूंजीवादी व्यवस्था को क्रांति द्वारा समूल नष्ट कर, मजदूर वर्ग के नेतृत्व में स्थापित इन समाजवादी लोकतंत्रों का आरम्भ रूस की क्रांति द्वारा सन् 1917 में हुआ। फ्रांस के क्रान्तिकारियों ने मानव अधिकारों का घोषणा-पत्र अंगीकार किया। इसमें सभी व्यक्तियों को समान घोषित किया गया। लोकतंत्र की प्रारम्भिक क्रांतियों में यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण थी। इसमें लोकतंत्र के विचार को स्वतन्त्रता, समता तथा बन्धुत्व से सम्बन्धित किया। इन सब विचारों के प्रभाव से जनसाधारण को विवेकशून्य तथा आज्ञाकारी प्रजा से ऊपर उठकर शासकों का चुनाव करने वाले तथा उन पर निगरानी रखने वाले नागरिकों का दर्जा मिल गया। इस तरह 'जनता' को 'जनता जनार्दन' की पदवी मिल गयी, जिससे 'लोकतंत्र' को प्रतिष्ठा मिली।

आधुनिक लेखकों ने लोकतन्त्र की चिरसम्मत संकल्पना को अपने ही ढंग से व्यक्त किया है। इसमें इंग्लैण्ड के ए.वी.डाइसी (1835-1922) और जेम्स ब्राइस (1838- 1922) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। डाइसी ने विधि-निर्माण व लोक-मत के परस्पर संबंध का विस्तृत निरूपण किया है। जेम्स ब्राइस ने अपनी दो कृतियों 'द अमेरिकन कॉमनवैल्थ (1893) और मॉर्डन डेमोक्रेसीज (1921) के अन्तर्गत लोकतंत्र को मुख्यत: एक शासन प्रणाली के रूप में प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार लोकतंत्र "जनसाधारण का शासन है, जिसमें वे वोटों के माध्यम से अपनी प्रभुसत्ता संपन्न इच्छा को व्यक्त करते है। ब्राइस के अनुसार किसी भी शासन की कसौटी'जन-कल्याण' है। लोकतंत्र में 'जनसाधारण दो तरह से अपनी सत्ता का प्रयोग करते है- (1) वे ऐसे लक्ष्य निर्धारित करते है, जिनकी पूर्ति करना उनकी सरकार का ध्येय होना चाहिए और (2) वे उन लोगों की निगरानी करते हैं, जिनके हाथों में वे प्रशासन की बागडोर सौंप देते है। ब्राइस यह दावा नहीं करते कि लोकतंत्र समाज की सभी बुराइयों की रामबाण औषधि है। परंतु वह इसे अन्य शासन प्रणालियों की तुलना में वरीयता देते है, क्योंकि इसने शासन के स्तर को ऊँचा उठाया है। इसने विश्वबंधुत्व की कल्पना को साकार तो नहीं किया, न इसने राजनीति को भ्रष्टाचार से मुक्त करके इसकी गरिमा को बढ़ाया है, परन्तु इसने अतीत की तुलना में बेहतर शासन व्यवस्था अवश्य प्रदान की है। आज के युग में 'लोकतंत्र' के विचार को सर्वत्र मान्यता दी जाती है। उदारवादी व समाजवादी दोनों 'लोकतंत्र' की सराहना करते है। उनका मतभेद इस बात को लेकर है कि लोकतंत्र को सही और सच्चे अर्थों में स्थापित करने के लिए कैसी और कौन-सी संस्थाएँ उपयुक्त है?

1.5 लोकतंत्र सम्बन्धी विभिन्न दृष्टियाँ

आधुनिक विश्व के अधिकांश राज्य 'लोकतांत्रिक होने का दावा करते है। कहीं लोकतंत्र को राज्य का रूप माना गया है, तो कहीं इसे समाज और जीवन का ढंग कहा गया है। यह वैचारिक अन्तर लोकतंत्र के सिद्धान्तों, आदर्शो व मूल्यों से भी दृष्टव्य है। इस कारण लोकतंत्र के अनेक दृष्टिकोण सामने आए है, जो इस प्रकार है-

1.5.1 पारम्परिक उदारवादी दृष्टि

पारम्परिक उदारतावादी सिद्धान्त को हम प्रतिष्ठित या लोकप्रिय सिद्धान्त भी कह सकते है। यह सिद्धान्त पिछली तीन शताब्दियों में विकसित हुआ है। बेंथम, जे.एस.मिल,टी.एच.ग्रीन, अब्राहम लिंकन आदि इसी उदारवादी धारणा को स्वीकार करते है। लोकतंत्र के इस दृष्टिकोण के सिद्धान्तों को लेकर विद्वान एक ही बात को अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत करते है।

लोकतंत्र के उदारवादी सिद्धान्त का विकास आधुनिक युग के प्रारम्भ से देखा जा सकता है। पुनर्जागरण तथा सुधारवाद के सांस्कृतिक एवं धार्मिक आंदोलनों ने व्यक्ति के मूल्य को सर्वोच्च मानते हुए तमाम चिन्तन का केन्द्र व्यक्ति को माना। हॉब्स ने लोकतंत्र के दृष्टिकोण के जिस महत्वपूर्ण तत्व को विकसित किया, वह था, सरकार या राज्य व्यक्तियों के आपसी समझौते का परिणाम। लॉक ने राजनीतिक सत्ता को जनता की सहमति पर आधारित बतलाया और संवैधानिक तथा सीमित सरकार के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। अठारहवीं शताब्दी में तर्कवाद के दार्शनिक मांटेस्क्यू ने स्वतन्त्रता को महत्व दिया और स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने के लिए सरकार की तीन शक्तियों-विधायी, कार्यकारी तथा न्यायिक में पृथक्करण की सिफारिश की। रूसो ने लोकतंत्र की आत्मा के रूप में अपना सामान्य इच्छा का सिद्धान्त दिया। 18वीं शताब्दी में ही अमेरिका व फ्रांस की क्रांतियों द्वारा लोकतंत्र के सिद्धान्तों को व्यवहारिक रूप प्रदान करने का प्रयत्न किया गया। बेन्थम एवं जे.एस.मिल ने लोकतंत्र का समर्थन

इस आधार पर किया कि यह शासन अधिकतम व्यक्तियों के अधिकतम सुख के लिए आवश्यक है। बीसवीं शताब्दी में अर्नेस्ट बार्कर, डेबी, लिण्डसे, लास्की, पैनोक आदि ने लोकतंत्र का समर्थन किया।

लोकतंत्र के उदारवादी दृष्टिकोण के बुनियादी तत्व निम्न है-

(i) सब व्यक्ति समान है। व्यक्ति अपना भला-बुरा स्वयं सोचने की शक्ति रखता है।

(ii) शासन जनता द्वारा स्वयं संचालित होना चाहिए।

(iii) सरकार बहुमत की होनी चाहिए तथा जनता की इच्छा सरकार की शक्ति का आधार है।

(iv) राजनीतिक सत्ता, जनता की अमानत है।

(v) सरकार का उद्देश्य सामान्य जन का भला करना तथा व्यक्ति का चहुँमुखी विकास करना है।

(vi) सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी होगी।

(vii) सरकार सीमित होनी चाहिए।

(viii) लोकमत का सरकार द्वारा आदर किया जाना चाहिए।

समालोचना -

(i) यह सिद्धान्त राजनैतिक समानता पर बल देता है, जबकि राजनैतिक समानता जैसी कोई वस्तु नहीं होती प्रत्येक समाज में कुछ विशिष्ट वर्ग होते है चुनाव हों या न हो शासन उन्हीं का होता है।

(ii) यह सिद्धान्त शासन का संचालन जनता द्वारा मानता है, जबकि जनता का राजनीति में हिस्सा लेना लोकतंत्र को भीड़तन्त्र में बदल देता है। आलोचक कहते है कि यदि लोकतंत्र को बचाना है तो जनता को शासन से दूर रखो। जनता द्वारा राजनीति में अधिक अभिरूचि लेने सेराजनीतिक व्यवस्था का संतुलन बिगड़ जाता है।

(iii) लोकतंत्र का उदारतावादी सिद्धान्त मूल्यों तथा आदर्शो पर बल देता है, राजनैतिक जीवन की वास्तविकताओं पर कम राजनीति में व्यवहारवाद के उदय के बाद, मूल्य विहीन राजनीति के समर्थक हर राजनीतिक सिद्धान्त को केवल राजनीतिक जीवन के तथ्यों पर स्थापित करना चाहते है।

(iv) यह सिद्धान्त राजनीति में नेताओं, शासन करने वाले विशिष्ट वर्ग तथा संगठित संस्थाओं को उचित महत्व प्रदान नहीं करता।

1.5.2 विशिष्टवर्गीय सिद्धान्त

मोस्का, पैरेटो, मिचेल, बर्नहम आदि विचारकों ने लोकतंत्र का विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। इनके अनुसार आधुनिक युग में हर शासन अल्पतंत्रीय है, जिसमें कुछ शक्तिशाली नेता लोग ही अपना प्रभाव एवं शक्ति रखते है। ये लोग विशिष्ट वर्ग के होते है। जहाँ कहीं भी सरकार होगी तथा राजनैतिक संगठन एवं शासक होंगे, वहीं सत्ता केवल अल्पमत के पास होगी क्योंकि ये ही नेतृत्व प्रदान करते है। विशिष्ट वर्गीय लोकतंत्र का सिद्धान्त इस बात का खण्डन करता है कि सरकार जनता के द्वारा चलाई जा सकती है। पैरेटो ने इसे शासक विशिष्ट वर्ग, मोस्का ने राजनीतिक वर्ग, मिचेल्स ने शक्ति विशिष्ट वर्ग आदि कहकर पुकारा है। हेराल्ड लासवेल के अनुसार, "राजनैतिक विशिष्ट वर्ग एक राजनैतिक व्यवस्था में शक्ति रखने वालों का होता है। शक्ति रखने वालों में नेतृत्व तथा समाज के वे सभी आते है, जिनसे नेता आते है तथा जिनके प्रति नेताओं का उत्तरदायित्व होता है।

विशिष्ट वर्ग की धारणा प्रारम्भ में लोकतंत्र के सिद्धान्त के प्रतिकूल थी। किन्तु अब इसे लोकतंत्रीय सिद्धान्त के आधार के रूप में स्थापित करने की चेष्टा की गयी है। यह नारा दिया गया

कि यदि लोकतंत्र को बचाना है तो जनता को इससे दूर रखो। शासन जनता के पास नहीं बल्कि केवल एक योग्य अनुभवी क्षमता वाले, प्रतिभाशाली विशिष्ट वर्ग के हाथों में होना चाहिए। चुनाव जनता की इच्छा जानने के लिए नहीं बल्कि नेताओं का या विशिष्ट वर्ग का चुनाव करने के लिए होता है। प्रतिनिधि लोकतंत्र वास्तव में विशिष्ट वर्ग का ही शासन है क्योंकि चुनाव के माध्यम से जनता की इच्छा को व्यक्त करने वाले प्रतिनिधि नहीं बल्कि शासन करने वाला विशिष्ट वर्ग चुना जाता है।

विशिष्ट वर्गीय सिद्धान्त की मुख्य धारणाएं निम्न है-

(i) पैरेटो न कहा था कि समाज के हर क्षेत्र में कुछ सबसे अधिक योग्य व्यक्ति होते है और इन्हेंविशिष्ट वर्ग कहा जा सकता है। अत: पहली मान्यता इस सिद्धान्त की यह है कि व्यक्तियों में समानता नहीं बल्कि असमान शक्ति व योग्यता होती है।

(ii) पैरेटो के अनुसार, जनता में हमें दो समूह मिलते है - (1) निम्न स्तर के लोग या गैर विशिष्ट वर्ग (2) उच्च स्तर के लोग या विशिष्ट वर्ग, जिसे दो भागों में बांटा जा सकता है - शासन करने वाला विशिष्ट वर्ग तथा शासन न करने वाला विशिष्ट वर्ग। अत: समाज दो भागों में बंटा है - जिसमें उच्च 'योग्यता' वाले लोग विशिष्ट वर्ग मे शामिल है तथा निम्न योग्यता वाले गैर-विशिष्ट वर्ग में।

(iii) मोस्का के अनुसार हर समाज में शासक और शासित वर्ग होते है। शासक वर्ग अल्पमत में होता है तथा असंगठित होता है। अत: बहुमत पर अल्पमत का शासन चलता है।

(iv) प्रतिनिधि लोकतंत्र में विशिष्ट वर्ग तो होते हैं, किंतु इस वर्ग में अदला बदली होती रहती है। कुछ लोग इस वर्ग से बाहर निकल जाते है, कुछ नए लोग इसमें शामिल हो जाते है।

(v) मोस्का का विचार है कि आधुनिक लोकतंत्रों में शासन करने वाले विशिष्ट वर्ग में तथा शासितों में आपसी आदान-प्रदान भी होता है तथा शासक केवल आधिपत्य ही नहीं रखते।

(vi) मिचेल के अनुसार हर संगठन में 'अल्पतंत्र का लौहनियम' चलता है। उसके अनुसार सरकार केवल अल्पमत का संगठन है जो बहुमत पर शासन के लिए है। सक्रिय अल्पमत, निष्क्रिय बहुमत पर शासन करता है।

(vii) बीसवीं सदी में विशिष्ट वर्ग में मुख्यत: तीन प्रकार के लोग शामिल किए जाते है- बुद्धिजीवी उद्योगों के प्रबंधक, उच्च सरकारी अफसर। मिल्स ने इनमें राजनीतिज्ञों को भी शामिल किया है।

(viii) विशिष्ट वर्ग तथा गैर विशिष्ट वर्ग एक-दूसरे के पूरक है तथा इनमें कोई मौलिक संघर्ष नहीं है।

यह सिद्धान्त मुख्यत: बीसवीं सदी में स्थापित किया गया है। लोकतंत्र के इस सिद्धान्त का सरोकार आदर्शों तथा मूल्यों - स्वतंत्रता, समानता, भाईचारे तथा क्षमतावान के लिए खुले होने चाहिए तथा विशिष्ट वर्ग एवं गैर विशिष्ट वर्ग में अदला-बदली संभव होनी चाहिए।

इस प्रकार लोकतंत्र का यह सिद्धान्त विशिष्ट वर्ग को लोकतंत्र का सहायक तथा पूरक मानता है, दुश्मन नहीं। भीड़ के रूप में जनता द्वारा शासन चलाए जाने की अपेक्षा यदि जनता द्वारा निर्वाचित विशिष्ट वर्ग के हाथों में सत्ता की बागडोर सौंप दी जाए, तभी लोकतंत्र चल सकता है। विशिष्ट वर्ग विस्तृत, खुला तथा ऐसा होना चाहिए, जिसमें प्रतिभाशाली तथा योग्य व्यक्ति प्रवेश पाकर अपनी आकांक्षाओं की पूर्तिकर सके। सफल लोकतंत्र के लिए इस सिद्धान्त के अनुसार विशिष्ट वर्ग में निम्न विशेषताएँ होनी चाहिए-

(i) लोकतंत्रीय मूल्यों तथा लोकतंत्र के खेल में विशिष्ट वर्गो का विश्वास एवं आस्था।

(ii) विशिष्ट वर्ग की नियुक्ति समाज के विभिन्न वर्गो मे से होनी चाहिए, इससे सारी जनता का विश्वास विशिष्ट वर्ग में विकसित होगा।

(iii) जनता विशिष्ट वर्ग के मामले में अधिक हस्तक्षेप न करे।

(iv) शासक विशिष्ट वर्ग की योग्यता तथा अनुभव अच्छा होना चाहिए।

(v) विशिष्ट वर्गो तथा जनता में अधिक दूरी न हो बल्कि तालमेल, आपसी सम्मान तथा विचारों का आदान-प्रदान बना रहे।

(vi) विशिष्ट वर्गों में सत्ता के लिए प्रतियोगिता हो जो चुनाव के माध्यम से व्यक्त हो।

(vii) विशिष्ट वर्ग विस्तृत तथा खुला होना चाहिए, जिससे योग्य एवं क्षमतावानव्यक्ति इसमें प्रवेश पा सके।

विशिष्ट वर्गीय दृष्टिकोण के बुनियादी तत्व निम्न है-

(i) सरकार 'जनता के द्वारा' नहीं हो सकती, 'जनता के लिए' हो सकती है।

(ii) लोकतंत्र वह है जहाँ जनता केवल चुनाव के द्वारा अपने शासक वर्ग (विशिष्ट वर्ग) को चुनती है।

(iii) बिना किसी विशिष्ट वर्ग के प्रजातंत्र नहीं हो सकता, केवल भीड़तंत्र हो सकता है।

(iv) लोकतंत्र विशिष्ट वर्गो में सत्ता के लिए संघर्ष है, जो चुनाव के माध्यम से जनता के वोट पाकर हारते या जीततेहै।

(v) राजनैतिक निर्णय लेने का कार्य केवल विशिष्ट वर्ग का है, आम जनता का नहीं।

इस सिद्धान्त के मुख्य आलोचक डंकन व ल्यूक्स, डेविस, बॉटमोर, सी.बे गोल्डस्मिथ, वाकर, बैकइंक, प्लामनाज आदि है। इनकी आलोचनाओं की मुख्य बिन्दु निम्न है -

(i) इस सिद्धान्त का विश्वास जनता में न होकर केवल नेताओं के विशिष्ट वर्ग में है। जनता को लोकतंत्र से दूर रखकर लोकतंत्र तत्व हीन एवं मूल्यहीन हो जाता है।

(ii) यह सिद्धान्त रूढ़िवादी है। यह परिवर्तन का विरोधी है तथा मौजूदा व्यवस्था का समर्थक है। यह सिद्धान्त लोकतंत्र की प्रगतिशीलता को नष्ट करते हुए इसे रूढ़िवादी राजनैतिक सिद्धान्त बना देता है।

(iii) यह सिद्धान्त लोकतन्त्र का उद्देश्य मानव का विकास तथा कल्याण न मानकर मानव का उद्देश्य लोकतंत्र का स्थायित्व तथा कार्य कुशलता मान लेता है।

(iv) यह सिद्धान्त केवल नेताओं में श्रद्धा रखता है तथा केवल उन्हीं को लोकतंत्र को सुरक्षित रखने का दायित्व सौंपता है। इससे नेताओं द्वारा लोकतंत्र के दुरुपयोग का खतरा खड़ा हो जाता है।

(v) यह सिद्धान्त व्यक्तियों की समानता का विरोधी है।

(vi) विशिष्ट वर्ग राजनीतिक व्यवस्था में संतुलन कायम नहीं कर सकता। सामाजिक द्वंद्व के कुछ मूल-भूत आर्थिक कारण है तथा बिना इन्हें खत्म किए सहमति व सामंजस्य स्थापित नहीं किया जा सकता।

(vii) यह सिद्धान्त लोकतंत्र को राजनीतिक व्यवस्था मात्र मानता है तथा इसके सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक पहलू को नजरअंदाज कर देता है।

(viii) यह सिद्धान्त मानव को साधन तथा राजनीतिक व्यवस्था को साध्य मानता है, मानव के चहुँमुखी विकास की ओर ध्यान नहीं देता।

(ix) यह सिद्धान्त मानव को साधन तथा राजनीतिक व्यवस्था को साध्य मानता है, मानव के चहुँमुखी विकास की ओर ध्यान नहीं देता।

(x) विशिष्ट वर्गो में प्रतियोगिता तथा बहुलवादी विशिष्ट वर्ग के विचार अवैज्ञानिक है, क्योंकि विशिष्ट वर्ग में एकता रहती है।

(xi) यह सिद्धान्त जनता के प्रति सरकार के उत्तरदायित्व को मानता है, क्योंकि सक्रिय, योग्य, क्षमतावान विशिष्ट वर्ग के लोग अयोग्य, अनजान तथा निष्क्रिय मतदाताओं के प्रति उत्तरदायी कैसे हो सकते है?

1.5.3 बहुलवादी सिद्धान्त

लोकतंत्र के बहुलतावादी सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य अमेरिकी राजनीतिक व्यवस्था को बहुलतावादी साबित करते हुए इसे विशुद्धलोकतांत्रिक ठहराते हुए सोवियत संघ तथा अन्य साम्यवादी व्यवस्थाओं को लोकतंत्र विरोधी साबित करना था।

बहुलवाद का मूल मन्तव्य है "अनेकता में एकता स्थापित करना लोकतंत्र है अनेकता को नष्ट करना गैर लोकतांत्रिक है। " बहुलतावादी लोकतंत्र को रॉबर्ट डहाल ने 'बहुतंत्रवाद' कहा है। बहुलतावादी लोकतंत्र का अर्थ एक ऐसी शासन व्यवस्था से है जिसमें नीति निर्धारण का कार्य समाज के विभिन्न हित आपसी विचार-विनिमय द्वारा करते है। बहुलतावादियों की मुख्य धारणा यह है कि शक्ति का प्रयोग, विशेषकर राजनैतिक नीतियों का निर्धारण, समाज की सब संस्थाओं तथा हितों को मिल बाँटकर करना चाहिए।

आर.प्रिस्थस, "यह एक ऐसी सामाजिक राजनैतिक प्रणाली है जिसमें राज्य की शक्ति बहुत सारे प्राइवेट समूहों, समान रूचि के संगठनों तथा ऐसे संगठनों का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों के बीच बंटी रहती है।

लोकतंत्र के बहुलतावादी दृष्टिकोण के निम्न प्रमुख तत्व है:-

(i) बहुलतावादी लोकतंत्र का आधार व्यक्ति नहीं, बल्कि व्यक्तियों के संगठन दबाव समूह, ट्रेड यूनियन संघ, राजनैतिक दल, संस्थाएँ आदि है। व्यक्ति इन्हीं समूहों के माध्यम से राजनीति में हिस्सा लेता है तथा इन समूहों को राज्य के नीति-निर्धारण में हिस्सा प्राप्त होना चाहिए।

(ii) बहुलतावादी लोकतंत्र का दूसरा आधार सम्प्रभुता की बहुलतावादी धारणा है जिसके अनुसार शक्ति केवल राज्य के पास नहीं, बल्कि समाज की अन्य संस्थाओं तथा राज्य में विभाजित होनी चाहिए।

(iii) राज्य की शक्ति सीमित होनी चाहिए। सरकार के विभिन्न अंगों की शक्ति इस प्रकार रखी जाए कि वे एक-दूसरे को नियंत्रित कर सके।

(iv) जनता को नीति निर्धारण में हिस्सा उनके व्यवस्थित संगठनों के माध्यम से दिया जाना चाहिए।

(v) नीति बनाते समय प्रभावित होने वाले समूहों से विचार विमर्श किया जाना चाहिए।

सिद्धान्त के विभिन्न आधार :-

(i) इस सिद्धान्त का पहला आधार यह है कि व्यक्ति राजनीति में हिस्सा केवल संस्थाओं एवं संगठनों के माध्यम से ही ले सकता है।

(ii) इस सिद्धान्त का दूसरा आधार यह है कि राज्य सत्ता राज्य की निरंकुश केंद्रीकृत शक्ति नहीं बल्कि बहुलवादी राज्यसत्ता में सभी हितों एवं संस्थाओं को हिस्सा मिलना चाहिए।

(iii) तीसरा आधार यह है कि सरकार के विभिन्न अंगों मे सत्ता बँटी होनी चाहिए तथा सरकार का एक अंग दूसरे अंगों पर अंकुश रखने की स्थिति में होना चाहिए।

(iv) चौथा आधार यह है कि जनता एवं जन संगठनों को राज्य की आज्ञा का पालन इसलिए करना चाहिए कि राजनीति निर्धारण में इनसे सलाह मशविरा लेना है। इस विचार विमर्श से नीतियाँ अच्छी बनती है तथा विरोध सहमति में बदल जाता है।

(v) पाँचवां आधार यह है कि सरकार एवं जनता के बीच की खाई को कम करने के लिए विभिन्न जन-संगठनों को महत्व दिया जाना चाहिए। ये जन-संगठन राज्य एवं जनता के बीच तालमेल बनाए रखने में मदद करते है।

बहुलवादी लोकतंत्र की आवश्यकताएँ :- इस सिद्धान्त के समर्थक बहुलवादी लोकतंत्र की कुछ महत्वपूर्ण आवश्यकताएँ बताते है, जो निम्न है-

(i) राजनीतिक समाज के सत्ता एवं प्रभाव के विभिन्न केन्द्र हो और इनमें सत्ता के लिए प्रतियोगिता होती रहे। राबर्ट डहाल ने इस सिद्धान्त को विशिष्टवर्गीय सिद्धान्त से मिलाने का प्रयत्न किया है।

(ii) राजनीतिक व्यवस्था खुली होनी चाहिए तथा विभिन्न संगठनों को बिना किसी भेदभाव के सत्ता में मुक्त हिस्सा मिलना चाहिए।

(iii) व्यक्तियों को संस्थाएँ बनाने तथा संस्थाओं के सदस्य बनने की पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए। जन-संगठनों का मुक्त विकास होना चाहिए।

(iv) चुनाव केवल शासन करने वाले विशिष्ट वर्ग को चुनने का ही माध्यम नहीं हे, बल्कि वह विशेष विषयों पर जनमत जानने और जनता को राजनीतिक प्रक्रिया में हिस्सा देने के लिए जरूरी है। महत्वपूर्ण राजनीतिक मामलों में जनमत संग्रह होना चाहिए।

(v) सारे समाज के संगठनों में लोकतंत्र के मुख्य नियमों एवं मूल्यों के बारे में सहमति होनी चाहिए। शासक दल एवं विरोधी दलों को लोकतंत्रीय व्यवस्था में विश्वास होना चाहिए।

लोकतंत्र के बहुलवादी सिद्धान्त की आलोचना मुख्य रूप से निम्नलिखित आधारों पर की जाती है -

(i) यह सिद्धान्त संगठित समूहों तथा संस्थाओं को महत्व देता है, न कि व्यक्तियों को।

(ii) यह सिद्धान्त राजनीति को दबाव गुटों की राजनीति बना देता है। सरकार के दबाव में आकर झुकना पड़ता है और समझौतावादी नीतियाँ अपनानी पड़ती है।

(iii) यह सिद्धान्त राज्य की प्रभुसत्ता को विभाजित मानता है जबकि एकलवादियों ने एक समाज में सत्ता के विभाजन को असम्भव बताया है।

1.5.4 मार्क्सवादी दृष्टि

लोकतन्त्र की साम्यवादी धारणा मार्क्स के वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त पर आधारित है। यह लोकतंत्र की द्वन्द्वात्मक व्याख्या है। साम्यवादी ने लोकतंत्र को नए अर्थों में ग्रहण किया है। सोवियत संघ तथा चीन के शासकों को 'जनवादी लोकतंत्र' कहा जाता है।

मार्क्सवाद लोकतंत्र को एक शासन के अलावा मूल्यों की एक व्यवस्था समझता है। लोकतांत्रिक मूल्यों में आर्थिक समानता, सामाजिक न्याय, शासन में जनता का हिस्सा तथा शोषण की अनुपस्थिति को अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है। प्राइवेट सम्पत्ति को खत्म करके, उत्पादन के साधनों का सामाजिक स्वामित्व स्थापित करते हुए लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना की जा सकती है।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अनुसार यदि समाज की आर्थिक व्यवस्था पूँजीवादी है, तो लोकतंत्रीय सरकार भी पूँजीपतियों के हितों का विशेष रूप से संरक्षण करेगी। जब तक पूंजी का समाजीकरण न

कर दिया जाए तब तक सही अर्थ में जनवादी लोकतंत्र की स्थापना सम्भव नहीं है। लेनिन के अनुसार सर्वहारा वर्ग का अधिनायकतंत्र ही सच्चा लोकतंत्र है, क्योंकि वहाँ सम्पत्ति पर संपूर्ण समाज का अधिकार होता है, न कि थोड़े से पूँजीपतियों का।

मजदूर वर्ग की तानाशाही केवल एक वर्ग का राज्य है, हर राज्य एवं लोकतंत्र की तरह यह पूर्ण लोकतंत्र नहीं है। मार्क्सवादी पूर्ण लोकतंत्र को तर्कसंगत नहीं मानते क्योंकि सारे लोगों की शासन व्यवस्था अपने आप में एक विरोधी बात है। लोकतंत्र भी एक प्रकार का राज्य है और हर राज्य केवल एक वर्ग का दूसरे वर्ग पर वर्ग-राज्य ही हो सकता है। अत: यह पूर्ण लोकतंत्र कभी नहीं हो सकता। साम्यवादी समाज में जब राज्य का विलोप हो जाएगा तब पूर्ण लोकतांत्रिक समाज की स्थापना होगी। जब तक राज्य है, यह वर्ग-राज्य होगा तथा वर्ग-प्रजातंत्र होगा। मजदूर वर्ग की तानाशाही पूँजीवादी लोकतंत्रों से श्रेष्ठ लोकतंत्र है। यह बहुमत वाले वर्ग का लोकतंत्र है तथा शोषण को बनाए रखने के लिए नहीं, बल्कि शोषण का अन्त करके शोषण मुक्त समाज की रचना का एक माध्यम मात्र है। लेनिन के शब्दों में, "मजदूर वर्गीय प्रजातंत्र पूँजीवादी प्रजातंत्र से लाखों गुना अधिक जनतांत्रिक है।"

मजदूर वर्ग की तानाशाही या साम्यवादी लोकतंत्र की निम्न तर्कों के आधार पर आलोचना की जाती है -

(i) यह एक वर्ग की तानाशाही है, जबकि लोकतंत्र तमाम जनता अमीर व गरीब का शासन है।
(ii) यह मजदूरों के अतिरिक्त अन्य वर्गो का दमन करता है, जबकि लोकतंत्र में किसी भी वर्ग को दूसरे वर्ग को खत्म करने का अधिकार नहीं दिया जा सकता।
(iii) मजदूर वर्ग की तानाशाही वाला लोकतंत्र बहुमत का शासन नहीं है, बल्कि कुछ क्रांतिकारियों का विशिष्ट वर्ग ही वास्तव में शासन करता है। यह मजदूर वर्ग की तानाशाही नहीं, बल्कि मजदूर वर्ग पर तानाशाही है।

1.5.5 समाजवादी दृष्टि

समाजवादी लोकतंत्र का मॉडल उदारवादी व मार्क्सवादी लोकतंत्र का समन्वित रूप है। समाजवादी लोकतंत्रों में राजनीतिक समाजों के मूल्य तो उदारतावादी लोकतंत्रों की अवधारणा के समान स्वतंत्रता, राजनीतिक समानता, सामाजिक व आर्थिक न्याय तथा जन-कल्याण की साधना के ही है, परन्तु साधनों की दृष्टि से समाजवादी लोकतंत्र साम्यवादी विचारधारा के समीप लगते है। इन लोकतंत्रों में समानता के आर्थिक पहलू पर अधिक बल दिया जाता है।

लोकतंत्र का समाजवादी दृष्टिकोण, उदारवादी लोकतंत्र व साम्यवादी लोकतंत्र के बीच का मार्ग नहीं है। यह अपने आप में एक विशिष्ट विचार है। जिसमें लोकतंत्र की सैद्धान्तिक व्यवस्था को व्यावहारिक रूप में प्राप्त करने का प्रयास निहित है। समाजवादी लोकतंत्र में राजनीतिक समानता व स्वतन्त्रता पर भी बल दिया गया है, तो साथ ही इसके सामाजिक व आर्थिक पक्षों के महत्व को भी आधारभूत माना गया है। यह इन दोनों का मध्यम मार्ग इसलिए नहीं है, क्योंकि इसमें दोनों प्रकार के लोकतंत्रों के समन्वय के स्थान पर दोनों से अलग मूल्य, सिद्धान्त व साधन अपनाए गए है। उदारवादी व साम्यवादी लोकतन्त्र बेमेल है। इनका सम्मिश्रण सम्भव नहीं है। अत: लोकतंत्र के समाजवादी दृष्टिकोण को इन दोनों की खिचड़ी कहना गलत होगा। समाजवादी लोकतंत्र में स्वतन्त्रता व समानता के विशेष अर्थ किए गए है तथा यह अर्थ लोकतन्त्र की भावना के अधिक अनुरूप है, क्योंकि इन्हीं अर्थों में स्वतन्त्रता व समानता तथा न्याय व्यक्ति की व्यक्तिगत गरिमा का अन्तिम उद्देश्य प्राप्त करता है।

लोकतन्त्र के इस दृष्टिकोण का विवेचन यह स्पष्ट करता है कि दुनिया के अधिकांश राज्य लोकतन्त्र के समाजवादी ढांचे में सम्मिलित नहीं किए जा सकते है। वास्तव में लोकतंत्र का यह प्रतिमान अत्यन्त जटिलहै। सामान्य संरचनात्मक हेर-फेर से राजनीतिक व्यवस्थाएं इस विचार की मौलिक मान्यताओं से हट जाती है। इसलिए यह निष्कर्ष कि "जो राज्य उदारवादी या साम्यवादी लोकतंत्रों के अन्तर्गत नहीं आते, वे समाजवादी लोकतंत्र के नाम से जाने जाते है", मान्य नहीं हो सकता है। वास्तव में दुनिया के अधिकांश राज्य या तो उदारवादी लोकतंत्र की श्रेणी में रखे जा सकते है तथा शायद भारत जैसे कुछ राज्य ही समाजवादी लोकतंत्र के मानदण्ड के अनुरूप कहे जा सकते है। बाकी अनेक विकासशील राज्य न सैद्धान्तिक दृष्टि से तथा न व्यवहार में समाजवादी लोकतंत्र की भावना के अनुसार प्रशासित होते है।

लोकतंत्र के विभिन्न दृष्टिकोणों के विवेचन से यह स्पष्ट है कि लोकतन्त्र की अवधारणा परिवर्तित होती गयी है। इनमें से कौन-सा सही अर्थों में लोकतन्त्र का श्रेष्ठ प्रतिमान कहा जाए यह प्रयत्न निरर्थक रहेगा क्योंकि अभी भी मानव भौतिक स्तर पर ही जीवित रहने की कोशिश में पूर्णतया सफल नहीं हो पाया है। जब सम्पूर्ण मानवता एक निश्चित स्तर प्राप्त कर लेगी, तब शायद लोकतंत्र के मूल्यों का पुन: निर्धारण होने लगेगा।

1.6 लोकतंत्र के प्रकार

साधारणतया लोकतंत्र के दो प्रकार है-

(i) प्रत्यक्ष लोकतंत्र - प्रत्यक्ष लोकतंत्र का अत्यन्त विशुद्ध स्वरूप वह है, जिसमें जनता तथा सरकार में कोई अन्तर नहीं होता है। सरकार तथा जनता एक ही होती है। यदि किसी महत्वपूर्ण समस्या पर निर्णय लेना होता है, तो सारी जनता एकत्र होगी और निश्चित करेंगी कि उसे क्या करना है। स्पष्टतया इस प्रणाली में जनता या निर्वाचक-मण्डल तथा व्यवस्थापिका में कोई पृथक्करण नहीं होता। अवसर उपस्थित होने पर समस्त जनता व्यवस्थापिका के रूप में कार्य करती है। यद्यपि यह लोकतंत्र का आदर्श स्वरूप है, तथापि यह स्वत: स्पष्ट है कि उन बड़े-बड़े राष्ट्र पर अल्प तथा नियंत्रण योग्य जनसंख्या में ही क्रियान्वित किया जा सकता है। वर्तमान काल में स्विट्जरलैण्ड के केवल पाँच कैण्टनों (राज्यों) में ही प्रत्यक्ष लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली प्रचालित है। संपूर्ण जनसंख्या की प्रशासन से प्रत्यक्ष रूप से सम्बंध करने की चार विधियाँ है - जनमत संग्रह, आरम्भक, प्रत्यावर्तन तथा लोक-निर्णय।

(ii) अप्रत्यक्ष या प्रतिनिधिक मूलक लोकतंत्र :- प्रत्यक्ष लोकतंत्र सरकार का बड़ा ही आकर्षक स्वरूप है। वस्तुत: यह लोकतंत्र का आदर्श स्वरूप है। इसका कारण यह है कि इसके अन्तर्गत जनता से निरन्तर परामर्श लिया जाता है। वास्तव में जनता स्वयं ही सभी प्रकार के निर्णय लेती है। किन्तु इसके बावजूद आधुनिक राष्ट्र-राज्यों में प्रत्यक्ष लोकतंत्र का अस्तित्व असम्भव है। अतएव आधुनिक राज्यों में किसी प्रकार का प्रतिनिधिमूलक लोकतंत्र पाया जाता है। सरकार के इस स्वरूप में मतदाता सरकार पर अपना निमंत्रण तो रखते है, किन्तु प्रत्यक्ष रूप में नहीं। वे स्वयं निर्णय नहीं लेते और न कानून बनाते है। यह उनके प्रतिनिधि करते है। अत: प्रतिनिधिमूलक लोकतंत्र में प्रतिनिधियों का निर्वाचन अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य है। यह निर्वाचन के माध्यम से किया जाता है। जनता अपने कुछ प्रतिनिधि चुन लेती है, जिनसे विधान-मण्डल गठित होता है। यह विधान मण्डल जनता की ओर से कानून पारित करता है और शासन पर नियंत्रण रखता है। इस प्रकार अप्रत्यक्ष लोकतंत्र में जनता की इच्छा का निर्माण तथा अभिव्यक्तीकरण निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से होता है। जे एस.मिल. ने जो इस प्रकार की शासन प्रणाली का प्रबल समर्थक था, प्रतिनिधि लोकतंत्र की परिभाषा इस प्रकार की है, "यह एक ऐसा शासन

है, जिसमें सारी की सारी जनता या फिर उसका बहुसंख्यक भाग, शासन सत्ता का प्रयोग समय-समय पर चुने गए अपने प्रतिनिधियों द्वारा करता है।

1.7 लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक शर्तें

लोकतंत्र एक अत्यन्त कठिन शासन प्रणाली है। इसकी सफलता के लिए एक विशेष प्रकार का परिवेश आवश्यक है। उचित परिवेश के अभाव में ही विकासशील देशों में लोकतांत्रिक मूल्यों की सुरक्षा करना कठिन प्रतीत होता है। कोरी तथा अब्राहम ने लोकतंत्र की सफलता के लिए चार विधियों का उल्लेख किया है (1) सरकार व नागरिकों की गतिविधियों का विधि के अनुसार संचालन होना (2) आपसी मतभेदों का निवारण वाद-विवाद एवं विचार विमर्श द्वारा होना (3) मतभेदों का तथ्यों तथा तर्क की कसौटी पर परखा जाना तथा (4) बहुमत से निर्णय लेना। लोकतंत्र में 'जनता अधिकांशत: शिक्षित, संवेदनशील तथा उत्तरदायित्व की भावना से परिपूर्ण होनी चाहिए। प्रमुख रूप से लोकतंत्र की सफलता के लिए निम्न दशाएँ आवश्यक है :-

(i) लोकतांत्रिक भावना :- किसी देश में लोकतंत्र की सफलता के लिए आवश्यक शर्त यह है कि उसके नागरिकों में लोकतांत्रिक भावना होनी चाहिए। आइवर ब्राउन ने "लोकतांत्रिक धारणा" पर अत्यधिक बल दिया है। लोगों में लोकतंत्रात्मक आस्था ही पर्याप्त नहीं है, अपितु यह भी आवश्यक है कि वे लोकतंत्र की रक्षा हेतु सतत् प्रयत्नशील रहे।

(ii) जनता का उच्च चरित्र :- लोकतंत्र की सफलता के लिए जनता का चरित्र ऊँचा होना चाहिए। जनता में सत्यता सहनशीलता, नि:स्वार्थता, ईमानदारी तथा सार्वजनिक कार्यो के प्रति रूचि होनी चाहिए। लॉवेल के अनुसार, "लोकतंत्र यदि ऐसे नागरिकों का निर्माण कर सके जो जाति बिरादरी के संकीर्ण विचारों से ऊपर उठकर सम्पूर्ण राष्ट्र के हित को अपने सम्मुख रखे, जो भविष्य के सुख को दृष्टि में रखकर वर्तमान समय के सभी कष्टों का सामना कर सके, जो दूरदर्शिता एवं धैर्य से काम ले और जो योग्य व्यक्तियों को ही अपने प्रतिनिधि बनाकर भेजे तो लोकतंत्र की जड़ को झंयकर तूफान भी नहीं हिला सकेगा। "

(iii) जनजागरण :- नागरिकों को अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों के प्रति सदा जागरूक रहना चाहिए। लॉस्की के शब्दों में, "सतत् जागरूकता ही स्वतंत्रता की कीमत है।"

(iv) शैक्षिक स्तर :- लोकतंत्र की सफलता के लिए नागरिक शिक्षित हों, शिक्षा का उचित ढंग हो तथा उसका स्तर काफी ऊँचा हो। सही शिक्षा से ही लोग इस योग्य हो सकते है कि देश की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को ठीक ढंग से समझ सके और उनके सम्बन्ध में स्वतंत्रतापूर्वक निर्णय ले सके। वस्तुत: शिक्षा सफल राजनीतिक जीवन की कुंजी है।

(v) सहयोग एवं सहिष्णुता की भावना :- लोकतंत्र की सफलता के लिए नागरिकों में सहयोग एवं सहिष्णुता के गुण होने चाहिए। लोकतंत्र बहुमत का शासन है। यदि बहुसंख्यक वर्ग अल्पसंख्यकों के प्रति उदारता का व्यवहार न कर उसका दमन करेगा, तो शांति भंग होने का खतरा बना रहेगा। दूसरी ओर अल्पसंख्यकों का भी कर्तव्य है कि बहुसंख्यक शासन का अवैधानिक तरीकों से विरोध न कर सहयोग की भावना से काम करें।

(vi) प्रबुद्ध लोकमत की चेतना :- लोकतंत्र की सफलता की एक अन्य आवश्यकता प्रबुद्ध लोकमत है। लोकतंत्र लोकमत द्वारा शासन है। प्रबुद्ध एवं सजग लोकमत का शासन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। स्वस्थ एवं शक्तिशाली लोकमत लोकतंत्र का प्रहरी है।

(vii) स्वतंत्र एवं मीडिया प्रेस - स्वतंत्र प्रेस का होना लोकतंत्र के लिए अपरिहार्य है। इसकी सफलता के लिए यह आवश्यक है कि लोगों को निष्पक्ष तथा सत्य समाचार प्राप्त हो। स्वतंत्र एवं निष्पक्ष प्रेस

जनता को तथ्यों एवं घटनाओं से परिचित कराता है और साथ ही जनता की शिकायतों को सरकार के सामने रखने में भी सहायता देता है।

(viii) स्वतंत्र न्यायपालिका :- स्वतंत्र न्यायपालिका लोकतंत्र की रीढ़ है। न्यायपालिका नागरिकों के अधिकारों की रक्षक होती है, किन्तु यह कार्य वह प्रभावशाली ढंग से तभी कर सकती है जब वह स्वतंत्र हो तथा कार्यपालिका उसके क्षेत्राधिकार में हस्तक्षेप न करे।

(ix) सम्पत्ति के वितरण में विषमता की न्यूनता :- लोकतंत्र तभी पनप सकता है जब देश में आर्थिक समता की स्थापना हो। किसी देश में जहाँ अधिकांश लोग निर्धनता का जीवन व्यतीत करते हो तथा कुछ लोग विलासिता का जीवन व्यतीत करते हो, वहाँ लोकतंत्रीय शासन सफलतापूर्वक नहीं चल सकता। जब तक नागरिक जीविकोपार्जन के लिए साधन जुटाने की झंझट से मुक्त न होगे, स्वतंत्र लोकतंत्रीय संस्थाएं सुदृढ़ नहीं हो सकती है।

(x) प्रभावशाली विरोधी दल: - शक्तिशाली एवं प्रभावशाली विरोधी दल के अभाव में लोकतंत्रात्मक सरकार निरंकुश एवं लापरवाह हो जाती है तथा अपनी सत्ता का दुरुपयोग करने लगती है। विरोधी दल आलोचना के द्वारा सरकार को सतर्क रखता है ताकि वह अपना कार्य ध्यानपूर्वक एवं भली-भाँति कर सके। जे. बन्धोपाध्याय, "बन्दी शिविर, सैनिक शासन, गुप्त पुलिस तथा सशस्त्र विद्रोह तानाशाही देशों के प्रमुख लक्षण है।"लोकतंत्र में संसदीय विरोधी दल इन लक्षणों की जगह एक विकल्प प्रस्तुत करता है।

(xi) स्थानीय स्वशासन :- लोकतंत्र की प्राथमिक पाठशाला है। एक साधारण नागरिक राष्ट्रीय विषयों की अपेक्षा स्थानीय मामलों में रूचि रखता है। स्थानीय स्वशासन संस्थाओं में भाग लेने से उसे शासन कला की शिक्षा प्राप्त होती है, जो आगे चलकर राष्ट्रीय शासन में भाग लेने हेतु उसमें अभिरूचि उत्पन्न करती है।

(xii) सामाजिक एवं राजनीतिक समता :- लोकतंत्र की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में पूर्ण समानता है। यदि समाज में एक तरफ विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग हो तथा दूसरी तरफ शोषित, पीड़ित व परदलित वर्ग हो तो वहाँ लोकतंत्र कभी सफल नहीं हो सकता। इसी प्रकार बिना किसी भेदभाव के सभी को मत देने का अधिकार, निर्वाचित होने का अधिकार, सरकारी पद धारण करने का अधिकार तथा कानून के समक्ष समता विद्यमान होनी चाहिए।

1.8 लोकतंत्र की उपयोगिता

अधिकांश विद्वानों ने लोकतंत्र को सर्वोत्तम प्रणाली बतलाया है। इसमें निम्न गुण है-

(i) उच्च आदर्शो पर आधारित :- लोकतंत्र स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व के आदर्शो पर आधारित होता है। लोकतंत्र मेंप्रत्येक नागरिक समान रूप से स्वतंत्रता का उपभोग करता है, सबके साथ समानता का व्यवहार किया जाता है और हर एक के व्यक्तित्व की गरिमा का सम्मान किया जाता है।

(ii) जन कल्याण पर आधारित :- लोकतंत्रात्मक शासन में प्रभुसत्ता अन्ततः जनता में निहित होती है, अतएव इसमें जनता के कल्याण का पूरा ध्यान रखा जाता है, किसी विशेष वर्ग के हित साधन का नहीं।

(iii) लोकमत पर आधारित :- लोकतंत्र लोकमत पर आधारित होता है। चुनाव के समय प्रशासकों एवं राजनीतिक दलों को जनता की बात सुननी पड़ती है तथा जनता को अधिकार होता है कि उसके हित का ध्यान न रखने वाले दल व प्रतिनिधियों को निर्वाचित करने से इंकार कर दे। जनता के हाथों में निर्वाचन सबसे बड़ा अस्त्र होता है जो निरंकुश शासकों को भी परास्त कर सकता है।

(iv) सार्वजनिक शिक्षण :- लोकतंत्र राजनीतिक प्रशिक्षण का उत्तम साधन है। भाषण व समाचार पत्रों की स्वतंत्रता जन-साधारण में विचार विनियम की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करती है। एक चुनाव से

दूसरे चुनाव के मध्य सभी राजनीतिक दल निरन्तर प्रचार द्वारा जनता को राजनीतिक शिक्षा प्रदान करते रहते है। सी.डी. बर्न्स"सभी प्रकार का शासन शिक्षा प्रदान करने की एक पद्धति है परन्तु आत्म शिक्षा ही सर्वोत्तम शिक्षा है, अत: सर्वोत्तम शासन स्वशासन है, जो लोकतंत्र है।

(v) क्रान्ति और सुरक्षा :- लोकतंत्र के अन्तर्गत क्रांति की सम्भावना अत्यन्त कम हो जाती है। यदि शासक वर्ग अत्याचारी या निरंकुश सिद्ध हो तो उसको हटाने के लिए सशस्त्र विद्रोह की आवश्यकता नही होती। यदि बहुसंख्यक जनता उससे असंतुष्ट हो तो वह उसे सरलतापूर्वक वैधानिक उपायों से हटा सकती है।

(vi) परिवर्तनशील शासन व्यवस्था :- लोकतंत्र एक ऐसा प्रयोग है जिसमें शासन प्रणाली को तब तक बदलते रहने की छूट है जब तक वह लोकमत के अनुकूल न हो जाए। इसमें शासन ऊपर से लादा नहीं जा सकता, विकसित किया जा सकता है। इसमें निर्वाचनों के माध्यम से सरकार बदलती रहती है। वस्तुत: यह गत्यात्मक शासन प्रणाली है। इसमें शांतिपूर्वक परिवर्तन या संशोधन किए जा सकते है तथा प्रगति सरलता सेहो सकती है।

(vii)देश प्रेम की भावना का विकास :- अधिनायकतंत्र और कुलीनतंत्र में सामान्य जनता शासन के प्रति उदासीन रहती है, क्योंकि उसे न शासन में भाग लेने का अवसर मिलता है और न उसकी बात की सुनवाई होती है, जबकि लोकतंत्र के अन्तर्गत देश प्रेम की भावना का विकास होता है। चूंकि जनता स्वयं देश की सर्वेसर्वा होती है, इसलिए वह राष्ट्र प्रेम से ओत प्रोत रहती है। जनता के आत्मविश्वास एवं उत्तरदायित्व की भावना का विकास - लोकतंत्र शासन में जनता को सक्रिय रूप से शासन कार्यो में हिस्सा लेने का अवसर मिलता है। जनता को विभिन्न प्रकार के अधिकार भी प्राप्त होते है, जिससे उसमें उत्तरदायित्व की भावना का भी विकास होता है। लॉवेल ने कहा है, "वही सरकार सर्वोत्तम है, जो मनुष्य की नैतिकता, साहस, आत्मबोध व पवित्रता को दृढ़ बनाएं।"

1.9 लोकतंत्र की सीमायें

लोकतंत्र प्रणाली को कार्यरूप देने में व्यवहारिक कठिनाइयों के कारण इसकी कड़ी आलोचना की जाती है। कुछ विद्वान तो यहाँ तक कहने लगते है कि लोकतंत्र का अब कोई उपयोग नहीं रहा है, क्योंकि अब कहीं भी सच्चे रूप में लोकतांत्रिक प्रणाली नहीं पायी जाती। लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में निम्न दोष है :-

(i) अयोग्यों का शासन :- लोकतंत्र इस धारणा पर आधारित है कि प्रत्येक व्यक्ति शासन करने की अन्य व्यक्तियों के बराबर योग्यता रखता है। इस अवधारणा की तीव्र आलोचना की जाती है। प्लेटो का मत था कि शासन संचालन एक कला है और केवल ज्ञानी व्यक्ति ही शासक बनना चाहिए। अरस्तु का विचार था कि कुछ लोगों में शासन करने की क्षमता रहती है। इसके प्रतिकूल लोकतंत्र विशेषज्ञों की उपेक्षा करता है। लोकतंत्र में कोई डाक्टर तो वित्त मन्त्री बन जाता है और कोई अशिक्षित शिक्षा मंत्री। इसलिए कतिपय आलोचकों ने इसे 'अयोग्यता का शासन' कहा है। फैजेट ने लोकतंत्र को अनभिज्ञता भरा ऐसा शासन कहा है कि जिसमें कोई सुधार सम्भव नहीं है। लेकी ने लोकतंत्र की आलोचना करते हुए लिखा है कि ' लोकतंत्र सबसे अधिक गरीब, अधिक अज्ञानी और सबसे अधिक अयोग्य व्यक्तियों द्वारा शासन है, जिनकी संख्या स्वाभाविक रूप से सबसे अधिक होती है।" प्रो. हर्नशॉ ने कहा है, "लोकतंत्र के नेताओं की स्थिति उन स्कूल मास्टरों जैसी होती है जिनकी नियुक्ति विद्यार्थियों की इच्छा से की जाती है और जिन्हें विद्यार्थियों की ही इच्छा से हटाया जा सकता है।

(ii) भीड़तंत्र :- लोकतंत्र के विरोधी यह तर्क देते है कि जनता प्राय: अनपढ़, जाहिल और गैर-जिम्मेदार होती है। लोकतंत्र में उसके मन को अहमियत देने से भीड़तंत्र को बढ़ावा मिलता है। परिणाम यह होता है कि गुणवत्ता की जगह परिमाण को प्रमुखता दी जाती हैं।

(iii) राजनीतिज्ञों का बाहुल्य :- लोकतंत्रीय शासन में कुछ लोग राजनीति को अपना पेशा बना लेते है और जैसे भी सम्भव हो वे अपने पद से जुड़े रहने का प्रयत्न करते है। वे अपनी भाषण शक्ति से जनता को प्रभावित कर निर्वाचित हो जाते है, किन्तु उनमें इतनी योग्यता नहीं होती कि वे देश की उन्नति के लिए रचनात्मक कार्य कर सकें, अतएव उनसे लोकहित की आशा करना व्यर्थ है।

(iv) भ्रष्ट नेतृत्व :- जनसाधारण का राजनीतिक विवेक चूंकि बहुत निम्न स्तर का होता है इसलिए लोकतंत्र में जनोत्प्रेरक नेता को खुलकर खेलने का अवसर मिलता है। भ्रष्ट नेता जनता की भावनाओं से खिलवाड़ करके नोट बटोर लेते है और फिर नारेबाजी की आड़ में अपने स्वार्थ को बढ़ावा देते है।

(v) उग्र दलबंदी :- कभी-कभी राजनीतिक दल लोकप्रियता प्राप्त करने के लिए अन्य दलों के खिलाफ निम्न स्तर की बातें प्रचारित करते है, जो प्राय: झूठी होती है। इसके अतिरिक्त राजनीतिक दल देशभक्ति के स्थान पर दलीय भक्ति को बढ़ावा देते है।

(vi) मतदाताओं की उदासीनता :- लोकतंत्र का एक दोष यह है कि मतदाताओं में अपने दायित्वों के प्रति उदासीनता रहती है। मतदान करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत बहुत: कम होता है। इस उदासीनता के परिणामस्वरूप सत्ता ऐसे लोगों के हाथों में पहुंच जाती है जो मतदाताओं को बहकाने में सफल हो जाते है।

(vii) बहुमत की तानाशाही :- लोकतंत्र में अन्ततोगत्वा बहुमत दल की निरंकुशता स्थापित हो जाती है। कभी-कभी बहुमत अल्पमत का दमन करने लगता है। लोकतंत्र में 51 प्रतिशत लोग 49 प्रतिशत पर मनमाने ढंग से शासन करते है।

(viii) धनिकवर्ग का शासन :- यथार्थ में लोकतंत्र धनवानों के शासन में परिवर्तित हो जाता है। लोकतंत्र का आधार निर्वाचन होता है और निर्वाचन द्वारा शासनकर्ता बनना केवल उन्हीं लोगों के बस की बात होती है जो धनी और साधन सम्पन्न होते है। जब धनवान लोग ही विधायिका के लिए निर्वाचित होते है, तो वे विधि निर्माण में भी धनिक वर्ग के हित साधन का ध्यान रखते है।

(ix) नैतिक मूल्यों की उपेक्षा :- लोकतंत्र में नैतिक मूल्यों की उपेक्षा की जाती है। चुनाव के समय विभिन्न प्रत्याशी एक दूसरे पर कीचड़ उछालते है, मिथ्या प्रचार करते है और जीतने के लिए घृणित साधनों का भी उपयोग करते है।

(x) खर्चीला शासन :- लोकतंत्र एक खर्चीली व्यवस्था है इसमें लोकतंत्र के संगठन चुनाव, प्रचार इत्यादि में करोड़ों का खर्च आता है। यदि यह पैसा अन्य रचनात्मक कार्यो में लगाया जाता है तो राष्ट्र की प्रगति में अपूर्व योगदान दिया जा सकता है।

(xi) अकुशल शासन :- लोकतंत्र शासन प्रणाली में कुशलता का सर्वथा अभाव रहता हैं आलोचकों के अनुसार कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के सदस्य प्राय: अकुशल होते है और इन्हीं पर राजकीय नीति बनाने और उसके क्रियान्वयन का दायित्व होता है।

(xii) संकटकाल के लिए अनुपयुक्त :- लोकतंत्र का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें न तो शीघ्र निर्णय लिए जा सकते है और न ही उन्हें शीघ्रता से क्रियान्वित किया जा सकता है।

1.10 भारत में लोकतंत्र की चुनौतियाँ

कुछ प्रमुख विचारकों का विश्वास है कि लोकतंत्र शिक्षा पर निर्भर है। हमारे देश में निरक्षरता लोकतंत्रीय प्रक्रिया के मार्ग की बहुत बड़ी बाधा है। निरक्षरता केवल जीविकोपार्जन के साधनों की सम्भावनाओं को ही कम नहीं करती वरन् यह मनुष्य को अपने समीपवर्ती संसार का ज्ञान प्राप्त करने में भी अवरोध उत्पन्न करती है।

(ii) संकीर्णतायें :- जाति के आधार पर राजनीति में भाग लेने की प्रवृति को जातिवाद कहते है। जातिवाद के पोषक किसी विशेष व्यक्ति को केवल इसलिए मत देते है कि वह उन्हीं की जाति से संबंधित

है। स्पष्टतया यह लोकतंत्र के क्रियाकलापों को विकृत कर देता है। जातिप्रथा के समस्त दोषों में अछूतों के साथ किया गया दुर्व्यवहार मुख्य है। अस्पृश्यता लोकतंत्र के विरूद्ध घोर अपराध है। यह मानव की आधारभूत गरिमा पर आघात करती है। स्वतंत्रता के पश्चात् अस्पृश्यता समाप्त करने के लिए औपचारिक कानून बनाए गए है। इसी प्रकार भाषावाद भी लोकतंत्र के मार्ग की बहुत बड़ी बाधा है। उद्योगों के विकास के साथ ही विशाल नगर विकसित होते है, जिसमें अनेक राज्यों के विविध भाषा-भाषी करोड़ों व्यक्ति रहते है। यदि व्यक्ति भाषा के आधार पर मतदान करने लगे तो लोकतंत्र का उद्देश्य निष्फल हो जाएगा। हमारे लोकतंत्र की मूल समस्या निर्धनता की है। भारत में विशेषकर लाखों ग्रामों में अधिकांश जनसंख्या निर्धन है। हमारे नगर व ग्राम धनी तथा निर्धन बस्तियों में विभाजित है। वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों से निर्धन लोग अपरिचित है।

1.11 सारांश

लोकतंत्र के गुण दोषों के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि लोकतंत्र के गुण तभी सार्थक होते है जब लोकतंत्र की भावना को प्रमुखता दी जाए, केवल उसकी बाह्य संरचना को नहीं। लोकतंत्र का आदर्श वस्तुत: इतना दुरूह है कि उसका यथार्थ कहीं भी प्राय: उसके आदर्श के पूर्णत: अनुकूल नहीं हो पाता है। फिर भी लोकतंत्र का विचार इतना अधिक लोकप्रिय है कि सभी शासन अपने को लोकतांत्रिक बताते है। संयुक्त राष्ट्र शैक्षणिक सामाजिक सांस्कृतिक संगठन (यूनेस्को) के वर्ष 1949 के प्रतिवेदन से इस बात की पुष्टि होती है। जिसमें कहा गया है कि "विश्व के इतिहास में पहली बार यह हुआ है कि कोई भी सिद्धान्त अब लोकतंत्र विरोधी सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जाता है। "

पैरेटो के अनुसार "लोकतंत्र नैतिक दृष्टि से अनुचित है, व्यावहारिक दृष्टि से अक्षम होता है तथा राजनीति दृष्टि से असम्भव।"वस्तुत: लोकतंत्र में अनेक दोष है और यह आदर्श शासन प्रणाली नहीं है। किन्तु अन्य कोई ऐसी शासन प्रणाली भी तो नहीं दिखलाई देती जो इससे अच्छी हो। ऐसी स्थिति में जे.एस.मिल का यह कथन स्वीकार करना पड़ेगा कि "लोकतंत्र के विरोध में दी जाने वाली युक्तियों में जो कुछ सार प्रतीत हुआ, उसको पूरा महत्व देते हुए भी मैंने सहर्ष उसके पक्ष में ही निश्चय किया।"

आज के औद्योगिक एवं विशाल राज्यों के युग में सम्बन्धों की औपचारिकता तथा संस्थात्मक जटिलताओं के कारण जनता का रूप अब 'जन' का न होकर 'जनपुंज' का हो गया है। लोकतंत्र के क्रियान्वयन के साधन किसी भी राजनीतिकवाद के अनुकूल हो इसके सभी रूपों को लोकतन्त्रीय माना जाना चाहिए, यदि वे लोकतंत्र के उद्देश्य की सिद्धि करने में समर्थ हो। लोकतंत्र के क्रियान्वयन के साधन जिस प्रकार अब तक बदले है, आगे भी बदल सकते है, पर उसका उद्देश्य ऐसा है, जो शाश्वत है। लोकतंत्र की व्यवस्था का उद्देश्य मनुष्य के लिए श्रेष्ठ मानव जीवन को सुलभ बनाना है और उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यक्ति की स्वच्छन्दता के स्थान पर किसी लोकतंत्र द्वारा यदि व्यवस्थित स्वतंत्रता, नियमित जीवन, नियन्त्रित अर्थव्यवस्था आदि व्यवस्थाएं की जाती है, तो इससे लोकतंत्र के लोकतन्त्रीय स्वरूप पर उस समय तक कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता, जब तक इस प्रकार की व्यवस्थाओं से लोक कल्याण की साधना होती रहती है।

लोकतंत्र के दोषों तथा त्रुटियों को देखते हुए क्या उसका परित्याग करना उचित होगा? ऐसी स्थिति में विकल्प का प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है। अभिजाततंत्र, गुटतंत्र, अधिनायकतंत्र आदि जितने भी विकल्प है, उनमें कोई भी लोकतंत्र से उत्तम सिद्ध नहीं हुआ। अत: वर्तमान स्थिति में एक ही विकल्प रह जाता है, वह यह किजहाँ तक हो सके लोकतंत्र की कमियों को दूर किया जाए। सी.डी. बर्न्स के

अनुसार “इस बात से इंकार नही किया जा सकता कि वर्तमान प्रतिनिधि सभाओं में अनेक त्रुटियां है, पर यदि मोटरगाड़ी खराब हो जाए तो इसकी जगह बैलगाड़ी का इस्तेमाल करने लगना मूर्खता होगी, चाहे इसकी कल्पना कितनी ही मधुर क्यों न लगे। "

1.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. लोकतंत्र की परिभाषा देते हुए उसका महत्व स्पष्ट कीजिए।
2. एक अवधारणा के रूप में लोकतंत्र के कौन से तीन अन्त: सम्बन्धित अर्थ किए जाते है? विस्तृत वर्णन कीजिए।
3. "लोकतंत्र अयोग्यता का शासन है। " विवेचना कीजिए और बतलाइए कि क्या आप इस विचार से सहमत है?
4. लोकतंत्र के गुण-दोषों की विवेचना कीजिए और लोकतंत्र के दोषों को दूर करने के सुझाव दीजिए।
5. लोकतन्त्र की अभिजनवादी आलोचना समझाते हुए मार्क्सवादी दृष्टि से अन्तर समझाइये।

इकाई - 2
पुलिस, प्रजातंत्र एवं विधि का शासन

इकाई संरचना

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 विधि का शासन : उद्भव व विकास

2.3 विधि का शासन : अर्थ व परिभाषा

2.4 विधि का शासन:लोकतन्त्र, संविधान व उच्चतम न्यायालय

2.5 विधि का शासन:पुलिस की भूमिका

2.6 पुलिस की विडम्बनायें

2.7 व्यवहार में आने वाले अन्तरविरोध व टकराव

2.8 विधि का शासन बनाम गम्भीर संवेदनशील चुनौतियाँ

2.9 विचारणीय व्यावहारिक विषय क्षेत्र

2.10 सारांश

2.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के उद्देश्य निम्नांकित हैं-

- विधि के शासन का प्रजातंत्र में उद्भव, विकास, अर्थ व परिभाषा का अध्ययन करना।
- विधि के शासन का लोकतंत्र, संविधान व उच्चतम न्यायालय में सामन्जस्य पूर्ण क्रियान्वयन का अध्ययन।
- विधि के शासन में पुलिस की भूमिका, विडम्बना तथा व्यवहार में आने वाले अर्न्तविरोध व टकरावोंसे अवगत करना।
- विधि को शासन सम्बन्धित गम्भीर संवेदनशील चुनौतियों एवं व्यावहारिक विषय क्षेत्र पर विचार करना।

2.1 प्रस्तावना

महान दार्शनिक रूसो जब 'सामान्य इच्छा' (general will) की बात करते हैं तो अन्ततः वह इच्छा लोकतन्त्र में बहुमत की इच्छा हो जाती है। समाज के सभी सदस्यों की इच्छाओं के समकारकों को निष्कर्षतः चिन्हित करना कठिन ही नहीं असंभव है। सिद्धान्त के स्तर पर चाहे ऐसा कर पाना संभव हो लेकिन व्यावहारिक धरातल पर 'बहुमत की इच्छा' का यथार्थ ही सामने आयेगा। इसकी एकमात्र वजह है लोकतान्त्रिक निर्वाचन प्रक्रिया जिसका आधार होता है मताधिकार। लोकतन्त्र में मताधिकार के वर्तमान स्वरूप के पीछे लम्बा इतिहास है जिसकी जड़ें ब्रिटिश उदारवाद, अमरीकी क्रान्ति व फ्रांस की महान क्रांति में खोजी जा सकती हैं। मताधिकारभी विभिन्न चरणों में विकसित होता रहा है।वर्तमान स्वरूप ग्रहण करने तक इस अवधारणा को बहुत सी बाधाओं को पार करना पड़ा जिनमें नस्लवाद, पुरूष वर्चस्व, सामाजिक स्तर तथा विशेष योग्यताओं आदि को शामिल किया जा सकता है। भारतीय इतिहास के प्राचीन गणराज्यों की बात करें तो यह तथ्य सामने आता है कि परिवार व समाज जैसी संस्थाओं के शैशव काल में व्यवस्था बनाये रखने के लिए कबीलाई संस्कृति की भूमिका महत्वपूर्ण रही जिसमें

कुल, गौत्र, वंश आदि तत्वों पर आधारित मानव समूह आकार लेते रहे जिनकी व्यवस्था के संचालन का दायित्व दल-मुखिया व उसके निकट सहयोगियों या विश्वासपात्र व्यक्तियों पर था। इसी स्वरूप का विकसित रूप हमें गणराज्यों में दिखाई देता है। जब छोटा मानव समूह आंचलिक पंचायतों का आकार ग्रहण करने लगा और सर्व सम्मति के आधार पर मुखिया व उसके सहयोगियों का चयन किया जाने लगा। यहां भी परिस्थितियाँ आसान नहीं थी, चूँकि इस चयन प्रक्रिया में प्रभावशाली व्यक्तियों व बहुमत की भूमिका महत्वपूर्ण रही। यह एक शोध का विषय है कि गणराज्य प्रमुख या शासक वर्ग के चयन में नगर श्रेष्ठियों, पूर्व मुखियाओं, सैन्य नायकों, आचार्यों, नगर वधुओं, वेश्यालय संचालकों, मदिरा व्यवसायकों या अन्य शक्ति केन्द्रों की भूमिका कितनी रही होगी। गणराज्य प्रमुख के चयन एवं उसके द्वारा अपनी टीम गठित करने के बाद शासन में उसकी स्वेच्छाचारिता को कितना स्थान प्राप्त होता रहा था, यह भी एक विचारणीय बिन्दु है। यह इसलिए कि गणराज्य युग में आम आदमी वर्तमान नागरिक के रूप में ना तो शिक्षित था ना समझदार और ना ही रोजी रोटी की तलाश से उसे इतनी फुर्सत थी कि वह शासन पर निगरानी रखने के लिए समय निकाल पाता या तत्कालीन परिस्थितियों में साहस जुटा पाता। शासक वर्ग पर निगरानी रखने वाले उच्च स्तर के व्यक्ति ही हुआ करते थे। तत्काल में शासकवर्ग व शासित प्रजा के रूप में दो वर्ग प्रकारान्तर से उसी रूप में दिखाई देते हैं जिस रूप में राजतन्त्र या सामन्तवादी कालखण्डों में।

जब हम लोकतन्त्र की बात करते हैं तो एक ओर बहुमत की इच्छा एक यथार्थ के रूप में हमारे सामने आती है और दूसरी तरफ चुनावों के दौरान अपनाये जाने वाले उन हथकण्डों की ओर हमारा ध्यान जाता है जो साधन सम्पन्न प्रभावशाली चालाक लोगों द्वारा अपनाये जाते हैं। ये दोनों ही कारक लोकतन्त्र की मूल आत्मा को ठेस पहुँचाते हैं लेकिन सुखद व सकारात्मक पक्ष यह है कि संवैधानिक प्रावधानों, संस्थाओं यथा न्यायपालिका एवं विभिन्न आयोग तथा मीडिया की प्रभावशाली भूमिका। यह वर्तमान लोकतन्त्र में ही संभव है कि एक साधारण आदमी ही अपनी बात को विभिन्न स्तरों पर कह सकता है और कानून के दरवाजे खटखटा सकता है, चाहे न्याय मिलने की प्रक्रिया धीमी व खर्चीली ही क्यों न हो। न्याय के धीमा व खर्चीला होने के विषय पर बहुत बहस हुई है और आशा की जाती है कि हालात में सुधार देर सवेर जरूर होंगे। लोकतन्त्र को सफल, सार्थक और लोक कल्याणकारी तभी बनाया जाना संभव होगा जबकि संविधान की भावना के अनुरूप बनाये जाने वाले कानून कायदों को असल रूप में क्रियान्वित किया जाय। इस क्रियान्वयन की प्रक्रिया में पुलिस कार्यपालिका की एक शाखा के रूप में भी कार्य करती है और अपनी भूमिका निभाने में विधि तन्त्र की सीमाओं में भी उसे रहना होता है। पुलिस की लोकतान्त्रिक भूमिका को समझने के लिए उसे दी गई शक्तियों और दायित्वों को विधि के शासन के दायरे में समझना होगा, चाहे हम पुलिस के लोकतान्त्रिक अधीनत्व की बात करें या एक सीमा तक उसके स्वायत्त होने की।

2.2 विधि का शासन: उद्भव व विकास

लोकतान्त्रिक प्रशासन प्रणाली से पूर्व विधि का लिखित या मौखिक अस्तित्व था। निश्चित रूप से आरम्भ मेंविधि व्यवस्था मौखिक परम्परा के रूप में उदित हुई जिसकी जड़ें आदिम समाजों की मुखिया केन्द्रित जीवन कीकबीलाई पद्धति में पाई जाती हैं। मुखिया की सकारात्मक या नकारात्मक प्रभाव पैदा करने वाली स्वेच्छाचारिता या समादेशों की पीढ़ी दर पीढ़ी निरन्तरता से विकसित परम्परा को विधि प्रणाली के शैशव काल रूप में देखा जा सकता है। प्राचीन काल में परम्परागत मौखिक विधि प्रणाली को संहिताबद्ध करने के उदाहरणोंमें सुमेरियन सभ्यता के उर नाम्मू कोड (2100-2050 ई.पू.) बेबीलोन के शासक हम्मूराबी का कोड (18वीं शताब्दी ई.पू.) तथा मनु स्मृति (शुंग काल) को लिया

जा सकता है। इन विधि संहिताओं में धार्मिक व नैतिक करणीय व अकरणीय कृत्यों का संकलन प्रमुख रूप से किया गया है। मनु स्मृति व कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राजा के कर्तव्यों तथा दण्ड नीति पर अधिक जोर दिया गया है। यहां हमें ध्यान रखना चाहिए कि परम्परागत मौखिक विधि का संहिताकरण को तत्कालीन परिस्थितियों व समाज व्यवस्था ने पूरी तरह से प्रभावित किया। इसलिए आज की विकसित उदार मानसिकता की तुला पर इन संहिताओं के प्रावधान, विशेष रूप से मनु कृत्य जैसी संहिता, खरी नहीं उतरती चूँकि धर्म, तज्जन्य वर्ण व्यवस्था एवं राजा के ईश्वरीय रूप का वर्चस्व चिन्तन पर हावी था। उस युग में धर्म-नायकों का वर्चस्व सर्वविदित था। जब भी राजा कहीं अटकता तो रास्ता ये ही लोग दिखाया करते थे, चाहे ईसाईयत का पोप हो या शरियत का मुल्ला या हिन्दु पुरोहित। इस दशा से विकसित एवं तर्कसम्मत संहिताकरण हमें रोमन साम्राज्य के 'तोराह कोड' में देखा जा सकता है। आगे चलकर प्रथम स्थायी विधि संहिता का संकलन चीन में ताॅग कोड के रूप में ई.पू.624 में हुआ जिसका विकल्प सन् 1912 में तलाशा गया और अंतिम स्वरूप हमें चीन की क्रान्ति के बाद दिखाई देता है। यूरोप में पहला व्यवस्थित संहिताकरण नेपोलियन के कोड के नाम से प्रख्यात हुआ जो सन् 1804 में सम्पादित किया गया। इस्लामी दुनिया में 19वीं शताब्दी में ओटोमन साम्राज्य में शरियत कानून का संकलन किया गया। प्राचीन एवं मध्यकालीन विधि संहिताकरण की प्रक्रिया के पश्चात ब्रिटिश उदारवाद, अमरीकी व फ्रांसिसी क्रान्तियों के बाद पश्चिमी दुनिया में लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण से व्यवस्थित रूप लेने लगी जिसे आज पूरे विश्व में फैला हुआ देखा जा सकता हैं।

विधि संहिता की प्रक्रिया में विधि प्रणाली व्यवस्थित हुई, स्थापित हुई और क्रियान्वित होने लगी। यहां इससे पहले विधि संहिता संकलित होने के बावजूद शासक वर्ग की स्वेच्छाचारिता को पर्याप्त स्थान था। विधि का शासन विधि होने के बावजूद गौण ही चला आया, प्रमुख स्वर राजा का या उसके सहयोगियों का रहा। इसकी खास वजह यह थी कि उनपर कोई नियन्त्रण बाहर से नहीं था। यदि कहीं ऐसा था भी तो वह धर्मनायकों के रूप में ईश्वरीय भय था, सिद्धान्त या संस्थागत कोई तन्त्र विकसित नहीं हुआ था। वर्तमान काल में विधि संहिता में जनाकांक्षाओं, भौतिक विकास व सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से निरन्तर संशोधन हो रहे हैं। संहिताकरण की यह गत्यात्मक दशा विकसित व परिपक्व लोकतन्त्र का आधार बनती हैं और प्रजातान्त्रिक नायक दल अर्थात विधायिकाओं से अधिक वर्चस्व उनके द्वारा निर्मित विधि का स्थापित होता है। यही से विधि का शासन लाग होता है जिसके सुरक्षा कवच या निगरानीकार के रूप में न्यायपालिका की भूमिका सामने आती है।

2.3 विधि का शासन : अर्थ व परिभाषा

ब्रिटिश विद्वान ए.वी डायसी की संविधान की विधि' शीर्षक से विख्यात पुस्तक सन् 1885 में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में विधि के शासन की तीन विशेषतायें बताई गई -

1. विधि के सामने सभी व्यक्ति समान हैं।
2. विधि के किसी प्रावधान का उल्लंघन किये बगैर किसी व्यक्ति को सजा नहीं दी जा सकती है।
3. न्यायपालिका की सर्वोच्चता।

डायसी द्वारा प्रतिपादित विधि के शासन के तीसरे सिद्धान्त को लेकर मतभेद हो सकते है चूँकि जब लिखित संविधान सामने होता है तो संसदीय शासन प्रणाली में संसद की सर्वोच्चता सामने आती है। लिखित संविधान की अनुपलब्धता की स्थिति में विधि की व्याख्या करने की सीमित भूमिका को देखते हुए न्यायपालिका की सर्वोच्चता संभवतः डायसी ने स्वीकार की।

विधि के शासन की अवधारणा मनुष्य के स्तर पर सापेक्षिक हस्तक्षेप को नियन्त्रित करती है यह मानते हुए कि व्यक्ति कभी निरपेक्ष नहीं हो सकता चाहे वह कितना ही सधा और मजा हुआ लोकतान्त्रिक नायक ही क्यों न हो। संवैधानिक इतिहासज्ञ सर आईवर जैनिंग्स ने विधि के शासन को 'अनियन्त्रित घोड़ा' कहा है। प्रख्यात विधिविज्ञ सोली सोराबजी ने इस अभिमत का विरोध करते हुए इस सिद्धान्त का समर्थन किया है कि जहां विधि का अंत होता है, वहाँ अराजकता आरम्भ होती है। ' जब फ्रांसिसी विचारक वाल्तेयर को राज के विरूद्ध बोलने के आरोप में सजा दी गई उसकी विडम्बना यह है कि जिस वक्तव्य को राजविरोधी बताया वह वक्तव्य वाल्तेयर का ना होकर किसी अज्ञात व्यक्ति का था। वाल्तेयर किसी तरह निकल भाग कर ब्रिटेन पहुँचा जहाँ उसने यह प्रतिक्रिया व्यक्त की कि ' यहां मैं स्वतंत्रता की हवा में सांस ले सकता हूँ चूँकि इस देश में मनुष्यों पर विधि का शासन है ना कि व्यक्तियों की मनमर्जी। '' जॉन एडम्स जब कानून की सरकार मनुष्यों की नहीं की बात करते हैं तो वे विधि के शासन के समर्थन में खड़े होते है। सॉली सोराबजी का स्पष्ट मत है कि 'विधि का शासन सभ्य लोकतान्त्रिक समाजों की खोज को इंगित करता है। ' सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश वीवियन बोस विधि के शासन को समस्त मानव जाति की धरोहर' के रूप में देखते हैं।

विधि के शासन को इकतरफा यातायात नहीं कहा जा सकता। ऐसी व्यवस्था सरकारों व व्यक्तियों पर पाबन्दियाँ लगाती हैं जिससे वे स्वेछाचारी ना बन जायें। इसके लिए आवश्यक है कि हम विधि के शासन की संस्कृति को समग्र लोकतान्त्रिक जीवनशैली का हिस्सा बनायें। जहाँ तक विधि की जड़ता की दुर्सम्भावनाओ का सवाल है संसदीय लोकतन्त्र में विधायिका सर्वोच्च होती है जो विधि प्रणाली को संशोधित करती जाती है और नये कानून कायदे निर्मित करती चलती है। इसलिए विधि की जड़ता के सिद्धान्त को नकारते हुए हमें विधि की गत्यात्मकता में विश्वास करना चाहिए।

2.4 विधि का शासन लोकतन्त्र, संविधान व सर्वोच्च न्यायालय

लोकतन्त्र को भारतीय संविधान आधारभूत कानूनी ढांचा प्रदान करता है। देश के समस्त केन्द्रीय एवं स्थानीय व विशिष्ट अधिनियम संविधान की भावना के अनुरूप बनाये जाते हैं। यदि कोई भी अधिनियम या अधिनियमों के पालनाक्रम में जारी नियम व प्रक्रिया संविधान के किन्हीं प्रावधानों के साथ मेल नहीं खाती तो न्यायिक व्याख्या के माध्यम से उन्हें असंवैधानिक घोषित करने की संवैधानिक प्रक्रिया हमारे यहां उपलब्ध है। विधि के शासन से संबंधित महत्वपूर्ण संवैधानिक प्रावधान भाग 3 में उल्लेखित है जो मौलिक अधिकारों से सम्बन्ध रखता है। विधि के शासन को स्थापित करते हुए इस भाग में कई विधिक प्रतिबन्ध ऐसे हैं जो संसद की विधि निर्माण सम्बन्धी शक्तियों को उस सीमा तक नियन्त्रित करते हैं जहां संविधान के मौलिक उद्देश्यों यथा समानता, स्वतन्त्रता व पंथनिर्पेक्षता (Secular) के संकल्प को किसी भी स्तर पर खण्डित करते हैं। इस व्यवस्था के साथ हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि राष्ट्र व जनहित में इन अधिकारों पर विवेक सम्मत प्रतिबन्ध स्थायी या अस्थाई तौर पर लगाये जा सकते हैं। ये दोनों ही व्यवस्थायें कानून के शासन को मजबूत करती हैं। उल्लेखनीय है कि कानून के शासन में संवैधानिक दृष्टि से जितना महत्व व्यक्तिगत स्वतन्त्रता एवं विधि के समक्ष समानता को दिया गया है उतना ही महत्व भारतीय संविधान में राष्ट्र व जनहित को दिया गया है, यह मानते हुए कि कानून का शासन अंततः उस लोकतन्त्र का आधार है जो राष्ट्र व जन के हित में प्रतिबद्ध है।

ए.डी.एम. जबलपुर बनाम शिवकांत शुक्ला के बन्दी प्रत्यक्षीकरण से संबंधित सर्वोच्च न्यायिक निर्णय में यह प्रमुख सवाल बहस का मुद्दा बना था कि संविधान की धारा 21 के अलावा क्या कहीं

भारत में विधि का शासन है। यह सवाल आपातकाल के दौरान धारा 14, 21, 22 के प्रावधानों के क्रियान्वयन को स्थगित करने की वजह से उठा था। न्यायाधीशों ने बहुमत सेउक्त सवाल का नकारात्मक उत्तर दिया था लेकिन न्यायाधीश श्री एच. आर. खन्ना ने इस निर्णय से असहमति व्यक्त करते हुए यह अभिमत व्यक्त किया कि विधि के प्राधिकार के अलावा राज्य को किसी भी व्यक्ति के जीवन व स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार नहीं है। यदि ऐसा किया गया तो विधि के अधीन शासन और विधि विहीन समाज में कोई अन्तर नहीं होगा। संविधान में कानून के शासन के साथ सामाजिक न्याय का भी बहुत शानदार सामन्जस्य बिठाया गया है ताकि समानता का अधिकार एक सामाजिक दायित्व बोध ग्रहण कर सके। 'पिछड़े को न्याय' का संकल्प इसी सामंजस्य को संकेतित करता है। कानून के शासन के तहत लोकतान्त्रिक सत्ताधारी या विपक्षी राजनायकों की मनमर्जी पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है, साथ ही न्यायिक अति सक्रियता को भी नियन्त्रित करता है जिससे न्यायिक पुनरीक्षण तक ही न्यायपालिका की भूमिका सीमित रह सके। इस व्यवस्था के बावजूद संसद बनाम न्यायपालिका की प्रक्रिया संविधान के लागू होने के बाद से लेकर अब तक चली है जिसमें प्रीवी पर्सेज, बैंक राष्ट्रीयकरण व आरक्षण जैसे विषयों को केन्द्र में रखकर उठा पटक चली। यह निर्विवाद है कि भारतीय संविधान में कानून के शासन को संविधान के आधारभूत ढांचा में शामिल किया गया है। इस सिद्धान्त को सर्वोच्च न्यायालय ने अपने अनेक निर्णयों में बार-बार स्वीकार किया है जिनमें केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य, मेनका गांधी बनाम भारत संघ, इन्दिरा गांधी नेहरू बनाम राजनारायण, बिनानी जिंक लि. बनाम केरल राज्य विद्युत बोर्ड आदि शामिल हैं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि कानून का शासन लोक कल्याणकारी राज्य और प्राकृतिक न्याय की अवधारणाओं का एक उदाहरणीय व अनुकरणीय सामन्जस्य है।

सैद्धान्तिक बहस का मुद्दा यह है कि लोकतन्त्र से अलग अन्य शासन तन्त्रों में व्यक्ति का शासन महत्वपूर्ण होता है जबकि लोकतान्त्रिक प्रणाली में कानून का शासन और कानून का यह शासन भी कोई जड़ अवधारणा नहीं है, प्रत्युत राष्ट्र व जनहित तथा समय की मांग के अनुरूप लचीलापन रखता है ताकि वह प्रगतिकामी और प्रगतिगामी हो सके। इस व्यवस्था में यह भी अवसर होता है कि खाली स्थानों को न्याय सम्मत स्वविवेक से भरा जा सके जिससे शासन के संचालन में किसी भी स्तर पर असमंजस या व्यवधान की स्थिति पैदा न हो। कानून के शासन के कुछ दृष्टांत निम्न संवैधानिक प्रावधानों के माध्यम से समझे जा सकते हैं-

1. किन्हीं कानूनी प्रावधानों के उल्लंघन के बिना किसी व्यक्ति को गिरफ्तार नहीं किया जासकता और ना ही उसके घर या व्यक्तिगत सामान की तलाशी ली जा सकती है। ऐसा करने के भी आधार संबंधित व्यक्ति को बताये जायेंगे।
2. गिरफ्तारशुदा व्यक्ति को 24 घण्टे के भीतर संबंधित न्यायालय में पेश किया जायेगा।
3. ऐसे व्यक्ति को पर्याप्त साक्ष्यों, तथ्य एवं आधार पर जमानत का अवसर दिया जायेगा।
4. किसी भी व्यक्ति को स्वयं के विरूद्ध साक्ष्य देने के लिए बाध्य नहीं किया जायेगा।
5. किसी एक व्यक्ति के लिए एकाधिक सजा नहीं दी जायेगी।
6. ऐसे व्यक्ति को अपने बचाव के लिए सारी सुविधायें या अवसर प्राप्त करने का अधिकारहोगा।

2.5 विधि का शासन : पुलिस की भूमिका

कानून के शासन की समग्र व्यवस्था में प्रमुख रूप से दीवानी व फौजदारी कानून विधि के क्रियान्वयन के स्तर पर निर्मित किये जाते हैं जो संविधान के विभिन्न प्रावधानों के अनुक्रम में होते हैं। जहां तक विधि के शासन में पुलिस की भूमिका का प्रश्न है स्पष्ट है कि पुलिस की भूमिका एवं

दायित्व केवल फौजदारी कानून की क्रियान्विति तक सीमित हैं। फौजदारी या आपराधिक विधि तन्त्र की पालना के लिए आपराधिक न्याय प्रणाली को विकसित किया गया है जिसमें प्रमुख रूप से पुलिस, न्यायालय, कारागृह या सुधारगृह तथा पुनर्वास कार्य से जुड़े अन्य विभाग या संस्थायें होती हैं यथा महिला व बाल सुधारगृह आदि। आपराधिक कानूनों में प्रमुख रूप से भारतीय दण्ड संहिता, दण्ड प्रक्रिया संहिता व साक्ष्य अधिनियम तथा अन्य केन्द्रीय तथा स्थानीय व विशेष अधिनियम शामिल होते हैं। ऐसे कानूनों के किन्हीं दण्डनीय प्रावधानों के उल्लंघन से सम्बन्धित जो कृत्य किसी व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा किये जाते हैं तो उनके विरूद्ध कानूनी कार्यवाही करने का दायित्व सर्वप्रथम पुलिस का होता है जो संज्ञेय या असंज्ञेय अपराधों से सम्बन्ध रखता है। प्रक्रिया के अनुसार जांच अनुसंधानसम्पन्न करने के बाद वह केस सम्बन्धित अदालत बतौर चार्जशीट या कम्पलेन्ट पेश किया जाता है जिसपर ट्रायल की कार्यवाही की जाती है। पुलिस की इस मौलिक भूमिका के अलावा विकास की प्रक्रिया एवं सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में लोकतान्त्रिक व्यवस्था व जन समाज पुलिस से बहुत सारी प्रत्यक्ष व परोक्ष अपेक्षायें करते हैं जिनमें पुलिस के रेग्यूलेटरी कार्य यथा पर्वोत्सव, मेले, खेल-कूद, भीड़ व यातायात नियमन, राजनीतिक सभायें व अन्य अवसरों पर की जाने वाली व्यवस्था शामिल होती है। एक अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र लोकतान्त्रिक चुनावों के अवसर पर कानून व्यवस्था बनाये रखने के दायित्व से सम्बन्धित होता है। विकास एवं सामाजिक परिवर्तन व समरसता की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में भी एक केटेलिस्ट के रूप में पुलिस को कार्य करना पड़ता है। कुल मिलाकर अपराध नियन्त्रण व खोजबीन, आन्तरिक सुरक्षा एवं कानून-व्यवस्था बनाये रखना पुलिस का मौलिक, परम्परागत व प्रमुख कार्य है और विकासशील राष्ट्र तथा परिवर्तनशील समाज की दृष्टि से पुलिस की अन्य भूमिका सामने आती है। प्रजातान्त्रिक प्रणाली में पुलिस को एक बल तथा साथ ही एक सेवा के रूप में कार्य करना पड़ता है। उसके सामने सबसे बड़ी चुनौती यह है कि संगठन के स्तर पर एक बल अर्थात फोर्स और नागरिक सेवा के रूप में सेवा प्रदान करने वाली संस्था की भूमिका में सामन्जस्य हो जिससे जहां फोर्स के रूप में कार्य करना होता है वहां वह साहस, शौर्य व बलिदान के लिए तत्पर रह सके और नागरिक सेवा के रूप में समय पर दक्षता व पारदर्शिता के साथ लोगों की आकांक्षाओं पर खरी उतर सके।

स्वतन्त्रता से पूर्व ब्रिटिश काल में भारतीय पुलिस ने उपनिवेशवादी पुलिस की भूमिका निभाई जिसमें उसकी प्रमुख भूमिका विदेशी शासन की यथा स्थिति बनाये रखना था। इसलिए उसकी भूमिका जड़वादी थी ना कि गत्यात्मक व प्रगतिशील। ब्रिटिश काल में बनाये गये कानून-कायदे पुलिस कार्य का आधार रहे और वह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं दृष्टिकोण आजाद हिन्दुस्तान की पुलिस का अब तक पुलिस का पीछा नहीं छोड़ रहे हैं। यद्यपि संगठन, आधारभूत सुविधाओं तकनीकी एवं प्रशिक्षण के क्षेत्रों में काफी सुधार व विस्तार हुआ है फिर भी जहां तक पुलिस दृष्टिकोण, मानसिकता व उपसंस्कृति का प्रश्न है तो अभी भी भारतीय पुलिस विकसित लोकतन्त्र का संगठन नहीं बन पाई है। अभी भी यह संगठन परम्परा व आधुनिकता के बीच में झूलती दृष्टिगत होती है। दूसरी ओर पुलिस के प्रति जनता का जो अविश्वास ब्रिटिश कालीन भूमिका, विशेषरूप से स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौर में पैदा हुआ वह जन-मन में अभी भी बसा हुआ है।

सन् 1977में पुलिस सुधारों के लिए प्रथम राष्ट्रीय पुलिस आयोग का गठन श्री धर्मवीर की अध्यक्षता में किया गया, जिसने अपनी रिपोर्ट में पुलिस कल्याण, प्रशिक्षण एवं विकास, जनता से सम्बन्ध तथा राजनैतिक हस्तक्षेप से पुलिस को दूर करने सम्बन्धी विषयों पर काफी जोर दिया। इससे पूर्व गोरे कमेटी ने काफी गहराई में अध्ययन करने के बाद पुलिस सुधारों के लिए अपनी रिपोर्ट पेश की थी। यह विडम्बना व दुर्भाग्य की बात हे कि इन रिपोर्टों के प्रति सरकार उतनी गम्भीर नहीं हुई

जितनी उसे होना चाहिए। अंततः श्री प्रकाश सिंह एवं अन्य द्वारा दायर रिट के फैसले में सुप्रीम कोर्ट को कठोर टिप्पणियों के साथ पुलिस सुधारों पर अपना निर्णय वर्ष 1996 में सुनाना पड़ा जिसकी पालना मे केन्द्रीय सरकार एवं कुछ राज्य सरकारों ने कदम उठाना शुरू किया है जिनमें प्रमुख रूप से नये पुलिस अधिनियम को रेखांकित किया जा सकता है।

लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली में विधि के शासन के दायरे में पुलिस को अपना कार्य करना होता है लेकिन व्यवहार में विधि के शासन की अवधारणा को आत्मसात करने की मानसिकता विकसित करने की नितान्त आवश्यकता हे जो अभी भी पुलिस की उपसंस्कृति में पूरी तरह शामिल नहीं हुई है। दूसरे विधि के शासन के व्यावहारिक स्वरूप में कई तरह के अन्तर विरोध, विरोधाभास व टकराव की स्थितियाँ पैदा होने की संभावनाएं रहती हैं जिनमें सामान्य रूप से निम्न को चिन्हित किया जा सकता है-

1. समाज - आजादी के बाद आर्थिक विकास एवं सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से बहुत सारे अधिनियम इस तरह के बना दिये गये जिनके लिए समाज का आम आदमी ना तो मानसिक रूप से तैयार था और ना ही जागरूक। ऐसे विशेषरूप से सामाजिक कानूनी प्रावधानों को लागू कराने में पुलिस को समाज के साथ टकराव की स्थिति में आना पड़ा। इन कानूनों में बाल-विवाह, दहेज, भ्रूण हत्या, मृत्यु भोज आदि को शामिल करते हुये पिछड़े व आदिम समुदायों की प्रथा, परम्पराओं व कुरीतियों को ले सकते हैं। इन परिस्थितियों ने कानून के शासन को सहज रूप में लागू होने देने में बाधायें उत्पन्न की।

2. बहुमत - लोकतन्त्र में बहुमत का अत्यन्त महत्व है। सरकारें बहुमत के आधार पर मतदान पद्धति के माध्यम से चुनी जाती हैं। कई बार स्पष्ट बहुमत किसी दल को नहीं मिलने से जोड़तोड़ की राजनीति अपनाई जाती है और उस प्रक्रिया में कानून कायदों की जगह आपसी लेन-देन व लाभ-हानि महत्वपूर्ण हो जाती हैं जिसमें विधि से परे के कारकों का हस्तक्षेप सामने आता है जो अन्ततः विधि के शासन को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। धरातल पर इस कदर जोड़-तोड़ की राजनीति में शामिल होने वाले जन प्रतिनिधि या बाहरी शक्ति केन्द्र पुलिस के द्वारा किये जाने वाले विधि सम्मत कार्यो में बाधा उत्पन्न करने लगते हैं चूँकि ऐसे तत्वों ने जो रास्ता अपनाया उसी रास्ते पर आगे बढ़ना चाहते हैं और उनकी एक स्वार्थ केन्द्रित मानसिकता बन जाती है जो पुलिस ही नहीं विधि के शासन की सम्पूर्ण व्यवस्था को दूषित करती है।

3. दबाव समूह - प्रजातन्त्र में दबाव समूहों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रसिद्ध राजनीति वैज्ञानिक आमण्ड व ईस्टन द्वारा प्रतिपादित 'इनपुट-आउटपुट थियरी' के अनुसार प्रजातन्त्र रूपी मशीन-बॉक्स के प्रवेश बिन्दु में जिस फोर्स के साथ कोई मांग की जाती है उसी अनुपात में उसके पक्ष में निकास बिन्दु से निर्णय के रूप में सामने आती है। दबाव समूहों या लोबिंग प्रजातन्त्र के लिए सकारात्मक भी हो सकती है और नकारात्मक भी। व्यवहार के कठोर धरातल पर औपचारिक व अनौपचारिक दबाव समूहों द्वारा विशेषरूप से पुलिस के निचले स्तर पर अपने पक्ष में कार्य कराने के लिए दबाव डाला जाता है जिसमें आन्दोलन कानून-व्यवस्था की स्थिति तक पहुँच जाते हैं। इसका उग्र रूप ब्लैकमेलिंग तक चला जाता है जो विधि के शासन की प्रणाली में पुलिस की भूमिका को प्रभावित करते हैं और इसी वजह से संदिग्ध भी बनाते हैं।

4. जनप्रतिनिधि - लोकतन्त्र में मताधिकार के आधार पर चयनित जनप्रतिनिधियों की अहम भूमिका होती है। वे ही लोकतन्त्र का संचालन करते हैं। हकीकत में मतदान प्रक्रिया से पूर्व प्रत्याशियों का चयन, मतदान के लिए अपनाये जाने वाले तौर-तरीकों और सत्तासीन होने या विरोध में होने वाले दलों के संवैधानिक पदों या दल स्तरीय पदों के लिए जो होड़ व जुगाड़ की स्थिति पैदा होती है उसका काफी कुछ अलोकतान्त्रिक और विधि विरूद्ध होता है। यह स्थिति एक ऐसी राजनैतिक संस्कृति को जन्म

देती है जिसका विधि के शासन की रीति-नीति से कोई सामन्जस्य नहीं होता। ऐसे जनप्रतिनिधियों या चुनाव में हार जाने पर जननायकों का व्यवहार स्वयं पर पड़ने वाले जन दबावों या निजी स्वार्थों से प्रेरित होता है। ऐसा व्यवहार स्थानीय पुलिस प्रशासन के लिए जटिल स्थितियां पैदा करता है जहां पुलिस अधिकारियों को कानून से बाहर बात-चीत के आधार पर किये जाने वाले समझौते भी करने पड़ते हैं, कई बार तो समर्पण की दशा तक जाना होता है।

5. मीडिया - मीडिया को लोकतन्त्र का चौथा स्तम्भ कहा गया है और सकारात्मक मीडिया ने इस अवधारणा को सिद्ध भी किया है। समय के साथ मीडिया के व्यवहार में बदलाव आया और आज मीडिया की मौलिक भूमिका अर्थात जागृति पैदा करना, खबरों से अवगत कराना तथा मनोरंजन के माध्यम से सामाजिक दायित्व आदि गौण होते जा रहे हैं और टी.आर.पी. तथा व्यावसायिक लक्ष्य प्राथमिकता बनते जा रहे हैं। ऐसा मीडिया किसी भी लोकतान्त्रिक प्रणाली के लिए उतने कारगर व सहयोगी नहीं कहा जा सकता।

2.6 पुलिस की विडम्बनायें

पुलिस की विडम्बना को रेखांकित करते हुए प्रसिद्ध विद्वान हरमन गोल्डस्टेन ने कहा है कि सरकारों का जोर पुलिस प्रतिष्ठानों के संगठन, संख्या, संसाधनों व उपकरणों पर ज्यादा होता जा रहा है और चहुँओर के वातावरण में व्याप्त टकरावों व अन्र्तविरोधों की तरफ कम जा रहा है जो पुलिस ऑपरेशनों को बुरी तरहप्रभावित करने लगे हैं। ऐसी स्थितियों का विश्लेषण हम निम्न प्रकार कर सकते हैं-

1. कानून के शासन या लोकतान्त्रिक व्यवस्था की अपेक्षा है कि सभी कानूनों को समग्रता में लाग किया जाये, लेकिन नागरिक समाज में कई किस्म के कानूनी प्रावधानों को स्वीकार करने की मानसिकता नहीं होती जिसका वे विरोध करते हैं या उस प्रारम्भिक विरोध को कम करने में व्यवस्था को बहुत समय लगता है तबतक विधि के शासन के पक्षधर पुलिस की आलोचना करने लगते हैं।
2. सभी प्रकार के अपराधों पर नियन्त्रण या घटित हो जाने पर सफलतापूर्वक उनकी खोजबीन यहां तक कि सजा दिलाने तक की पुलिस की भूमिका की अपेक्षा आम जनता करती है। इन अपेक्षाओं पर पुलिस खरी नहीं उतर सकती। इसकी खास वजह निःसन्देह पुलिस पब्लिक का पर्याप्त अनुपात, अन्य संसाधनों व अपेक्षित प्रशिक्षण का अभाव होता है। ये सारी चीजें धीरे-धीरे उपलब्ध कराई जा रही हैं लेकिन जनभावना तत्काल सेवा का दबाव डालती है।
3. कुछ मामलों में जनता की अपेक्षा होती है कि पुलिस अधिकारवादी दबंग तौर-तरीकों से काम करे जिससे आपराधिक तत्वों पर काबू रखा जा सके, जबकि अन्य मामलों में सभ्य समाज की यह अपेक्षा होती है कि पुलिस विनम्रता एवं अत्यन्त मानवीय संवेदनाओं के साथ पेश आये। विधि के शासन में पुलिस के जन अपेक्षानुरूप दो चेहरे नहीं हो सकते। जहां कठोर होना है, संभव है जहां कठोर ना होना हो वहां भी कठोरता जाने-अनजाने व्यवहार में आ जाये। मानव व्यवहार के स्तर पर लोहे की लकीर खींचना बहुत कठिन होता है। ऐसा करना यान्त्रिक स्तर पर संभव हो सकता है जहां बटन दबाकर यान्त्रिक संचालन को वांछित दिशा में मोड़ा जा सके।
4. पुलिस से यह अपेक्षा की जाती है कि वह पूर्ण रूपेण निष्पक्ष व्यवहार करे। जब पूर्वोक्त कारकों अर्थात दबाव समूहों, जनप्रतिनिधियों व मीडिया आदि का दबाव पड़ता है तो पुलिस चाहे निष्पक्ष व्यवहार करे तब भी उसके कार्यशैली पर सन्देह पैदा होगा ओर यह सन्देश जायेगा कि उक्त प्रकार के दबावों तले पुलिस निष्पक्ष नहीं रह सकती।
5. जन अपेक्षा सामान्यत: यह रहती है कि पुलिस आपातकाल की प्रत्येक स्थिति में हालात को काबू करने में दक्ष व सक्षम हो, जबकि पुलिस के पास उस स्तर के प्राधिकार, संसाधन एवं प्रशिक्षण

नहीं है। इन क्षेत्रों में निश्चित रूप से विकास व सुधार हो रहा है लेकिन जबतक यह स्तर अपेक्षित नहीं हो पाता तबतक आपातकाल सम्बन्धी चुनौतियां आगे बढ़ जाती हैं। आपातकालीन घटना के नये रूप स्वरूप के बाद उससे निबटने के लिए पुलिस को तैयार होने के लिए विकसित होना पड़ता है। इस प्रक्रिया में पुलिस के कदम प्राय: घटना की चुनौती से पीछे रह जाते हैं, चाहे वह अपने स्तर पर समय से पूर्व प्रोएक्टिव या रिएक्टिव होने के लिए कितनी ही तैयारी क्यों न करें।

6. पुलिस की भूमिका का हर क्षेत्र व्यवहारत: तत्काल महत्व का होता है जिसमें पुलिस को परिणाम देने या लक्ष्य प्राप्ति के लिए समय की कमी का दबाव रहता है। समाज या पीड़ित पक्ष चाहता है कि अतिशीघ्र पुलिस सफलता अर्जित कर उसे राहत पहुँचाये जबकि पुलिस को आपराधिक न्यायतन्त्र की एक शाखा के रूप में कार्य करना होता है जिसके अपने कानून-कायदे व प्रक्रिया होती है जो पुलिस कार्यवाही को विधि सम्मत बनाने का तो आग्रह करती है लेकिन कई बार विशेषरूप से जल्दबाजी के दबाव में उसे शॉर्टकट अपनाने पड़ते हैं जो स्वयं में आलोचना के विषय बनते हैं।

2.7 व्यवहार में आने वाले अन्तरविरोध और टकराव

सामाजिक यथार्थ एवं लोकतन्त्र की धरातलीय सच्चाई के दबाव में पुलिस को निम्न कारकों के साथ / क्षेत्रों में समझौते करने पड़ते हैं जिनकी अनुमति विधि का शासन नहीं देता -

(i) विधि एवं प्रक्रिया
(ii) प्रशासनिक निर्देश
(iii) जन अपेक्षायें
(iv) दबाव समूह
(v) व्यक्तिगत नैतिकता

उक्त समझौते नये टकरावों को पैदा करते हैं जैसे -

(i) पद की शपथ को एक सीमा तक उपेक्षा करने की विवशता
(ii) आपराधिक प्रशिक्षण के दौरान सीखी गई बातों को लागू नहीं करना
(iii) जन दबाव में झूठे वादे करना या दिलासा देना चाहे सदृशता के साथ ही क्यों न हो
(iv) विधि व प्रक्रिया से पृथक होकर व्यवहारिक समझौते करने से उत्पन्न होने वाली पेचीदगियों का सामना करना यथा दिवानी / आपराधिक मुकदमे बाजी एवं विभागीय कार्यवाही
(v) संवैधानिक संस्थाओं, मीडिया एवं विधि के पक्षधरों की आलोचना का शिकार बनना

2.8 विधि का शासन बनाम गम्भीर संवेदनशील चुनौतियाँ

अ. आतंकवाद
ब. दंगे
स. प्राकृतिक आपदायें
द. खतरनाक अपराधियों का पीछा करना
य. कानून व्यवस्था की गम्भीर स्थिति

उक्त हालात में पुलिस की सर्वोच्च प्राथमिकता कानून-व्यवस्था एवं शांति बनाये रखना, राहत कार्य सुनिश्चित करना एवं लक्ष्य की प्राप्ति करना होता है। यह सब कार्यवाही तत्काल परिणामों की अपेक्षा करती है जहाँ विधि के शासन के प्रावधानों व प्रक्रिया को अक्षरश: एवं भावनानुरूप लागू करना कठिन हो जाता है

2.9 विचारणीय व्यवहारिक विषय क्षेत्र

पुलिस नैतिकता :- पुलिस संगठन के स्तर पर नैतिकता के औपचारिक व व्यवस्थित सूत्र नहीं बनाये जा सकते। अनुशासन, नियन्त्रण व सुपरविजन के मौलिक सिद्धान्तों को लागू करने का मैन्यूअल व प्रक्रिया सुनिश्चित किया जाना ही सम्भव हो पाता है। ऐसी दशा में पुलिस नैतिकता एक व्यक्तिगत मसला बनकर रह जाता है जिसमें व्यक्ति से व्यक्ति पृथक दिखाई देता है। एक ओर उच्चस्तरीय नैतिकता रखने वाले अधिकारियों के साथ अधिकारियों के स्वाभाविक टकराव की परिस्थितियां पैदा होने लगती हैं तथा दूसरी ओर अच्छे अधिकारियों के उदाहरण देकर जनता अन्य पर ठीक से व्यवहार करने दबाव डालती है। पुलिस अधिकारी शेष समाज में सेही आते हैं। प्रशिक्षण की उपयोगिता अपनी जगह है लेकिन नैतिक व्यक्तित्व विकसित करना सामाजिक संस्कारों एवं वातावरण पर काफी निर्भर करता है।

स्व: विवेक :- धरातली परिस्थितियों को देखते हुए पुलिस अधिकारी को कार्य करना होता है जब उसके ऊपर बहुत सारे दबाव हों। ऐसी स्थिति में स्वःविवेक की भूमिका तत्काल निर्णय लेने में आगे आती है। लक्ष्य प्राप्ति व परिणाम देना सर्वोच्च बन जाता है। ऐसा करना अपराध नियन्त्रण व खोजबीन, कानून-व्यवस्था व अन्य संवेदनशील व गम्भीर हालात में अपेक्षित बन जाता है। इस कदर काम में लिये गये स्वःविवेक को बाकायदा विधि के शासन का हिस्सा बनाया जाना चहिए ताकि पुलिस अधिकारी आवश्यकतानुसार गम्भीर चुनौतियों से निबटने के लिए खुल कर काम कर सकें। ऐसा करना पुलिस की प्रत्यक्ष भूमिका के लिए ही प्रभावकारी नहीं होगा, प्रत्युत् विकास एवं सामाजिक परिवर्तन के क्षेत्रों मे भी इसकी उपयोगिता सिद्ध होगी।

दृष्टिकोण में परिवर्तन :- लोकतान्त्रिक मूल्यों को संरक्षित व सवंर्द्धित करने तथा विधि के शासन को सिद्धान्त के रूप में अपनाने के लिए यह आवश्यक है कि समय की मांग के अनुरूप पुलिस दृष्टिकोण में प्रशिक्षण के माध्यम से परिवर्तन किया जाय। इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि समाज, जनप्रतिनिधियों, न्यायिक अधिकारियों, मीडिया प्रतिनिधियों तथा स्वयंसेवी संगठनों के कार्यकर्ताओं को भी इस बात के लिए शिक्षित-प्रशिक्षित किया जाय कि वे भी एक सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाकर पुलिस व्यावहारिक पक्ष को ध्यान में रखते हुए समग्र रूप से एक साथ चलने का बीड़ा उठायें और अनावश्यक अन्तरविरोधों एवं टकरावों को समय रहते दूर करने का प्रयास करें जिससे पुलिस को अति सक्रिय या बचाव मुद्रा में जाने से रोककर संतुलित भूमिका में ही रखा जा सके।

पुलिस के अनावश्यक पक्ष बनने की विवशता :- चाहे विवाद मिल मालिक और मजदूरों का हो, शैक्षणिक संस्थानों के प्रबन्धकों का और छात्रों का हो, कृषि-ऊर्जा-जल या अन्य सरकारी महकमों और किसानों या अन्य उपभोक्ताओं का हो अथवा अन्य किन्हीं मांगों को लेकर होने वाले आन्दोलनों का हो, एक स्टेज पर जाकर पुलिस सीधा पक्ष बनकर टकराव की दशा में आने के लिए विवश हो जाती है और उसे बल प्रयोग तक करना होता है। ऐसी स्थिति पैदा ना हो इसके लिए आवश्यक है कि सम्बन्धित विभाग या अधिकारीगण समय रहते समस्याओं का निदान करें।

अपराध वृद्धि के अन्य कारक :- अपराध वृद्धि का आरोप सीधा पुलिस पर प्रायः लगा दिया जाता है। पुलिस की निष्क्रियता एक कारण हो सकता है लेकिन अन्य कारणों के बारे में जनता को जागरूक करना एक महत्वपूर्ण पक्ष है जो केवल पुलिस के जिम्मे नहीं है। ऐसे उत्तरदायी कारणों में जनसंख्या वृद्धि, शहरी करण, दूरस्थ परिवहन, बेरोजगारी, आवश्यक वस्तुओं की कमी, राजनीतिक असंतोष, साम्प्रदायिक मूलवाद, कुप्रबन्धन एवं भौतिकवाद-स्वार्थवाद आदि हो सकते हैं जिनपर काबू पाने के लिए पुलिस से ईतर संगठित व समग्र प्रयास करने की आवश्यकता है। यहां पुलिस व जनता

के अनुपात का भी उल्लेख किया जा सकता है जो वैश्विक संदर्भ में 333 जन पर एक तथा भारत में करीब 1000 जन पर एक पुलिसकर्मी है। इस अनुपात को ठीक करने की आवश्यकता है।

तदर्थ नवाचार :- प्राय: देखा गया है कि कई पुलिस अधिकारी जनता में हीरो बनने की महत्वाकांक्षा में ऐसे प्रयोग करने लगते हैं जिन्हें शीघ्र लोकप्रियता हासिल करने का नुस्खा कहा जा सकता है, जैसे उनकी प्राथमिकतायें पुलिस के ठोस व मौलिक कार्य करने की बजाय लोकरंजक अन्य कार्यक्रम बन जाती हैं। लोक कल्याणकारी कार्य करने में दिक्कत नहीं है, दिक्कत तब होती है जब असल काम छोड़कर समय, ऊर्जा व संसाधन अन्यत्र वितरित कर दिये जाते हैं।

2.10 सारांश

मानव समाज के विकास क्रम में कई प्रकार की राजव्यवस्थायें पैदा हुई, विकसित हुई और समाप्त हुई। आदिम अवस्था में शासन प्रणालियां परिवार व कबीला के प्रबन्धन का ही हिस्सा थी, पृथक से शासनतन्त्र के रूप में इस संस्था का अभ्युदय नहीं हुआ था। जब समाज का अस्तित्व सामने आया तो एक बस्ती विशेष या अंचल विशेष अथवा कुल-कुटुम्ब-कबीला का समूह समाज के रूप में विकसित हुआ जिसने कई युग देखे। प्राचीनकाल में समाज और उसपर किये जाने वाला शासन मुखिया या राजा के अधीन संचालित हुआ। कालान्तर में यह एक व्यवस्थित राजतन्त्र के रूप में सामने आया। बीच-बीच में एकाधिकारवादी या अधिनायकतन्त्र रूपी शासन भी हमें देखने का मिले। सम्राट या बादशाह या राजा ने अपने अधीन जागीरें प्रदान कर सामन्ती व्यवस्था का सूत्रपात किया जिनमें से कुछ स्वतन्त्र होकर शासन करने लगे। यद्यपि इस तरह की शासन व्यवस्थायें विश्व के कुछ हिस्सों में अभी भी विद्यमान है, लेकिन कुल मिलाकर अब विश्व के सभी राष्ट्र समाजों ने प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था को सिद्धान्त और व्यवहार में स्वीकार कर लिया है चाहे व्यवस्था राष्ट्रपति के नेतृत्व में अध्यक्षीय शासन प्रणाली हो या संसद की सर्वोच्चता रखने वाली संसदीय प्रणाली हो, साथ ही चाहे स्वरूप संघीय हो या केन्द्रीकृत।

लोकतन्त्र की प्रणाली का स्वरूप कुछ भी हो लेकिन उसमें अन्ततः राज की शक्ति जन में निवास करती है। चूँकि जन सीधा शासन नहीं कर सकता इसलिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष मत प्रक्रिया द्वारा सरकार के पदाधिकारियों का चुनाव किया जाता है जो शासन संचालन के लिए अन्य संस्थाओं व पदाधिकारियों का गठन / चयन / मनोनयन कर राज प्रणाली को क्रियान्वयन तक पहुँचाते हैं। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में सिद्धान्त एवं व्यवहार के स्तर पर जो अवधारणा काम करती है उसे हम विधि का शासन कहते हैं जहां विधि का स्वरूप जनोन्मुखी तथा शासन का संचालन प्रस्थापित विधि के अनुरूप होता है।

लोकतान्त्रिक व्यवस्था में पुलिस की भूमिका किसी शासक के पक्ष में प्रतिबद्ध न होकर समस्त जन समाज के प्रति निष्ठावान होती है, इसलिए उसे विधि के तन्त्र के तहत कार्य करना होता है जिसके दिशानिर्देश उसे संविधान, विभिन्न अधिनियम, आपराधिक न्याय प्रणाली, नियम व प्रक्रिया एवं प्रशासनिक समादेशों से प्राप्त होते हैं। भूमिका निर्वहन की समस्त जिम्मेदारी के पीछे भावना जनसेवा की होती है जिसमें राष्ट्र की आन्तरिक सुरक्षा सर्वोच्च प्राथमिकता रखती है और अपराध नियन्त्रण व खोजबीन, कानून एवं शांति, नियमन सम्बन्धी कर्तव्य निर्वहन तथा विकास एवं सामाजिक परिवर्तन में सहयोग देने वाली संस्था के रूप में उसे अपना दायित्व निभाना होता है। इस कार्य सम्पादन में विधि के शासन की सैद्धान्तिकी निश्चित रूप से सर्वोच्च स्थान रखती है लेकिन व्यवहार में आन्तरिक सुरक्षा व पुलिस सम्बन्धी जनसेवा एक लक्ष्य के रूप में सामने आती है।

2.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. लोकतन्त्र के उदय से पूर्व के युगों में विधि के शासन का स्वरूप समझाइये?
2. विधि के शासन का अर्थ समझाते हुए इसकी सघन व्याख्या कीजिए।
3. प्रजातन्त्र में विधि का शासन महत्वपूर्ण क्यों है? समझाकर लिखिये।
4. भारतीय संविधान में विधि के शासन से सम्बन्धित प्रावधान वर्णित कीजिए।
5. विधि के शासन को लागू करने में पुलिस की भूमिका पर विस्तार से चर्चा कीजिए।
6. आपराधिक न्याय प्रशासन एवं विधि के शासन के अन्तर्सम्बन्धों को उदाहरण द्वारा समझाइये।

इकाई - 3

भारतीय समाज : सामाजिक प्रतिमान एवं मूल्य

इकाई की संरचना

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 भारतीय समाज: विभिन्नता में एकता

3.3 भारतीय समाज का उद्भव (सामाजिक एवं सांस्कृतिक आयाम)

3.4 भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का समाजशास्त्रीय आशय

3.5 भारत में जनजातीय जीवन

3.6 भारत में ग्रामीण एवं नगरीय समुदाय

3.7 भारतीय समाज : विवाह, परिवार एवं बन्धुत्व

3.8 भारत में जाति व्यवस्था और समाज

3.9 भारत में अनुसूचित जातियाँ

3.10 भारतीय समाज और अनुसूचित जनजातियाँ

3.11 भारतीय समाज के अन्य पिछड़े वर्ग

3.12 भारत में स्त्रियों की स्थिति और समता की खोज

3.13 दहेज प्रथा और कन्या भ्रूण हत्यायें

3.14 भारतीय समाज : सामाजिक विचलन

3.15 भारत में जनसंख्या विस्फोट एवं समाज

3.16 भारत में राज्य एवं समाज

3.17 भारत में सामाजिक परिवर्तन की अवधारणाएँ एवं प्रक्रियाएँ

3.18 भारत में सामाजिक परिवर्तन के कारक

3.19 राष्ट्रीय एकीकरण की चुनौतियाँ

3.20 सारांश

3.21 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हम जान सकेंगे कि-

- भारत एक बहु लवादी देश है तथा भारत का समाज विभिन्न संस्कृतियों का संश्लेषण हैं।
- भारतीय समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं के निवारण के लिए कौन-कौन से सामाजिक तथा आर्थिक आन्दोलन किये गये।
- भारतीय समाज में प्रचलित विभिन्न प्रकार के सामाजिक प्रतिमान एवं मूल्य क्या हैं?
- भारतीय समाज में अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़ वर्गो, स्त्रियों, वृद्धों तथा बच्चों केकल्याणार्थ किए जाने वाले सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयास, उनकी प्रकृति एवं दिशा तथा परिणामस्वरूप परिवर्तन कितने प्रभावी है।

3.1 प्रस्तावना

भारत सिद्धान्त और वास्तविक रुप में एक बहुल समाज है। भारत को इसकी एकता विभिन्नता द्वारा समझना उचित होगा। विदेशी आक्रमणों, मुगल और ब्रिटिश शासन के उपरान्त भी भारत में संस्कृतियों, धर्मों, भाषाओं का सम्मिश्रण और विभिन्न जातियों एवं समुदायों के लोगों के बीच एकता और समरुपता बनी रही। यद्यपि तीक्ष्ण आर्थिक और सामाजिक असमानताओं ने सम सामाजिक सम्बन्धों के प्रादुर्भाव में बाधा उत्पन्न की, फिर भी राष्ट्रीय एकता और अखंडता अक्षुण बनी रही। इसी सम्मिश्रण के द्वारा भारत एक अद्वितीय पच्चीकारी समाज बना हुआ है। वास्तव में भारत एक अनूठा दृश्यपटल है जिसका समानान्तर स्वरूप अन्य महाद्वीपों में दृष्टिगत नहीं होता। विदेशी आक्रमण, संसार के अन्य भागों से आप्रवासन, विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों और धर्मों के अस्तित्व के कारण भारतीय संस्कृति न केवल सहिष्णु ही है, बल्कि अपनी विशिष्टता और ऐतिहासिकता को संजोए हुए एक अनूठी निरन्तर और जीवन्त संस्कृति भी है।

हिन्दू, बौद्ध, इस्लाम, सिख, जैन और ईसाई प्रमुख धर्म हैं। सैकड़ों लोक भाषाओं के अतिरिक्त पन्द्रह राष्ट्रीय भाषाऐं हैं। विभिन्नता न केवल प्रजातीय संरचना, धार्मिक और भाषायी विभेदों के संदर्भ में ही पाई जाती है, विभिन्नता हमें जीवन प्रणालियों, भूमि व्यवस्थाओं, व्यवसायों, सम्पत्ति हस्तांतरण और उत्तराधिकार के नियमों और जन्म, विवाह व मृत्यु सम्बन्धी प्रथाओं और आचरणों में भी पाई जाती है। वस्तुत: भारत इस प्रकार की विभिन्नता में अनुसरणीय एकता का एक उदाहरण है। भारत ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एक संगठित इकाई के रुप में संघर्ष किया था।

विभिन्नता में एकता की ऐतिहासिकता

भारतीय सांस्कृतिक परम्परा अद्वितीय है। धर्म (मानकीय व्यवस्था), कर्म (वैयक्तिक नैतिक वचनबद्धता) और जाति सामाजिक स्तरीकरण के सोपानीय रुप में भारतीय संस्कृति की मुख्य धारणाऐं हैं। इन तत्वों के संरुपण और मतैक्य के कारण भारतीय समाज में सन्तुलन और स्थायित्व दृढ़ बने हैं। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में कोई मुख्य व्यवधान उत्पन्न नहीं हुए यह कहा जाता है कि परिवर्तन सांस्कृतिक व्यवस्था के अन्तर्गत हुआ है न कि सांस्कृतिक व्यवस्था का। दूसरे शब्दों में कह सकते है कि कुछ संशोधनों को छोड़कर मूल रुप में सांस्कृतिक सामाजिक और सांस्कृतिक और सामाजिक तथा मानव मूल्य आज भी बने हुए हैं। धर्म, कर्म और जाति से जुड़े हुए मूल्य सामाजिक और सांस्कृतिक क्रियाओं का मार्गदर्शन करते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि परिवर्तन व्यवस्था में हुआ है, न कि व्यवस्था का।

भारतीय समाज की अद्वितीयता का अर्थ केवल इसकी गढ़ प्रकृति से ही नहीं है, इसका अर्थ समझने के लिए इसकी ऐतिहासिक और संदर्भता का गहरा अध्ययन करने की आवश्यकता है। सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रवृत्तियां आत्मसात और सात्मीकरण की प्रक्रियाओं द्वारा दिखाई देती हैं। आर्य और द्रविड़ एक साथ रहे। हिन्दू और मुसलमान सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में एक-दूसरे के समीप रहे हैं। तदुपरान्त ईसाई भी इन दोनों के सम्पर्क में रहे। आज हिन्दू, मुसलमान, सिख, जैन, ईसाई और अन्य धर्मों के लोग सरकार, शासनतन्त्र और सार्वजनिक जीवन के अन्य क्षेत्रों में एक साथ सहभागी है। इस प्रकार हम कह सकते है कि भारत में अत्यधिक विभिन्नता में भी निरन्तर एकता पाई जाती रही है। यह विभिन्नता हजारों जाति समूहों में प्रतिबिम्बित होती है, प्रत्येक जाति के अलग-अलग धार्मिक कृत्य, संस्कार, नियम और रीति-रिवाज हैं। विभिन्नता की अनुभूति हम भाषायी, धार्मिक और जातीय विभेदों द्वारा कर सकते हैं। हर क्षेत्र के लोगों के तौर-तरीकों में अन्तर पाए जाते

हैं, यहाँ तक कि एक गाँव में विभिन्न जातियों और धार्मिक समूहों के बीच ऐसे अन्तर दिखाई देते हैं। सम्राट अशोक ने सांस्कृतिक, धार्मिक सामंजस्य और प्रशासनिक कुशाग्रता प्राप्त कर भारत में एकता लाने का प्रयास किया।

महात्मा गांधी भारत की परम्परा और सांस्कृतिक विरासत को ध्यान में रखते हुए आमूल परिवर्तन लाना चाहते थे। आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरु आधुनिक और धर्म निरपेक्ष विचारधारा के व्यक्ति होते हुए भी भारत की परम्परा का सम्मान करते थे। नेहरु के अनुसार "विगत सदैव हमारे साथ हैं और जो भी हम हैं और हमारे पास है, वह सब हमारे भूतकाल की देन है। हम इसकी देन हैं और इसमें डूबे हुए रहते हैं। विगत को वर्तमान से जोड़ना और भविष्य तक ले जाना जहाँ यह मिलन सम्भव नहीं है, वहाँ उसे छोड़ देना और इस सबको विचार और कार्य के लिए स्पन्दित और प्रदोलित करने का नाम ही जीवन है। "

एक अन्य स्थान पर नेहरु ने भारत की सांस्कृतिक विरासत के बारे में लिखा है:"उभरते हुए मध्यम वर्ग सांस्कृतिक विरासत से जुड़कर रहना चाहते थे, क्योंकि इससे उनको अपने महत्व का एहसास रहता था और कुछ सीमा तक पराजय और अपमान की भावना में भी कमी आती थी जो उनमें विदेशियों की विजय और शासन के कारण उत्पन्न हो गई थी। भारत का अतीत जो सांस्कृतिक भिन्नता और महानता से भरपूर है, वह हिन्दू, मुसलमान, ईसाई व अन्य सभी भारतीय जनता की एक सामान्य विरासत है और इसकी रचना में इन सबके पूर्वजों का योगदान रहा है।"लेकिन नेहरु भूतकाल के निरर्थक तत्त्वों के वर्तमान पर आधिपत्य के विरुद्ध थे। वास्तव में नेहरु अत्यधिक जनतांत्रिक भावना और आधुनिक दृष्टिकोण वाले व्यक्ति थे।

आधुनिक भारत में एकता की शक्तियाँ

समाजशास्त्री श्रीनिवास के अनुसार "एकता की अवधारणा हिन्दू धर्म में अन्तनिहित है। भारत के कोने-कोने में हिन्दुओं के पवित्र तीर्थस्थान हैं। पूरे देश के हर भाग में शास्त्रीय संस्कृति के कुछ विशिष्ट पहलू दृष्टिगोचर होते हैं। भारत न केवल हिन्दुओं के लिए ही पवित्र भूमि है, यह सिख, जैन और बौद्ध धर्म के अनुयायिओं के लिए भी पवित्र स्थल है। मुसलमानों और ईसाईयों के भी भारत में अनेक तीर्थ स्थान हैं। विभिन्न धार्मिक समूहों में जाति प्रथा पाई जाती है और इससे इन सबमें एक समान सामाजिक युक्ति दिखलाई देती है।

स्वतंत्र भारत के संविधान में पूरे देश के लिए "विधि के शासन' ' का प्रावधान किया गया है। सब नागरिक समान हैं और एक ही सत्ता के अधीन हैं। वंशानुगत विशेषाधिकारों का उन्मूलन कर दिया है। धर्म, भाषा, क्षेत्र, जाति या समुदाय अब विशेष सुविधाओं और विशेषाधिकारों का आधार नहीं है। उच्च जातियों, वर्गो एवं निम्न जातियों और दुर्बल वर्गो के बीच अन्तर को पाटने के लिए अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गो को विशेष सुविधाऐं दी गई हैं। आज कोई भी जाति या सामाजिक समूह किसी भी प्रकार सामाजिक अयोग्यता से ग्रसित नहीं है। हर क्षेत्र में "फूट डालो और राज करो"की नीति अब समाप्त हो चुकी है। उपनिवेशीय शोषण का स्थान विकास प्रक्रियाओं और समतावादी विचारधारा ने ले लिया है।

अनेकता के कारण

समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, समतावादी नीतियों, कार्यक्रमों तथा "विधि-शासन" के बावजूद स्वतंत्रता के बाद भारत में संकीर्ण निष्ठाऐं, संकुचित सम्बन्ध और आद्य हित बढ़े हैं। भारत के कई भागों में हमें विभाजक प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। भारत एक ऐसा देश है जिसमें स्पष्ट भेद हैं - उदाहरण

के लिए एक छोर पर बहुत धनी, उच्च जाति और उच्च वर्ग के लोग हैं और दूसरी ओर अत्यधिक निर्धन, निम्न जाति व निम्न वर्ग के लोग हैं। विभिन्न जातियों, धर्मों, क्षेत्रों और भाषाओं के सम्बद्ध समूह पूरे देश में फैले हुए हैं।

अल्पसंख्यक समूह भी धर्म, भाषा, क्षेत्र, प्रथा और परम्पराओं के आधार पर बने हुए हैं। यहाँ तक कि तथाकथित बहुसंख्यक हिन्दू भी अनेक सम्प्रदायों, जातियों, गोत्रों और भाषायी समूहों में विभक्त हैं। अपने सदस्यों के लिए बेहतर शिक्षा, रोजगार और जीवन स्तर प्राप्त करने की आकांक्षा इन समूहों में पाई जाती है। इन समूहों के सब सदस्यों को समान अवसर व पहुंच प्राप्त नहीं है इसलिए वे 'वितरक-न्याय' से वंचित रहते हैं। जीवन में इस प्रकार के असमान अवसरों की जड़, समाज द्वारा संरचित असमानताऐं हैं, और इनके कारण तनाव, पारस्परिक अविश्वास और कुंठाऐं बढ़ी हैं।

ऐसी परिस्थितियों के कारण आंतरिक एकता, सम्बद्ध चेतना और भारतीयता की भावना को गम्भीर आघात पहुँचा है। यह समस्या आज भारत में सामाजिक संरचना के स्वरूप और वस्तुस्थिति में तालमेल के अभाव के कारण बनी हुई है। आदर्श और वास्तविक के बीच की खाई को पाटने की अत्यन्त आवश्यकता है। राष्ट्रीय एकीकरण इस अन्तर को पाटने से प्राप्त किया जा सकता है, जिसका वास्तव में अर्थ सकल और निर्बल, धनी एवं निर्धन, शिक्षित और अशिक्षित, उच्च जाति एवं उच्च वर्ग और निम्न जाति एवं निम्न वर्ग के बीच के अन्तर के समाप्त करने से है।

एक देश में अनेक समुदाय पाये जाते हैं, इनकी उत्पत्ति और प्रवसन के बारे में तथ्यों से इनकी सभ्यता के इतिहास का बोध होता है। आज भारत की जनसंख्या 120 करोड़ से अधिक है। आज से लगभग 80 वर्ष पहले सर हरबर्ट रिजले ने भारत में हिन्दुओं में 2378 मुख्य जातियों के बारे में जानकारी दी। विखण्डन और सामाजिक गतिशीलता के कारण यह संख्या अब तो निश्चय ही 3000 से अधिक हो गई है। विभिन्न जातियों में विवाह सजातीय, असंगोत्रीय और माता-पिता के समीप सम्बन्धियों के परिहार्य नियमों का पालन करते हुए किए जाते हैं। इन जाति समूहों के अतिरिक्त मुसलमान, ईसाई, सिख, पारसी, जैन और अनेकजनजातीय समूह समुदाय हैं जिनमें विवाह और सामाजिकअन्योन्य क्रिया अपने-अपने समुदाय तक सीमित है।

धार्मिक समुदायों की विभिन्नता

1931 की जनगणना के अनुसार भारत में 10 धार्मिक समूह थे। इनमें हिन्दू, सिख, जैन, बौद्ध, जोरास्ट्रियन, मुस्लिम, ईसाई, यहूदी और अन्य जनजातीय एवं गैरजनजातीय धार्मिक समूह सम्मिलित हैं। 1961 की जनगणना में केवल सात धार्मिक कोटियों को अंकित किया गया है। ये है हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, सिख, बौद्ध, जैन और अन्य धर्म तथा सम्प्रदाय। भारत में धर्म वास्तव में एक जटिल तथ्य है। उदाहरण के लिए विभिन्न स्तरों पर सांस्कृतिक और जनजातीय धर्म के तत्व मिश्रित रुप में पाए जाते हैं। यही बात दीर्घ और लघु परम्पराओं के बीच अन्त: क्रिया की प्रकृति के बारे में कही जा सकती है। सांस्कृतिक हिन्दू धर्म और जनजातीय धर्म का एकीकरण भी पाया जाता है। उदाहरण के लिए सन्थाल उच्च जाति के कई त्यौहारों को मानते हैं, वे निम्न और "अछूत"जातियों के त्यौहार भी मनाते हैं। कुछ जनजातियाँ शिव की पूजा करती हैं। एम.एन. श्रीनिवास के अनुसार विभिन्न जनजातियों में एक समान संस्कृतिकरण नहीं होता। एक ही राजनीति के विभिन्न वर्ग में भी समान रुप से संस्कृतिकरण नहीं पाया जाता।

विगत कई दशक से ईसाई और इस्लाम धर्म को अपनाना एक विवादास्पद प्रश्न बना हुआ है। यह कहाजाता है कि इस सदी के दूसरे दशक और स्वतंत्रता के पश्चात् पिछड़े वर्गो तथा जनजातियों

के सदस्यों ने धर्म परिवर्तन करके ईसाई, इस्लाम और सिख धर्मों को अपना लिया। बिहार, बंगाल, असम और अन्य भागों में बहुत से आदिवासियों ने हिन्दू धार्मिक कृत्यों और व्यवहार प्रतिमानों को स्वीकार कर लिया। हजारों हरिजनों ने उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र में बौद्ध धर्म को अपना लिया। लालच देकर या दबाव डालकर धर्म परिवर्तन भारत के संविधान और देश के कानून के विरुद्ध है। धर्म परिवर्तन के अनेक कारण उत्तरदायी हो सकते हैं। परंतु अधिकतर लोगों ने धार्मिक कट्टरपंथिता से मुक्ति पाने के लिए धर्म परिवर्तन किया है।

अल्पसंख्यक धर्मों के लोगों में साक्षरता का प्रतिशत बहुसंख्यक धर्म के लोगों से अधिक है। ऐसा पारसी, जैन, यहूदी और ईसाई समुदायों में देखा गया है। ईसाईयों को छोड़कर इन समुदायों के सदस्य हिन्दुओं और मुसलमानों से अधिक संख्या (आनुपातिक आधार) में व्यापार और कारोबार में लगे हुए हैं। एक अध्ययन के अनुसार यद्यपि पारसी, यहूदी और जैन विविध धंधों में नहीं हैं फिर भी व्यापार में वे अन्य समुदायों से आगे हैं। चूँकि हिन्दू और मुसलमान संख्या में अधिक हैं और पूरे देश में बसे हुए हैं, इसलिए वे विविध व्यवसायों में रत हैं। अल्पसंख्यक समूह विशिष्ट क्षेत्रों, उप-क्षेत्रों और शहरों में केन्द्रित हैं। इसलिए वे व्यापार करने के लिए लाभकारी स्थिति में हैं। सीरियन ईसाई, मोपला, पारसी और दूसरे समूह केरल और महाराष्ट्र में महत्वपूर्ण स्थान पर रहने के कारण लाभान्वित हुए हैं।

सामाजिक एकीकरण में धर्म की भूमिका

एम.एन. श्रीनिवास ने धर्म की भूमिका की जाँच व्यक्तियों और समूहों के बीच एक बंधनकारी शक्ति के रुप में की है। लेकिन इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात देखने की यह है कि धर्म यह काम कैसे करता है, और धर्म कैसे क्रियाशील रहता है। कार्ल मार्क्स की युक्ति "धर्म जनता की अफीम है"सही पाई जा सकती है, यदि धर्म कुछ चुने हुए लोगों के हाथों में शोषण का एक यंत्र बनकर रह जाता है। परन्तु श्रीनिवास धार्मिक व्यवहार को सामाजिक जीवन का एक अंग मानते हैं। उन्होंने तीन बातों का जिक्र किया है : (1) ग्रामीण और अन्य स्थानीय स्तरों पर विभिन्न जातियों और धार्मिक समूहों में सम्बन्ध, (2) देश के आर्थिक विकास में धर्म की सामान्य भूमिका, और (3) धर्म और सामाजिक-आर्थिक विशेषाधिकार।

भारत में बहुजातीय गाँव की तरह बहुधार्मिक गाँव बहुतायत में नहीं है। फिर भी, उत्तर प्रदेश मेंहिन्दू काश्तकार और मुसलमान भू-स्वामी, और हिन्दू भू-स्वामी तथा मुसलमान काश्तकार मिलते हैं। कर्नाटक के रामपुर गाँव में कुछ बड़े हिन्दू जमींदारों के काश्तकार और नौकर मुसलमान थे, और मुसलमान जमींदारों के काश्तकार व नौकर हिन्दू थे। चूँकि मुसलमानों के पास जमीन पर्याप्त नहीं थी, वे अनेक तरह के आर्थिक कामों में लगे हुए थे। हिन्दू आम के बगीचों के मालिक थे, लेकिन मुसलमान आम का व्यापार करते थे। हिन्दू और मुसलमान त्यौहारों, विवाहों और अन्य अवसरों पर एक-दूसरे के साथ क्रियाशील पाए गए हैं। जब भी किसी समुदाय के लोग आर्थिक क्षेत्र में कुशलता प्राप्त करते हैं, तो दूसरे धर्मों के लोग उसके उपभोक्ता या ग्राहक बन जाते हैं।

होली, दीवाली, दशहरा, ईद, नववर्ष आदि अनेक अवसरों पर शहरों में हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे का अभिवादन करते हैं। दंगों और संकट की परिस्थितियों में उन्होंने एक-दूसरे की रक्षा की है। नवम्बर 1984 के दिल्ली व अन्य स्थानों पर हुए दंगों में हिन्दुओं ने बहुत से सिखों का बचाव किया और उन्हें शरण दी। पंजाब में सिख और हिन्दू सदियों से शांति के साथ रहे हैं। धार्मिक समुदायों और उनके व्यवसायों तथा धन्धों में सम्बन्ध होता है। उदाहरण के लिए मदिरा के व्यापार पारसियों के हाथों में है। मोपला व्यापारी प्राय: केरल, मैसूर, मद्रास और बम्बई में पाए जाते हैं। इसी प्रकार जैन व्यापारी

बम्बई, गुजरात, राजस्थान, कर्नाटक और बंगाल में रहते हैं। इस तरह का सम्बन्ध गाँवों में भी पाया जाता है। हिन्दू धर्मावलम्ब में, गुजराती, बनिया, तेलुगू, कोमती तमिल, चेट्टियार और राजस्थानी बनिया समुदायों ने आर्थिक गतिविधियों में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। फिर भी, कई नए जाति समूह व्यापार ओर अन्य कारोबार करने लगे हैं। जाति के बंधन कमजोर पड़े हैं और स्थानिक गतिशीलता अधिक तेज हो गई है। पूरे देश में विभिन्न समुदायों के फैलाव और उनके आर्थिक कार्यो की विविधता के परिणामस्वरूप सामाजिक एकीकरण की प्रक्रिया को बल मिला है।

मैक्स वेबर प्रथम समाज वैज्ञानिक थे जिन्होंने हिन्दू नीतिपरक और इसके दो सिद्धान्तों सम्सार (पुनर्जन्म में विश्वास) और कर्म (क्षतिपूर्ति सिद्धान्त) का उल्लेख किया। इन दोनों सिद्धान्तों के द्वारा जाति व्यवस्था का ईश्वरीय-न्याय मंडल बना। इसके परिणामस्वरुप जाति व्यवस्था में इहलोक की विवेकपूर्ण नीति उभर कर नहीं आई। वेबर के विश्लेषण का आधार हिन्दू धर्म ग्रंथों में व्याप्त धारणाओं का बहिर्वेशन था। सम्भवत: वेबर ने हिन्दू धर्म में परम्परावाद और अतार्किकता की व्याख्या, उसके अपने समाज में प्रोटेस्टेण्ट आचार पूँजीवाद के सम्बन्धों की दृष्टि के आधार पर की थी। मिल्टन सिंगर के अनुसार वर्ण-जाति व्यवस्था, पंथ और जनजातिवाद और आधुनिकीकरण, राष्ट्रवाद, औद्योगीकरण तथा शासनतंत्र के साथ सम्बन्ध का आधार धार्मिक / वैचारिक है। लेकिन इस निष्कर्ष पर पहुँचना कि हिन्दू नीति और जाति व्यवस्था ने आर्थिक विकास में सक्रिय योगदान दिया है। अत: उनमें परिवर्तन लाने की आवश्यकता नहीं है, यह एक बिल्कुल गलत मत है। भारतीय अर्थव्यवस्था और नीति के अनुरुप हिन्दू धर्म व जाति व्यवस्था में अनुशीलनकारी परिवर्तन आए हैं।

हिन्दू धर्म की सामाजिक व्यवस्था

हिन्दू धर्म की प्रकृति स्थिर नहीं है। वैज्ञानिक ज्ञान, प्रौद्योगिक प्रगति, संचार के साधन और धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया के प्रसार के कारण हिन्दू धर्म में भी बहुत से परिवर्तन आए हैं। परिवर्तन के इन कारणों के बावजूद हिन्दू धर्म एक जटिल प्रघटना बनी हुई है। पूरे भारतमेंशिक्षा, जन संचार, प्रेस और प्रवसन से धर्मनिरपेक्ष मूल्यों को बढ़ावा मिला है। परंतु स्थानीय स्तर पर धार्मिक प्रवृत्तियां बहुत हद तक अक्षुण्ण बनी हुई हैं

भारत को एक "प्राथमिक" या आदिजनित"सभ्यता की संज्ञा दी गई है, क्योंकि विदेशी आक्रमणों और देश के अन्दर शासकों के बीच युद्ध होने के उपरान्त भी भारतीय सभ्यता में निरन्तरता है, इसका इतिहास अवरोध विहीन है। भारतीय परम्परा के विभिन्न अंगों में अन्त: क्रिया इसकी शक्ति का मुख्य स्त्रोत हैं जो परम्पराएं लिखित हैं ओर जिनका उल्लेख हिन्दू या मुस्लिम साहित्य, धार्मिक पुस्तकों व ग्रंथों में मिलता है, उन्हें "दीर्घ परम्पराऐं"कहते हैं। जो परम्पराऐं अलिखित हैं और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक अनपढ़ परम्पराओं में निरन्तर अन्त: क्रिया पाई जाती है। जब एक दीर्घ परम्परा के तत्त्व लोकसमूहो तक संचारित होते हैं तो इस प्रकार की प्रक्रिया को संकीर्णताकरण या स्थानीयकरण कहते हैं, और जब एक लघु परम्परा के तत्त्व दीर्घ (सांस्कृतिक) परम्परा के अंग बन जाते हैं तो इस प्रक्रिया को सार्विकीकरण या सार्वभौमीकरण कहते हैं। किसी परम्परा को लघु या दीर्घ कहने का अर्थ लोगों को लघु या दीर्घ कहने से है क्योंकि लोग ही शिक्षित या अशिक्षित हैं। परम्पराऐं अपने आप में लघु या दीर्घ नहीं हैं। परम्पराओं का अभिप्राय व्यवहार के मानकों और पारस्परिक सम्बन्धों से है। अशिक्षित लोगों को "लघु" और शिक्षित को "दीर्घ" की संज्ञा देने में एक मूल्य-निर्णय निहित है। इस प्रकार धर्म एक बहुत जटिल घटक है। यह उचित होगा कि उन धर्म सूत्रों के बारे में हम जानकारी दें जिनके आधार पर (जाति, क्षेत्र, सांस्कृतिक विरासत, आर्थिक स्थिति और शैक्षणिक प्रस्थिति आदि के रहते हुए भी) सब लोगों को किसी भेदभाव के बिना समान स्तर पर आंका जाता है।

धर्म का दुरुपयोग

यद्यपि धर्म एकीकरण का एक यंत्र है फिर भी इसका उपयोग संकीर्ण सामाजिक और राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया गया है। विशिष्ट धार्मिक समूह के सदस्यों का समर्थन प्राप्त करने के लिए अनेक संगठनों और समूहों के धार्मिक नाम रखे गये हैं ताकि उनमें धार्मिक चेतना जाग सके। हिन्दू महासभा और मुस्लिम लीगइस प्रयोग के ज्वलन्त उदाहरण हैं। यहां तक कि शैक्षणिक संस्थाओं के नाम भी हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, जैन और सिख धर्मों से जुड़े हुए हैं। धार्मिक समूहों की तरह अनेक जातियों ने राजनीति में भी अपने सदस्यों को सक्रिय किया है।

सामाजिक एकीकरण में भाषा की भूमिका

भाषा एक जीवन शक्ति है, यह एक स्थिर प्रघटना नहीं है। सामाजिक संरचनाओं, शासक वर्गो और विशिष्ट ऐतिहासिक परिस्थितियों में परिवर्तनों के अनुरूप भाषा में भी परिवर्तन हुआ है। प्राचीन भारत में पाली और प्राकृत भाषाओं का महत्व था। संस्कृत भाषा ने पूरे देश में हिन्दू शास्त्रीय संस्कृति के वाहक का कार्य किया। संस्कृत के बाद असमी, बंगाली, गुजराती, हिन्दी, कश्मीरी, मराठी, उड़िया, पंजाबी, सिन्धु, उर्दू आदि आधुनिक भारतीय-आर्य भाषाओं का स्थान था। मराठी के अलावा भारतीय प्रायद्वीप में सभी भाषाएँ द्रविड़ वंश की हैं, इनमें मुख्य तमिल, तेलुगू, मलयालम और कन्नड़ हैं। इन दोनों तरह की भाषाओं में कई लोक-बोलियां हैं जिन्हें विभिन्न भाषायी क्षेत्रों के लोग बोलते हैं।

भारत का भाषायी ढाँचा

ग्रियरसन के अनुसार भारत में 179 भाषाएँ और 544 लोक-भाषाएँ हैं। किंतु इस अनुमान को अधिकृत नहीं मान सकते क्योंकि "भाषाओं" के अन्तर्गत लोक-बोलियों की गिनती भी की जाती है। भारतीय संविधान के आठवें अनुच्छेद के अनुसार पन्द्रह मान्य भाषाएँ हैं। ये है: असमी, बंगाली, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, मलयालम, मराठी, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, सिन्धी, तमिल, तेलुगू और उर्दू। अंग्रेजी के साथ हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिया गया है। राजस्थानी, मैथिली, मणिपुरी और नेपाली भाषाएँ बोलने वाले लोगों ने मांग की है कि उनकी भाषाओं को भी आठवें अनुच्छेद में शामिल किया जाये। बहुत से लोगों की भाषा सन्थाली, मुण्डारी और हो हैं। अविभाजित भारत में 73 प्रतिशत भारतीय-आर्य भाषाएँ, 20 प्रतिशत द्रविड़ भाषाएँ, 1.3 प्रतिशत ऑस्ट्रिक और 0.85 प्रतिशत चीनी-तिब्बती भाषाएँ बोली जाती हैं। इन तीन भाषा-समूहों के बीच अन्तक्रिया होती रही है।

राज्य पुनर्गठन का भाषायी आधार

भारत के राज्यों की वर्तमान संरचना भारत के भाषायी नक्शे के समान है। राज्य पुनर्गठन आयोग ने भाषायी एकरूपता और सामीप्य के आधार पर राज्यों के निर्माण की सिफारिश की थी। लेकिन हिन्दी भाषी अर्थात् बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश और पंजाब के बारे में एक विडम्बना है। इन राज्यों में लोगों की बोलियों को हिन्दी के साथ मिला दिया गया है। इस प्रकार पूरा क्षेत्र हिन्दी क्षेत्र है जिसमें 6 राज्य हैं। अन्य राज्यों अर्थात् असम, बंगाल, उड़िसा, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडू और केरल में उन लोगों की संख्यात्मक बाहुलता है जो क्रमश अपने प्रदेश की भाषा बोलते हैं।

भारत में सदैव बहुभाषायी सभ्यता रही है जिसमें अभिजात लोगों की अपनी विशिष्ट भाषा थी और इसमें स्थानीय, क्षेत्रीय तथा अखिल भारतीय भाषाओं में निरंतर अंतःक्रिया रही है। भारतीय उप-महाद्वीप की विशिष्ट विशेषता विभिन्न अंतःक्रियायी स्तरों पर एकता और सात्मीकरण का पाया जाना है। विभिन्नताओं के कारण राष्ट्रीय पहचान सम्बद्धता और एकता के लिए एक भाषा के सिद्धान्त

को समय-समय पर चुनौती दी गई है। रजनी कोठारी का सुझाव है कि भाषा की उलझी समस्या का उपाय "बहुलवादी हल" ही है।

भाषा लोगों के जीवन का एक भावुक पहलू है। 1963 के राजभाषा कानून के अन्तर्गत जब 26 जनवरी, 1965 के दिन हिन्दी को राजभाषा घोषित किया गया तो तमिलनाडू में दंगे शुरु हो गए जो बाद में अन्य गैर-हिन्दी भाषी राज्यों में भी फैल गए। परिणामत: अंग्रेजी को सहायक राजभाषा के रुप में रखा गया, जब तक गैर-हिन्दी भाषी लोग ऐसा चाहें। इस संकटकाल में त्रिभाषा सूत्र को चालू किया गया।

भारत सिद्धान्त और व्यवहार दोनों में एक बहुसामुदायिक समाज है अत: भारतीय समाज को विविधता में एकता और एकता में विविधता रुपी समाज कहना उचित है। प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक काल में भारत में असंख्य विषमताओं के होते हुए भी एकता बनाए रखी। भारत के प्रत्येक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक तथ्यों में एकता पाई जाती है। आज भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है। इसका एक संविधान है और सब लोगों के लिए जो विभिन्न क्षेत्रों में रहते हैं, अलग-अलग भाषाएँ बोलते हैं और भिन्न-भिन्न धर्मों में विश्वास रखते हैं-एक ही विधि का शासन है। आज हिन्दू, सिख, जैन, ईसाई और अन्य धर्मों के लोग प्रशासन, राजनीति और राजनैतिक जीवन में सहभागी हैं। सजातीय, भाषायी और धार्मिक विविधताएँ सामान्य तथा राष्ट्रीय उद्देश्यों की प्राप्ति में बाधक नहीं हैं। भारत की सांस्कृतिक विरासत विभिन्न संस्कृतियों के संश्लेषणात्मक एक जीवन्त उदाहरण हैं सभी धर्मों ने सांस्कृतिक संश्लेषण को प्रोत्साहित किया है।

3.2 भारतीय समाज: विभिन्नता में एकता

भारत विविध सामाजिक और सांस्कृतिक तत्त्वों का संश्लेषण कहा जाता है। यह आर्य और द्रविड़ संस्कृतियों का सम्मिश्रण है। इस संश्लेषण के फलस्वरूप गाँव, परिवार, जाति और विधि व्यवस्था में एकता पाई जाती है। प्राचीनकाल से आज तक भारतीय समाज की निरन्तरता इस संश्लेषण द्वारा बनी हुई है। मोहनजोदड़ो (2500 ईसा पूर्व) से लेकर बौद्ध, जैन, इस्लाम और ब्रिटिश शासन व स्वतंत्रोत्तर भारत तक कला, चित्रकारी संगीत और धर्म आदि के क्षेत्रों में सात्मीकरण तथा संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा निरन्तरता पाई जाती है।

के.एम. पणिकर जो एक निष्ठावान् राष्ट्रवादी थे, संश्लेषण और सात्मीकरण की ऐतिहासिकता को ध्यान में रखते हुए लिखते हैं "मैं संस्कृति को विचारों, धारणाओं, विकसित गुणों और संगठित सम्बन्धों तथा शिष्टताओं की एक ग्रन्थि मानता हूँ जो प्राय एकसमाज में पाई जाती है। " पणिकर इस संदर्भ में कहते हैं कि विचारों की समानता, आचरण व व्यवहार में एकरुपता और आधारभूत समस्याओं को समझने का सर्वमान्य उपागम साझा परम्पराओं और आदर्शों पर आधारित होते हैं। भारतीय संस्कृति की एक जीवन पद्धति रही है, बाहरी सम्पर्क होने से इसमें निरन्तर संशोधन होते रहे हैं, परन्तु देशी सिद्धान्तों और विचारों पर आधारित होने के कारण यह पद्धति मूलत: "भारतीय" बनी रही। भारतीय संस्कृति के ये रुप और उपागम साहित्य, कला और वास्तुकला में दिखाई देते हैं। भारत में धार्मिक और सामाजिक सहिष्णुता की परम्परा रही है। इस परम्परा ने भारत में सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में समृद्धि और अनेकरुपता लाने में योगदान किया है।

इस्लाम का भारतीय समाज पर प्रभाव

इस्लाम के प्रादुर्भाव से पहले और हर्ष के शासनकाल के पश्चात् भारत में राजनीतिक विघटन और बौद्धिक अवरोध का एक दौर आया। देश अनेक छोटे राज्यों में बंट गया और लोगों में संकीर्ण

दृष्टिकोण तथा अभिज्ञान उत्पन्न हो गए। धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन में औपचारिकवाद और सत्तावाद हावी थे। शैववाद और वैष्णववाद विशिष्ट धार्मिक पंथों के रुप में उभरकर आए। बुद्धिजीवी अभिजात ने कोई नवाचारिक धार्मिक लेखन विचार या टिप्पणियाँ नहीं लिखीं। गुप्त राजवंश के स्वर्ण युग का अंत शक, हूण और गुर्जर शासकों के हाथों से हुआ। लेकिन इन विदेशियों ने धीरे-धीरे हिन्दू धर्म और संस्कृति को अपना लिया। ये आक्रमणकारी स्वयं को क्षत्रियों से वंशज कहते थे। यही समय राजपूत संस्कृति, कला, साहित्य, काव्य पाठ और नाटक का शुरुआत था। मालवा, कन्नौज, बंगाल, कश्मीर, अजमेर, ग्वालियर, चित्तौड़, रणथम्भौर और माण्डू न केवल राजपूत शौर्य के ही लिए विख्यात स्थान थे बल्कि नई संस्कृति, वास्तुकला और साहित्य के लिए भी प्रसिद्ध थे। दक्षिण भारत इस अवधि में निश्चल रहा, और इसलिए वहाँ उत्तर भारत की तरह राजनीतिक विघटन नहीं हुआ। पूरे प्रायद्वीप में चौल वंश का शासन था।

इतिहासकार ताराचन्द ने अपनी पुस्तक, भारतीय संस्कृति पर इस्लाम का प्रभाव (अंग्रेजी मे), में लिखा है कि इस्लामिक संस्कृति के प्रभाव के कारण दक्षिण भारत में सामाजिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण आया। भारत में इस्लाम के आने से कई सदियों पले अरब के मुसलमानों के दक्षिण भारत के साथ व्यापारिक संबंध थे। भारत और ईरान के बीच समुद्रीय व्यापार चरम सीमा पर था। कुछ विदेशी व्यापारी तो श्रीलंका और मालाबार तट पर बस भी गए थे। कुछ अरबी मुसलमान सिंध और गुजरात में भी आए परन्तु उनका प्रभाव सीमित था। 12वीं सदी से भारतीय समाज पर इस्लामिक संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

ब्रिटिश काल में समाज

ब्रिटिश घुसपैठ के समय भारतीय समाज लगभग निश्चल था। ब्रिटिश शासकों को सलाह दी गई थी कि उन्हें हिन्दुओं के सामाजिक रिवाजों और धार्मिक आस्थाओं में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। एल' अब्बे डुबोई का मत था कि जिस दिन ब्रिटिश शासन ने हस्तक्षेप किया, वही एक राजनैतिक शक्ति के रुप में इसके अस्तित्व का अंतिम दिन होगा। मुगल शासक भी प्राय: धर्म परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन का एक साधन मानने के पक्ष में नही थे। इस अध्याय के पहले अनुभाग में हमने कहा है कि मध्यकालीन युग में एक प्रकार के संश्लेषण का प्रादुर्भाव हुआ। ग्रामीण भारत में जाति और वर्ग संरचनाएँ ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ में कठोर व निश्चल थी। व्यक्ति को जाति, परिवार और गाँव के अधीनस्थ समझा जाता था। अर्थव्यवस्था पुरातन थी। लोगों में राष्ट्रीय चेतना की कमी थी। ऐसे समय पर ब्रिटिश शासन के आगमन से नई स्थिति उत्पन्न हुई।

भारतीय समाज पर ब्रिटिश प्रभाव

ब्रिटिश सरकार, ईसाई मिशनरी और अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से भारतीय समाज पर प्रभाव पड़ा है। ब्रिटिश सरकार ने देशी प्रशासन एवं अभिशासन का स्थान ग्रहण कर लिया। योगेन्द्र सिंह के मतानुसार, ' 'पश्चिम के साथ भारतीय (हिन्दू) परम्परा का सम्पर्क भिन्न और मौलिक समाजशास्त्रीय महत्व का था। ऐतिहासिक दृष्टि से यह सम्पर्क एक पूर्व-आधुनिक और आधुनिकीकृत सांस्कृतिक व्यवस्था के बीच का था।" पश्चिमी परम्परा में तर्कणावद समानता और स्वतंत्रता पर आधारित वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक विश्व-दृष्टि पाई जाती थी। परिणामस्वरूप भारतीय परम्परा, जिसमें पहले ही एक प्रकार का "बिगाड़ा" आ गया था, खुली उदार, समानतावादी और मानवतावादी बनी। इस प्रकार पश्चिम (ब्रिटिश) परम्परा भारतीय परम्परा के सामने एक चुनौती बनकर आई। सोपान, जो एक जाति समूह में जन्म पर आधारित सामाजिक सोपान का सिद्धांत था, और साकल्यवाद जो विभिन्न समूहों को प्रदत्त प्रकार्यो

और कर्त्तव्यों के सम्पन्न करने के मानकों पर आधारित भिन्न-भिन्न जाति समूहों के बीच सावयवी अन्तर्निर्भरता था, पश्चिमी परम्परा द्वारा बहुत प्रभावित हुए।

पश्चिमीकरण

एम.एन. श्रीनिवास के अनुसार पश्चिमीकरण वह परिवर्तन है जो भारत में ब्रिटिश शासन के प्रभाव के कारण आया है। यह परिवर्तन तकनीक, वेशभूषा, खान-पान और लोगों की आदतों और जीवन शैलियों आदि में दिखाई देता है। तीन स्तरों पर पश्चिमीकरण की प्रक्रिया काम करती है (1) प्राथमिक, (2) द्वितीयक, और (3) तृतीयक। प्राथमिक स्तर पर कुछ लोग थे जो पश्चिमी संस्कृति के साथ सम्पर्क में आए, और इससे लाभान्वित होने वालों में भी प्रथम थे। द्वितीयक स्तर के पश्चिमीकरण का अभिप्राय भारतीय समाज के उन वर्गो से है जो प्रथम लाभभोगियों के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क में आए। तृतीयक स्तर पर वे लोग हैं जो ब्रिटिश द्वारा शुरु की गई तरकीबों के बारे में अप्रत्यक्ष रुप से जानकारी प्राप्त कर पाए। इस प्रकार पश्चिमीकरण की प्रक्रिया के तीन स्तर हैं। भारतीय समाज के विभिन्न अनुभागों में इस प्रक्रिया का प्रसार असमान और असमानतावादी भी रहा है। यद्यपि श्रीनिवास ने इस प्रक्रिया की अच्छाइयों में मानवतावाद और समतावाद का उल्लेख किया है परन्तु अन्य विद्वानों के अनुसार पश्चिमीकरण सांस्कृतिक और ज्ञानात्मक उपनिवेशवाद की प्रक्रिया है, और "अवैयक्तिक असांस्कृतिक और असार्वभौम राज्य का एक नमूना है"।

पश्चिमीकरण ने नए आधारों पर एक अखिल-भारतीय संस्कृति के पुन: प्रादुर्भाव में योगदान दिया है। पश्चिमीकरण का प्रभाव शिक्षा, कानून, विज्ञान और तकनीकी राजनीतिकरण के नए प्रकारों, नगरीकरण, औद्योगीकरण, प्रेस और यातायात ओर संचार के साधनों के क्षेत्रों में हुआ है। इन संस्थात्मक केन्द्रों के प्रादुर्भाव को योगेन्द्र सिंह ने "सांस्कृति आधुनिकीकरण" की प्रक्रिया की संज्ञा दी है। पश्चिमी प्रभाव द्वारा, आधुनिकीकरण की एक महान् परम्परा उत्पन्न हुई हे। निश्चय ही, इसके कारण देशज परम्परा और पश्चिमी परम्परा के बीच संघर्ष की समस्या बन गई है। भारतीय समाज के अभिजात अनुभागों के संदर्भ में इन दोनों परम्पराओं में संश्लेषण पाया जाता है।

न्यायिक समानता

भारत में आज "कानून का शासन" है। सब नागरिक समान हैं और एक ही सत्ता क्षेत्र में रहते हैं। यहाँ तक कि राजा-महाराजाओं और सामन्तों को दिया जाने वाला राजभत्ता भी 1969 में समाप्त कर दिया गया। प्रस्थिति और शक्ति का निर्धारण अब जन्म के आधार पर नहीं होता है। सामाजिक सम्मान और विशेषाधिकार पाने के लिये धर्म, भाषा, जाति या संजातीयता आधार नहीं रहे हैं।

राष्ट्रीय समेकन

राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफारिशों के आधार पर 1955 में राज्यों का पुनर्गठन किया गया था। यह कार्य लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा की पहचान पर आधारित है। प्रत्येक राज्य में कुछ सांस्कृतिक संसक्तिशीलता पाई जाती है। भारत में एक अदभुत प्रकार का सामन्तवाद था, जिसके अन्तर्गत राजाओं, ठिकानेदारों, जागीरदारों और जमींदारों को माई-बाप की तरह माना जाता था। सरकार ने सर्वप्रथम इस प्रकार के पैतृक सामन्तवाद का उन्मूलन किया और तदुपरान्त सामन्तों को प्रदत्त राजभत्ता और मुआवजों का समाप्त किया।

पंचवर्षीय योजनाएँ और सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन

स्वतंत्रता के बाद देश ने औद्योगिक क्षेत्र में भी बहुत प्रगति की है। 1950 और 1960 के वर्षो में हटिया, राउरकेला, बोकारो, सिन्दरी, बंगलौर और अन्य स्थानों पर भारी उद्योगों की स्थापना की गई थी। सरकार ने लघु और कुटीर उद्योगों की प्रगति पर भी बहुत ध्यान दिया है। चूँकि भारत में

नियोजित आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन का मार्ग अपनाया गया है, औद्योगीकरण सम्भव हो सका है। आयोजन कार्य भारत के योजना आयोग द्वारा किया जा रहा है। सातवीं योजना को बनाने का कार्य पूरा कर लिया गया है। सरकार ने मिश्रित अर्थव्यवस्था की नीति अपनाई है, जिसके अन्तर्गत निजी और सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों व संयुक्त क्षेत्र के संतुलित विकास पर बल दिया गया है।

सामाजिक कानून और प्रगति

ब्रिटिश शासन ने बाल विवाह, सती प्रथा और बाल हत्या को रोकने तथा विधवा विवाह को प्रोत्साहित करने के लिये सामाजिक विधान पारित किये। भारत सरकार ने हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 और हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 पारित किये। बाल श्रम को निरुत्साहित करने के लिये कानून पास किया गया। दहेज प्रथा के विरुद्ध कठोर कानून पास किया गया है। भारत के संविधान के अनुसार अस्पृश्यता पहले से ही एक दण्डनीय अपराध है। श्रमिकों को उचित मजदूरी देने और जमींदारों की प्रथा को समाप्त कर बिचौलियों को हटाने सम्बन्धी कानूनों के पारित करने से शहरों और कस्बों के श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी मिलने लगी है।

3.3 भारतीय समाज का उद्भव (सामाजिक एवं सांस्कृतिक आयाम)

ब्रिटिश भारत में सामाजिक-धार्मिक सुधार आन्दोलनों के तीन कारण थे: (1) मनु संहिता पर लिखी गई विभिन्न टीकाओं के पाठ के चयन पर सदैव प्रकाश नहीं डाला गया था, (2) न्यायालयों में व्याख्या के लिये इन पर निर्भरता के कारण अधिक रुढ़िवाद उभर गया था, और (3) न्यायालयों और ब्रिटिश न्यायाधीशों द्वारा विवाहिता स्त्रियों के अधिकारों के सम्बन्ध में प्राचीन हिन्दू और विक्टोरियायी अंग्रेजी रुढ़िवाद का सम्मिश्रण था।

ए.आर. देसाई के अनुसार, धार्मिक सुधार आन्दोलन प्राचीन मूल्य व्यवस्थाओं और नवीन सामाजिक-आर्थिक वास्तविकताओं में विरोधाभास के कारण प्रतिफलित राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप है। आधुनिक भारत के निर्माण में राष्ट्रवाद और जनतंत्र के सिद्धान्तों को आधारभूत बनाने के संदर्भ में इन धार्मिक आन्दोलनों का उद्देश्य प्राचीन धर्म को पुर्नस्थापित करना था। देसाई की मान्यता है कि ब्रिटिश विजय के बाद स्थापित भारत में आधुनिक समाज एक पूँजीवादी समाज था। इन आन्दोलनों ने जातिप्रथा और सम्बन्धित संस्थाओं, बहुदेववाद, अनावश्यक धार्मिक कृत्तियों और सिद्धान्तों पर प्रहार किया। ये धर्म-सुधार आन्दोलन वास्तव में मूल रुप से राष्ट्रीय मात्र ऊपरी तौर पर धार्मिक थे। आगे ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, दि सर्वेट्स ऑफ इण्डिया सोसायटी के अलावा हमने थियोसोफिकल समाज, मुसलमानों और सिखों में सुधार आन्दोलनों, स्वदेशी, सत्यशोधक समाज, श्री नारायण धर्म परिपालन आन्दोलन (एस.एन.डी.पी.) और जनजातीय आन्दोलनों के सहित अनेक आन्दोलनों का संक्षेप में विवेचन किया है।

ब्रह्म समाज

राजा राममोहन राय को आधुनिक भारतीय पुनर्जागरण का जनक माना जाता है। 20 अगस्त, 1828 को राममोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना की, जिसका शाब्दिक अर्थ "एक ईश्वर समाज" है। इस संस्था के आदर्श रुढ़िवादी हिन्दुओं को पसन्द नहीं आये, लेकिन आमतौर पर लोगों ने इस नए संगठन की प्रशंसा की। राममोहन राय निरपेक्षवादी थे क्योंकि उनकी प्रेरणा के स्त्रोत ईसाई धर्म, इस्लाम और उपनिषद थे। इस्लाम धर्म के अद्य अद्वैतवाद में उनका पूर्ण विश्वास था। उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और गीता के अध्ययन द्वारा उन्होंने यह समझा कि हिन्दू धर्म का साथ "ईश्वर एक है" ' की अवधारणा है।

राममोहन राय का मत था कि भारत अपने प्रामाणिक आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विरासत का परित्याग किये बिना एक नया दर्शन और पश्चिम द्वारा आयातित आधुनिकवाद का समावेश और सात्मीकरण कर सकता है। उन्होंने शिक्षा में आधुनिक विज्ञान और प्रोद्यौगिकी व अंग्रेजी भाषा के उपयोग पर अत्यन्त बल दिया। राममोहन राय एक यथार्थवादी थे, और अंग्रेजी शिक्षा तथा प्रबुद्ध पत्रकारिता के प्रवर्तक थे।

प्रार्थना समाज

न्यायाधीश महादेव गोविन्द रानाडे के नेतृत्व में 1867 में प्रार्थना समाज की स्थापना ब्रह्म समाज की एक प्रशाखा के रुप में हुई थी। इस संगठन की स्थापना की प्रेरणा केशवचन्द्र से प्राप्त हुई। प्रार्थना समाज के अनुयायी स्वयं को हिन्दू धर्म में या इसके बाहर एक नए धर्म अथवा एक नए सम्प्रदाय के अनुचर नहीं मानते थे, बल्कि वे अपने आपको हिन्दू धर्म में ही एक आन्दोलन के रुप में समझते थे। महाराष्ट्र की वैष्णववाद परम्परा के अन्तर्गत वे पक्के ईश्वरवादी थे। उन पर नामदेव, तुकाराम और रामदास आदि संतों का बहुत ही प्रभाव था। अन्तर्जातीय खान-पान और विवाह, विधवा पुनर्विवाह, स्त्रियों और पिछड़े वर्गो की स्थिति में सुधार आदि सामाजिक सुधार उनके प्रमुख उद्देश्य थे।
रानाडे ने दो बातों पर बल दिया : (1) सम्पूर्ण मनुष्य के बारे में उनकी चिन्ता थी, और (2) आमूल रुपान्तरण के बावजूद निरन्तरता विद्यमान थी। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि ये दोनों बातें किसी भी समाज सुधारक के दर्शन का अंग होनी चाहिए।

आर्य समाज

स्वामी दयानन्द सरस्वती (1824- 1883) ने 1875 में आर्य समाज की स्थापना की। वे संस्कृत के विद्वान थे, परन्तु उन्हें अंग्रेजी शिक्षा का बोध नहीं था। उन्होंने नारा दिया- "वेदों का पुन: अध्ययन कीजिए"।

स्वामी ने शुद्धि आन्दोलन को प्रारम्भ किया, जिसके अन्तर्गत अन्य धर्मों के लोगों को पुन: हिन्दू धर्म में परिवर्तन किया गया। यह कार्य भारत को राष्ट्रीय, सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से एकीकृत करने की दृष्टि से किया गया था। थोड़े ही समय में जनता के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क के कारण स्वामी के अनुयायियों की संख्या बहुत अधिक हो गई।

बाल विवाह की रोकथाम के लिए समाज ने लड़कों के लिए 25 और लड़कियों के लिए 16 वर्ष की आयु विवाह के लिए निर्धारित की। अन्तर्जातीय विवाह ओर विधवा पुनर्विवाह को प्रोत्साहित किया। आज भी आर्य समाज के मन्दिरों में ये कार्य लग्न और तत्परता के साथ पूरे किए जाते हैं।

रामकृष्ण मिशन

रामकृष्ण मिशन प्राचीन भारतीय और आधुनिक पश्चिमी संस्कृतियों के संश्लेषण का एक मूर्तरुप है। रामकृष्ण परमहंस (1836- 1886) इस सामाजिक-धार्मिक आन्दोलन के प्रवर्तक थे।

मई 1897 में परमहंस के शिष्य नरेन्द्रनाथ दत्त, जिनको बाद में स्वामी विवेकानन्द (1863-1902) के नाम से जाना गया, ने औपचारिक रुप रो मिशन की स्थापना की। मिशन के दो उद्देश्य हैं : (1) आत्म-त्याग और व्यवहारिक आध्यात्मिकता के साथ जीवन व्यतीत करने वाले साधुओं की एक जमात तैयार करना जिसमें से उपदेशकों और कार्यकर्ताओं को रामकृष्ण के जीवन में परिलक्षित वेदान्त के सर्वदेशीय संदेश को प्रसारित करने के लिए बाहर भेजना, और (2) आम अनुयायियों के समर्थन के साथ, सभी पुरुष, स्त्री और बालकों को ईश्वर की देन मानते हुए और बिना जाति, सम्प्रदाय या रंग आदि के भेदभाव के, उनके लिए शिक्षा, मानवीय और दयायुक्त, दानयुक्त कार्यो को सम्पन्न करना है।

रामकृष्ण के कुछ आध्यात्मिक अनुभव, उपनिषदों व गीता के उपदेश (शिक्षा) और बुद्ध और ईसाई के उदाहरण हैं। वे वेदान्त को व्यावहारिक बनाना चाहते थे। उनका उद्देश्य परमार्थ, व्यवहार, आध्यात्मिकता और दैनिक जीवन के बीच की खाई को पाटने का था। अत: उन्होंने सेवा के सिद्धान्त (सब जीवमात्र की सेवा) का प्रचार किया। जीवमात्र की सेवा ही शिव सेवा है। जीवन ही धर्म है। सेवा द्वारा ही मनुष्य में ईश्वर निवास करता है। मानव जाति की सेवा के लिए विवेकानन्द तकनीकी और आधुनिक विज्ञानों के उपयोग पर बल देते थे।

मिशन को स्थापित हुए 91 वर्ष हो गए हैं। यह एक विश्वव्यापी संगठन बन चुका है। मिशन एक धार्मिक संस्था है, पर धर्म परिवर्तन करने वाला नहीं है। यह हिन्दू धर्म का एक सम्प्रदाय भी नहीं है। वास्तव में मिशन की सफलता का एक मुख्य कारण यह भी है।

दि सर्वेंट्स ऑफ इण्डिया सोसायटी

19वीं शताब्दी के अन्य सामाजिक-धार्मिक सुधार संगठनों की तरह सर्वेंट्स ऑफ इण्डिया सोसायटी ने 20वीं सदी में अनेक कल्याणकारी कार्यक्रम शुरु किए। 1950 में भारतीय-राष्ट्रीय कांग्रेस के उदार नेता गोपाल कृष्ण गोखले ने इस सोसायटी की स्थापना की थीं इस सोसायटी का उद्देश्य भारती की सेवा हेतु राष्ट्रीय धर्म प्रचारक प्रशिक्षित करके सब संवैधानिक साधनों द्वारा भारतीय जनता के सच्चे हितों को बढ़ावा देना था।

थियोसोफिकल समाज

1886 में मैडम एच.पी. क्लवंस्की और कर्नल एच.एस. ओलकोट्ने थियोसोफिकल समाज की स्थापनाकी। तदोपरान्त श्रीमती ऐनी बीसेन्ट ने हिन्दूवाद, जोरस्ट्रियनवाद और बौद्ध धर्म को पुनर्जीवित और दृढ़ करने के लिए इस संगठन के नेतृत्व का उत्तरदायित्व लिया। प्रभावकारी समाज सुधारों और भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य बनाने के लिए विपिन चन्द्र पाल, अरविन्द घोष, बाल गंगाधर तिलक और महात्मा गांधी ने भी उपनिषदों और महाकाव्यों को उपयोग किया। गांधी ने छुआछूत के उन्मूलन के लिए सराहनीय कार्य किया।

मुसलमानों, सिखों और पारसियों में सुधार आन्दोलन

मुसलमानों में पुनर्जागरण सम्बन्धी चार आन्दोलन थे : (1) अहमदिया आन्दोलन, (2) अलीगढ़ आन्दोलन, (3) सर मोहम्मद इकबाल का आन्दोलन, और (4) शेख अब्दुल हली शरार का आन्दोलन। ब्रिटिश काल के दौरान भारत के मुसलमान हिन्दुओं की तरह अधिक सक्रिय नहीं रहे। इन आन्दोलनों में सार्वभौमिक बंधुता, उदार शिक्षा और कुरान की उदार व्याख्या पर बल दिया गया है। 1920 में अलीगढ़ मुस्लिम शैक्षणिक सम्मेलन का भी आयोजन किया गया था। सैयद अहमद खान अलीगढ़ आन्दोलन के नेता थे।

पारसियों और सिखों ने अपने समुदायों में अनेक सामाजिक, धार्मिक सुधार शुरु किये। पारसियों ने स्त्री शिक्षा और विवाह एवं स्त्रियों की सामाजिक स्थिति के बारे में रूढ़िवादिता का परित्याग करने का निश्चय किया। गुरुद्वारों के प्रबन्ध में सुधार के लिये सिखों ने बहुत कार्य किया। इन धर्म स्थानों के महंतों के विरुद्ध एक विद्रोही जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी। 19वीं सदी के अन्त में अमृतसर में खालसा कॉलेज की स्थापना की गई।

सत्यशोधक समाज आन्दोलन

महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले ने ब्राह्मणों के विरुद्ध एक सशक्त आन्दोलन चलाया। उन्होंने लड़कियों के लिये स्कूल, हरिजनों के लिये स्कूल और विधवाओं के लिये अनाथालय खोले। फुले ने ब्राह्मणों की श्रेष्ठता (उच्च पद) को चुनौती दी। आम जनता के लिये फुले की दो पुस्तकें - सार्वजनिक

सत्यधर्म और गुलामगिरी प्रेरणा के स्त्रोत बन गई। ब्राह्मण आधिपत्य के विरुद्ध जिहाद उठाने के लिये उन्होंने सत्यशोधक समाज की स्थापना की।

श्रीनारायण धर्म परिपालन आन्दोलन

ब्राह्मणों ने सबसे पहले आधुनिक शैक्षणिक और रोजगार अवसरों का लाभ उठाया, अत: स्वतंत्रता के पूर्वकाल में महात्मा फुले के आन्दोलन की तरह अनेक आन्दोलन विशेषकर ब्राह्मणों के विरुद्ध चलाए गए।

श्री नारायण धर्म परिपालन एक क्षेत्रीय आन्दोलन का उदाहरण हैं इस आन्दोलन का सम्बन्ध केरल के इझावा लोगों से है जो अस्पृश्य थे। आन्दोलन की विचारधारा को मूर्तरुप श्री नारायण गुरु स्वामी ने दिया था। उन्होंने नारायण धर्म परिपालन योगम नाम से एक क्रियात्मक कार्यक्रम बनाया। योगम ने कई मुद्दे जैसे - पब्लिक स्कूलों में प्रवेश का अधिकार, सरकारी सेवा में भर्ती, मंदिरों में प्रवेश, सड़कों के उपयोग और राजनैतिक प्रतिनिधित्व आदि अपने हाथ में लिये। इनमें से अधिकतर उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफलता मिली। कुल मिलाकर इन आन्दोलनों के द्वारा संरचनात्मक परिवर्तन हुए जिनमें रुपान्तरकारी ऊपरी गतिशीलता, शक्ति के वितरण में बदलाव, और पिछड़ी जातियों के संघ का एक वृहद् समूह में निर्माण आदि परिवर्तन सम्मिलित हैं।

जनजातीय आन्दोलन

एक अलग राज्य की मांग या अधिक स्वायत्तता, एक लिपि का विकास और स्वतंत्र पहचान आदि बहुत सी मांगें जनजातीय आन्दोलनों का एक अंग बन गई थीं। उदाहरण के लिये उत्तर-पूर्व में खासी, गारो, बोड़ों-कचारी और अहोम जनजातियों में ऐसे आन्दोलन सांस्कृतिक और राजनैतिक पुनर्जागरण से जुड़े हुए थे। बिहार, बंगाल, मध्यप्रदेश और उड़िसा राज्यों में जनजातीय आन्दोलन राजनीतिक स्वायत्तता, कृषि और वन-आधारितउपजों तथा सामाजिक-धार्मिक, सांस्कृतिक और भाषायी समस्याओं से जुड़े हुए थे। इन आन्दोलनों में उप-क्षेत्रीय पहचान पर मुख्य बल दिया गया था। इनमें से कुछ आन्दोलन स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले शुरु हुए और समाप्त भी हो गए परन्तु उत्तर पूर्व में कुछ आन्दोलन और बिहार में झारखण्ड आन्दोलन आज भी सक्रिय हैं।

सामाजिक संरचना का प्रभाव

19वीं सदी के सामाजिक-धार्मिक सुधार आन्दोलनों के सबसे अधिक प्रभाव थे : (1) आम जनता में राष्ट्रीय चेतना का प्रादुर्भाव, (2) हिन्दू धर्म का एक सहिष्णु और यथार्थ के रुप में पुनर्जागरण, और पूर्व में इस्लाम व 19वीं सदी में ईसाई धर्म के कारण इसकी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुन: स्थापित करना, (3) भारतीय समाज में स्त्रियों, अछूतों और अन्य उत्पीड़ित तथा दलित वर्गो पर अत्याचार और अमानवीयता पर प्रहार, (4) त्याग, सेवा और तर्कबुद्धिवाद की भावनाएँ उत्पन्न करना, (5) जाति प्रथा के वंशानुगत स्वरुप और कठोरताओं पर प्रहार, (6) संस्कृतियों और धर्मों में समानता, देशीयकरण और सह-अस्तित्व की भावना उत्पन्न करना।

3.4 भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का समाजशास्त्रीय आशय

भारतीय समाज अंग्रेजों आगमन के समय धर्म, क्षेत्र, जनजाति, जाति और भाषा के आधार पर विभाजित था। ब्रिटिश राज ने न केवल इन विभेदों को बनाए रखा, बल्कि इनको और अधिक उभारा ताकि भारत की जनता ब्रिटिश राज के विरुद्ध संगठित न हो सके। विभिन्न जातियों और समुदायों को अपने नाम और पदवियों को रखने की छूट दी गई। विभिन्न संगठनों, संस्थाओं और सैन्यदलों के नाम जातियों और समुदायों के नामों पर रखे गए। प्रारम्भ में मुसलमानों को संसदीय प्रक्रियाओं में पृथक

निर्वाचन क्षेत्रों की मांग करने, और बाद में पाकिस्तान के निर्माण के लिये प्रोत्साहित किया गया। मुस्लिम साम्प्रदायिकता अंग्रेजों की "फूट डालो और राज करो" की नीति की प्रमुख देन थी।

इस संदर्भ में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये अंग्रेजों के विरुद्ध भारत के संघर्ष में राजनैतिक चेतना, शिक्षा, साम्प्रदायिकता और जाति को प्रमुख समाजशास्त्रीय तथ्यों के रुप में माना है।

हिन्दुओं के सामाजिक जीवन का सार जाति प्रथा थी। जाति पंचायतों द्वारा जाति के सदस्यों के लिये व्यवस्था के चयन, वर-वधु का चुनाव, अन्तर्जातीय सम्बन्धों और सामाजिक गतिशीलता के माध्यमों का नियमन किया जाता है। जाति पर आधारित पूर्वाग्रह बहुत कठोर थे। यहाँ तक कि सेना में भी ब्राह्मणों और राजपूतों को अपनी जाति के नियमों और नियमनों का पालन करने की छूट दी गई थी। वे लोग अपना भोजन बनाने के बर्तन और पानी पीने के लिये लोटा अलग से रखते थे। समुद्री यात्रा को अपवित्र समझा जाता था। ब्रिटिश राज ने ही राजपूत राइफल या जाट रेजीमेन्ट आदि सैन्यदलों के नाम रखे थे।

हिन्दुओं की तरह मुसलमान भी जाति, सम्प्रदाय, जनजाति और आर्थिक प्रस्थिति के आधार पर विभाजित थे। शिया और सुन्नी मुसलमानों में प्रायः झगड़ा होता था। हिन्दुओं और मुसलमानों में पर्दा और बाल विवाह का रिवाज था। हिन्दुओं में सती-प्रथा चलती रही और विधवा पुनर्विवाह पर रोक लगाई गई (विशेष रुप से हिन्दू उच्च जातियों में)।

ब्रिटिश राज ने न्यायिक व्यवस्था में भी परिवर्तन किए। अत्यन्त नौकरशाही कृत साम्राज्यवादी शासन व्यवस्था का विकास किया गया। साम्राज्यीकृत और आधुनिक संचार साधनों से देश को एकीकृत कर, ब्रिटिश साम्राज्य को समीप लाया गया।

मैकॉले की नीति (1835) के अन्तर्गत देश में विश्वविद्यालय और महाविद्यालय खोले गए। 1857 में कलकत्ता, मद्रास और बम्बई में विश्वविद्यालय खुले। 1882 में हन्टर आयोग ने शैक्षणिक सेवाओं के पुनर्गठन की सिफारिश की। अंग्रेजी के अध्ययन का उद्देश्य अदालतों, न्यायालयों और विभिन्न सरकारी विभागों के लियेअंग्रेजी भाषा जानने वाले लोग तैयार करना था, परन्तु अंग्रेजों के न चाहने पर भी इस भाषा के अध्ययन से भारतीय लोगों को पश्चिम के राजनीतिक विचारों और पश्चिमी विज्ञान का ज्ञान उपलब्ध हुआ।

1883 में कलकत्ता में भारतीय राष्ट्रीय कांफ्रेंस की स्थापना की गई जिसमें देश के सभी भागों के सदस्य थे। 1885 में बम्बई में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की गई। लार्ड कर्जन के नेतृत्व में राज को दृढ़ करने के लिये प्रशासनिक और आर्थिक सुधार शुरु किये गये। भारतीय पुलिस का पुनर्गठन किया गया। कृषकों पर कर भार कम किया गया और उन्हें साहूकारों द्वारा बेदखल होने से बचाया गया।

बंगाल का विभाजन (1905)

लॉर्ड कर्जन 1899 से 1905 तक भारत में रहे ओर इस दौरान राष्ट्रवाद के उभरते हुए जार को सस्ती से रोकने का उन्होंने प्रयत्न किया। बढ़ती हुई राष्ट्रवादी और देशभक्ति की भावना को कुचलने के उद्देश्य से कलकत्ता कारपोरेशन एक्ट, भारतीय विश्वविद्यालयीय अधिनियम (1904) और आफिशियल सिक्रेट्स एक्ट (1904) पारित किये गये। परन्तु बंग-भंग से कर्जन की बहुत भर्त्सना हुई 20 जुलाई, 1005 को लॉर्ड ने बंगाल के दो हिस्से करने की घोषणा की। एक का नाम ' 'पूर्वी बंगाल और असम' ' रखा और दूसरे हिस्से में शेष बंगाल रहा।

बंगाली समुदाय ने विभाजन का हिंसात्मक विरोध किया क्योंकि वे इससे अपमानित हुए और उन्हें आघात पहुँचा। 7 अगस्त 1905 को विभाजन-विरोधी आन्दोलन शुरु किया गया, अंग्रेजी सामान का बहिष्कार किया गया, और स्वदेशी वस्तुओं को अपनाया गया।

जनता ने स्वत: और शीघ्रता से आन्दोलन में सहयोग किया। 16 अक्टूबर 1905 को विभाजन का निर्णय लागू किये जाने पर सम्पूर्ण बंगाल में राष्ट्रीय शोक दिवस मनाया गया। इस अवसर पर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने एक राष्ट्रीय गीत की भी रचना की। पूरा कलकत्ता शहर 'वन्दे मातरम्' की आवाज से गूँज उठा।

1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना के साथ ही मुसलमान पृथकतावाद भी उभरा। क्योंकि मुस्लिम लीग हिन्दुओं के प्रभुत्व के विरुद्ध थी, उसने बंगाल के विभाजन का समर्थन किया और ब्रिटिश विरोधी बहिष्कार का विरोध किया।

संवैधानिक सुधार

1909 में मोरले-मिन्टो सुधार प्रारम्भ किये गये जिनके अन्तर्गत केन्द्रीय विधान सभा, प्रान्तीय विधान सभाओं, नगरपालिकाओं, जिला बोर्डो, चैम्बर ऑफ कॉमर्स ओर विश्वविद्यालयों के लिये चुनाव के सिद्धान्त को मान्यता दी गई। भू-स्वामियों और अन्य लोगों को मत देने का अधिकार दिया गया। 1909 के सुधार के तहत चुनाव क्षेत्रों का निर्माण करके प्रथम मुस्लिम साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्र केन्द्र एवं राज्यों में बनाए गये।

1919 में मोन्टेग्यू-चैम्सफोर्ड सुधारों को स्वीकृति दी गई। केन्द्रीय स्तर पर द्विसदन प्रणाली लाग की गई: (1) राज्यों की कौंसिल, (2) विधान सभा। इन सभाओं के लिये लगभग 70 प्रतिशत सदस्य निर्वाचित होते थे। प्रत्यक्ष चुनाव के सिद्धान्त को मान्यता दी गई, मुसलमानों, एंग्लो-इण्डियन यूरोपियन लोगों, सिख और ईसाईयों तथा मद्रास में गैर-ब्राह्मणों के लिये पृथक निर्वाचन क्षेत्र बनाए गये। तिलक और महात्मा गांधी का यह मत था कि इन सुधारों को परीक्षण के आधार पर लागू किया जाए।

सुधारों पर प्रतिक्रियाएँ

1919 के सुधारों की समीक्षा करने के लिये साइमन आयोग के भारत आगमन से राष्ट्रवादी आन्दोलन के एक नए चरण की शुरुआत हुई। साइमन आयोग के बहिष्कार के लिये एक राष्ट्रव्यापी आन्दोलन छेड़ा गया। आपसी मतभेदों को भूलकर सभी समूह और गुट इस आन्दोलन में शामिल हुए।

राजनैतिक चेतना

राष्ट्रवादी सरगर्मियों की वास्तविक शुरुआत 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुई। इससे पूर्व 1857 से पहले के काल में दो परस्पर विरोधी विचार उभरे थे : (1) ब्रिटिश विरोधी, और (2) ब्रिटिश समर्थक। ब्रिटिश प्रशासन के सिद्धान्तों और अंग्रेजी शिक्षा में लोगों की आस्था की प्रतिक्रिया स्वरुप ब्रिटिश समर्थक विचारों से राष्ट्रवाद और देश भक्तिवाद का प्रादुर्भाव हुआ। ब्रिटिश विरोधी विचारों के कारण अनेक राजनैतिक और नागरिक आन्दोलनों तथा विद्रोहों का जन्म हुआ। वास्तव में दोनों ही विचार ब्रिटिश राज के विरुद्ध और भारत की आजादी के पक्ष में थे। राज द्वारा किये गये अत्याचारों के परिणामस्वरुप राजनैतिक चेतना के विचार दृढ़ हो गये।

बुद्धिजीवी वर्ग ब्रिटिशराज के एकदम विरुद्ध था। देश की आर्थिक बर्बादी, लोगों की असाध्य गरीबी और निरन्तर अकाल का पड़ना आदि कारणों से भी लोगों में राजनैतिक चेतना आई। देश के गौरव के अपमान के कारण भी बुद्धिजीवी वर्ग अंग्रेज विरोधी हो गया। भारतीयों के प्रति अपमानजनक व्यवहार, क्रूर हमले, नौकरों का आम आदमी के साथ दुर्व्यवहार साधारण घटनाएँ हो गई थी। अंग्रेज लोगों को इन उल्लंघनों और अपराधों के लिये दण्डित नहीं किया जाता था। इसी भेदभावपूर्ण नीति के कारण शिक्षित भारतीय को ब्रिटिश शासन के विरुद्ध लड़ने की प्रेरणा मिली। भारतीय सिविल सर्विस सहित अन्य सभी सेवाओं में भर्ती करने के लिये इसी भेदभावपूर्ण नीति को प्रभावकारी ढंग से लाग

किया गया था। भारतीयों को अंग्रेजों द्वारा असीमित सीमा तक अपमानित व अमानवित किया जाता था। शिक्षित भारतीयों ने इन बुराइयों के विरुद्ध लड़ने के लिये ब्रिटिश भारतीय संघ की स्थापना की।

भारत की जनता का मानसिक, नैतिक, सामाजिक और राजनैतिक पुनरुद्धार करने के लिये एओ. अम ने दादाभाई नौरोजी, बदरुद्दीन तैयबजी, फिरोजशाह मेहता सरीखे नेताओं की सलाह लेकर 1885 में बम्बई में एक सभा का आयोजन किया। बाद में कांग्रेस एक शक्तिशाली राजनैतिक संगठन के रुप में विकसित हुई। इसने अंग्रेजी शिक्षित भारतीयों के राजनैतिक विचारों को बल दिया, और उन्हें एक निश्चित आकार एवं स्वरुप प्रदान किया। कांग्रेस नेताओं ने उदारवाद और न्याय की भावना को अपने आदर्शो के रुप में स्वीकार किया। कांग्रेस ने देश के राजनैतिक विकास में भी मदद की, भारत की एकता के आदर्शो को यर्थाथता प्रदान की, देशभक्ति की भावनाओं को विकसित किया और राजनैतिक चेतना को जताया। परन्तु कुछ लोगों ने कांग्रेस की नीतियों और कार्यो की तीखी और वैमनस्यकारी आलोचनाएँ कीं। मुसलमानों और अंग्रेजों ने कांग्रेस को अपने अस्तित्व के लिये एक खतरा समझा। इन आलोचनाओं के बावजूद कांग्रेस देश की स्वतंत्रता और उत्थान के लिये कार्य करती रही।

इस प्रकार तिलक ने राजनीति को एक नई दिशा प्रदान की। तिलक को कांग्रेस की प्रार्थीभाव और आग्रह तथा राजनैतिक याचक मनोवृत्ति नापसन्द थी। राष्ट्रवादी आन्दोलन में वे सदैव जन साधारण को साथ लेना चाहते थे। यह कहा गया है कि "तिलक भारत में राजनैतिक दर्शन स्वर्ग से धरती, कौंसिल हॉल तथा कांग्रेस मण्डप से गलियों और बाजार में लाए। " राजनीति में शक्ति और ओजस्विता भारतीय राष्ट्रवाद को तिलक की आशावादी देन थी। तिलक ने कहा था ' 'स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा" तिलक की नीति और उदारवादियों में अन्तर करते हुए कहा गया है कि उदारवादियों के लिये याचकों की कांग्रेस थी, और तिलक के साथ कांग्रेस में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये लड़ने वाले स्त्री और पुरुष थे। तिलक के दर्शन और आचरण के प्रतीक आधुनिक महाराष्ट्र में गणपति और शिवाजी उत्सव हैं।

गांधीजी ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को स्वतंत्रता के लिये जनता के आन्दोलन के रुप में परिवर्तित कर दिया। उन्होंने खिलाफत का समर्थन किया, और हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिये प्रयत्न किया। 1920 में गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन शुरु किया। गांधीजी के नेतृत्व में लोगों ने उपाधियों को लौटा दिया तथा सम्मानार्थ मानक पदों से इस्तीफा दे दिया, और स्थानीय संकायों, न्यायालयों और विधानसभाओं की मनोनीतसदस्यता से त्यागपत्र दे दिया। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कर स्वदेशी वस्त्र अपनाए और करों का भुगतान करने से मना कर दिया।

आर्य समाज ने वैदिक संस्कृति के पुनरूत्थान के लिये पूरे देश में अनेक विद्यालय और महाविद्यालय खोले। राष्ट्रवादी भावना का एक अन्य उदाहरण दक्कन शिक्षा समाज है जिसको तिलक और आगरकर ने खोला था। समाज का उद्देश्य लोगों का एक ऐसा समूह तैयार करने का था जो देश के उत्थान के लिये शैक्षणिक सुधार और राष्ट्र का कार्य कर सकें। राष्ट्रवादी नेताओं के गुजरात और उत्तर प्रदेश में विद्यापीठ खोले। कुछ समर्पित भारतीयों ने शांति निकेतन में विश्वभारती, एस.एन.डी.टी. महिला विश्वविद्यालय और जामिया मिलिया जैसी संस्थाएँ खोलीं।

ब्रिटिश शैक्षणिक व्यवस्था भारतीय समाज की वास्तविकताओं से परे थी। यह व्यवस्था व्यावहारिक तौर पर लोगों पर अंग्रेजी भाषा में प्रशिक्षण देने का एक साधन मात्र बन कर रह गई थी। इसमें भारतीय संस्कृति, कला, चित्रकला, अर्थव्यवस्था, राजनैतिक व्यवस्था, धर्म आदि पर बल नहीं के बराबर था। शिक्षित भारतीय अपने समाज एवं संस्कृति के बारे में अनभिज्ञ थे। ब्रिटिश महाविद्यालय और विद्यालयों द्वारा प्रदत्त शिक्षा में "राष्ट्रीय" कुछ भी नहीं था। अंग्रेजी शिक्षा जन शिक्षा नहीं बन

पाई। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रवादी ताकतों ने राष्ट्र भावना प्रधान व्यापक जन शिक्षा व्यवस्था पर बल दिया।

निःसंदेह अंग्रेजी शिक्षा और व्यवस्था द्वारा बुद्धिवादी, व्यक्तिवाद, स्वतंत्रता और समानता के विचार लोगों में फैले, परन्तु आधुनिक शिक्षा समाज के निम्न स्तर के लोगों तक नहीं पहुँच पाई। दूसरी ओर, अंग्रेज शासकों ने लोगों को विभाजित और असंगठित रखने के उद्देश्य से जातिगत भेदभाव को प्रोत्साहित किया। विभिन्न जातियों, समुदायों, वर्गो और संगठनों के प्रति उन्होंने भेदभाव पूर्ण नीतियां अपनाई। कुछ जातियां जो परम्परात्मक व्यवस्था निम्न थीं, उनको उनसे उच्च जातियों से ऊपर प्रस्थितियां देने के आदेश दिये गये।

अंग्रेज सरकार ने न केवल जाति प्रथा को हिन्दुओं के लिये एक अच्छी और लाभदायक व्यवस्था करार दिया, बल्कि जनगणना के रिकार्ड में प्रत्येक जाति के बारे में विस्तृत सूचना संकलित की। उनका एकमात्र उद्देश्य अंग्रेजों के विरुद्ध राष्ट्रीय चेतना के प्रादुर्भाव को रोकना था। लेकिन राष्ट्रीय आन्दोलन स्थानीय, जातीय, धार्मिक और क्षेत्रीय विचारों को कमजोर बनाने में सक्षम हुआ। राष्ट्रीय आन्दोलन और अन्य संगठनों के नेताओं ने निरपेक्ष मूल्यों का प्रक्षेपण कर जाति और साम्प्रदायिक विचारों को तिरस्कृत किया।

ब्रिटिश राज की जाति व्यवस्था के प्रति सहानुभूतिपूर्ण नीति और मनोवृत्ति के परिणामस्वरुप जाति गतिशीलता आन्दोलनों को प्रोत्साहन मिला। इन आन्दोलनों से जाति व्यवस्था दृढ़ हुई न कि कमजोर। ऊपरी तौर पर संस्कृतिकरण की प्रक्रिया (जिसके अन्तर्गत निम्न जाति के सदस्य उच्च जाति के लोगों की जीवन-शैलियों का अनुकरण करते हैं), से उच्च जाति की प्रस्थिति पर प्रहार होता दिखाई देता है, परन्तु वास्तव में परिवर्तन की ऐसी प्रक्रिया से वर्तमान जाति व्यवस्था में अधिक विरोध एवं विभाजन उत्पन्न होते हैं। दरअसल निम्न जाति के लोग अपने परम्परात्मक व्यवसायों और जीवन प्रणालियों को छोड़ते हैं ताकि वे उच्च जातियों के व्यवसायों और जीवन प्रणालियों का अपना सकें। परन्तु वे प्राय: जीवनयापन के वैकल्पिक साधनों को प्राप्त करने में सफल नहीं होते हैं। वे सिर्फ उच्च जातियों के कुछ सांस्कृतिक विशेषकों का अनुकरण कर पाते हैं और उच्च जातियाँ निम्न जातियों द्वारा अनुकरण किये गये विशेषकों को महत्व देना बन्द कर देती हैं। इस प्रकार, जाति गतिशीलता की ऐसी प्रक्रिया का फल समस्तर परिवर्तन है, अर्थात् व्यवस्था का परिवर्तन होता है।

महात्मा गांधी ने जाति प्रथा के विरुद्ध संघर्ष किया, क्योंकि इसके अन्तर्गत अछूत जातियों को अपमानित व अवमानित होना पड़ता था। गांधीजी ने पूर्व अछूत जाति समूहों को हरिजन (ईश्वर की सन्तान) का नाम दिया। 1932 में हरिजनों के उत्थान के लिये अखिल भारतीय हरिजन संघ की स्थापना की गई। अस्पृश्यता के विरुद्धसंघर्ष उनका सबसे बड़ा उद्देश्य था। हरिजनों को राष्ट्रीय आन्दोलन की अग्रिम पंक्ति में रखकर गांधीजी ने उनका उत्थान करने का भरसक प्रयत्न किया।

हरिजनों के उत्थान के प्रयास में बी.आर. अम्बेडकर जो स्वयं एक हरिजन थे, गांधीजी के साथ शामिल हो गए। अम्बेडकर ने हरिजनों पर थोपे गए जातिगत जुल्म और अयोग्यताओं के विरुद्ध लड़ाई की। उन्होंने मांग की कि हरिजनों को मंदिरों और अन्य धार्मिक एवं सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश मिलना चाहिए।

3.5 भारत में जनजातीय जीवन

भारत की सामाजिक रचना के तीन प्रमुख अंग हैं - जनजातीय आवास, ग्राम और कस्बे व शहर। जनजाति और गाँव, और कस्बे के बीच सुस्पष्ट अन्तर आसानी से नहीं किया जा सकता क्योंकि इन सबमें कुछ न कुछ समान लक्षण पाए जाते हैं।

जनजातीयता की पहचान

भारत के संविधान की धारा 46 में लिखा गया है कि राज्य जनता के कमजोर तबकों विशेषकर अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को विशेष सुविधा देगा और उनकी प्रत्येक प्रकार के सामाजिक अन्याय और शोषण से रक्षा करेगा। फिर भी ऐसी जनजातियां हैं जो अनुसूचित नहीं हैं लेकिन भारत की जनसंख्या में कमजोर मानी जाती हैं। जनजातियां शिक्षा और आर्थिक क्षेत्रों में विशेष रुप से दुर्बल हैं। भारतीय समाज के प्रभु वर्ग मुख्यत: हिन्दू जमींदारों और साहूकारों ने उनका शोषण किया है। उद्योगपतियों ने आदिवासी क्षेत्रों में कारखाने स्थापित करने के लिये उनकी जमीन खरीद लीं। अनेक आदिवासियों ने शोषण से मुक्ति पाने और अपनी प्रस्थिति तथा सम्मान को ऊँचा उठाने के लिये अपनी जनजातीय पहचान समाप्त कर दी एवं हिन्दू ईसाई या इस्लाम धर्म अपना लिया।

आदिवासियों में अपनी पृथकता का बहुत आभास है और वे अपने आपको गैर-आदिवासी जातियों, मुसलमानों और ईसाईयों से अलग मानते हैं। भाषा उनकी पहचान का एक बहुत बड़ा आधार है। अन्य लक्षणों के अलावा बोलचाल की भाषा की आधार पर मुण्डा, संथाल और हो जनजातियों की विशिष्ट पहचान की जाती है। बहुत सी जनजातियां ऐसे पहाड़ी और जंगली क्षेत्रों में रहती हैं जहाँ जनसंख्या छितरी हुई है और संचार कठिन है। आदिवासी पूरे उपमहाद्वीप में फैले हैं, परन्तु पश्चिम बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र में इनका मुख्य आधार है।

जनजातीय सामाजिक संरचना

मैंडेलबॉम ने भारतीय जनजातियों की निम्न विशेषताऐं बतलाई हैं (1) बंधुता सामाजिक बंधनों का एक साधन (2) व्यक्तियों और समूहों के बीच सोपान का अभाव, (3) दृढ़ और जटिल औपचारिक संगठनों का अभाव, (4) भूमिधारिता का सामुदायिक आधार, (5) खण्डीय स्वरुप, (6) अतिरिक्त पूँजी के संग्रह और उपयोग, और बाजार आधारित व्यापार का कम महत्व, (7) धर्म के स्वरुप और सार में विभेद का अभाव, और (8) जीवन आनन्द प्राप्त करने की विशिष्ट मनोदशा।

इन विशेषताओं के आधार पर जनजातियों को अन्य सामाजिक श्रेणियों से अलग किया गया है। 1930 के दशक में ब्रिटिश प्रशासन ने जनजातियों की विस्तृत जनगणना की। जनजातियों को उनके धार्मिक और परिस्थितियोंके आधारों पर जातियों से विभेदित किया गया है।

जनजाति और जाति

मैंडेलबॉम के अनुसार जनजाति धीरे-धीरे जाति की ओर बढ़ रही है। मैंडेलबॉम के कथानुसार "सबजनजातियों और तमाम जातियों के लोगों के बीच कोई निर्बाध सांस्कृतिक या सामाजिक अन्तर नहीं है परन्तु जनजातीय और जातीय लक्षणों के बीच अन्तर की एक श्रृंखला है।"

जनजातियों में परिवर्तन की प्रक्रिया

नृजातीय और सांस्कृतिक एकात्मकता को बनाए रखने और डिक्कुओं (बाहरी लोगों) द्वारा शोषण के विरुद्ध स्वयं को हिन्दू समूहों के रुप में बचाने के लिये नीतियाँ सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से जागरूक हो रही हैं। वे अपनी राजनैतिक एकता पर बल दे रही हैं। इसके कारण जनजातियों

में एक नए प्रकार का पारिस्थितिक-सांस्कृतिक विलगन आ सकता है। इस प्रकार का कदम जनजातियों ने अपने आर्थिक पिछड़ेपन और विफलीकरण की भावना के कारण उठाया है।

जनजातीय समाजों का आकार लघु है। विभिन्न जनजातियों के समूहों के बीच कोई खास सामाजिक अन्तक्रिया नहीं पाई जाती है। परन्तु जनजाति के सदस्यों के बीच एकता का अभाव भी नहीं रहा है। जनजातीय संस्कृति आंशिक रुप में कृषक संस्कृति है, आशिक रुप में यह अनन्य हे और कुछ अंश तक इसमें नगरीय संस्कृति के हैं। गैर-जनजातीय लोगों की तरह जनजातियों में भी धन, शक्ति और साधनों तथा अवसरों तक पहुँच के आधार पर विभेद पाए जाते हैं।

3.6 भारत में ग्रामीण एव नगरीय समुदाय

ग्राम और नगर की कुछ समान विशेषताएँ हैं। दोनों ही एक-दूसरे पर आश्रित हैं, विशेषकर अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में। गाँव से लोग नगरों में प्रवसन करते हैं और नगरीय लोग उनके शारीरिक श्रम और खाद्यान्न, दूध तथा कच्चे माल आदि के उत्पादन पर निर्भर हैं।

भारत मूलत: गाँवों का देश है क्योंकि इसमें 6 लाख से अधिक गाँव हैं। भारत के सामाजिक जीवन की तीन निर्णायक संस्थाएँ - गाँव, जाति और संयुक्त परिवार हैं। इन्होंने न केवल विदेशी आक्रमण और आन्तरिक विरोधाभासों से उत्पन्न आघातों को ही झेला है बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों की ताकतों को आत्मसात किया है।

गाँव एक सामाजिक इकाई के रुप में

फ्रांसीसी समाजशास्त्री लुई ड्यूमों ने ग्रामीण समुदाय शब्द के तीन अर्थ बतलाए हैं (1) एक राजनैतिक समाज के रुप में, (2) भूमि के सह-स्वामियों की एक इकाई के रुप में, और (3) परम्परात्मक अर्थव्यवस्था और राजनैतिक व्यवस्था के प्रतीक (भारतीय देशभक्ति का आदर्श वाक्य) के रुप में। इस मत के अनुसार भारत में ग्रामीण समुदाय राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था का अंग रहा है। एक गाँव मात्र एक स्थान, घरों, गलियों और खेतों का पुँज ही नहीं है।

स्वयं अंग्रेजों ने भू-धारण की जमींदारों और रैयतवाड़ी व्यवस्थाओं को लाग कर सामाजिक विभेदीकरण का एक नया प्रतिमान स्थापित किया। जमींदार प्राय: उच्च जाति से सम्बद्ध थे। उन्हें ब्रिटिश सरकार के लिये लगान वसूल करने का कार्य सौंपा गया। इस कार्य के लिये उन्हें कमीशन दिया जाता था। उनकी सामाजिक प्रस्थिति असमान थी क्योंकि उन्हें इस कार्य के लिये सौंपी गई जमीदारियाँ समान नहीं थी। रैयत भूमिधारी कृषक थे जिनको एक निश्चित राशि के भुगतान के बाद जमीन पर दखल अधिग्रहण का अधिकार मिलता था।

स्वतंत्रता के बाद भारतीय गाँव में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। जाति व्यवस्था जजमानी पर आधारित और आर्थिक संबंधों तक ही सीमित नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि शहरों के साथ सम्पर्क में वृद्धि और कृषि के क्षेत्र में तकनीकी उपायों के आगमन के कारण जजमानी प्रथा कमजोर पड़ गई है। पारम्परिक व्यवस्था बाजार अर्थव्यवस्था के कारण हिल चुकी है। परन्तु जन्म, विवाह, मृत्यु और अन्य सामाजिक अवसरों पर सामाजिक - सांस्कृतिक समूहीकरण का मुख्य स्त्रोत आज भी जाति ही है।

जाति निरंतरताओं के प्रतिमानों के उपरान्त भी अन्तर्जातीय संबंध अब खण्डित हो चुके हैं, अर्थात् अन्तर्जातीय अन्तर्निर्भरता घट गई है, तनाव बढ़ गए हैं और गाँव के साधनों में अधिकतम हिस्सा प्राप्त करने के लिये विभिन्न जातियों में प्रतियोगिता बढ़ चुकी है। जातियां एक प्रकार से स्वार्थ समूह बन गई हैं।

भारत मे नगरीय जीवन

नगर के बारे में कम से कम दो प्रवृत्तियों स्पष्ट हैं : (1) जीविका के लिये कृषि पर निर्भरता धीरे-धीरे कम हो गई हैं, और (2) गत कुछ वर्षा में कस्बों और शहरों की जनसंख्या बढ़ गई है। इन दोनों ही प्रवृत्तियों से औद्योगीकरण और नगरीकरण की प्रक्रियाओं में वृद्धि हुई है। शहरों में नौकरियां और बेहतर सुविधाएँ उपलब्ध हैं जबकि गाँवों में जीवनयापन कठिन है। नगरीकरण के कारण गाँवों में धर्म, जाति और परिवार के बंधन कमजोर पड़ चुके हैं।

कस्बों और शहरों की संरचना

एक लाख या अधिक जनसंख्या वाले स्थान को एक शहर के नाम से परिभाषित किया गया है। पाँच हजार या अधिक जनसंख्या वाले स्थानों को कस्बों का नाम दिया गया है। 1901 से अब तक ग्रामीण जनसंख्या और शहरी जनसंख्या के अनुपात में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है। इसमें धीमी गति से परिवर्तन हो रहा है। आज शहरों में भीड़ पाई जाती है। शहरों में जितने लोगों के लिये सुविधाएँ उपलब्ध हैं, उनसे कहीं अधिक लोग रहते हैं।

जाति, संयुक्त परिवार और जन-संस्कृति भारत के कस्बों और शहरों में विद्यमान हैं, नगरीकरण पश्चिमीकरण के साथ जुड़ा हुआ नहीं है। पूर्व-पश्चिमीकरण काल में भी भारत के विभिन्न भागों में अनेक शहर थे जहाँ पर लोग गाँवों में जाते थे। जीवन के लोकाचार, सांस्कृतिक प्रतिमानों, सामाजिक-सांस्कृतिक समूहकरण और जीविका यापन के तरीकों के सन्दर्भ में गाँव और शहर के बीच अन्तर स्पष्ट रुप से दिखाई देता है। परन्तु जाति, बंधुता, विवाह के नियम और धार्मिक व्यवहारों के अनुपालन आदि के सम्बन्ध में गाँवों और शहरों में संरचनात्मक समानताएँ पाई जाती हैं। गाँवों और शहरों के बीच अन्य संस्थागत कड़ियां प्रवसन, शैक्षिक संस्थाएँ रोजगार के अवसर और प्रशासन हैं।

गाँवों और शहरों को सिर्फ द्विभाजीय इकाईयां नहीं माना जा सकता। ये दोनों अन्तर्सम्बन्धित हैं और एक-दूसरे से अलग भी हैं। यह सत्य है कि नगरीकरण स्वयं में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी में प्रगति और अन्य कारणों का परिणाम है। जब एक बार नगरीकरण एक तथ्य के रुप में गठित होता है तो औपचारिक संगठन, संस्थाएँ, यातायात और संचार के साधन, नदी बस्तियां, भीड़-भाड़ और अपराध आदि कई परिस्थितियां और समस्याएँ उभर आती हैं। वास्तव में, प्रारम्भ में नगरीकरण एक आश्रित चर है, परन्तु तदुपरान्त नगरीकरण एक निर्णयात्मक कारक बन गया है। नगरीकरण की प्रक्रिया में एक प्रकार का वृत्ताकार कार्योत्पादन पाया जाता है।

नगरीय सामाजिक संरचना और स्तरीकरण

नगरीय सामाजिक संरचना और स्तरीकरण को समझने के लिये अनेक कसौटियों का उपयोग किया गया है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण मापदण्ड बंद या खुलेपन की सीमा, वंचनाओं तथा पारितोषिकों की प्रकृति है। ये मापदण्ड विशिष्ट समूहों और समुदायों पर लागू होते हैं क्योंकि उनमें से कुछ को अपनी सामाजिक स्थिति में सुधार करने के अवसर प्राप्त होते है जबकि अन्य इनसे वंचित रहते हैं। उद्देश्यों की प्राप्ति करने में अभिप्रेरणात्मक संरचना, उपलब्ध अवसरों और संचार के साधनों के उपयोग में आधार व्यक्ति है। अत: सैद्धान्तिक दृष्टि से नगरीय सामाजिक संरचना को खुलेपन, गुणात्मक आधारों (व्यवसाय, शिक्षा, आय इत्यादि), गतिशीलता और व्यक्तिगत श्रेणीकरण की विशेषताओं द्वारा चित्रित किया जा सकता है।

हम यह कह सकते हैं कि नगरीकरण का अभिप्राय ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर लोगोंके प्रवसन से है। 20वीं सदी में नगरीकरण की दर पहले की अपेक्षा काफी तेज रही है।

3.7 भारतीय समाज : विवाह, परिवार एव बन्धुत्व

बंधुता, परिवार और विवाह रुपी संस्थाओं के बिना कोई भी समाज जीवित नहीं रह सकता। इन संस्थाओं पर आधारित विभिन्न प्रवृत्तियों के होते हुए भी कुछ सार्वभौमिक तत्व इस तथ्य से प्रकट होते हैं कि कोई भी समाज 'बंधुविहीन' और कोई भी व्यक्ति 'बंधुविहीन' नहीं है। परिवार के रुप में पति-पत्नी, बच्चे और अन्य रक्त सम्बन्धी एक साथ रहते हैं। मानकीय और संरचनात्मक दोनों ही दृष्टिकोणों से बंधुता, विवाह और परिवार सभी समाजों में सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विकास की असमानताओं के रहते हुए भी केन्द्र बिन्दु बनी हुई है मानकीय दृष्टि से बंधुता एवं विवाह का सम्बन्ध सोपान, परिहार और सम्पत्ति के हस्तान्तरण से है। संरचनात्मक दृष्टि से परिवार, बंधु-समूह, गोत्र जातियों आदि की प्रकृति और प्रकार को संगठनों तथा समूहों के रुप में उनके अन्तर्सम्बन्धों और अन्तरर्निभरता के संदर्भ में समझा जा सकता है। इस प्रकार बंधुता, विवाह और परिवार के अध्ययन में सामाजिक तथा सांस्कृतिक मुद्दों के अतिरिक्त अधिकारों, दावों, उत्तरदायित्वों, संविध पितृबंधुता और सहयोग आदि का भी अध्ययन किया जाता है।

जॉन बेती ने बंधुता की उपयुक्त व्याख्या प्रस्तुत की है। बेती के अनुसार सामाजिक सम्बन्धों को पहचानने और व्यवस्थित करने के साधन के रुप में जैविक सम्बन्ध की आधारभूत कोटियां हर समाज में पाई जाती हैं। नातेदारी लोगों के बीच विभेद करने की श्रेणियां प्रदान करती हैं। इसलिये नातेदारी श्रेणियां सामाजिक अधिक और वैधानिक या आर्थिक कम हैं। नातेदारी श्रेणियों का उपयोग सामाजिक सम्बन्धों, सामाजिक व्यवहार के विशिष्ट प्रकारों और खास प्रकार की अपेक्षाओं, आस्थाओं व मूल्यों को परिभाषित करने में किया जाता है। ये सम्बन्ध सत्ता और अधीनता, आर्थिक आदान-प्रदान, घरेलू सहयोग, सांस्कारिक या समारोह से जुड़े हुए हो सकते हैं और इनकी क्रियान्विति अनेक विभिन्न तरीकों में की जा सकती है। इस तरह बंधुता का अभिप्राय: उन तरीकों और साधनों से है जिनके द्वारा सामाजिक व्यवस्था को एक स्वरुप प्रदान किया जाता है। परन्तु बंधुता उत्तराधिकार, सम्पत्ति के हस्तान्तरण, द्विभाजन और विभाजन का भी एक सिद्धान्त है।

3.8 जाति व्यवस्था और समाज

हिन्दू समाज में जाति सम्बन्धों की एक केन्द्रीय व्यवस्था रही है। जाति की उत्पत्ति, प्रकृति और भूमिका के बारे में बहुत से काल्पनिक अनुमान, विवाद और व्याख्याएँ दी गई हैं। जाति को एक सर्व-घेरेदार व्यवस्था कहा गया है। यह एक ऐसी विचारधारा है जो अन्य सभी सम्बन्धों को निर्धारित करती रही है। जाति का केन्द्रीय आधार पद सोपान है जो कि अपवित्रता और पवित्रता के विचारों से सम्बन्धित है।

प्राचीन युग में जाति प्रथा

जाति एक अन्त: वैवाहिक समूह है, अर्थात् इसके सदस्य अपनी ही जाति के सदस्यों में विवाह करते हैं। एक जाति में जन्मा मनुष्य जीवन पर्यन्त उसी में रहता है। हर जाति के सदस्यों का व्यवसाय वंश परम्परा के आधार पर अलग-अलग होता रहा है। जातियों के पद सोपान में एक जाति का एक निश्चित स्थान होता है जिसके ऊपर और नीचे अन्य जातियां होती हैं। सोपान के शिखर पर ब्राह्मण होते हैं और अधोभाग पर "अछूत जातियां"होती हैं। जातियों में खान-पान और सामाजिक अन्तःक्रिया के कुछ विशेष नियम होते हैं जिनका पालन सभी जातियों को करना पड़ता है। इन नियमों को लागू

करके जाति पंचायतें अपने सदस्यों के व्यवहार कोनियमित करती रही हैं। जाति एक गतिशील संस्था है, वृहद् समाज में हुए परिवर्तनों के अनुरुप इसमें भी परिवर्तन आया है।

जाति कभी भी एक स्थिर व्यवस्था नहीं रही। हजारों जातियों - उपजातियों और उनसे कहीं अधिक गोत्रों - उपगोत्रों का होना ही विविधता, विभेदीकरण और जाति व्यवस्था में परिवर्तन का प्रमाण है। अन्तर्जातीय या मिश्रित विवाह, प्रवास व्यवसायों में परिवर्तन, बौद्ध आन्दोलन, इस्लाम का प्रभाव, ब्रिटिश प्रभाव और अन्य कई कारणों से जाति न केवल अनुकूलनकारी बल्कि सामाजिक सम्बन्धों की एक जीवन व्यवस्था बन गई है।

लुई ड्यूमो जाति प्रथा पर आधारित असमानता को एक विशेष प्रकार की असमानता मानते हैं। लोगों के वास्तविक और अवलोकनीय व्यवहार को जानने के लिये "विचार और मूल्य" आधारीय हैं। ड्यूमो के अनुसार, जाति सोपान के लिये पवित्र और अपवित्र का विचार प्रमुख है। सोपान एक "सार्वभौमिक आवश्यकता" है। ड्यूमो का मत है कि भारतीय समाज स्थिर रहा है। समाज के अन्दर परिवर्तन हुआ है, परन्तु समाज का परिवर्तन अनुपस्थित रहा है। एक विशिष्ट ग्रामीण या नगरीय संदर्भ में जाति को एक आनुभाविक वास्तविकता के रुप में ढूंढा जा सकता है। इन संदर्भों में जाति एक विशेष प्रस्थिति समूह के रुप में दिखाई देती है। परन्तु वृहद् स्तर पर जाति एकात्मकता का एक साधन है। वृहद् स्तर पर जाति अनौपचारिक और दैनिक सम्बन्धों की एक प्रकार्यकारी वास्तविकता नहीं है।

जाति, वर्ग और शक्ति के बीच विसंगतियां जाति व्यवस्था में सामाजिक गतिशीलता की सूचक हैं। जाति की सामूहिक प्रकृति कमजोर पड़ गई है। प्रभु जातियों को सत्ता प्राधान्य भी प्राप्त नहीं है। संस्कृतिकरण एक प्रक्रिया के रुप में उच्च जातियों के प्रभुत्व को प्रभावित करती है और इसके द्वारा निम्न जातियों में अपने अधिकारों के बारे में जागरूकता उत्पन्न होती है। यह देखा गया है कि जातियों प्रभुत्व प्रधान नहीं होती हैं, केवल परिवारों और व्यक्तियों के पास ही प्रभुत्व और शक्ति होती है। सामूहिक गतिशीलता अर्थात् संस्कृतिकरण आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्रों में प्राय: सम्भाव्य नहीं है। अत: जाति व्यवस्था में गतिशीलता तीन स्तरों पर पाई जाती है: (1) वैयक्तिक, (2) पारिवारीय और (3) सामूहिक। ये तीन स्तर अन्तर्सम्बन्धित हैं, परन्तु विश्लेषणात्मक दृष्टि से एक-दूसरे से विलग हैं।

जातियां हित-समूहों के जैसे कार्य करती हैं क्योंकि ये वितरण सम्बन्धी न्याय या समानता के नए प्रतिमान स्थापित करना चाहती हैं जाति पर आधारित संगठन, जाति पंचायतों और जाति द्वारा प्रबंधित पत्रिकाओं द्वारा जाति-विचारधारा का दृढ़ीकरण हुआ है। आज के राजनैतिक परिवेश में संसद, विधान सभा, जिला परिषद, पंचायत समिति एवं ग्राम पंचायतों में जाति प्रकोष्ठ एक वास्तविकता बन चुकी है।

3.9 भारत में अनुसूचित जातियाँ

अनुसूचित जातियों की स्थिति की जड़ "जाति समाज" की सामाजिक संरचना, अर्थात् हिन्दू समाज के जाति समूहों में विभाजन में निहित है। जाति सोपान के शिखर पर ब्राह्मण हैं। "अछूत" इसके अधोतल पर हैं। इन दोनों के बीच में अनेक जातियां हैं। जन्म पर आधारित आनुष्ठानिक अपवित्रता-पवित्रता उच्च और निम्न जातियों श्रेणियों के आधार माने जाते हैं। अपवित्रता-पवित्रता का मूल्य सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं जैसे भोजन, वस्त्र, धातु और व्यवसाय आदि में है। अत: न केवल व्यक्ति और जातियां ही पवित्र और अपवित्र या कम पवित्र या अधिक अपवित्र हैं बल्कि हिन्दू समाज में प्रत्येक वस्तु पवित्रता-अपवित्रता के मूल्य की दृष्टि से देखी जाती है। सोना शुद्ध है और चाँदी कम शुद्ध है और रेशम शुद्ध है और रुई अशुद्ध है। ऐसी धारणाएँ आज भी हिन्दुओं में विद्यमान हैं।

धर्म-कर्म की धारणाएँ जाति प्रदत्त भूमिकाओं और कर्त्तव्यों से जुड़ी हुई हैं उदाहरण के लिये एक चमार का धर्म है कि वह जाति सोपान के अधोतल पर रहते हुए अपना परम्परात्मक व्यवसाय करे और अन्य जातियों के साथ सम्बन्धों को ध्यान में रखते हुए अपनी जाति के मानकों का अनुसरण करे। यह नियम जाति समूहों पर लाग होता है, परन्तु जो जातियां जाति श्रेणी के उच्च स्तरों पर हैं, निश्चय ही उनका दमन और शोषण कम होता है।

अनुसूचित जातियों की सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ

"अछूतों"ने, जो आज "अनुसूचित जातियों"के नाम से जाने जाते हैं, अपनी स्थिति को ऊँचा उठाने के लिये ब्राह्मण विरोधी और द्विजविरोधी अनेक आन्दोलन शुरु किये। उन्होंने कई सुधारवादी और प्रस्थिति की बराबरी के लिये आन्दोलन चलाए जिनका उद्देश्य उच्च जातियों की जीवन प्रणालियों का अनुकरण करना और अपने परम्परागत आचरणों तथा दूषित व्यवसायों को तिरस्कृत करने का था। अमानवीय और शोषण की परिस्थितियों ने, जिनमें ये अनुसूचित जातियां सदियों तक रहने का मजबूर की गई थीं, उन्हें हिन्दू समाज में अपनी दयनीय स्थिति के बारे में जागरूक बनाया। इन आत्म अनुभूति के अतिरिक्त कुछ बाह्य कारकों ने भी जाति व्यवस्था की कठोरताओं को ढीला करने में अपना योगदान दिया।

भारत के संविधान में "अछूत"जातियों को "अनुसूचित जातियों" के रुप में सूचीबद्ध किया गया है। इसका उद्देश्य उनको भेदभाव, शोषण और अपकर्ष से सुरक्षा प्रदान करना तथा उनके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक उत्थान के लिये प्रावधान करना है। सरकार ने स्वतंत्र भारत में नौकरियों, पदों, शैक्षणिक सुविधाओं में आरक्षण, राज्य की विधानसभाओं और लोक सभा के लिये आरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों तथा स्थानीय संस्थाओं में मनोनयन की नीति अपनाई।

ब्रिटिश शासन ने साम्प्रदायिक पंचाट द्वारा "अछूतों"को राजनैतिक प्रतिनिधित्व देना स्वीकार किया। महात्मा गांधी ने इस (पंचाट) को स्वीकार नहीं किया क्योंकि मुसलमान इस तरह की मांग पहले ही कर चुके थे, और इसके कारण पृथकतावाद अधिक विकसित तथा सामाजिक सम्बन्धों का सम्प्रदायीकरण और अधिक हो जाता।

हिन्दू जातियों के साथ समानता अर्जित करने के उद्देश्य से सामाजिक भेदभाव और अस्पृश्यता के विरुद्ध संविधान में प्रावधान किये गये हैं। परन्तु जो निम्न प्रस्थिति प्रदान की गई है, उसको इतनी आसानी से संवैधानिक प्रावधानों द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं और परम्परागत मूल्यों के आधुनिकीकरण द्वारा ही परिवर्तन लाया जा सकता है। भारत के संविधान में आर्थिक, राजनैतिक और शैक्षणिक क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों के उत्थान के लिये प्रावधान किये गये हैं। इन प्रावधानों का ठोस प्रभाव पड़ा है और इससे अनुसूचित जातियों में एक स्तर तक चेतना उत्पन्न हुई है।

तथ्य यह भी है कि अनुसूचित जातियां हिन्दू जातियों से धर्मनिरपेक्ष या सांसारिक मामलों में आज भी निम्न हैं। इस प्रकार अनुसूचित जातियों के मत विभिन्नराजनैतिक समूहों और दलों द्वारा नियन्त्रित किये गये हैं। अनुसूचित जातियों के नेता अपनी ही जातियों के साथ पहचाने जाने से कतराते हैं। वास्तव में वे उच्च जातियों के नेतृत्व की संगत में रहना पसन्द करते हैं।

लगभग 90 प्रतिशत अनुसूचित जातियां गाँवों में रहती हैं, और वे प्रभु जातियों तथा भूस्वामियों के प्रभुत्व में कार्य करने के कारण आज भी कष्ट पाती है। आर्थिक दृष्टि से वे उच्च जाति और वर्ग समूहों पर निर्भर हैं। संवैधानिक प्रावधानों का गरीब हरिजनों को बहुत कम लाभ मिला है क्योंकि वे आज भी गरीब हैं, अत: शोषण के शिकार बने हुए हैं।

हरिजनों की दयनीय अवस्थाओं के बावजूद उनमें सामाजिक गतिशीलता के दो प्रतिमान दिखाई देते हैं: (1) अनुसूचित जातियों के कुछ चुनिन्दा भागों में कल्याण कार्यक्रमों द्वारा एक स्तर तक गतिशीलता आई है, और (2) उच्च जाति विरोधी मनोभाव के साथ-साथ अनुसूचित जातियों में अपनी प्रस्थिति के बारे में एक स्तर तक चेतना उत्पन्न हुई है। प्रथम प्रतिमान का एक गम्भीर परिणाम यह है कि विभिन्न अनुसूचित जातियों और एक ही अनुसूचित जाति के सदस्यों के बीच आर्थिक और सामाजिक असमानता का जन्म हुआ है। विभिन्न अनुसूचित जातियों और व्यक्तियों को संवैधानिक प्रावधानों तथा अन्य परिवर्तनों के लाभ समान रुप से नहीं मिल पाए हैं। द्वितीय प्रतिमान के परिणामस्वरुप "जाति युद्ध" या एक जाति का दूसरी जाति के प्रति शत्रुभाव बढ़ गया है।

सभी अनुसूचित जातियां समान रुप से जमींदारों, धनी कृषकों और उच्च जातियों के शोषण का शिकार नहीं रही हैं। यह कहना कि भूस्वामियों और हरिजनों के बीच संघर्ष "वर्ग युद्ध' ' को इंगित करता है, या यह कहना कि ब्राह्मणों और चमारों के बीच संघर्ष ' 'जाति युद्ध' ' का संकेत देता है- दोनों ही कथन इन दो परिस्थितियों के सही चित्रण नहीं हैं। प्रथम घटना में भूस्वामी निश्चय ही एक उच्च या उच्च मध्यम जातीय भूस्वामी है, दूसरी घटना में ब्राह्मण उतना निर्धन नहीं है जितना कि एक चमार है। वह अवश्य ही आर्थिक दृष्टि से एक चमार से बेहतर है। अत, कोई भी ऐसी परिस्थिति न शुद्ध रुप से जाति युद्ध है और न ही वर्ग युद्ध। दोनों परिस्थितियों मिश्रित हैं फिर भी वर्ग संघर्ष का झुकाव आर्थिक विचारों पर है और जाति संघर्ष जाति प्रभुत्व की अभिव्यक्ति है।

अनुसूचित जातियों के अपने अभिजात हैं। ये लोग शिक्षित हैं, आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं, और संसद, राज्य विधानसभाओं, जिला परिषदों तथा पंचायत समितियों के निर्वाचित सदस्य हैं। यह बात महसूस की जाती है कि अनुसूचित जातियों में असमानता आवश्यक रुप में विद्यमान है, और यह ' 'असमानता"उनके कल्याण के लिये क्रियान्वित की गई नीतियों और कार्यक्रमों के दोषपूर्ण लाग करने से पैदा हुई है। असमानता के बारे में चेतना का प्रभाव अनुसूचित जातियों पर समतावादी सोच के रुप में पड़ा है, फिर भी प्रभावकारी वितरित न्याय और निर्णय के द्वारा अधिक परिवर्तन आ सकते हैं।

यह देखा गया है कि साक्षरता, शिक्षा और रोजगार अनुसूचित जातियों में सामाजिक गतिशीलता के बहुत महत्त्वपूर्ण सूचक हैं। हिंसा की दुर्घटनाएँ इसी सामाजिक गतिशीलता के साथ समीप से जुड़ी हुई हैं। वे अनुसूचित जातियां जो गतिशीलता के मार्ग से ऊपर पहुँच चुकी हैं अपने शोषण और दमन के विरोध में बहुत तीखी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करती हैं। इसलिये वे उच्च जातियों के प्रकोप के निशाने बनती हैं। उच्च जातियों में अनुसूचित जातियों के विरुद्ध पूर्वाग्रह के अलावा यह भी तथ्य है कि अब प्रतिस्पर्द्धा सम्पन्न अनुसूचित जातियों और इन हिन्दू जातियों के बीच है जो आकर्षक नौकरियां, शक्ति के पद और उच्च स्थिति चाहते हैं। इस प्रकार से जाति उपद्रवों की ओट में यह एक "वर्ग युद्ध" है।

3.10 भारतीय समाज और अनुसूचित जनजातियाँ

भारत की जनजातियां अपने सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विकास के संदर्भ में विभिन्न अवस्थाओं में हैं कुछ जनजातियां हिन्दूकरण या ईसाई धर्म स्वीकार कर या किसी अन्य राह द्वारा परिवर्तित हुई हैं। कुछ जनजातियां संक्रमण अवस्था में हैं, और कुछ बहुत हद तक अपनी परम्परात्मक जीवन प्रणाली को अपनाए हुए हैं। परिवर्तन के ये परिवेश बताते हैं कि भारत की जनजातियों में विकास की प्रक्रिया असमान रही है। जनजातियों के बदलाव की नीतियां और कार्यक्रम ऐसे रहे हैं कि इनसे केवल इनकी छोटी संख्या ही लाभान्वित हुई है। जनजातियों के एक बड़े भाग का ' 'हिन्दूकरण"हुआ

है जिसका हिन्दुओं के साथ धर्म, भाषा और व्यवसाय के संदर्भ में सम्बन्ध है। ये हिन्दूकृत जनजातीय लोग अपने आपको "हिन्दू"समझते हैं।

जनजातीय सामाजिक आन्दोलन

जनजातियों में सामाजिक आन्दोलनों का उद्देश्य सामूहिक क्रिया द्वारा सामाजिक संरचना को उलटना, पुननिर्माण, पुनर्व्याख्या, पुनर्स्थापना और उसे सुरक्षा प्रदान करना है जिससे उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक अवस्थाओं में सुधार हो सके। हिन्दू धर्म, ईसाई धर्म, ब्रिटिश शासन, आधुनिक शिक्षा और स्वतंत्रोपरान्त विधेयकों द्वारा जनजातियों में एक स्तर तक चेतना उत्पन्न हुई जिसके कारण सामाजिक आन्दोलनों को प्रोत्साहन मिला। जनजातीय पहचान और राजनैतिक एकात्मता को प्रकट करने के लिये आन्दोलन हुए इन आन्दोलनों के लिये पारिस्थितिकीय सांस्कृतिक विसम्बन्धन, आर्थिक पिछड़ापन और नैराष्य की भावना आदि उत्तरदायी रहे। वे आदिवासी समूह जो हिन्दू समाज से अधिक विसम्बन्धित हैं, या वे आदिवासी समूह जो उसमें अत्यधिक एकीकृत हैं, उनमें ऐसे सामाजिक-सांस्कृतिक आन्दोलन आयोजित नहीं हुए उन्नति समाज नाम की संस्था 1912 में सामाजिक-सांस्कृतिक सुधारों के लिये स्थापित की गई थी। बाद में 1938 में बिहार में पुनर्जागरण के लिये आदिवासी महासभा की स्थापना की गई। 1950 में झारखण्ड़ आन्दोलन का प्रारम्भ बिहार और इसके पड़ोसी राज्यों, बंगाल, उड़ीसा और मध्यप्रदेश में भूमि विमुखता और शोषण के विरोध तथा राजनैतिक एकप्राणता के लिये आरम्भ किया गया।

आदिवासी भारत की मुख्य सांस्कृतिक धारा से प्रभावित हुए हैं संस्कृति परिवर्तन के कारण आदिवासियों में नए विभाजन बने हैं। बिहार में ताना भगत हिन्दूकृत आदिवासी हैं, जबकि अन्य आदिवासी आदिमता के संरक्षक बने रहने का दावा करते हैं। आदिम संस्कृति के संरक्षकों ने अपनी संस्कृति की विकृतियों को दुरुस्त करने के लिये मूल रुप निरुपण आन्दोलन चलाए।

राजस्थान में भील भगत और गैर-भगत अनुभागों में विभक्त है। भगत भील कबीरपंथी और शम्भू दल इन दो भागों में बंटे हुए हैं। गैर-भगत परम्परात्मक जीवन प्रणाली को बनाए रखने के समर्थक हैं। भगत भीलों ने शाकाहारीवाद और नशाबन्दी अपनाकर ब्राहमणवादी जीवन पद्धति का अनुसरण किया है। भगत अपने आपको गैर-भगत भीलों से श्रेष्ठ मानते हैं और कबीरपंथी स्वयं को शम्भू दल भीलों से श्रेष्ठतर समझते हैं। अस्पृश्यता, पवित्रता-अपवित्रता और अन्त:जातीय विवाह, गौत्र बहिर्विवाह और अनुलोम विवाह आदि की अवधारणाओं को भगत भीलों ने अपना लिया है।

3.11 भारतीय समाज के अन्य पिछड़े वर्ग

अनुसूचित जातियों और जनजातियों की तरह अन्य पिछड़ा वर्गो को आरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों द्वारा राजनैतिक प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है। "पिछड़े वर्गो" को किस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है? जाति सोपान में जाति श्रेणी और व्यवसाय के संदर्भ में पिछड़े वर्ग हरिजनों से उच्च हैं। जाति के संदर्भ में पिछड़े वर्ग मध्यम कृषक और ' 'व्यवसायी" (स्वच्छ) जातियाँ हैं।

आन्द्रे बेत्तई कृषक जातियों को पिछड़े वर्गो का मर्म (सार) मानते हैं पिछड़े वर्ग निश्चय ही उच्च जातियों से शिक्षा, व्यवसायों और सरकारी नौकरियों में पीछे रहे हैं एक मत यह है कि जो लोग "शूद्र वर्ण" के थे उन्हें पिछड़े वर्ग समझा जा सकता है। आनुष्ठानिक दृष्टि से भी पिछड़े वर्ग "द्विज" जातियों से नीचे रहे है। "पिछड़े वर्ग" शब्द का यह भी अभिप्राय है कि एक "अगाड़ी वर्ग" भी है। बिहार राज्य में आज लोगों को "पिछड़े" और "अगाड़ी' वर्गो गे विभक्त किया जाता है। "अगाड़ी" 'वर्ग" "पिछड़े वर्गो" की ओर निम्नता से देखते हैं।

पिछड़ापन समूहों का लक्षण माना जाता है न कि व्यक्तियों का। अन्य जातियों की तरह पिछड़े वर्गो की सदस्यता भी जन्म के आधार पर निर्धारित होती है। सिद्धान्त में पिछड़े वर्गो में शिक्षा और आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति भी शामिल हो सकते हैं। कारण यह है कि सरकार ने कुछ जातियों को "पिछड़ी"घोषित किया है। उन जातियों को कुछ लाभ और सुविधाएँ इस घोषणा के तहत अवश्य प्राप्त होंगी। इस प्रकार पिछड़ा वर्ग समूहों और व्यक्तियों का एक वृहद् और जटिल पुँज है।

काका कालेलकर आयोग

काका कालेलकर की अध्यक्षता में राष्ट्रपति ने 19 जनवरी, 1953 को एक पिछड़े वर्ग आयोग की नियुक्ति की थी। आयोग को निर्देश दिया गया था कि वह उन कसौटियों का निर्धारण करे, जिनको अपनाकर यह निर्णय लिया जा सके कि सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से कौन से लोग हैं जिनको पिछड़े वर्ग माना जा सके और ऐसे वर्गो की इन कसौटियों को ध्यान में रखकर एक सूची तैयार की जा सके।

पिछड़ेपन के निर्धारण और पिछड़े वर्गो के वर्गीकरण के लिये जाति को एकमात्र कसौटी और इकाई स्वीकार किया गया था। जाति उच्च, निम्न अथवा श्रेष्ठ और कमजोर स्थिति के वर्गीकरण का आधार थी। जाति सम्पूर्ण को ही पिछड़ा समझा गया था।

अगस्त 1990 में जनता दल सरकार ने सरकारी विभागों और सार्वजनिक प्रतिष्ठानों में अन्य पिछडी जातियों के लिये 27 प्रतिशत नौकरियों के आरक्षण की घोषणा की। इस निर्णय की घोषणा के बाद पूरे देश में विशेषत: उत्तर व पश्चिम भारत में इसके विरोध की लहर फैल गई। आत्मदाह, आत्महत्या और पुलिस कार्यवाही में अनेक मौतें हुई। सरकार के इस कदम की एक सामाजिक परिणति जाति-विभाजन के अधिक गहराने में दिखाई देती है।

जातियों के नेताओं ने जाति को पिछड़ेपन के निर्धारण का आधार स्वीकार करने पर बिल दिया। स्वतंत्रता पूर्व भारत में पिछड़े वर्गो के महत्त्वपूर्ण आन्दोलन थे: (1) बम्बई प्रदेश में ज्योति राव फुले का आन्दोलन और (2) मद्रास में ब्राह्मण विरोधी नाडार आन्दोलन।

ज्योति राव फुले ने 1873 में सत्यशोधक समाज की स्थापना की। समाज का नेतृत्व माली, तेली, कुनबी और सती आदि पिछड़े वर्गो के हाथ में था। फुले स्वयं माली थे। उनके आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य समाज सेवा और महिलाओं तथा निम्न जातियों के लोगों में शिक्षा का प्रसार करना था क्योंकि इस तरह के आन्दोलन से ब्राह्मणों की सर्वोच्च स्थिति को आँच पहुँची, हिन्दूवाद के विरुद्ध थे।

उच्च जातियों की तुलना में मध्यम जातियां आर्थिक और शैक्षणिक क्षेत्र में आज भी पिछड़ी हुई हैं। फिर भी इन जातियों ने आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्रों में तीव्र प्रगति की है। पिछड़े वर्गो में सामाजिक परिवर्तन असमान रहा है - विशेषकर विभिन्न राज्यों की पिछड़ी जातियों के बीच और एक जाति के सदस्यों के बीच। पिछड़ी जातियों को उच्च जातियों के बराबर लाने के लिये उनको शैक्षणिक संस्थाओं और नौकरियों में रियायतें और आरक्षण दिये गये हैं।

3.12 भारत में स्त्रियों की स्थिति और समता की खोज

भारत तथा अन्य देशों में पुरुष-प्रधान समाज ने स्त्रियों को एक आदर्श सरीखा मानकर उसके व्यवहार किया है, लेकिन पुरुषों और स्त्रियों के बीच सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विभेदों को सामान्य प्रतिमान नहीं है। भारत में यौन आधारित चेतना की उत्पत्ति मध्यम वर्गो के प्रादुर्भाव और उनकी समस्याओं से जुड़ी हुई है। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के 60 वर्ष गुजर जाने के बाद और अनेक महिला उत्थान के बहुत से आन्दोलन के बावजूद पुरुषतंत्र बहुत दृढ़ है। यौन नैतिकताओं का जाति और वर्ग समूहों पर प्रत्यक्ष रुप से प्रभाव है।

स्त्रियों की स्थिति : ऐतिहासिक दृष्टिकोण

ऋग्वैदिक सभ्यता में स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार थे। पुरुषों की तरह स्त्रियाँ शिक्षा ग्रहण करती थीं, ब्रह्मचर्य का पालन करती थीं, और उनके लिये उपनयन संस्कार भी प्रचलित था। स्त्रियाँ वेदों का अध्ययन करती थी और वैदिक भजनों की रचना भी करती थीं। स्त्रियों को ज्ञान के हर क्षेत्र में शिक्षा पाने का अधिकार प्राप्त था।

स्त्रियों की अच्छी स्थिति ऋग्वैदिक काल के अन्त में बिगड़ने लगी। पुत्री को एक अभिशाप माना जाने लगा। फिर भी स्त्रियों को सार्वजनिक जीवन में भाग लेने की स्वतंत्रता थी। शूद्रों की तरह स्त्रियों को भी उत्तराधिकार और सम्पत्ति के स्वामित्व के अधिकार से हटाया जाने लगा। स्त्रियों की कमाई भी पतियों और पुत्रों की सम्पत्ति मानी जाने लगी। फिर भी स्त्रियों के उपनयन संस्कार का अधिकार बना रहा, वे शिक्षा ग्रहण करती रही और अध्यापक के रुप में वे कार्य करती रही। यहाँ तक कि 7वीं सदी से 1206 तक ब्राह्मणों और क्षत्रियों में अन्तर्विवाह भी होते थे।

बौद्ध काल में, स्त्रियों को शिक्षा ग्रहण करने के अधिकार से वंचित नहीं किया गया था। वे सार्वजनिक जीवन में सक्रिय भाग लेती थीं, परन्तु उन्हें वेदों के अध्ययन का अधिकार प्राप्त नहीं था।

गुप्त काल में स्त्रियों की स्थिति में वास्तविक रुप से बिगाड़ आया। इसी युग में दहेज प्रमुख संस्था बनी। विधवाएँ पुन: विवाह नहीं कर सकती थीं। उनको अपना जीवन प्रायश्चित और सादगी में व्यतीत करना पड़ता था। परन्तु पर्दा प्रथा नहीं थी।

1206-1761 के काल में स्त्रियों की स्थिति में और अधिक बिगाड़ आया। इस काल में बालिका-हत्या, बाल-विवाह, पर्दा, जौहर, सती और दासता जैसी प्रमुख सामाजिक बुराइयों के कारण स्त्रियों की स्थिति और अधिक प्रभावित हुई। पुत्री जन्म को दुर्भाग्य समझा जाता था। स्त्रियों को स्वतंत्रता देना सर्वनाश के समान माना जाने लगा।

समाज सुधार आन्दोलनों और राष्ट्रीय आन्दोलन से स्त्रियों में सामाजिक चेतना उत्पन्न हुई। जनवरी 1927 में अखिल भारतीय महिला सभा की स्थापना हुई, जिसका उद्देश्य महिलाओं में शैक्षिक और सामाजिक कार्य करना था। महात्मा गांधी ने महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में लाने का प्रयास किया। 1930 और 1940 के दशकों में मध्यम वर्गीय महिलाओं ने नौकरी करना शुरु किया, लेकिन ब्रिटिश शासक ऐसा कोई कदम नहीं लेना चाहते थे जिससे भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति में सुधार आता। स्त्रियों के उत्तराधिकार, विवाह और विवाहित स्त्रियों के अधिकारों के बारे में जो कानून पास किया गया था, वह प्राचीन हिन्दू कानून और ब्रिटिश कानून का मिश्रण था।

भारतीय समाज में 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में स्त्रियों की स्थिति के बारे में अनेक सुधार आन्दोलन हुए। राजा राममोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने पुनर्विवाह के लिये आन्दोलन शुरु किया। 1856 में विधवा पुनर्विवाह कानून पारित करवाने में सफलता प्राप्त की। 1861 में बम्बई में विधवा पुनर्विवाह समिति का गठन किया गया।

ग्रामीण और नगरीय अशिक्षित और निर्धन लोगों में बाल विवाह आज भी प्रचलित है। बाल विवाह की प्रथा अनुलोम विवाह, दहेज और कौमार्य की शुचिता की धारणा आदि के कारण पाई जाती है।

समानता की खोज

स्त्री द्वारा पुरुष के साथ समानता की खोज एक सार्वभौमिक तथ्य बन चुकी है। इस मांग के कारण महिला आन्दोलनों नारी वर्गीय कार्यक्रमों और संगठनों का जन्म हुआ है। नारीवाद की उत्पत्ति सम्पूर्ण समाज में सामाजिक संरचना में है। पुरुष और स्त्री में असमानताओं और स्त्रियों के प्रति भेदभाव

आदि की कठिनाइयाँ सदियों से चली आ रही हैं। बहुत लम्बे समय तक स्त्रियाँ घरों की चारदीवारी के भीतर रही हैं। पुरुषों पर वे पूर्ण रुप से निर्भर थीं। शिक्षित महिलाओं ने आमतौर पर घर से बाहर रोजगार करने की आवश्यकता महसूस की।

स्त्रियों को अपने उत्थान के लिये एक स्वतंत्र मार्ग अपनाने के सिवा कोई रास्ता नहीं हैं। स्त्रियां वर्तमान में इस कठोर पितृसत्तात्मक समाज में समानता प्राप्त करना चाहती हैं। परिवर्तन के लिये वे वही उपाय अपनाना चाहती हैं जो पुरुषसदियों से स्वयं के लिये अपनाते रहे हैं।

1960 और 1970 के दशकों से महिलाओं की इन बढ़ती समस्याओं के परिणामत: अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष स्त्रियों के बारे में सभायें, गोष्ठियां और महिला अध्ययन किये गये हैं। इन संगठनों और समितियों ने भारत के संविधान में प्रदत्त स्त्री और पुरुष की समानता के बारे में भी प्रचार किया। भारत सरकार ने 1970 में स्त्री की प्रस्थिति के बारे में एक समिति नियुक्त की थी। समिति ने 1974 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। रिपोर्ट का सर्वत्र स्वागत किया गया। स्त्रियों के अध्ययन का एक अखिल भारतीय संगठन भी है। दिल्ली, बम्बई और अन्य नगरों में बलात्कार, दहेज मृत्यु और स्त्री हत्या के विरुद्ध प्रदर्शन, जुलूस और हड़ताल एक आम बात बन गई है। उच्च जाति व वर्ग के जमींदार, साहूकार, पुलिसकर्मी, सरकारी कार्यकर्ता और कुख्यात समाज विरोधी तत्व प्राय: बलात्कार करते हैं।

3.13 दहेज प्रथा और कन्या भ्रूण हत्यायें

प्रारम्भ से दहेज प्रथा एक ऐसी संस्था थी जिसके अन्तर्गत एक लड़की को विवाह के समय माता-पिता के घर को छोड़कर पति के घर जाने के कारण उपहार और भेंट दिये जाते थे। परन्तु दुर्भाग्यवश अब यह एक क्रूर संस्था बन गई है जिसके परिणामस्वरुप कन्या शिशु-हत्या, आत्महत्या, वधु दहन और अन्य अपमान भरे व्यवहार और क्रूरताऐं पनपकर सामने आई हैं। शहरों, गाँवों में उच्च जातियों और मध्यम वर्गो में दहेज प्रथा एक गम्भीर सामाजिक समस्या बन चुकी है। दहेज प्रथा को बनाए रखने के लिये विवाह के नियमों, अर्थात जाति अन्तर्विवाह गोत्र बहिर्विवाह, अनुलोम तथा प्रतिलोम का गलत अर्थ और गलत प्रयोग किया गया है। ये नियम वैवाहिक साथी की पसन्द को सीमित करते हैं। इन नियमों द्वारा यह निश्चित करते हैं कि विवाह स्वयं की जाति में और स्वयं के गोत्र के बाहर हों।

प्रत्येक माता-पिता अपनी पुत्री का विवाह स्वयं के परिवार की प्रस्थिति की अपेक्षा उच्च प्रस्थिति के परिवार के लड़के के साथ करना चाहते हैं। विवाह सम्बन्ध की इस प्रथा को अनुलोम कहते हैं। जब एक लड़की का विवाह स्वयं के परिवार की प्रस्थिति से निम्न प्रस्थिति के परिवार के लड़के के साथ किया जाता है तो इसे प्रतिलोम की संज्ञा दी जाती है। यह नियम लड़के के विवाह पर लागू नहीं होता, क्योंकि सापेक्षित रुप से निम्न प्रस्थिति के परिवार की लड़की से विवाह स्वीकार किया जा सकता है। इस प्रकार अनुलोम द्वारा चयन सीमित हुआ और श्रेष्ठतर परिवार में लड़की का विवाह करने की अभिलाषा उत्पन्न हुई है। इसका परिणाम यह होता है कि लड़की की तुलना में लड़का एक मूल्यवान वस्तु का रुप धारण कर लेता है। इसका परिणाम हुआ दहेज। विवाह तय करने के समय, विवाह सम्पन्न होने के समय, और यहाँ तक कि विवाह के पश्चात भी अनेक अवसरों पर लड़के के माता-पिता को भौतिक वस्तुऐं और नकद राशि देने का नाम ही दहेज है। यह प्रथा एक गम्भीर सामाजिक समस्या बन गई है।

दहेज देने वालों और दहेज प्राप्तकर्ताओं दोनों के लिये दहेज प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गया है। अधिक दहेज लेना या देना अपनी जाति, कुटुम्ब और अन्य लोगों से भी अधिक दहेज इज्जत की बात मानी जाने लगी है। लड़कों के माता-पिता शेखी के साथ कहते हैं कि उनके लड़के के दहेज में कार,

मकान के लिये जमीन या बना हुआ मकान, वीडियो और अन्य विलासित और घरेलू सामान प्राप्त हुआ है। लोग इन वस्तुओं के बारे में चर्चा करते हैं, और दहेज देने और लेने वालों दोनों की उच्च प्रस्थिति की कद करते हैं।

दहेज का स्वरुप विभिन्न क्षेत्रों और जातियों में अलग-अलग है। यहाँ तक कि नगरीय और ग्रामीण पारिवारिक पृष्ठभूमि के संदर्भ के आधार पर भी दहेज में भिन्नता है। दहेज एक सामाजिक-संरचनात्मक तथ्य है। जाति, वर्ग, नृजातीयता, धर्म, क्षेत्र और संस्कृति के आधार पर सामाजिक संरचना में व्याप्त विभेदों के अनुरुपदहेज व्यवस्था में भी विभेद हैं। भारत के अधिकतर भागों में विवाह के नियमों के कारण "दुल्हन देने वालों"और "दुल्हन लेने वालों"के बीच एक स्पष्ट अन्तर दिखाई देता है। उन समुदायों में जहाँ वधु-मूल्य प्रचलित है या जहाँ पितृवंशकता कमजोर है, दहेज एक सामाजिक समस्या नहीं बन पाई है। वधु-दाता वधु-प्राप्तकर्त्ता से सामाजिक दृष्टि से जिन्दगी भर निम्न समझा जाता है। वास्तव में यह स्थिति आने वाली कई पीढ़ियों तक बनी रहती है।

मातृवंशीय समाजों में और उन समाजों में जहाँ ममेरे, फुफेरे भाई-बहनों के विवाह का नियम है, वहाँ दहेज की समस्या विकट नहीं है। ये दोनों प्रकार के समाज दक्षिण भारत में पाए जाते हैं और इसलिये वहाँ पर उत्तर भारत की तुलना में दहेज की समस्या कम विकट है।

उत्तर भारत में वधु-प्राप्तकर्त्ता न केवल प्रस्थिति में उच्च है, परन्तु व्यवहार में भी विवाह के समय किये जाने वाले प्रबन्ध और दहेज में दी जाने वाली वस्तुओं के बारे में निर्णायक आदेश देते हैं। इसलिये उत्तर भारत में प्राय: कहा जाता है कि - "हम क्या कर सकते हैं, हम तो लड़की वाले हैं।"

दहेज प्रथा के लिये उत्तरदायी निश्चित कारणों को बतला पाना कठिन है, परन्तु एक अस्थायी सूची के बारे में विचार कर सकते हैं। इन कारणों में विवाह के नियम (अनुलोम प्रथा सहित), जाति सोपान, पैतृकी, ज्येष्ठाधिकार, स्त्रियों की निम्न प्रस्थिति, आधुनिक शिक्षा और रोजगार, प्रतिष्ठा की गलत धारणाएँ और कुछ लोगों की आर्थिक सम्पन्नता मुख्य हैं। चूँकि यह एक जटिल प्रघटना और गतिशील सामाजिक समस्या बन चुकी है।

3.14 भारतीय समाज : सामाजिक विचलन

मनुष्य का वह व्यवहार जो समाज द्वारा स्वीकृत मानकों या मान्य नियमों का उल्लंघन करते हुए किया जाता है, उसे सामाजिक विचलन कहते हैं। ऐसा कोई भी समाज नहीं है जिसमें मानकों का पूर्ण उल्लंघन होता हो या मानकहीनता की अवस्था पाई जाती हो।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से अनुकरणहीनता आपराधिक व्यवहार की एक महत्त्वपूर्ण कसौटी है। मान्य मूल्यों और मानकों के अनुरुप व्यवहार को अनुरूपता कहते हैं। मूल्य उद्देश्य साध्य हैं जो साधारणतया अविनिमेय हैं। मानक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये संस्थात्मक अविनिमेय है। मानक उद्देश्यों की पूर्तिके लिये संस्थात्मक पद्धतियाँ हैं। यदि एक व्यक्ति मान्य मूल्यों और मानकों को अपने क्रियाकलापों को पूरा करने के लिये उपयोग में नहीं लेता है तो उस व्यक्ति को अपराधी या विचलित कहा जा सकता है, क्योंकि उसके कार्य अपेक्षित व्यवहार अर्थात् मानकों और मूल्यों के विपरीत होंगे। मूल्य और मानक समान नहीं हैं।

मर्टन के अनुसार, जब सांस्कृतिक दृष्टि से मान्य उद्देश्यों और संस्थागत साधनों के मध्य संगति का अभाव रहता है तो उसके कारण विचलन की स्थिति उभरती है। दुर्खीम ने अपराध के समाजशास्त्रीय आयाम के बारे में इस प्रकार लिखा है "अपराध एक सामाजिक तथ्य और मानव कृत्य है। अपराध

सामान्य और प्रकार्यात्मक दोनों हैं। कोई भी समाज अपराध से पूर्ण रुप से वंचित नहीं है। अपराध उन मूल्यों में से एक है जो हम स्वतंत्रता के लिये चुकाते हैं।"

गत कुछ दशकों में भारत में तीव्र सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन हुए हैं। इनका विभिन्न संस्थाओं पर प्रभाव पड़ा है। सफेदपोशी अपराध के नए आयाम उभरे हैं। राजनैतिक संस्थाएँ बहुत तेजी से परिवर्तित हुई हैं, और सांस्कृतिक मानक उनके साथ-साथ परिवर्तित नहीं हो पाए हैं। इसलिये आधुनिक भारत में सांस्कृतिक विलम्बन पाया जाता है। पिछले कुछ वर्षो में प्रस्थिति उन्नयन के लिये भी आकांक्षाएँ उच्च हुई हैं। अनेक लोगों ने उच्च प्रस्थिति प्राप्त करने के लिये अनाचारों को अपनाया है। समाज के विभिन्न अनुभागों में आर्थिक असमानता आशिक तौर पर आधुनिकीकरण और परिवर्तन की प्रक्रियाओं के कारण उत्पन्न हुई है। अपराध और बाल अपराध की परिस्थितियों के लिये बहुत हद तक प्रस्थिति अंतराल के कारण भी उत्तरदायी है।

समाजीकरण और अपराध सह सम्बन्धित हैं। एक समाज के सदस्य के रुप में एक व्यक्ति सकारात्मक और नकारात्मक दोनों भूमिकाएं सीखता है। वे सदस्य अप्रकार्यात्मक भूमिकाऐं सीखते हैं जो तनाव, संघर्ष, फूट और अपसरण से अधिक शासित हैं, और शांति, चैन, सहयोग और स्थिरता से वंचित है। समाजीकरण की प्रक्रिया में इन कारकों द्वारा व्यक्ति के अपने स्वयं के और अन्य लोगों के जीवन के बारे में मनोवृत्तियां निर्धारित होती हैं। समाज के विशेष सुविधा प्राप्त अनुभागों के लिये शक्ति भी अपराध का एक स्त्रोत बन चुकी है। शक्तिमान व्यक्तियों में अपने प्रभाव और सत्ता के दुरुपयोग करने की प्रवृति पाई जाती है। व्यापार-व्यवसायों और सरकारी सेवाओं में रत शिक्षित लोगों में सफेदपोशी अपराध पाया जाता है।

एक बाल अपराधी वह है जो अपना घर छोड़ देता है या आदतन आज्ञाकारी नहीं है या माता-पिता के नियन्त्रण में नहीं रहता है, और देश के कानून का उल्लंघन करता है या उन नियमों का पालन नहीं करता है जिनका पालन करना उसके लिये आवश्यक है। यह कहा जाता है कि मानव पारिस्थितिकी या संस्थाऐं व्यक्ति पर प्रभाव डालती हैं, और इसके दबावों और तनाव के कारण वह बाल अपराधी बन जाता है।

बाल अपराध के लिये अनेक कारण उत्तरदायी हो सकते हैं। सांस्कृतिक कुसमायोजन, अपर्याप्त-निवास, परिवार में सदस्यों की अति-बहुलता, निम्न जीवन स्तर, निम्न शैक्षणिक स्तर, विसंगत पड़ोस जीवन और सामाजिक व्यवहार के मानकों में गिरावट आदि प्रमुख कारक माने जा सकते हैं।

3.15 जनसंख्या विस्फोट एवं समाज

जनसंख्या के आधार पर संसार का सबसे बड़ा देश है। भारत में दुनिया की कुल जनसंख्या के सातवें हिस्से के बराबर लोग रहते हैं। भारत एक अतिजनसंख्यक देश है, क्योंकि इसकी जनसंख्या वृद्धि की दर आर्थिक विकास की दर से कहीं अधिक है। जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास के बीच सामंजस्यता के अभाव के कारण ही भारत में बेरोजगारी, निर्धनता, प्रवसन और कमजोर गतिशीलता बहुत हद तक पाई जाती है। यद्यपि वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक विकास द्वारा आयु-संभावित और स्वास्थ्य अवस्थाओं में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आये हैं, लेकिन जनसंख्या वृद्धि को वांछित बिन्दु तक नियन्त्रित करने में बहुत सफलता प्राप्त नहीं हुई है मृत्यु दर में गिरावट आई है, परन्तु उसके अनुरुप जन्म दर में कमी नहीं हुई है। अत: भारत में अधिक जनसंख्या के कारण आर्थिक और सामाजिक विकास के अपेक्षित स्तर को प्राप्त करने में बाधा पहुँचती है।

सामाजिक-आर्थिक समस्याएँ

अधिक जनसंख्या की समस्या के कारण प्रवसन, रोजगार के अवसरों, जीवन स्तर और जीवन प्रणालियों के संदर्भ में असमानता आ गई है। ग्रामीण नगरीय अनुपात में भी उल्लेखनीय परिवर्तन आया है। आज प्रत्येक व्यक्ति उचित शिक्षा, चिकित्सा सेवा, स्वच्छता, अन्य स्वास्थ्य सुविधायें, साधन सामाजिक सुरक्षा उपाय और पर्याप्त आवास आदि प्राप्त करने में सक्षम नहीं है। लाभकारी रोजगार प्राप्त करना कठिन है। भारत में बहुत सा श्रम अनुत्पादक है। पूँजी गहनता के उत्पादन के भी अभाव हैं। घरेलू उत्पादन का 50 प्रतिशत कृषि और अन्य सम्बन्धित आर्थिक क्रियाओं पर निर्भर है। केवल 10 प्रतिशत उत्पादन संगठित उद्योगों से प्राप्त होता है।

विकासशील देशों में जनक्षमता स्तरों और उनके सामाजिक तथा आर्थिक विकास के सूचकों के बीच सहसम्बन्धों की जाँच अनेक अध्ययनों की गई है। इन अध्ययनों से प्रतीत होता है कि मात्र आर्थिक और सामाजिक अवस्थाओं में भी सुधार लाने से ही विकासशील देशों में जनक्षमता में भी कमी नहीं लाई जा सकती है, जब तक कि विकास के स्तर को एक निश्चित "देहरी" तक नहीं पहुँचाया जाता है।

जनसंख्या की संरचना

भारत की जनसंख्या 1991 की जनगणना के अनुसार, 84 करोड़ 40 लाख है। संसार में प्रति 100व्यक्तियों में 15 भारतीय हैं, अर्थात् हर सातवीं भारतीय है। संसार के 15.2 प्रतिशत भारतीय हैं जो संसार की कुल भूमि के 2.4 प्रतिशत भाग पर बसे हुए हैं। अन्य देशों की तुलना में भारत की जनसंख्या में वृद्धि बहुत अधिक हुई है। बढ़ती हुई जनसंख्या के दबाव को वहन करने के लिये आवश्यक साधनों और आधारित संरचना का विकास बहुत कम हुआ है

कुल जनसंख्या का 82.7 प्रतिशत हिन्दू हैं और 11 .2 प्रतिशत मुसलमान हैं। तीसरा स्थान ईसाईयों का है। सिख मुख्यत: पंजाब में रहते हैं। जैन और बौद्ध मतावलंबी हिन्दुओं से मिलते-जुलते हैं।

अप्रेल 1976 में एक व्यापक राष्ट्रीय जनसंख्या नीति अपनाई गई थी और 1981 में इसको संशोधित किया गया। इस नीति का मुख्य उद्देश्य परिवार नियोजन को भारत में सामाजिक-आर्थिक विकास की योजना से एकीकृत करना पड़ा। निवास के लिये लड़कियों की आयु 15 वर्ष से बढ़ाकर 18 वर्ष और लड़कों की 18 वर्ष से बढ़ाकर 21 वर्ष कर दी गई।

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति का उद्देश्य स्वयं और अपनी संतान के कल्याण हेतु लघु नियोजित परिवारों की आवश्यकता पर बल देना था। जनवरी 1982 में घोषित 20 सूत्रीय कार्यक्रम में परिवार कल्याण कार्यक्रम को शामिल किया गया था। इस कार्यक्रम में परिवार नियोजन को ऐच्छिक आधार पर स्वीकृत जन आन्दोलन कहा गया है।

सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिवेश चाहे जो हों, राष्ट्रीय जन्म दर में कमी लाना ही जनसंख्या नीति का निचोड़ है। परिवार नियोजन को जनसंख्या नियन्त्रण का एक प्रभावकारी उपाय बनाने में शासनिक दबाव और बल प्रयोग असफल प्रमाणित हुए हैं। जागरूकता द्वारा उत्पन्न स्वेच्छा ही केवल एक प्रभावकारी उपाय हो सकता है।

3.16 भारत में राज्य एवं समाज

राज्य एक सावयवी है एवं मनुष्य इसका अंग और इस तरह राज्य मनुष्य से बड़ा है। राज्य वास्तविक और सर्वोपरि होता है। राज्य का अस्तित्व उन उद्देश्यों के कारण न्यायसंगत ठहराया जाता है जिन्हें वह अपने नागरिकों के लिये प्राप्त करने का प्रयास करता है। इस तरह राज्य का अस्तित्व

अच्छे जीवन के उन्नयन हेतु है। यह नागरिकों के जीवन का अधिकार, सुरक्षा, स्वतंत्रता तथा सम्पत्ति प्रदान करता है। राज्य के कानूनों का पालन कर मनुष्य अपने कल्याण में वृद्धि करता है।

राज्य और समाज के बीच सम्बन्ध

समाज, राज्य और सरकार का एक-दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है। जब समाज और दूसरे समुदाय एक इकाई के रुप में संगठित हो जाते हैं तो यह राज्य कहलाता है। राज्य के क्रियाकलापों का प्रबन्ध एक निकाय द्वारा होता है जो कानूनी तौर पर उस राज्य में रहने वाले किसी भी व्यक्ति या सामाजिक समूह से सर्वोपरि होता है। उदाहरण के लिये भारतीय राज्य में एक भू-भाग, नागरिक गण, संघ संगठन और सरकार है। विभिन्न व्यक्तियों और संगठनों के बीच सम्बन्ध राज्य के प्राधिकार द्वारा निर्धारित होता है।

निःसंदेह, राज्य अपने नागरिकों के ऊपर सारी वैध शक्तियों का स्त्रोत है। यह जनसाधारण से उच्चस्थ शक्ति है। मगर कोई राज्य इतना बेरहम नहीं होता कि इसके नागरिक इसके अस्तित्व के लिये खतरा बन जायें। तथापि आज भी ऐसे राज्य हैं जो किसी न किसी रुप में धर्मांधता एवं नक्सलवाद का प्रचार-प्रसार करते हैं और ऐसे भी राज्य हैं जो वैज्ञानिक और आर्थिक विकास की वकालत इस तरह से करते हैं कि कुछ लोगों को फायदा हो और दूसरों का हानि। ऐसी निरंकुशतावादी कार्य पद्धति, धार्मिक और प्रजातीय कट्टरता वैज्ञानिक और आर्थिक आधिपत्य सारी दुनिया में विरोध, आन्दोलन व क्रांति के मुख्य कारण रहे हैं।

उत्पादन की राजकीय पद्धति सामाजिक रुपान्तरण में राज्य की भूमिका को दर्शाता है। उदाहरण स्वरुपसमाजवादी या पूँजीवादी राज्य का उल्लेख किया जा सकता है। उत्पादन की राजकीय प्रणाली राज्य की अर्थव्यवस्था तथा समाज पर प्राबल्य को व्याख्यापित करती है।

कल्याणकारी राज्य की धारणा

आधुनिक विश्व में कल्याणकारी राज्य की विचारधारा स्वीकृत हो चुकी है। सामान्यत: यह सामंतवादी व्यवस्था मुक्त अर्थ व्यवस्था, पूँजीवादी राज्य का जनकल्याणकारी राज्य विशेषकर कमजोर वर्गो के उत्थान के लिये आमूल-चूल रुपान्तरण को निर्दिष्ट करता है। एक कल्याणकारी राज्य मुक्त अर्थव्यवस्था और समाजवादी राज्य दोनों से अच्छे तत्व ग्रहण करता है। यह अर्द्धविकसित राष्ट्र तथा इन राष्ट्रों में समाज के कमजोर वर्गो के लिये आशा और प्रेरणा का संदेश देता है।

कहा जाता है कि स्वतंत्रता के बाद भारत का एक कल्याणकारी राज्य के रुप में विकास हुआ है। हमारा संविधान अपने सभी नागरिकों को मूल अधिकार प्रदान करता है। यह राज्य को नीति निदेशक तत्व प्रदान करता है। ये निर्देशक तत्व संकेत करते हैं कि हमारा राज्य एक कल्याणकारी और समाजवादी राज्य है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना भी इसका प्रमाण है कि भारत एक समाजवादी धर्मनिरपेक्ष जनतांत्रिक और कल्याणकारी राज्य है। कल्याणकारी राज्य निम्न कार्यो के रुप में अभिलक्षित किये जा सकते हैं।

स्वतंत्रता के बाद निजी तथा सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों का साथ-साथ विकास हुआ है। औद्योगिक विकास के साथ राजकीय पूंजीवाद का भी विस्तार हुआ है। सन 1948 में यह निर्णय लिया गया था कि कोयला, इस्पात, विमानन तथा पेट्रोलियम उद्योग पर नियन्त्रण का अधिकार राज्यों के पास सुरक्षित हो। सभी उद्योगों को निजी क्षेत्र के लिये छोड़ दिया गया। सन 1956 में एक क्रांतिकारी निर्णय लिया गया जिसके तहत निजी पूँजी को राष्ट्रीय हित वाले सुरक्षित उद्योगों में हिस्सेदारी के लिये अनुमति दे दी गई।

समाज-सुधार एवं भारतीय राज्य

भारत ने अपने विकास एवं प्रगति के लिये प्रजातांत्रिक समाजवाद का रास्ता अपनाया है। 26 जनवरी 1950 को अपनाया गया भारतीय संविधान सभी भारतीय नागरिकों को मूल अधिकारों की गारंटी देता है जिससे समानता, स्वतंत्रता एवं न्याय की भावना सुरक्षित की जा सके। भारतीय संविधान में मूल अधिकारों के अलावा भारत में हुए सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन को एक समाजवादी दिशा प्रदान करने के लिये राज्य के नीति निर्देशक तत्वों की भी व्यवस्था की गई है।

सामाजिक विधि निर्माण कार्य अंग्रेजी-राज में भी हुए जैसे बाल विवाह, सती एवं शिशु हत्या निषेध कानून एवं विधवा विवाह प्रोत्साहन आदि। इसके अलावा भारत सरकार ने 1955 में हिन्दू विवाह अधिनियम एवं 1956 में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम पारित किया। बाल श्रम को हतोत्साहित करने के लिये कानून बनाए गए। इसी कारण आज दहेज प्रथा के विरुद्ध कड़े कानून बने हुए हैं। श्रमिकों को उचित मजदूरी दिलाने के लिये भी कानून बनाये गये हैं।

3.17 सामाजिक परिवर्तन की अवधारणाएँ एवं प्रक्रियाएँ

सामाजिक परिवर्तन की धारणा बहुत वृहद् है। स्थान, समय और संदर्भ के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक संरचना के अन्दर होने वाले परिवर्तन की प्रक्रियाओं के पुंज को सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।

भारत के सामाजिक परिवर्तन को समझने के मुख्य उपागम इस प्रकार हैं (1) उद्विकासवादी (2) सांस्कृतिक और (3) संरचनात्मक। योजनाओं ओर नीतियों में निहित भविष्य में सामाजिक परिवर्तन लाने के मार्ग में मुख्य संरचनात्मक और सांस्कृतिक बाधाओं को इन गणनाओं की व्याख्या द्वारा समझा जा सकता है।

सामाजिक परिवर्तन की धारणा

मोटे तौर पर समाज में दो प्रकार की प्रक्रियाऐं होती हैं : (1) वे प्रक्रियाऐं जो सामाजिक व्यवस्था को कायम रखती है, और (2) वे प्रक्रियाऐं जो व्यवस्था के भीतर और व्यवस्था में परिवर्तन लाती हैं। प्रथम प्रक्रियाओं को अनुरुपता, यथापूर्व स्थिति, और निरन्तरता आदि के नाम से समझते हैं। द्वितीय प्रक्रियाओं को सांस्कृतिक और संरचनात्मक परिवर्तन की प्रक्रियाऐं कहा जाता है। इसके प्रतिमानों और कारकों में समय और स्थान के अन्तर के आधार भिन्नता पाई जाती है।

सामाजिक संरचना वर्तमान सम्बन्धों का अन्तर्सम्बन्ध है। सामाजिक संरचना की परिरक्षा वे लोग करते हैं जो सामाजिक सम्बन्धों में सहभागी होते हैं। सामाजिक संरचना परिवर्तन का अभिप्राय सामाजिक संरचना में हुए परिवर्तन से है। आधुनिक समाज में सामाजिक परिवर्तन के उदाहरणों में सामाजिक मूल्यों, संस्थाओं, सम्पत्ति-सम्बन्धों, आर्थिक धंधों, कार्मिक और भूमिका वितरण में परिवर्तनों को उद्धृत किया जा सकता है। सामाजिक परिवर्तन समय, स्थान और संदर्भ के आधार पर सदैव सापेक्षिक है। इन तीन तत्वों के आधार पर परिवर्तन के प्रतिमानों की तुलना की जा सकती है। सामाजिक परिवर्तन का प्रतिरोध आम बात है, क्योंकि परिवर्तन के कारण प्रचलित सामाजिक व्यवस्था और सम्बन्धों में विघ्न पड़ता है। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं का जिन लोगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, वे विशेषत: प्रतिरोध करते हैं।

समाजशास्त्र और सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन

समाजशास्त्र में समाज, सामाजिक समूहों, संस्थाओं और व्यवहार प्रतिमानों आदि में परिवर्तन का अवलोकन किया जाता है। उथल-पुथल और रुपान्तरण की परिस्थितियों में दो प्रवृत्तियों पाई जाती हैं : (1) कुछ सीमाओं में परिवर्तन को रोककर रखना, और (2) परिवर्तनों को इच्छित ढंग में ढालना।

प्रथम को रुढ़िवादी दृष्टिकोण कहा गया है, जबकि द्वितीय को प्रगतिशील या आमूल परिवर्तनवादी कहा जाता है। बर्जर और बर्जर के अनुसार: "दोनों ही संदर्भो में परिवर्तन का दोहरा अर्थ है - सामाजिक परिवर्तन एक बौद्धिक समस्या है जिसमें समझ के लिये यह एक चुनौती है, सामाजिक परिवर्तन एक राजनैतिक समस्या भी है जिसमें व्यावहारिक कार्यो को करने की मांग की जाती है।" अत: सामाजिक परिवर्तन एक वैचारिक और क्रियाकलाप दोनों हैं। इन दोनों के बीच संतुलन रखने की आवश्यकता है। मैक्स वेबर ने दोनों को एक-दूसरे से भिन्न माना है, जबकि कार्ल मार्क्स सिद्धान्त और अभ्यास की एकता में विश्वास रखते हैं।

अत: सामाजिक आन्दोलन में भूतकाल, वर्तमान और कल्पित भविष्य को ध्यान में रखा जाता है। उम्मेन और पी.एल. मुखर्जी दोनों का मत है कि सामाजिक आन्दोलनों के अध्ययन में सामाजिक संरचना का अध्ययन निहित है क्योंकि आन्दोलन विरोधाभासों से उत्पन्न होते हैं और ऐसे विरोधाभास सामाजिक संरचना से उत्पन्न होते है तथा सामाजिक आन्दोलन, सामाजिक संरचना में परिवर्तन लाते हैं

अत: सामाजिक आन्दोलन सांयोगिक नहीं है और न ही सामाजिक परिवर्तन की ऊपरी तौर पर छल योजित तरकीबें हैं। एक आन्दोलन को आयोजित करने, लोगों को कार्यशील बनाने और एक अमुक सामाजिक आन्दोलन के उद्देश्यों को सुस्पष्ट करने में साधारणतया राजनैतिक दल और समूह शामिल रहते हैं।

आजकल क्षेत्रीय दलों और संगठनों ने पृथक राज्य-निर्माण और राज्य स्वायत्तता के लिये आन्दोलन शुरु किये हैं। विभिन्न क्षेत्रों और राज्यों में इन आन्दोलनों के अध्ययन द्वारा संस्कृति, भाषा, धर्म और सजातीय गठन, आर्थिक विकास, और लोगों की आकांक्षाओं के संदर्भ में "राष्ट्रीय ध्येय" और क्षेत्रीय व स्थानीय परिस्थितियों के बीच सामंजस्य की प्रकृति या इसके अभाव के बारे में बोध हो सकता है।

भारत में सामाजिक परिवर्तन की प्रमुख प्रक्रियाओं के बारे में विद्यार्थियों को अवगत करवाने के लिये योगेन्द्र सिंह की पुस्तक मॉर्डनाइजेशन ऑफ इण्डियन ट्रेडिशन (1973) और उनका निबन्ध कॉन्सेप्ट एण्ड थ्योरीजऑफ सोशल चेन्ज (1974) पर्याप्त स्त्रोत प्रतीत होते हैं। सिंह ने सामाजिक परिवतन के उपागमों को निम्नलिखित प्रकारों में विभक्त किया है। (1) उद्भवीय उपागम, (2) सांस्कृतिक उपागम, सांस्कृतिक-पश्चिमीकरण, लघु और दीर्घ परम्परा और बहुत परम्पराऐं, (3) संरचनात्मक परम्पराऐं, विभेदीकरण और गतिशीलताविश्लेषण और द्वद्वात्मक ऐतिहासिक उपागम। यह वर्गीकरण बिल्कुल अन्वेषणात्मक है और इसमें प्रमुख सैद्धान्तिक व अवधारणात्मक अभिमुखों का प्रतिनिधित्व पाया जाता है।

इन उपागमों में भारत में जाति, परिवार, विवाह और बंधुता तथा ग्रामीण समुदाय आदि संस्थाओं का विश्लेषण किया जाता है। विशेषकर ब्रिटिश नृजातिशास्त्रियों ने मीमांसात्मक दृष्टिकोण से प्रजातीय गठन और उत्पत्ति के संदर्भ में जाति के अध्ययन पर बल दिया है।

संस्कृतिकरण

एम.एन. श्रीनिवास ने भारत में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं की व्याख्या संस्कृतिकरण और पश्चिमीकरण की अवधारणाओं के द्वारा की हैं श्रीनिवास के अनुसार "संस्कृतिकरण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक "निम्न" जाति या जनजाति या अन्य समूह एक उच्च जाति और विशेषत: एक "द्विज" जाति की प्रथाओं, धार्मिक कृत्यों, आस्थाओं, विचारधारा और जीवन प्रणाली को अपनाता

है।"अत: जाति के ढाँचे के अन्तर्गत ही निम्न जाति के लोग उच्च जातियों के जीवन तरीकों का अनुकरण अपनी प्रस्थिति में सुधार लाने के उद्देश्य से करते हैं।

पश्चिमीकरण

पश्चिमी संस्कृति (विशेषतया ब्रिटिश संस्कृति) के साथ सम्पर्क के परिणामस्वरुप होने वाले परिवर्तनों को पश्चिमीकरण कहा जाता है। श्रीनिवास के अनुसार, विभिन्न जातियों खासतौर पर उच्च जातियों ने ब्रिटिश लोगों की विभिन्न सांस्कृतिक प्रणालियों को अपना लिया है। सांस्कृतिक अनुकरण के अतिरिक्त, विज्ञान प्रौद्योगिकी, शिक्षा, वैचारिकी और मूल्यों के क्षेत्रों में बहुत सी बातें स्वीकार की गई हैं। पश्चिमीकरण की अवधारणा में मानवतावाद और तर्कबुद्धिवाद के मूल्य आधारिक हैं। श्रीनिवास के अनुसार ये दोनों मूल्य आधुनिकीकरण की अवधारणा में नहीं पाए जाते हैं, और इसी कारण से श्रीनिवास ने पश्चिमीकरण की अवधारणा को प्राथमिकता प्रदान की है।

लघु दीर्घ और बहुशाखी परम्पराऐं

रोबर्ट रेडफील्ड के मतानुसार, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों का आधार परम्परा का सामाजिक संगठन है। भारत की सभ्यता प्राथमिक या देशज है। इस पर सामाजिक परिवर्तन के विजातीय कारकों का प्रभाव नहीं पड़ा है। भारत की प्राथमिक सभ्यता लघु परम्पराओं और दीर्घ परम्परा में विभक्त है। लघु परम्परा जनसाधारण और अशिक्षित कृषकों से सम्बन्धित है। दीर्घ परम्परा में अभिजात या कुछ गणमान्य व्यक्तियों का समावेश होता है। लघु और दीर्घ परम्पराओं में निरन्तर अन्तःक्रिया रहती है। अत: हम कह सकते हैं कि जनसाधारण और अभिजात के बीच विचारों का प्रवाह और सामाजिक सम्बन्धों का आदान-प्रदान निरन्तर होता है।

संरचनात्मक उपागम

संरचनात्मक विश्लेषण द्वारा सामाजिक परिवर्तन को समझने के लिये स्वतंत्र कारणात्मक चरों को पहचाना जाता है। अध्ययन की इकाईयां विचार, मानक और मूल्य नहीं हैं, बल्कि भूमिकाएँ और प्रस्थितियां हैं, और इसलिये समूह और लोगों की श्रेणियां अध्ययन की इकाइयां हैं। समूहों के सोपान, सामाजिक सम्बन्धों की विषमता, सामाजिक वस्तुओं का असमान वितरण आदि के कारण नए नियम और नियन्त्रण, नई संरचनाओं और वर्तमान संरचनाओं का रुपान्तरण अवश्यम्भावी है। सामाजिक परिवर्तन के संरचनात्मक विश्लेषण में इन मुद्दों का अध्ययन प्रमुख रुप से किया जाता है।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण द्वारा भारत में सामाजिक परिवर्तन के अध्ययनों में जाति और राजनीति, उत्पादन की पद्धतियां, वर्ग सम्बन्ध और संसाधनों और अवसरों तक पहुँच के वितरण के अध्ययन किये गये हैं। कुछ संशोधनों के साथ डी.पी मुखर्जी ने सामाजिक परिवर्तन के अध्ययन के लिये मार्क्सवादी उपागम को लागू किया। नई वर्ग संरचना के आविर्भाव में मुखर्जी ने भारतीय परम्परा की भूमिका को अत्यधिक उपयोगी पाया। भारतीय परम्परा में लोचदार और अनुकूली दोनों होने की सांस्कृतिक शक्ति है। परम्परा एक अविनाशी शक्ति है। तनाव और संघर्ष के बाद संस्कृति अनुकूलन लाती है।

भारत में राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि के विश्लेषण में ए.आर. देसाई ने मार्क्सवादी उपागम को बहुत उपयुक्त और लाभकारी बताया है। देसाई के अनुसार, सामाजिक परिवर्तन और विकास की प्रकृति वर्ग पर आधारित असमानताओं और अन्तर्विरोधों द्वारा निर्धारित होती है।

लुई ड्यूमो ने ज्ञानात्मक ऐतिहासिक उपागम पर बल देते हुए परिवर्तन की व्याख्या परम्परात्मक वैचारिक संरचना में अनुकूली या रुपान्तरीय प्रक्रियाओं के संदर्भ में की है। इस मत के अनुसार, सामाजिक संरचना में परिवर्तन लाने के लिये सांस्कृतिक या वैचारिक परिवर्तन लाना एक आवश्यक शर्त है। गुन्नार मिर्डल ने सामाजिक परिवर्तन के अध्ययन के लिये एक अन्य उपागम को

जन्म दिया है। मिर्डल के सांस्थानिक उपागम में आर्थिक विकास में गैर-आर्थिक कारकों की भूमिका को बाधाओं के रुप में प्रस्तुत किया है।

3.18 भारत में सामाजिक परिवर्तन के कारक

समाज की संरचना और संस्कृति में सामाजिक परिवर्तन का सूत्रपात आंतरिक और बाह्य स्त्रोतों द्वारा होता है। समाज की संरचना से हमारा संदर्भ अधिसंरचनात्मक सुविधाओं, लोगों में इसके वितरण और उनकी सुविधाओं तक पहुँच से है जबकि समाज की संस्कृति में परम्पराओं, धर्म, जीवन के मानक और पारस्परिक व्यवहार शामिल हैं। समाज की संरचना और संस्कृति स्थिर नहीं रही है। सामाजिक परिवर्तन इस प्रकार एक अपरिहार्य प्रक्रिया हो जाती है।

क्योंकि परम्परा और आधुनिकता सहवर्ती हैं, निरन्तरता और परिवर्तन सामाजिक जीवन के आनुभाविक तथ्य हैं। परम्परा और आधुनिकता सहवर्ती इसलिये भी हैं क्योंकि सब समाजों में स्थिरता और सामाजिक नियन्त्रणों की आवश्यकता होती है। परिवर्तन से होने वाली मांगों और चुनौतियों का मुकाबला करने के लिये, ज्ञान और तकनीकी जानकारी के नए स्तरों को प्राप्त करने हेतु आधुनिकता और परिवर्तन की आवश्यकता होती है। इन्हीं परिस्थितियों के कारण सामाजिक परिवर्तन होता है। सामाजिक तनाव और संघर्ष भी सामाजिक परिवर्तन के स्त्रोत है। सामाजिक परिवर्तन वृद्ध, नौजवान, शिक्षित, अशिक्षित और नगरवासी और ग्रामीण के मूल्यों में अन्तर के कारण भी होते हैं। सामाजिक संघर्ष और परिवर्तन का कोई एक कारण नहीं है फिर भी निम्नलिखित कारणों का उल्लेख किया गया है : (1) जनांकिकीय (2) प्रौद्योगिकीय, (3) आर्थिक, (4) सांस्कृतिक, (5) कानूनी और प्रशासनिक, और (6) राजनैतिक।

भारत के आर्थिक विकास में राज्य की कल्याण एजेन्सी के रुप में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। राज्य की नीतियों और कार्यक्रमों के सकारात्मक कार्यो के रुप में जमींदारी और जागीरदारी प्रथाओं का उन्मूलन, साख सहकारी समितियों को बढ़ावा, भू-जोतों का सीमांकन और आर्थिक उत्थान के अन्य कार्यक्रमों का उल्लेख किया जा सकता है। इन नीतियों और कार्यक्रमों और हरित क्रांति के प्रभावों को सामाजिक रुपान्तरण के नए स्तर के रुप में देखा गया है।

परम्परागत असमानता के स्थान पर अब एक नए प्रकार की असमानता उभरी है। नई परिस्थितियों की मांगों के अनुरुप जाति व्यवस्था ने स्वयं को परिवर्तित किया है। संरचनात्मक दृष्टि से परिवारों का संयुक्त रहना सम्भव नहीं रहा है क्योंकि इनके सदस्य एक ही स्थान पर न तो रहते हैं और न ही कार्य करते हैं। परन्तु विभिन्नऔर दूरस्थ स्थानों पर रहते हुए भी वे अपने परिवार के सदस्यों की सहायता करते हैं जिससे परिवारों को प्रकार्यात्मक संयुक्तता प्राप्त है।

भारत में सामाजिक परिवर्तन के स्त्रोत के रुप में एम.एन. श्रीनिवास ने सांस्कृतिक और जाति गतिशीलता के महत्व पर बल दिया है। एक जाति के सदस्य एक उच्च जाति या इसके कुछ सदस्यों के आदर्शो और व्यवहारों का अनुकरण कर अपनी स्थिति को उच्च कर सकते हैं। परिवर्तन की इस प्रक्रिया में संस्कृतिकरणीय जातियां उन परम्परागत व्यवसायों और प्रथाओं को तिरस्कृत कर देती हैं जिनके कारण सदियों तक वे निम्न स्थान पर रही। निम्न जातियों के प्रस्थिति उन्नयन में शिक्षा, वेतनकारी नौकरियों और शहरों की ओर प्रवसन का भी बहुत योगदान रहा है।

कानूनी कारण

भारतीय समाज में सामाजिक परिवर्तन लाने में कानून की बड़ी भूमिका रही है। भारतीय समाज जटिल और विषम है और कानून द्वारा विभिन्न वर्गो में समरुपता और आत्मसातीकरण लाया जा सकता है। कानून द्वारा मूलभूत परिवर्तन विशेषत: निम्न वर्गो के हित में हो सकते हैं। राजनैतिक और आर्थिक

संस्थाओं में परिवर्तन और सामाजिक बुराईयों को समाप्त करने और शैक्षिक व्यवस्था को सुधारने में कानून को एक साधन के रुप में काम में लिया जा सकता है।

भारत में आधुनिक कानूनी व्यवस्था का आधार भारत संविधान है। संविधान में समानता, सामाजिक न्याय, स्वतंत्रता और धर्मनिरपेक्षता के मानकों का समावेश किया गया है। संविधान में सांस्कृतिक बहुलवाद जाति आधारित असमानताओं और सामाजिक आर्थिक पिछड़ेपन का उल्लेख भी किया गया है। फिर भी संविधान में अनेक विरोधाभास हैं। उदाहरण के लिये, संविधान में कुछ मूल अधिकारों का प्रावधान है। परन्तु इन अधिकारों मे काम करने के अधिकारों को शामिल नहीं किया गया है। समाज के निर्धन तबकों के लिये जो आवश्यक हो, उसे जनता के मूल अधिकारों में शामिल नहीं किया गया है।

राजनीतिक कारक

स्वतंत्रता के बाद ग्राम पंचायत से लेकर संसद तक चुनावों में मताधिकार प्राप्त होने के कारण बहुत अधिक सामाजिक और राजनैतिक चेतना उत्पन्न हुई है। भारतीय समाज के एक बहुत बड़े अनुभाग में पुरुषों और महिलाओं दोनों ने आम चुनावों, ग्राम पंचायतों और नागरिक इकाइयों के चुनावों में भाग लिया है। इन चुनावों के परिणामस्वरुप ग्राम, खण्ड, जिला, राज्य और केन्द्र के बीच प्रशासनिक और राजनैतिक कड़ियां पाई जाती हे। ये कड़िया राजनैतिक दलों और उनके नेतृत्व के संदर्भ में भी है। राजनैतिक दल न केवल चुनाव जीतने के लिये ही कार्यरत हैं, उन्होंने राष्ट्रीय हितों और सैद्धान्तिक प्रकृति के मुद्दों को भी उठाया है।

जातियों और अन्य सामाजिक इकाइयों के राजनीतिकरण के परिणामस्वरुप चुनावों में सामाजिक जुटाव हुआ है। चुनाव के समय संख्यात्मक रुप में प्रबल जाति समूहों ने संगठित होकर शंकित स्थानों (पदों) को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की है। उच्च जातियों की तुलना में सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ेपन के बावजूद प्रमुख कृषक जातियां विभिन्न राज्यों में चुनावों में बहुत प्रभावकारी रही हैं। कभी-कभी परम्परागत दृष्टि से शक्तिशाली जातियां राजनीति और सत्ता के खेल में कमजोर भी रही हैं।

भारत में सामाजिक परिवर्तन को परम्परा, आधुनिकता और निरन्तरता और परिवर्तन के सह अस्तित्व के संदर्भ में समझा जा सकता है। सामाजिक परिवर्तन के कारक जनांकिकीय प्रौद्योगिकीय, आर्थिक, सांस्कृतिक कानूनी और राजनैतिक हैं। अधिक जनसंख्या की समस्या के कारण आर्थिक विकास में बाधा पहुँची है। ब्रिटिश शासन द्वारा औद्योगिक विकास को हुई हानि के कारण औद्योगीकरण को उचित दिशा नहीं मिल पाई। सांस्कृतिक परिवर्तन आर्थिक परिवर्तनों से अधिक तेज है।

3.19 राष्ट्रीय एकीकरण की चुनौतियाँ

राष्ट्रीय एकीकरण समाज के विभिन्न अनुभागों में संरचनात्मक, सांस्कृतिक, वैचारिक सामंजस्य और मैत्री भाव पर निर्भर है। भारत के संविधान में इन संगत मूल्यों और मानकों को उल्लेख प्रजातंत्र, धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद की उद्घोषणाओं के द्वारा किया गया है। संरचनात्मक समानता का अर्थ समाज के सभी वर्गो विशेषकर दलित वर्गो के लिये समान अवसर से है। जाति, पैतृकता और विरासत, अपवित्रता-पवित्रता आदि प्रदत्त कारकों पर आधारित भेदभाव की अनुपस्थिति के द्वारा ही राष्ट्रीय एकीकरण की सांस्कृतिक पूर्व अपेक्षाओं को समझा जा सकता है। संरचनात्मक और सांस्कृतिक जटिलताओं के कारण भारतीय समाज में वैचारिकीय अन्तर स्वाभाविक है, परन्तु लोगों को एक राष्ट्र

के रुप में संगठित रखने के लिये "राष्ट्रीय लक्ष्यों"के बारे में एक निश्चित स्तर पर मतैक्य अत्यावश्यक है।

राष्ट्रीय एकीकरण समाज के कुछ बहुत सकारात्मक पहलू हैं भावात्मक एकता की भावना को प्रोत्साहित करने के अतिरिक्त, राष्ट्रीय एकीकरण से लोगों को अनिष्टकारी शक्तियों के विरुद्ध लड़ने की शक्ति प्राप्त होती है। राष्ट्रीय एकता और संश्लिष्टता की स्थिति में सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विषमताएँ और असमानताएँ कम होती हैं। जब राष्ट्रीय एकता तीव्र और व्यापक रहती है तब तोड़ने वाली और विभाजनकारी शक्तियां निष्क्रिय हो जाती हैं। राष्ट्रीय एकीकरण एक सकारात्मक अवधारणा है, और इसलिये विकास और सामाजिक परिवर्तन की गति इससे तेज हो सकती है।

इस प्रकार राष्ट्रीय एकीकरण एक बहुआयामी अवधारणा है। इसके सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक और धार्मिक आदि अनेक आयाम हैं। राष्ट्रीय एकीकरण समूह विशेष के राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय परिवेश में उसकी संदर्भात्मक स्थिति पर निर्भर करता है।

राष्ट्रीय एकीकरण क्या है? यह कहा जा सकता है कि समाज में ठहराव लाकर "राष्ट्रीय एकीकरण"किया जा सकता है। इस प्रकार परिवर्तन या संघर्ष का न होना भी एकीकरण की अवस्था कहा जा सकता है। परन्तु ठहराव के अन्तर्गत गतिहीनता या परिवर्तन और संघर्ष का अभाव एकीकरण के सूचक नहीं हैं, बल्कि वे विघटन के प्रतीक हैं। विकास, परिवर्तन और गतिशीलता एकीकरण के साथ पाए जाते हैं। जो एकीकरण द्वारा प्राप्त किया जाता है वह समाज को बंद या ठहराव की स्थिति में रखने की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

शब्द "राष्ट्रीय एकीकरण" की एक स्पष्ट मान्यता यह है कि समाज के सदस्यों के आदर्श और आकांक्षाऐ, भावात्मक बन्धन और मूल्यांकन एक से होने चाहिए। नव स्वतंत्र देशों के संदर्भ में गुन्नार मिर्डल का मत है :"लोगों में एक सम्पूर्ण राष्ट्र की धारणा होनी चाहिए और इससे पहले की वे यह सोचें कि राष्ट्रीय स्वतंत्रता और राष्ट्रीय संगठन उत्तम ध्येय हैं तथा अन्य "आधुनिकीकरण आदर्श" केवल स्वतंत्र और संगठित राष्ट्र होने की स्थिति में ही प्राप्त किये जा सकते हैं - उन्हें इस धारणा राष्ट्रवाद) को सकारात्मक मूल्यों की दृष्टि से देखना चाहिए।"मिर्डल के अनुसार "राष्ट्रीय एकीकरण" "राष्ट्रवाद" के समतुल्य है, अर्थात् उपनिवेशवाद के विरुद्ध राष्ट्र की भावना, और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद साम्प्रदायिकता, भाषावाद, क्षेत्रीयवाद और विघटनकारी शक्तियों के विरुद्ध भावना ही राष्ट्रीय एकीकरण है।

गुन्नार मिर्डल के अनुसार, राष्ट्रीय एकीकरण मुख्यत: एक राजनैतिक प्रघटना है, परन्तु विकास के लिये आयोजन और "आधुनिकीकरण आदर्शों" की प्राप्ति (भारत को बेहतर बनाने हेतु परिवर्तन) से राष्ट्रीय एकीकरण जुड़ा हुआ है। अत: राष्ट्रवाद के विकास के लिये आयोजन नीतियां सकारात्मक शक्ति हैं। राष्ट्रवाद के द्वारा विकास के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर किया जा सकता है।

भारत में अनेक विद्रोही आन्दोलन हुए हैं। विभिन्न राज्यों के बीच सीमा विवादों के कारण क्षेत्रीय शक्तियों को बल मिला है। अनेक राज्यों ने उन विषयों के बारे में स्वायत्तता की मांग की है, जिनको केन्द्र सरकार के अधिकार क्षेत्र से हटाने पर राष्ट्रीय एकता और सुदृढ़ता खतरे में पड़ सकती है। भारत में चुनाव में जाति, धर्म और भाषा पर आधारित निष्ठाऐं प्रभावी रहती हैं, और इनके कारण प्रजातंत्र और राष्ट्रीय एकीकरण दोनों ही कमजोर होते हैं।

भारत में भिन्न-भिन्न पृष्ठभूमि वाले अलग-अलग राज्य, जातियां और समुदाय हैं। राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या का अभिप्राय इन सबको कुछ सामान्य भावात्मक बन्धन और दृष्टिकोण के साथ,

एक साथ जोड़ने से है। स्वातंत्रयोत्तर भारत में क्षेत्रीयवाद और भाषावाद राष्ट्रीय समस्याओं के रुप में उभर कर आए। भारतीय समाज में जाति और समुदाय पर आधारित खण्डीकरण एक शाश्वत प्रघटना है। इन दोनों के कारण कभी-कभी परिवर्तन और विकास की प्रजातांत्रिक प्रक्रियाऐं कमजोर हो जाती हैं, और इससे राष्ट्रीय एकीकरण को खतरा उत्पन्न हो जाता है। इन शक्तियों के कारण ही चुनाव दूषित हो जाते हैं। ऐसा लगता है कि प्राचीन और नवीन का एक-दूसरे के साथ संघर्ष है। प्राचीन इतना शक्तिशाली है कि उसे नया हटाने में असमर्थ है। पुरानी शक्तियों ने नवीन शक्तियों को अपने में समा लिया है और इस तरह स्वातंत्रयोत्तर भारत में उनके पूर्ण और सही रुप को उभरने से रोका है। परम्पराओं पर काबू पाने में धर्मनिरपेक्षवाद परिवर्तन की एक प्रक्रिया के रुप में सफल नहीं रहा है, क्योंकि परम्परा धर्म निरपेक्षता को आत्मसात करने में बहुत हद तक सफल रही है।

राष्ट्रीय एकीकरण का बहुलवादी दृष्टिकोण पश्चिम और भारतीय राज्य व्यवस्था दोनों से उभरा है। समाज में संसाधनों का अभाव है, और इन संसाधनों को प्राप्त करने के लिये प्रतियोगिता करते हैं। प्रतियोगिता की इस प्रक्रिया में विरोध, उग्रता, संघर्ष आदि का सामना करना पड़ता है। धार्मिक, भाषायी और क्षेत्रीय पहचान के आधार पर समूह निर्मित हो जाते हैं, और इन आध्य समूहों से सम्बन्धित लोग अपने सम्बन्धों का शोषण करके समाज के सीमित साधनों से लाभ लेना चाहते हैं।

ऐसी स्थिति के कारण "परम्परा"और "आधुनिकता" के बीच द्विभाजन की समस्या भी सामने आती है। परम्परा आधुनिक शक्तियों को आत्मसात करके अपने स्वयं के रुपान्तरण द्वारा परम्पराकृत करती है। परम्परा की संरचना में आधुनिकता को आत्मसात किया जाता है, परन्तु ऐसे आत्मसातीकरण से वास्तव में पुराने और नए तत्वों का एकीकरण नहीं होता है। इसके परिणामस्वरुप वितरणीय न्याय या समतावाद की प्रक्रिया नहीं उभरती है। इन सभी के परिणामस्वरुप एक ऐसे सामाजिक ढाँचे की रचना हो सकती है जिसमें आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक शक्ति परम्परात्मक अभिजात वर्ग के पास अधिक केन्द्रित रहे। जातियां, हित समूह और गुट बन चुकी हैं, और कभी-कभी तो सामाजिक और राजनैतिक संगठन के उपायों के रुप में भी दिखाई देती है।

भारत जैसे बहु-धार्मिक, बहु-जातीय और बहु-भाषायी समाज में राष्ट्रीय एकीकरण के लिये, "बहुलवाद"और सहअस्तित्व का दर्शन मूल है, क्योंकि बहुसंख्यक समुदाय के धर्म या उसकी जीवन प्रणाली में अन्य धर्मों पर छा जाने की प्रवृत्ति है। ऐसा होने पर, पारस्परिक अविश्वास और अन्य समस्याऐं उत्पन्न हो जाती हैं। बहुल समाज में धर्म, सजातीयता या भाषा पर आधारित सोपानीकरण के कारण विघटन को बढ़ावा मिलता है। हमें सहिष्णुता, समानता और राष्ट्रीयता के मूल्यों को मन में बैठाना चाहिये। यह तभी संभव है जब राज्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से एक धर्म या समूह को अन्य धर्म या समूह की मत पर बढ़ावा न दे।

राष्ट्रीय एकीकरण के संदर्भ में अल्पसंख्यकों का प्रश्न भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। हमने इस बात का उल्लेख किया है कि "अल्पसंख्यकों" की एक मान्य परिभाषा बना पाना कठिन है। असम, बंगाल और बिहार में मारवाड़ी अल्पसंख्यक समुदाय हैं, परन्तु इन राज्यों में व्यापार और वाणिज्य उनके नियन्त्रण में हैं। इन क्षेत्रों में स्थानीय जनता उन्हें "बाहरी"और "शोषक" समझती है। असम, बंगाल, उड़ीसा और कर्नाटक में ' 'भूमिपुत्र"आन्दोलन हुए हैं। कुछ वर्षो पूर्व उड़ीसा के बोलांगीर जिले में ' 'भूमिपुत्र" आन्दोलन के समर्थकों द्वारा मारवाड़ियों को लूटा गया और जान से मारा भी गया था। इस तरह के आन्दोलन का एक गम्भीर आशय यह है कि लोग एक राज्य या क्षेत्र में अन्य राज्य या क्षेत्र से प्रवसन नहीं कर सकते।

अल्पसंख्यकों की समस्या को निचोड़ यह है कि उनको न केवल संख्या और सजातीय पृष्ठभूमि की दृष्टि से बल्कि लोगों की वास्तविक सामाजिक-आर्थिक स्थिति और उनके राजनैतिक और सांस्कृतिक आकांक्षाओं के संदर्भ में भी पहचानना चाहिये। इन कसौटियों के आधार पर अल्पसंख्यक समूहों और व्यक्तियों की पहचान करने के पश्चात असमानताओं और भेदभावों को कम करने और समतावाद को शुरु करने के लिये वितरणीय न्याय के सिद्धान्त को क्रियान्वित करने की आवश्यकता है।

3.20 सारांश

भारतीय समाज विभिन्न सजातीय, धार्मिक, भाषायी, और क्षेत्रीय समूहों का न केवल एक संकलन है, वरन् प्रत्येक समूह अपनी ऐतिहासिक और सामाजिक-सांस्कृतिक विशेषताओं में विभेदीकरण के संदर्भ में बहुत जटिल भी है। एक और विभिन्नता के प्रतिमानों के विश्लेषण द्वारा भारतीय समाज में निरन्तरता और परिवर्तन के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है। भारतीय समाज बहुत सीमा तक एक अद्वितीय परिदृश्य है जिसमें भूतकाल में विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों, धर्मों और भिन्न-भिन्न सामाजिक पृष्ठभूमि के लोगों का समावेश हुआ है। जीवन के प्रतिमानों, जीवन प्रणालियों, प्रबन्ध व्यवस्थाओं, व्यवसायों, विरासत और उत्तराधिकार के नियमों और जीवन-यात्रा संस्कारों में विभिन्नताऐं परिलक्षित होती हैं। इनमें से कुछ सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक विभेदों को ब्रिटिश शासन ने प्रबल किया। भारत के संविधान में एकता की धारणा अन्तर्निहित है, क्योंकि इससे धर्म निरपेक्षवाद, समाजवाद और लोकतन्त्र के प्रमुख आदर्शों को उद्घोषित किया गया है।

सोपान और असमानता की भारतीय परम्परा में गहरी जड़ें हैं। असमान जाति और वर्ग समूहों के रुप में व्यवहार में भी सोपान और असमानता पाई जाती है। असमान जाति और सामाजिक-आर्थिक समूहों के बीच जैवकीय कड़ियों और अन्तरिर्नभरता के कारण सोपान और असमानता निरन्तरता और स्थिरता के रुप में पाई जाती है। फिर भी भारतीय समाज में विदेशी आक्रमणों, प्रवसन, प्राकृतिक विपदाओं, सत्ता के लिए संघर्ष और मुगल तथा ब्रिटिश नीतियों के कारण परिवर्तन हुआ है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् उद्योग और कृषि के क्षेत्रों में मुख्यत: पंचवर्षीय योजनाओं और विकास के उपायों द्वारा परिवर्तन लाए गए के क्षेत्रों में मुख्यत: पंचवर्षीययोजनाओं और विकास के उपायों द्वारा परिवर्तन लाए गए है। उच्च शिक्षा का विस्तार वृहद् स्तर पर हुआ है। कुछ शिक्षित लोगों को लाभ पहुँचा है, परन्तु कुछ लोगों को उचित रोजगार प्राप्त करने में कठिनाई आई है।

स्वातंत्रयोत्तर भारत में वितरित न्याय के अभाव के कारण नए प्रकार की सामाजिक और आर्थिक विसंगतियां उभरी हैं। विकास के कार्यक्रमों द्वारा दलितों और वास्तव मे सामाजिक और आर्थिक प्रगति की आवश्यकतापरक लोगों के बजाय परम्परागत समृद्ध लोगों को अधिक लाभ हुआ है। परन्तु शिक्षा और रोजगार के क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों अनुसूचित जनजातियों और अन्य कमजोर वर्गो को लाभ पहुँचा है। आज ये वर्ग सामाजिक दृष्टि से अधिक जागरुक हैं। परन्तु इन्हीं वर्गो में से अधिक जरुरतमंद और गरीबों को बहुत कम लाभ हुआ है

इस पुस्तक में भारतीय समाज और सामाजिक परिवर्तन के बारे में एक व्यापक और विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण प्रदान करने का प्रयास किया गया है।

3.21 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारतीय समाज की विभिन्नता में एकता और एकता में विभिन्नता की स्थिति को समझाइए।
2. भारतीय समाज पर पड़ने वाले विभिन्न संस्कृतियों के प्रभावों को मूल्यांकित कीजिये।

3. सामाजिक एवं सांस्कृतिक आन्दोंलनों ने स्त्रियों एवं पिछड़े वर्गो के उत्थान में क्यायोगदान दिया है? समझाइए।
4. भारत में राष्ट्रीय आन्दोंलन द्वारा आई राजनीतिक चेतना की विवेचना कीजिए।
5. भारत में बंधुता की प्रकृति का विश्लेषण प्रस्तुत कीजिये।
6. भारतीय समाज में जाति एवं जाति व्यवस्था में आये परिवर्तनों की समीक्षा कीजिये।
7. अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं पिछड़े वर्गो के कल्याणार्थ किये जा रहे सरकारी प्रयासों की विवेचना कीजिये।
8. भारत के राष्ट्रीय एकीकरण में आ रही विभिन्न प्रकार की चुनौतियों का मूल्यांकन कीजिये।

इकाई - 4

पुलिस और भारत का जन साधारण

इकाई की संरचना

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 व्यवस्था

4.3 असंगतता

4.4 पारस्परिक धारणाओं की दुविधा

4.5 कानून और व्यवस्था के अनुरक्षण की कठिनाइयाँ

4.6 व्यावहारिक संबंध

4.7 संबंधों की निरोधात्मक संरचना

4.8 पुलिस संस्कृति में भेदन की आवश्यकता

4.9 नई वर्दी में नई पुलिस

4.10 सारांश

4.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य पुलिस और भारत के लोगों से सम्बन्धित निम्न तथ्यों को रेखांकित करना है-

- सामाजिक व्यवस्था की स्थापना और उसके रखरखाव के लिए पुलिस एक व्यवस्था के रूप में।
- भारतीय समाज एवं पुलिस संगठन की मूल्य-प्रणालियों की असंगतता, विभिन्न धारणाएँ एवं पुलिस कार्यो का निर्वहन।
- पुलिस एवं कम्युनिटी के संबंध, इनकी बनावट एवं इनमें परिवर्तन।
- भारतीय समाज में पुलिस भूमिका का नवीनीकरण।

4.1 प्रस्तावना

किसी भी समाज में सामाजिक व्यवस्था की स्थापना और रखरखाव के लिए, पुलिस को एक पूर्व-शर्त के रूप में देखा जा सकता है। विडंबना यह है कि जब पश्चिम के विकसित समाज अशिष्ट-ताकत के अनेक संस्थानों में बंटे हुए होते हैं, किसी न किसी प्रकार की समृद्ध और सार्वभौमिक जन-शिक्षा के बीच सिविल पुलिस की एजेंसी को मजबूत बनाए हुए रहे हैं। भारत जैसे विकासशील समाजों में, जहाँ कानून और व्यवस्था की स्थिति राजनीतिक स्थिरता और विकास के प्रशासन के लिए बुनियादी सुदृढ़ता प्रदान करती हैं, वहां कानून के मृत शब्दों को निष्पादित करने के लिए पुलिस संगठन का द्विभाजन कर उसे एक अर्ध-सैनिक मशीन के रूप में देखना बचकाना पन लगता है। देश के पुलिस प्रशासन में राष्ट्रीय गतिविधि के सभी महत्त्वपूर्ण अधिकार शामिल किये जा सकते हैं और राष्ट्र-निर्माण के लिए इन्हें अभ्यास में लाने के लिए इनका अपना योगदान है। लोकतंत्र, विकास और कल्याण को, पुलिस की भूमिका के प्रति आम नागरिकों की धारणा और संज्ञान तथा देश में सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों के प्रति पुलिस व्यवहार के अनुभवों के संदर्भ में परिभाषित किया जाता रहा है। राजनेताओं, असैनिक कर्मचारियों, अपराधियों और नागरिकों, सभी को पुलिस की आवश्यकता होती है। राजनीतिक संगठन

का चाहे जो भी रूप या स्वरूप हो उसे अपनी परिभाषानुसार न्याय, शांति और सामाजिक कल्याण को सुनिश्चित करने के लिए सिविल पुलिस को नियुक्त करना ही पड़ता है। सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं में और इतिहास केसभी चरणों में एक आम आदमी के लिए पुलिस, कानून, प्रभुत्त्व और दिखने वाली शासक की अवधारणाओं का प्रतीक होती है। पुलिस को 'कानून का अंग' के रूप में परिभाषित और घोषित किया गया है और जहां कानूनतोड़ने वाले और अपराधियों द्वारा पुलिस से डरने की उम्मीद की जाती है वहीं सड़क पर चलने वाले और कानून का पालन करने वाले आम आदमी को शक्तिशाली और कपटी लोगों द्वारा लूटमार और शोषण के खिलाफ पुलिस से सहायता और संरक्षण की उम्मीद भी करनी चाहिए। राज्य में पुलिस की तरह ऐसी कोई भी अन्य एजेंसी नहीं है, (चाहे वह जनता के प्रतिनिधि ही क्यों न हो) जिसका अपने नागरिकों के साथ आमने-सामने का रिश्ता हो। यह सभी व्यापक और सभी समावेशी संगठनों में निहित होती है और देश के दूरस्थ गांवों और ग्रामीणों तक पुलिस को पहुंचना होता है। एक विशिष्ट एजेन्सी के रूप में, एक साथी सहयोगी की तरह समाज का संचालन करने के लिए यह अपेक्षाकृत ज्यादा समरूप और अनुशासित संगठन है, जो कि (यदि यह चाहे तो) समाज में कुछ ताकतवर लोगों की अनुशासनहीनता के खिलाफ कमजोर वर्गो की सेवा कर सकती हैं।

4.2 व्यवस्था

लेकिन इस आदर्शवादी सिद्धांत से अलग, कार्यात्मक रूप से पुलिस एक 'सत्ता तंत्र या व्यवस्था' का प्रतिनिधिभी करती है, जिसके गैर-इस्तेमाल से ज्यादा प्रताड़ित होने की संभावना भी बनती है। सभी सरकारी तंत्रों के राजनीतिक सत्तारूढ़ वर्ग ही अंततः इस बात का निर्णय लेते हैं कि पुलिस की भूमिका क्या होनी चाहिए। यहां तक कि गैर-राजनीतिक मामलों में भी कानून और व्यवस्था का संरक्षक होने के बावजूद में पुलिस इस बारे में कुछ नहीं कह सकती है कि कानून कैसे होने चाहिए और कानून के जो भी प्रकार उसे सौंपे गये हैं उनको उस समय के राजनीतिक शासकों की इच्छानुसार लागू करने के अलावा उसके पास और कोई विकल्प ही नहीं है। इसी से मूल समस्याओं का निर्माण होता है और विडंबना यह है कि ऐसी स्थिति पैदा हो जाती है जिसमें सबसे अनुशासित बल को भी समाज में सामाजिक अनुशासनहीनता के लिए ढील देनी पड़ सकती है। आम आदमी को राहत देने की अपेक्षा इसे सामाजिक सेवा, लोकप्रिय अच्छे और राष्ट्रीय सुरक्षा के विचारों का उल्लंघन कर उत्पीड़न, आतंक, षड्यंत्र और भेदभाव के सर्व-विदित साधनों की भूमिका निभानी पड़ सकती है।

4.3 असंगतता

अनिवार्य रूप से सभी समाजों में पुलिस-नागरिक संबंध, एक समाज विशेष में एक निश्चित अवधि की दो प्रमुख परिवर्तनशीलताओं पर निर्भर होते हैं। ये तत्त्व है:

(1) राजनीतिक प्रणाली के वे वैचारिक मूल्य, जिनका अभ्यास नागरिकों के हित के लिए देश के शासक, स्वीकार करते हैं या पसंद करते हैं, और

(2) सामाजिक एवं सांस्कृतिक मापदंड, जो अधिकतर विकासशील देशों में प्रशासनिक संरचना के नौकरशाही लोकाचार को अनुकूलित करते हैं।

अतीत में भारतीय समाज और भारतीय पुलिस संगठन अपनी मूल्य प्रणाली में आश्चर्यजनक रूप से संगत थे और मामूली भ्रष्टता को भी सहन नहीं करते थे। पुलिस संगठन नागरिकों को पूर्ण रूपेण स्वीकार्य था, यद्यपि वह अन्याय, भ्रष्टाचार, दासता, बेपरवाही और सभी पराक्रमी शासकों के मूल्यों को पूरी तरह से साझा करता था। मुगलों ने भारत में एक सामंती समाज की निरंतरता बनाए रखने के लिए एक सामंती पुलिस संरचना का निर्माणकिया। अपने देश में नागरिक पुलिस (बॉबी) की

धारणा से अच्छी तरह परिचित होते हुए भी ब्रिटिश शासकों ने शाही कानून और व्यवस्था को बनाए रखने के लिए औपनिवेशिक पुलिस के मॉडल का निर्माण किया। इसके विरुद्ध राष्ट्रवादी नेताओं ने उल्लंघन और उपेक्षा की एक आम सहमति बनाई। आजादी के बाद, भारतीय समाज में, विकास के लाभों के समान वितरण की मांग उठी। जन-अधिकार के वैज्ञानिक और मानवीय मूल्यों, व्यक्तिगत स्वतंत्रता, कमजोर वर्गो के प्रति न्याय और समतावाद आवश्यक रूप से उजागर हो कर सामने आया। इसने आम नागरिक को नवीन राजनीतिक मूल्यों का एक ढांचा प्रदान किया जो कि उन सामाजिक मूल्यों के साथ एक जो इतनी तेजी से नहीं बदले थे, एक तारतम्यता स्थापित नहीं कर पाया। सरल शब्दों में कहा जाए तो, भारतीय राजनीतिक प्रणाली उस भारतीय समाज की तुलना में अधिक आधुनिक होने के लिए प्रयासरत रही है जिसने संकीर्ण, बहुल और भेदभाव से ग्रस्त और यहां तक कि भ्रष्ट होना भी जारी रखा है। नागरिकों का सत्ता विरोधी पूर्वाग्रह अतीत की विरासत है, जिसमें लोकतांत्रिक व्यवस्था में विकास के तनाव और सत्ता के क्षरण ने राजनीतिक हिंसा और प्रशासनिक भ्रष्टाचार के नए आयाम जोड़े हैं।

भारतीय पुलिस संगठन, जिसके वर्तमान रूप की कल्पना 1861 में की गई थी और फिर 1902 में जिसका पुनर्निर्माण किया गया वह केवल एक दर्शक, एक पीड़ित और यहां तक कि समाज का उत्पीड़क बनी रही, बीसवीं सदी के दौरान सभी कष्टों और निकल परिवर्तनों से गुजरते हुए पुलिस का ब्रिटिश ढांचा समुदाय से एक दूरी बनाए रखते हुए औपनिवेशिक सरकार को जारी रखता रहा॥ आजादी के बाद भारत ने एक नागरिक पुलिस संगठन को विकसित करने का प्रयत्न ही नहीं किया, हालांकि सभी प्रकार के नागरिकों को यही बतलाया गया कि पुलिस अब कोई कॉलोनी नहीं चला रही है बल्कि उनके जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति की सुरक्षा, प्रतिरक्षा के लिए ही मौजूद है। यह अंतराल असंतुलन का कारण बना और नागरिक, सैनिक, जिला, केंद्र और विकासशील प्रशासन सहित समाज के अन्य क्षेत्रों के सम्मुख पुलिस की भूमिका ने कम्युनिटी के साथ-साथ पुलिस को भी किंकर्तव्यविमूढ़ कर दिया।

सभी सार्वजनिक प्रशासन नागरिकों के लिए होते हैं। लेकिन पुलिस प्रशासन, अपनी कार्य प्रकृति और संभावनाओं की वजह से अधिक व्यापक है। हो सकता है कि इसकी सकारात्मक गतिविधि का सभी नागरिकों की दैनिक जीवन पद्धति पर कोई सीधा प्रभाव न पड़े, लेकिन निश्चित रूप से इसकी अनुपस्थिति से उनकी सुरक्षा और अस्तित्व पर ही खतरा पैदा हो जाता है। यह आम धारणा कि पुलिस केवल अपराधियों के साथ ही पेश आती है, एक भ्रम है क्योंकि वास्तव में पुलिस, पुलिस स्टेशन, कानूनी अदालतों, जेलों और यहां तक कि अस्पतालों जैसी एजेंसियों के माध्यम से भी एक समुदाय में अपराधी और गैर-आपराधिक नागरिकों की किस्मों के बीच एक कठिन संतुलन और लगातार संघर्ष-विराम बनाए रखती है। आंतरिक सुरक्षा बनाए रखना और अपराध की रोकथाम करना पुलिस संगठन का प्राचीनतम पारम्परिक कार्य है जो इसके अनुरूप है। पुलिस, सभी नागरिकों के साथ व्यक्तिगत रूप के साथ-साथ सामूहिक रूप से सरोकार रखती है, उसे विशेष रूप से विशेष प्रकार के कानून का उल्लंघन करने वाले नागरिकों को जो अंततः सामान्य रूप से नागरिकों के जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति के साथ छेड़खानी करते हैं उनके साथ भी पेश करना पड़ता है। पुलिस और समुदाय की दुर्दशा बहुत हद तक एक पारंपरिक समाज को व्यवस्थित करने की प्रक्रिया में निहित है। अत: किसी भी लोकतांत्रिक समाज में इस पुलिस-समुदाय संबंध के समस्या क्षेत्रों की पहचान करने की आवश्यकता है। भारत में पुलिस पर नजर रखने वालों और पुलिस सुधारकों को एक स्वस्थ्य संबंध की किस्म के विकास के लिए पुलिस-समुदाय के आचरण में आपसी शिक्षा के व्यापक कार्यक्रम को विकसित करना पड़ेगा।

4.4 पारस्परिक धारणाओं की दुविधा

पुलिस अपराधों की रोकथाम कर अपराधियों को पकड़ने के लिए नियंत्रण द्वारा समाज की सेवा करने के लिए बनी है। इसी प्रकार, पुलिस को अपने आधिकारिक कार्यो के कुशल और प्रभावी निर्वहन के लिए नागरिकोंकी सहायता, सहयोग और मदद की दिन-रात आवश्यकता होती है। बड़े पैमाने पर जनता का समर्थन प्राप्त होने पर ही पुलिस की, समस्याओं को हल किया जा सकता है। पुलिस के काम, जैसे कि मामलों की जांच, अपराध की रोकथाम, गुप्त सूचना एकत्रित करने और कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने में, जनता का सहयोग हमेशा आवश्यक और यहाँ तक कि अपरिहार्य होता है। पुलिस का काम सामाजिक एवं गैर सामाजिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होने के कारण वह शून्यता में क्रियान्वित नहीं हो सकता। पुलिसकर्मी जिस जनता की सेवा करते हैं उसके मूल्यों और नजरिये को भी वे दर्शाते हैं।

लोकतांत्रिक ढ़ांचे में छ: दशकों तक काम करने के बावजूद भारतीय पुलिस अपने संगठन से जुड़े औपनिवेशिक कलंक को दूर करने में सक्षम नहीं रही है। इसे एक विदेशी शक्ति के हाथों में आतंक और खौफ के उपकरण के रूप में आरम्भ किया गया था। आजादी के बाद का विकास भी इसके अपारदर्शी घर में कुछ खरोंचें भी नहीं लगा पाया। इसका नागरिकों के साथ दुश्मनी का बर्ताव तो नहीं पर अवमानना करना अभी जारी है। इसने सामाजिक विनियमन की लोकतांत्रिक एजेंसी और आम जनता की सुरक्षा और कल्याण के लिए समर्पित लोकप्रिय सेवा के रूप में स्वयं को स्थापित करने का प्रयास तो किया है पर वह प्रभावी नहीं है। यह अभी तक लोगों द्वारा स्वयं के काम के प्रति स्नेह और सम्मान उत्पन्न करने आर स्वीकार्यता प्राप्त करने में अधिक सक्षम नहीं हो पाई है। आम तौर पर लोग पुलिस को सत्ता आरूढ़ पार्टी के एजेंट के रूप में ही देखते हैं, जो कि अपने राजनीतिक शासकों और प्रशासनिक वरिष्ठों के इशारों पर, बिना किसी पछतावे और मलाल की भावना के हुकूमत के आतंक को ढील दे सकती है और सभी प्रकार के अवांछनीय कर्म भी कर सकती है। आम तौर पर लोगों को लगता है कि पुलिस बल अक्षम, क्रूर, स्तरहीन और यहां तक कि भ्रष्ट भी हैं। वह नैतिक मूल्यों से वंचित हैं कुछ अधिकारी तो ज्यादातर अपने व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि के लिए ही कार्य करते हैं। वे भय और आतंक पैदा करते हैं और निर्दोष लोगों को भयभीत करने में खुश होते हैं। एक संगठन के रूप में वे 'अलगाव' पैदा करते हैं और स्वाभाविक रूप से उस समाज द्वारा तिरस्कृत किये जाते हैं जो उन्हें परित्यक्त सा महसूस कराता है।

बदले में, पुलिस के खिलाफ लोगों के ये विचित्र विचार, पुलिस बल के सदस्यों द्वारा लोगों के खिलाफ समान रूप से विद्वेषपूर्ण विस्फोट का कारण बन जाते हैं। जाहिर है कि भारत में पुलिस और समुदाय को जैसा करना चाहिए दोनों ही उस प्रकार के कार्य नहीं कर रहे हैं, और लोकतांत्रिक, समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष समाज की उम्मीदों से परे दोनों के बीच की एक दूरी बढ़ गयी है। समुदाय के प्रति पुलिस के रवैये के लिए किए जाने वाले परीक्षण के विभिन्न सर्वेक्षणों और अध्ययनों में अक्सर, लोगों का पुलिस के प्रति अमित्रतापूर्ण नजरिया प्रदर्शित हुआ है और साथ ही वे व्यापक प्रकृति वाले निष्कर्षों को प्रतिपादित करने में भी समान रूप से वह नकारात्मक रहा है।

यह पाया गया है कि पुलिस के साथ अपने सीमित संपर्क के कारण लोगों का एक बड़ा वर्ग पुलिस और उनके कार्य प्रदर्शन के प्रति लिए अधिक अच्छी राय नहीं रखते। पुलिस के कार्य और उनकी भूमिका के बारे में लोगों में बहुत कम जागरूकता है क्योंकि ज्यादातर लोगों का यह मानना है कि पुलिस की भूमिका बस शांति बनाए रखने और नागरिकों के जीवन और स्वतंत्रता के संरक्षण जैसे दो

उद्देश्यों तक ही सीमित है। अपराध की रोकथाम, जांच, अभियोग और सामाजिक कानून का कार्यान्वयन जैसे क्षेत्रों में पुलिस की भूमिका के बारे में लोगों को बहुत कम जानकारी है। जहां तक उनकी भूमिका के प्रदर्शन का संबंध है, कम्यूनिटी का केवल एक बहुत छोटा सा हिस्सा ही यह स्वीकार करता है कि पुलिस मददगार होती है। इसके विपरीत भारत के एक बड़े वर्ग का यह मानना है कि पुलिस भेदभाव और पक्षपात और अन्याय के साथ कार्य करती है। उनके मत में, पुलिस पेशे से अक्षम, क्रूर और भ्रष्ट है। यह भी पाया गया है कि पुलिस और लोगों के बीच के संपर्क बहुत नियमित और अंतरंग नहीं होते। उनमें पारस्परिक विश्वास की कमी है। लोगों को पुलिसकर्मियों की ईमानदारी ओर निष्ठा पर शक रहता है और वे उनकी मनमानी और उनके तहत मामलों की जांच के दौरान उपयोग में लाए जाने वाले संदिग्ध तरीकों की शिकायत भी करते रहते हैं।

यह देखना उपयुक्त होगा कि भारत के उच्च शिक्षित लोगों को भी इस बात का विश्वास नहीं है कि भारत के पुलिसकर्मियों और समुदाय की व्यवस्था बनाए रखने के उनके कार्य में पिछले कुछ समय में कोई सुधार हुआ है अथवा नहीं। इसी प्रकार ग्रामीण लोगों के एक बड़े हिस्से का भी यही मानना है कि पुलिस सरासर जोर-जबरदस्ती करने और सरकारी हिंसा की एक एजेंसी जैसी है। लेकिन फिर इस खराब छवि, आरोपित अक्षमता और अन्य पेशेवर सीमाओं और स्वभावगत विकृति के बावजूद पुलिस ही अकेली ऐसी एजेंसी है जिससे भारत के ज्यादातर लोग आवश्यकता पड़ने पर या किसी गंभीर तबाही के समय, या दिनदहाड़े किसी जघन्य अपराध घटित होने पर संपर्क करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। राज्य के लिये यह स्वयंसिद्ध है कि भारत में पुलिस की कार्यात्मक छवि खराब है और सभी वर्गो के लोग इसे बहुत कम सम्मान के साथ देखते हैं। इससे पुलिस-समुदाय के रिश्ते के सतत प्रवाह में बाधा पहुंचती है। दोनों ही इस बात को स्वीकार करते हैं कि सामान्य तौर पर उनके सदस्य असहयोगपूर्ण हैं, ज्यादातर उदासीन, और शायद ही कभी एक दूसरे के प्रति मित्रवत हैं। इसके अलावा पुलिस द्वारा उनके काम के दौरान आने वाली कठिनाइयों के प्रति लोगों के बीच भारी अज्ञान है। इसी प्रकार पुलिस भी जनता की मुश्किलों के प्रति बुरी तरह लापरवाह है। स्वाभाविक है कि समुदाय, पुलिसकर्मियों को अपने मित्र के रूप में स्वीकार नहीं करता है और पुलिसकर्मी भी लोगों के दुर्भाग्य के साथ विशेष कर दीन-हीन और हारे लोगों के साथ स्वयं का तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाती। इसके अलावा भारत में पुलिस-समुदाय संबंधों का एक विशेष संदर्भ है। संपर्क छोटे और नकारात्मक होते हैं इसलिए आम तौर पर पुलिस उनके साथ बिना किसी व्यक्तिगत अनुभव के उनके बारे में अपने विचार और राय बना लेती है। ठीक इसके विपरीत, जिनका पुलिस के साथ संपर्क होता है उनके मन में पुलिस संगठन की बेहतर छवि पैदा हो जाती है। इससे यह इंगित होता है कि सामान्यतया पारस्परिक अंतःक्रिया की कमी ही प्रतिकूल छवि के गठन का कारण बन जाती है जो आम तौर पर अफवाहों पर आधारित होती है।

छवियों का एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में विशेष महत्व होता है; यद्यपि छवि और वास्तविकता में ज्यादा सही सम्बन्ध नहीं मिलता। ईमानदार लोग बहुधा अपनी छवि की परवाह नहीं करते जबकि शैतान और बदमाश लोग अपनी छवि को Project कर अपनी कुकृत्यों को छुपा लेते हैं। पुलिस प्रशासन अपनी छवि सुधारने की परवाह नहीं करता और मीडिया के साथ उसके नकारात्मक सम्बन्ध होने के कारण यह छवि वास्तविकता के सुधर जाने पर बिगड़ी हुई लगती है। इस क्षेत्र के पुराने और नये अध्ययनों में भारी अन्तर आ रहा है और जन साधारण परिवर्तन को देख रहे है पर वे उसे वैसा नहीं पाते जैसा कि होना चाहिए। अर्थात् पहले से अच्छी पुलिस की भी छवि अधिक अच्छी नहीं मानी जाती क्यों कि लोगों की अपेक्षायें बढ़ रही है।

सन् 2000 में राजस्थान के एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी द्वारा समुदाय के प्रति पुलिसकर्मियों के रवैये और उनके पेशेवर कर्तव्यों के निर्वहन के लिए लोगों द्वारा प्राप्त सहयोग की मात्रा और प्रकृति के मूल्यांकन के लिए एक सर्वेक्षण आयोजित किया था। अध्ययन से पता चला है कि राज्य के विभिन्न रैंकों के पुलिस अधिकारियों ने यह महसूस किया कि लोग पुलिस के प्रति उदासीन थे और निचले तबके के लोगों के साथ देखें तो उनमें दुश्मनी और आक्रामकता अधिक थी। इस सर्वेक्षण के कुछ निष्कर्षो का सार इस रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है:

	नहीं	हां
1. क्या जनता सरकारी कार्यो में भागीदारी के लिए तैयार है?	%80	%20
2. क्या पुलिस के खिलाफ दर्ज की गई शिकायत सच है?	7%0	3%0
3. क्या लोगों के साथ आपके अनौपचारिक संबंध हैं?	6%0	4%0
4. क्या आप दबाव के बिना काम कर सकते हैं?	65%	35%
5. क्या आपके कार्य के लिए सार्वजनिक सहयोग आवश्यक है?	--	% 100

केवल 20%उत्तरदाताओं का मानना था कि उनके पेशेवर कामोंमें उन्हें स्वैच्छिक सार्वजनिक भागीदारी प्राप्त है। यहां तक कि पीड़ित व्यक्तियों की भी यही कोशिश थी कि उनकी समस्याओं का समाधान अनौपचारिक रूप से हो जाए क्योंकि वे तकनीकी और कानूनी औपचारिकताओं में नहीं पड़ना चाहते थे। उनके खिलाफ शिकायतें या तो झूठी या प्रेरित थीं क्योंकि पुलिस ने इस प्रकार काम नहीं किया कि शिकायतकर्ताओं को लाभ प्रदान हो। 60% पुलिसकर्मियों का लोगों के साथ किसी भी प्रकार का गैर-स्थितिजन्य संपर्क नहीं था। उन्होंने लोगों के साथ अनौपचारिक संबंध बनाने के लिए मिलने की कोशिश नहीं की। मिश्रित नमूनों के उत्तरदाताओं का 65% ने यह महसूस किया था कि उन्होंने दबाव में काम किया है और फिर 60% से भी अधिक मामलों में वे बाहरी दबाव की वजह से अपने काम के प्रति न्याय करने में सक्षम नहीं थे। यह उल्लेखनीय है कि उत्तरदाताओं के 70% की यह राय थी कि बड़े पैमाने पर लोगों के स्पष्ट असहयोग की वजह से उनके काम उचित मानकों के नहीं हो सके। सभी पुलिस अधिकारियों, कनिष्ठों, यहां तक कि वरिष्ठ अधिकारियों ने जिनका इस अध्ययन में साक्षात्कार किया गया था पुलिस के कर्तव्यों निर्वहन में जनता के इस वांछनीय और आवश्यक सहयोग पर जोर दिया। दरअसल यह प्रदर्शित करने के लिए अधिक अध्ययन की आवश्यकता नहीं है कि भारत में पुलिस - समुदाय संबंध आज भी एक असंतोषजनक स्थिति में हैं। संबंध शायद अनुमानित हों और वास्तव में भारी कठिनाई से भरे हुए हों। लेकिन उनके आंदोलन के समय पुलिस के प्रति उनकी लोकप्रिय सहानुभूति की अभिव्यक्तियों से संकेत मिलता है कि लोगों में पुलिस कार्यो के प्रति एक छुपी हुई सुप्त सराहना है और सेवा की यह अदृश्य भावना पुलिसकर्मियों में पैदा की जा सकती है। यह काफी दिलचस्प है कि लोगों के मन में इस प्रकार की छवि केवल विरुद्ध मतों पर आधारित है और जरूरत पड़ने पर लोग पुलिस की मदद लेने को तैयार हैं। यह एक स्वस्थ अग्रसूचना है जो भारत में पुलिस - समुदाय के संबंधों के दायरे में एक स्वागत योग्य परिवर्तित का संकेत है। नागरिकों और समुदायों की तुलना में पुलिस का कार्य पुलिस संगठनों को अनेक बुनियादी समस्याओं का सामना करने के लिए विवश करता है। उदाहरण के लिए, सभी समाजों में दोषी, विकृत, हिंसक, पागल और आपराधिक किस्म के ऐसे बहुत से नागरिक मौजूद हैं जो कानून के बंधन के बाहर काम करना पसंद करते हैं और अपने व्यक्तिगत या गिरोह की गतिविधियों के द्वारा समाज के एक बड़े हिस्से का शोषण करने और उन्हें परेशान करने में आनंद लेते हैं। पुलिस को इन दोषी व्यक्तियों या अपराधियों की पहचान, जांच कर अभियोग लगाना और पकड़ना होगा। इसके अलावा, अपराध और अपराधियों के परिसमापन का यह

कार्य निवारक उपायों को आवश्यक बना देता है, जो आगे चल कर पुलिस स्तर पर निस्पन्दन, टकराव और खोजबीन की एक बहुत ही संवेदनशील प्रक्रिया की पहल करने पर जोर देता है। एक अपराध की रोकथाम की एजेंसी के रूप में, पुलिस के खिलाफ समुदाय द्वारा लगाए गए आम आरोप हैं

(1) पुलिस समुदाय द्वारा सौंपे गये का स में अक्षम, अयोग्य और बुरी तरह प्रशिक्षित है।

(2) यह तीसरी डिग्री के तरीकों का इस्तेमाल करती है और नागरिकों साथ अपने पेशेवर व्यवहार में बर्बर है।

(3) यह भ्रष्ट है और जिन अपराधियों का पता लगाना और गिरफ्तार करना चाहती है उसी के साथ लूट को साझा करती है।

दूसरी ओर पुलिस अधिकारी अपनी इस नलिन छवि के बोझ को जिसे उन्होंने सदियों से विकसित किया है, देश के राजनीतिक संगठन और सामाजिक व्यवस्था तथा प्रशासनिक प्रक्रिया पर थोप देते हैं। कुल मिला कर, वे समुदाय को दोष नहीं देते लेकिन इन विचारों को बनाए रखते हैं कि: सामान्य रूप से नागरिकों में अपराध से लड़ने के बजाए उसे कम करने और अनदेखी करने की प्रवृत्ति होती है।

(1) नागरिक तेजी से सरकारी अधिकारियों से निर्भय होने की भावना का विकास कर रहे हैं और साथ ही कानून के स्थायित्व के लिए अनुशासन पैदा करने में विफल रहे हैं।

(2) नागरिकों ने किसी भी तरह एक नागरिक संस्कृति का विकास कर लिया है जिसमें उनकी कुंठाओं के कारण उन्हें लगता है कि विकसित समाज में सब लोग अपराधी हैं और यह पूरी तरह से केवल एक संयोग या चालबाजी है कि कौन कानून का परिचालन कर रहा है और कौन किसका शिकार बन रहा है?

4.5 कानून और व्यवस्था के अनुरक्षण की कठिनाइयाँ

समुदाय और पुलिसकर्मियों की ये दुविधाएं एक दूसरे के संबंधों की धारणाओं पर आधारित हैं जो कि लगातार परिवर्तनशील हैं। अपराध की रोकथाम से, कानून और व्यवस्था के रखरखाव के क्षेत्र में प्रवेश करने पर समस्या को राजनीतिक आयाम प्राप्त हो जाते हैं। पुलिस का समाज में कानून और व्यवस्था के रखरखाव का प्राथमिक कार्य राजनीतिक स्थिरता और संविधान द्वारा प्रत्याभूत नागरिकों के मौलिक अधिकारों के प्रति बुनियादी सम्मान से उत्पन्न होता है। यहां समस्या यह है कि राजनीतिक शासक अपने राजनीतिक शासकों यानी नागरिकों के साथ विभिन्न एजेंसियों के माध्यम से व्यवहार करते हैं जैसे कि प्रेस, राजनीतिक दल, नौकरशाही और अन्य स्वैच्छिक संगठन। पुलिस बीच में एक प्रतिरोधक की तरह आ जाती है और कानून एवं व्यवस्था के संरक्षक के रूप में कार्य करने लगती है जिसे राजनीतिक शासकों द्वारा परिभाषित किया गया है और जो कई बार राजनीतिक शासकों या उनके नेताओं द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता। परिणामस्वरूप अव्यवस्था, हिंसा और कानून के प्रति अनादर, पुलिस के सामने दोनों में से एक का चयन करने बल्कि शासक या नागरिकों की विवेचना को स्वीकार करने और उनके आदेशों को मानने यहां तक कि बेरहमी से निष्पादित करने के अलावा कोई चारा नहीं छोड़ते। अनिवार्य रूप से इससे पुलिसकर्मियों के साथ-साथ कम्यूनिटी को भी अनेक दुविधाओं का सामना करना पड़ता है जबकि शायद दोनों में से कोई भी इस खेल में गहराई से शामिल नहीं रहता हे। पुलिसकर्मी की मुश्किलें ये हैं :

(1) यह जानने के बावजूद कि उसके वरिष्ठ और वरिष्ठ अधिकारी गलत हैं और उनके कानूनों का पालन करने के लिए उसका गलत इस्तेमाल किया जा रहा है फिर भी वह उनसे प्राप्त आदेशों को ना नहीं कह सकता।

(2) निर्धारित प्रक्रियाओं के तहत, कानून उसे दमन या रोकथाम के महज एक उपकरण के रूप में देखता है, जिसका उपयोग करना जिला मजिस्ट्रेट और उसके राजनीतिक वरिष्ठों की समझदारी में निहित होता है।

(3) उसकी छवि इतनी मलिन है और उसके व्यवसाय को समाज द्वारा इतना गलत समझा जाता है कि खतरों के खिलाफ अपने कर्तव्यों का साहसिक और जोखिम भरा प्रदर्शन करने के लिए उसके साथ सहानुभूति रखने की बजाए नागरिक उसके साथ एक ऐसे 'दुश्मन के एजेंट' के रूप में व्यवहार करते हैं जो 'सत्तारूढ़ अपराधियों'के लिए लड़ रहा हो।

इसलिए, भारत जैसे देश में संगठन, कर्मचारी, प्रक्रियाएं और पुलिस प्रशासन की छवि, ईमानदार, कर्तव्यपरायण और अनुशासित पुलिस अधिकारी को नागरिकों की शत्रुतापूर्ण भीड़ के सामने धकेल देते हैं जो अपने वास्तविक मित्रों और शत्रु के बीच भेद नहीं कर पाते। समुदाय का औसत सदस्य जो स्वभाव से भोला होता है, वह या तो अपने नेताओं के हाथों का खिलौना बन जाता है या इतना ज्यादा उत्साही कि जिसे समुदाय की सुरक्षा और शांति के हित में बहुत कुछ सहन करना पड़ता है। जब एक उच्छृंखल स्थिति में इसका सामना पुलिस से होता है तो यह नागरिक ऐसा महसूस करता है कि :

(1) शासक गलत हैं और उसके प्रतिनिधि के रूप में मौके पर जो भी उपलब्ध हैं यानी पुलिस, उन पर अपने क्रोध को निकाल देना चाहिए।

(2) यदि राजनीतिक हलचल के समय पुलिस को नहीं दिया गया तो राज्य के राजनीतिक शासक या प्रशासक मांगों की तात्कालिकता और राजनीतिक न्यायसंगतता को कैसे महसूस करेंगे, अन्यथा जिसे वे समझने से कतराते रहते हैं।

(3) प्रशासन की दृष्टि से जो हिंसा की आशंका या सार्वजनिक संपत्ति का नुकसान लगता है वह एक औसत नागरिक की समझ से परे है जो हमेशा घटना को अलग रूप में देखने लगता है। स्वाभाविक रूप से, समान दृश्य की कुल तस्वीर जिसे वह एक व्यक्ति के तौर पर देखता है और जिसे सरकार एक एजेंसी के रूप में देखती है वह न केवल अलग होगी बल्कि उस पर असहमति भी होगी। परिणामत, पुलिस और मजिस्ट्रेट के पद द्वारा की गई उचित कार्रवाई नागरिक को बहुत ज्यादा लगती है।

इस प्रकार विकासशील देशों में अपराध की रोकथाम और व्यवस्था के रखरखाव के क्षेत्रों में पुलिसकर्मी और नागरिक की भागीदारी में पुलिस कार्य में निहित कार्यात्मक दुविधाएं और अवरोधन होते हैं। सेना के विपरीत पुलिस औसत नागरिक की अनदेखी नहीं कर सकती है। नागरिक प्रशासन के कई अन्य क्षेत्रों की तरह इसकी गतिविधियों का क्षेत्र केवल खण्डयुक्त नहीं है। पुलिसकर्मी चाहे पसंद करें या नहीं, उसे कार्य प्रदर्शन के बारे में नागरिक की अपनी राय होती है और वह हर समय एक संपर्क बनाए रखता है, चाहे यह एक आकस्मिक स्थिति के संपर्क द्वारा ही क्यों न हो। स्वाभाविक है कि सबसे ज्यादा ईमानदार पुलिसकर्मी को भी अपराधी पसंद नहीं करते। अपराध से पीड़ित व्यक्ति को लगता है कि यदि पुलिस सतर्क होती तो त्रासदी टल सकती थी। समाज के कमजोर वर्ग को लगता है कि पुलिस सरकार का एक अंग है, जो शायद उसकी वर्तमान असहाय स्थिति के लिए जिम्मेदार है। एक लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रणाली में राजनीतिक नेता, मजदूर संघ के सदस्य, छात्र कार्यकर्ता और सांप्रदायिक मुश्किलों को दूर करने वाले यह विश्वास करने पर मजबूर हैं कि पुलिस यथापूर्व स्थिति की रक्षक है और 'शासकों का अभिजात वर्ग' जिसे वे बदलना चाहते हैं के हाथों की 'दमन की कठपुतली' है। जब उनकी बेलगाम गतिविधियों को रोका जाता है तो वे फिर से पुलिस को ही दोषी ठहराते हैं और पुलिस राज की निंदा करते हैं। इसलिए प्रणाली चाहे 'खुली' या 'बंद' हो पुलिस नागरिक की मित्र नहीं

हो सकती जब तक कि बुनियादी 'पुलिस दर्शन' न बदले और 'नागरिक-पुलिस' के इस दर्शन में एक मिशनरी के विश्वास की तरह पुलिस संगठन और कार्य की पुलिस प्रक्रियाओं का पुनर्गठन न किया जाए।

4.6 व्यावहारिक संबंध

पुलिस-समुदाय संबंध का क्षेत्र केवल पुलिस-नागरिक संबंधों का क्षेत्र नहीं है, हालांकि पुलिस कम्यूनिटी को बदलने या नई दिशा पर ले जाने के लिए दूर तक जा सकता है। पुलिस की छवि पर किया गया अध्ययन प्रदर्शित करता है कि नागरिकों का बहुमत, कम से कम भारत में, पुलिस के साथ अपने संबंध को केवल अपने व्यक्तिगत सहभागिताओं के अनुभव पर ही आधारित करके नहीं देखता है, बल्कि यह उन सतही विचारों पर आधारित है जो सामाजिक परिवर्तन के एजेंटों जैसे कि प्रेस, सिनेमा, पाठ्य पुस्तकें और राजनीतिक दलों के माध्यम से उन तक पहुंचाए गए हैं। हालांकि सभी नागरिक अपने चारों ओर वर्दीधारी पुलिस की उपस्थिति को देखते और महसूस करते हैं, लेकिन उन्हें शायद ही कभी यह महसूस होता हो कि अधिकांश पुलिसकर्मी वे लोग हैं जिनके साथ एक नागरिक के रूप में उनका आमने सामने का संबंध हो या उनसे बातचीत होती हो। भारत में आधे से ज्यादा पुलिस की ताकत सशस्त्र पुलिस या ऐसी ही यूनियन एजेंसी जैसे बीएसएफ, सीआरपी, आईएसएफ आदि से सरोकार रखती है, और इन पुलिसकर्मियों के साथ आम नागरिक का किसी भी प्रकार का संपर्क स्थितिजन्य मात्र होता है या तब होता है जब कुछ दुर्भाग्य घटित हुआ हो। व्यावहारिक रूप से ऐसा दुर्भाग्यपूर्ण संबंध नागरिकों की नजर में पुलिस की छवि के प्रति पूर्वाग्रह पैदा करता है, जो पुलिस संगठनों के साथ उनके आचरण और संबंधों में परिलक्षित होता है और नागरिक उसके स्टेशन हाउस अधिकारी को क्रुद्ध भीड़ पर डंडे और लाठी बरसाने वाले पुलिस अधिकारी के एक स्वाभाविक उत्तराधिकारी के रूप में देखने लग जाते हैं। केवल यही नहीं, नागरिकों को इस बात के बारे में बहुत कम या नहीं के बराबर जानकारी है कि खुफिया शाखा, एम.ओ.बी. और सी.आई.डी. के सैकड़ों पुलिस अधिकारी उनके लोग और परिवार की असुरक्षा के खतरे को कम करने के लिए कितना उपयोगी और खतरनाक कार्य कर रहे हैं। व्यावाहारिक मजबूरी की वजह से इस अच्छे कार्य का प्रचार भी नहीं किया जा सकता और इसकी गोपनीय प्रकृति के कारण नागरिक अकृतज्ञ बने रहते हैं। फिर भारतीय स्थिति में जहां पुलिस के कुकर्मों का बढ़ा-चढ़ा कर बखान करने में आनंद लेने वाले अनेक प्रतिनिधि मौजूद हैं, वहीं राष्ट्रीय लोकाचार शायद ही कभी पुलिसकर्मियों के उस परिवार को पुरस्कृत करता है जिसने एक तस्कर का पीछा करते हुए अपने पालनकर्ता को खो दिया है।

4.7 संबंधों की निरोधात्मक संरचना

भारतीय संदर्भ में पुलिस-कम्यूनिटी संबंध निम्नलिखित कारकों के कारण मौजूद हैं :

(1) पुलिस की ऐतिहासिक विरासत और छवि, जिसे मिटाने और नई पीढ़ी के सामने उसे नए सिरे से गढ़ने के लिए बहुत कम प्रयास किया गया है।

(2) कार्य की पुलिस पद्धतियाँ जो पुरातन तथा अप्रचलित बनी हुई है और जिनके प्रति पुलिसकर्मी के साथ नागरिकों की भी प्रतिक्रिया अविश्वास के रूप में हैं।

(3) देश में लोकतांत्रिक संस्थाओं की संरचना और कार्य, जिसने राजनीतिक विकास और आधुनिकीकरण के लिए अपने उत्साह में भारतीय पुलिस के लिए अति-तनाव की स्थिति पैदा कर दी है और साथ ही भविष्य में विघटन और सामाजिक अराजकता में अपने वास्तविक डर के कारण पुलिस संगठनों को गतिहीन कर दिया है।

(4) पुलिस पेशे की चुनौतियों के बारे में नागरिकों का पूर्ण अज्ञान और पुलिसकर्मी को जरूरत के समय दोस्त के रूप में देखने के लिए अपने नागरिकों को शिक्षित करने की सुशिक्षित समाज की उदासीनता।

(5) पुलिस नेतृत्व का अर्ध-सैनिक चरित्र जो अपने पुलिस संगठन को कमजोर और जरूरतमंदों की मदद के लिए के लिए एक 'सेवा एजेंसी' के रूप में नियोजित करने के बजाए केवल एक पॉवर मशीन के रूप में देखता है जिसका उपयोग करने के लिए उसे कुशलतापूर्वक चलाया जा सकता हो।

सभी संबंध हैं औरआपसी आरोपों के द्वारा खराब संबंधों की व्याख्या करना निंदा और निष्क्रियता का घटिया अभ्यास होता है।

यह स्वयंसिद्ध है कि पुलिस और समुदाय दोनों संबंध की अवधारणा में नाकाम रहे हैं, जो दुर्भाग्य से भारतीय इतिहास में दोनों के बीच कभी स्थापित भी नहीं हो पाया। इसे समझना होगा कि पुलिस समुदाय के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध कुछ अनोखा है और भारत में पहली बार इसके लिए कोशिश करनी होगी और प्रयासरत रहना होगा। इस संबंध को स्थापित और विकसित करने से पहले धारणात्मक रूप से इस पर विचार करना होगा। यह महामारी से ग्रसित रोगियों के साथ स्वास्थ्य प्रशासन के संबंध जैसा नहीं हो सकता, ना ही यह भारत के नागरिकों के साथ रक्षा सेवाओं के संबंधों जैसा हो सकता है। सैद्धांतिक रूप से माना जाए तो, यदि कोई पुलिस के पेशे की प्रकृति और पुलिस प्रशासन के विभिन्न स्तर पर पुलिस की कार्य पद्धति में विभिन्न तरीकों से शामिल समुदाय के अलग-अलग वर्गो का विश्लेषण करे तो नए और भावी संबंधों के तीन आयामों की कल्पना की जा सकती है

(1) पुलिस को नागरिकों के आपराधिक किस्म के साथ चरम शत्रुता पैदा करनी होगी और उनके साथ पूर्ण बेरहमी के साथ व्यवहार करना होगा।

(2) जो लोग समाज में अपराध और अपराधियों से पीड़ित हैं उनके प्रति पुलिस को बेहद मित्रतापूर्ण, अभिभावक जैसा और स्नेही बनना होगा।

(3) पुलिस को हजारों औसत नागरिकों में से उपरोक्त दो किस्मों को अत्यधिक सावधानी और विशेषज्ञता के साथ चुन कर उनके साथ मित्रता, सभ्यता और शालीन मनुष्य की तरह शिष्टता रखनी होगी।

(4) पुलिस को सभी प्रकार के राजनीतिक नेताओं के प्रति वर्तमान और भावी शासकों के लिए तरफदारी की छवि प्रस्तुत किए बिना सम्मानजनक तटस्थता बरतनी रखनी चाहिए।

यह कहना आसान है पर करना नहीं, फिर भी एक मिशन की तरह और आगे बढ़ने के लिए जिस दृढ़ विश्वास के साहस की जरूरत है उसके साथ इसे करना होगा। कोई भी समाज इस संबंध को कानून नहीं बना सकता, लेकिन सभी समाज अपने सामाजिक मानदंडों और सांस्कृतिक मूल्यों के संदर्भ में इसे विकसित कर सकता है। इसकी उपेक्षा हिंसा और भ्रष्टाचार को आमंत्रित करती है और परिणामस्वरूप समाज में अपराध और अराजकता की घटनाएं होती हैं। दोनों भागीदारों में से कौन अपनी प्रतिक्रिया में नरम है इस बात से इस दुश्चक्र को तोड़ा नहीं जा सकता, बल्कि इस बात को स्वीकार करके कि पुलिस की भूमिका और पुलिस की छवि समुदाय की तुलना में ज्यादा महत्वपूर्ण है। केवल इसलिए कि इसके मूल्यों में असामंजस्य है, पुलिस समाज से अलग नहीं हो सकती है, और केवल इसलिए कि लोग योग्य हैं यह अपनी सीमा को भी नहीं लांघ सकती है। समुदाय के साथ अच्छे संबंध की शुरुआत और अवसर का दायित्व पुलिस पर ही होना चाहिए और ये तर्क कि पुलिस पहले से ही अतिरिक्त परिश्रम कर रही है या पुलिस सर्व प्रसिद्ध तिरस्कार के प्रति और भी उजागर हो जाएगी, या कि पुलिस का बजट या उसकी उपलब्ध निपुणता इसकी अनुमति नहीं देते, असमर्थनीय हैं क्योंकि इसके बिना पुलिस को

वही काम संभालना होता है जिसको वह स्वयं रचती है। शायद पुलिस की छवि महत्वहीन हो, लेकिन आखिरकार लोकतांत्रिक संस्थाओं में विश्वास के क्षरण के संदर्भ में समुदाय या राष्ट्र को जो कीमत अदा करनी पड़ती है वह न केवल आश्चर्यजनक है बल्कि बेहिसाब भी है।

4.8 पुलिस संस्कृति में भेदन की आवश्यकता

पुलिस-समुदाय के बुरे संबंध के लिए जिम्मेदार कारक नानारूप होने के साथ-साथ अस्थिर भी हैं। उनकी पहचान करनी होगी और निरंतरता से उनका अध्ययन करना होगा। संबंध की कुल तस्वीर (जैसा कि सभी सामाजिक या संगठनात्मक संबंधों में होता है) को दो भागीदारों की रूपरेखा और उस वातावरण के साथ देखना होगा जिसमें उन्हें विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उस संबंध के साथ रहना है। इसके अलावा इस संबंध की गतिशीलता इसकी उपलब्धता के तथ्य मात्र से बहुत ज्यादा मौलिक है। एक कल्याणकारी राज्य के लोकतांत्रिक प्रशासन में पुलिस-समुदाय संबंध के विशिष्ट लक्ष्यों को शायद ही किसी पुनरावृति की जरूरत हो। अनिच्छुक सहयोगी सरोकार-आधारित संबंध का सुख तो भोगते हैं, लेकिन संयुक्त उद्यम में एक दूसरे की मुश्किलों के बारे में आपसी पूर्वाग्रहों और भारी अज्ञान से ग्रस्त रहते हैं। स्थितिजन्य कारक तनाव में अपना योग देते हैं और जब तक कि समायोजन होने लगता है, बिगड़ती स्थिति आपसी मांगों के लिए और भी ज्यादा रियायतों की मांग करने लगती है। यहां बाहरी कारकों के अध्ययन के लिए गैर-पुलिस या अन्य सरकारी या सामुदायिक संगठनों की भूमिका शुरू होती है और पुलिस और समुदाय को यह बताने के लिए भी कि क्या चीज उनके संबंध को बिगाड़ रही है? यदि (खेल के भागीदार के रूप में) वे अपनी दृष्टि धुंधली कर लेते हैं और आपसी प्रत्यारोपों में लिप्त हो जाते हैं तो इसका प्रतिकूल असर कैसा होगा? छोटे-मोटे पुलिस अधिकारियों और सड़क के आदमी के बीच मित्रभाव की निधि के निर्माण को लेकर समाज के मनमौजी नेताओं की भूमिका के बारे में पर्याप्त लिखा जा चुका है। प्रेस, रेडियो, टीवी, प्राथमिक विद्यालय, सिनेमा, प्रदर्शनियाँ, सौजन्य सप्ताह आदि का जन संचार और लोकप्रिय शिक्षा की दुनिया में अपना ही प्रभाव और भूमिका है। लेकिन अधिक महत्वपूर्ण है कि पुलिस संस्कृति (Police Culture) में एक भेदन आरम्भ करने का प्रयास करना। यह संस्कृति पेशेवर समाजीकरण का एक अंत-उत्पाद है और भारतीय पुलिस के शानदार युवा अधिकारियों, जो पेशे में एक दशक के संघर्ष के बाद 'पेशेवर आत्महत्या' करने जैसा महसूस करते हैं की रचनात्मकता और उत्साह की भारी वसूली करता है। पुलिस शोध पर अध्ययन और विभिन्न पुलिस आयोग और पुलिस सेमिनार की सिफारिश, पुलिस-समुदाय संबंध के, जो सामान्य तौर पर प्रचार तकनीकों के सर्वसम्मत समर्थन में खो गया है, के इस उपेक्षित पहलू पर जोर देते हैं। कोई इससे इंकार नहीं करता कि प्रचार उत्साह अद्भुत कार्य कर सकता है लेकिन वास्तविक और स्थायी संबंध केवल ईमानदार हृदय-भेदन के माध्यम से प्रकट कठोर तथ्यों के कष्ट और पीड़ादायक बोध से आते हैं। संस्थागत परिवर्तन इस प्रकार के आत्मनिरीक्षण की सहायक स्थितियों को पैदा करते हैं। पुलिस समुदाय संबंध पर के एक सेमिनार में, वरिष्ठ आईपीएस अधिकारियों के एक कार्य बल ने पुलिस कार्य में एक अर्थपूर्ण सामुदायिक भागीदारी के लिए सहायक, अधिक अर्थपूर्ण पुलिस-समुदाय संबंध के विकास के लिए निम्न उपायों की सिफारिश की थी।

(1) पुलिस अधिनियम 1861 के अनुच्छेद. 23 के तहत पुलिस को सार्वजनिक सेवा घोषित किया जाना चाहिए।

(2) पुलिस स्टेशन में दर्ज किए गए अपराध रजिस्ट्रीकृत होने चाहिए और प्रतिक्रिया समय न्यूनतम किया जाना चाहिए।

(3) पुलिस स्टेशन के स्तर पर दृढ़ता मिश्रित सौजन्य पुलिस व्यवहार का नारा होना चाहिए।

(4) पुलिस स्टेशन स्वच्छ और साफ होने चाहिए। यदि छोटे पुलिस स्टेशन एक स्वागत कक्ष बनाने में समर्थ नहीं हैं तो उन्हें कम से कम आगंतुकों को एक सीट और एक गिलास पानी की पेशकश करने में सक्षम होना चाहिए।

(5) आईपीसी की धारा 323,504, 506, 507,506,510 में परिभाषित मानव शरीर के खिलाफ गैर-संज्ञेय अपराध को भारतीय दंड संहिता को मानव गरिमा प्रदान करने के लिए संज्ञेय किया जाना चाहिए।

(6) जांच अधिकारी को सहायक उप निरीक्षक के पद से नीचे नहीं होना चाहिए। उन्हें तीसरी डिग्री तरीकों का त्याग करना चाहिए और पुलिस जांच के लिए जीवन-पद्धति के रूप में कार्य-प्रणाली और फिंगर प्रिंट प्रणाली का उपयोग करते हुए नागरिक पुलिसकर्मियों की तरह व्यवहार करना चाहिए।

(7) एसआईटी कानून, जुआ और निषेध कानून जैसे अप्रवर्तनीय विधानों को अधिनियम की पुस्तक से हटा देना चाहिए।

(8) सर्किल निरीक्षकों को अपराधियों के परिवीक्षा अधिनियम के तहत परिवीक्षा अधिकारी की शक्तियों के अधिकार प्राप्त होने चाहिए।

(9) पुलिस को ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती-राज संस्थाओं के कार्यो से संबद्ध किया जाना चाहिए। ग्रामीण होम गार्ड और नागरिक राइफल प्रशिक्षण कार्यक्रमों को सक्रिय किया जाना चाहिए।

(10) विद्यालय की पाठ्य पुस्तकों में पुलिस कार्यो के पाठ शामिल किये जाने चाहिए और मास मीडिया द्वारा पुलिस की उपलब्धियों को उजागर किया जाना चाहिए और पुलिस पेशे में विभिन्न पहलुओं के प्रक्षेपण के लिए पूरी लंबाई तथा डॉक्यूमेंटरी फिल्में दिखाई जानी चाहिए।

4.9 नई वर्दी में नई पुलिस

उल्लेखित सुझाव न केवल आत्म-खोज के अभ्यास का प्रतिनिधित्व करते हैं बल्कि कुछ ठोस और व्यावहारिक कदमों को भी इंगित करते -हैं जिनके द्वारा संबंधों में विश्वास पैदा किया और बढ़ाया जा सकता है, जो अनिवार्य रूप से आपसी स्नेह, द्विपक्षीय विश्वास और समुदाय के लिए लोकप्रिय सेवा है। इस संबंध को व्यक्त करने में, पुलिस संगठनों को आधे रास्ते से ज्यादा दूर तक आना होगा और इसके वरिष्ठ अधिकारियों को लंबी अवधि के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कम दूरी के जोखिम उठाने के लिए साहस, दूरदर्शिता और क्षमता का प्रदर्शन करना होगा। नागरिक स्वयं को विमुख कर लेंगे लेकिन यही है जिसका प्रयास समुदाय के प्राथमिक और माध्यमिक सामाजीकरण के संस्थानों द्वारा करना होगा। जब तक कि समुदाय के सदस्यों का यह भटकाव दृष्टिगत न हो, पुलिस को धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करनी होगी और कष्ट सहन करना होगा। लेकिन फिर, साथ ही साथ समुदाय और इसके दुराग्रही नेताओं की तादाद को अनुकूल बनाने के लिए इसे एक कार्यक्रम आरंभ करना होगा। इसे अपने स्वयं के गृह-सुधार के लिए वास्तविक इच्छा और प्रदर्शनीय प्रयासों के सहारे यह सब करना होगा।

नागरिकों को केवल आश्वासन नहीं वरन यकीन दिलाना होगा कि यह 'नई पुलिस' है, केवल नई वर्दी में पुरानी पुलिस नहीं है। इसे पूरा करने के लिए, भारतीय पुलिस को विकासशील समाज के कानून और अवस्था की बदलती अवधारणा के साथ स्वयं की पहचान करनी होगी। समुदाय में स्वीकार्य बनने के लिए, इसे कानून के अंग के रूप में अपनी पहचान बनानी होगी, बदले में 'यह पुलिस संगठन के 'विचार-उन्मुखीकरण' को सूचित करेगा। 'बल से मन' एक लंबा रास्ता है, लेकिन यदि भारतीय पुलिस प्रशासन लोकतांत्रिक देश के लाखों करोड़ों नागरिकों के लिए प्रिय एवं कार्यात्मक होना चाहता है तो उसको इसे पार करना होगा। पुलिस कार्य में स्वस्थऔर प्रबुद्ध समुदाय की भागीदारी पैदा करने की प्रक्रिया

में सन्निहित दुविधाएँ और संकोच 'वास्तविक एवं ऐतिहासिक हैं। दूसरे पर काम बोझ डाल देने से समस्या का हल नहीं होगा। समुदाय को पुलिस कार्य में सार्थक भागीदारी के लिए तैयार करने में स्वाभाविक रूप से अधिक समय लगेगा। इन अनावश्यक दुविधाओं और संकोचों को दूर करने के लिए पुलिस संगठन कुछ हल निकालें, जिससे भारत में सामाजिक परिवर्तन और सामुदायिक निर्माण के वर्तमान संदर्भ में असंतोषजनक और आत्मघाती पुलिस कार्य में समुदाय की भागीदारी बन, सके। आखिरकार, पुलिस-समुदाय संबंध प्रशासनिक राजमार्ग पर द्विपथीय यातायात का प्रतिनिधित्व करते हैं और जब तक कि दोनों समान सहभागिता महसूस नहीं करेंगे, दोनों के बीच लंबे समय तक के लिए स्वस्थ्य और सशक्त संबंध नहीं बनाए जा सकते। इसके लिए, ठोस परिणाम हासिल करने हेतु पुलिस संगठन में अनेक संगठनात्मक कर्मियों, प्रक्रियात्मक और व्यवहारिक सुधारों को वृहत रूप में प्रयुक्त करने की आवश्यकता है। पुलिस की प्रभावशीलता के मूल्यांकन में लोगों की सोद्देश्य भूमिका बनाने के लिए, नागरिकों द्वारा स्वैच्छिक भागीदारी और प्रभावी सहयोग के एक उपयुक्त व्यवस्था विकसित करनी होगी। कम्यूनिटी जैसी एक अस्पष्ट इकाई इस दिशा में प्रयास नहीं कर सकती है। इसके विपरीत, पुलिस संगठन जो पेशेवर ससंजक और, प्रशासकीय रूप में सुगठित है उन्हें सुधारना, प्रशिक्षित करना, सामाजिक और आधुनिक बनाना आसान भी है। पुलिस विभाग को आकार देने के लिए लगातार और साहसिक प्रयास जारी रखने चाहिए और इसकी व्यावसायिकता को समाज के लिए स्वीकार्य किया जाना चाहिए। भारतीय समुदाय को अनुकूल बनाने के लिए सावधानी के साथ विभिन्न प्रकार के समुदायों का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि यह पुलिस को अपने अभिभावक के रूप में स्वीकार करे और इसके प्रति एक सकारात्मक और ज्यादा यथार्थवादी तरीके से प्रतिक्रिया दिखा सके। अपनी आपसी समस्याओं और दुविधाओं के हल के लिए पुलिस और समुदाय को शिक्षित होना है। लेकिन यह एक बहुत ही संवेदनशील क्षेत्र है और प्रचार के अधूरे मन के या व्यर्थ के कार्यक्रम स्वयं को पराजित करने के लिए उत्तरदायी हैं।

शुरुआत के लिए पुलिस सुधारों को व्यावसायिक योग्यता, संगठनात्मक दक्षता और व्यवहार्य शिष्टाचार पैदा करने पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है। एक बार प्रशासनिक मानक और नैतिक मूल्यों के विकसित हो जाने पर पुलिसकर्मियों के प्रशासनिक कामकाज में ईमानदारी, निष्पक्षता और न्याय के लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। इसी प्रकार, पुलिस शक्तियों के दुरुपयोग और दोहन तथा पुलिस कर्मियों के आक्रोश को न्यूनतम करने के लिए कार्यात्मक स्वतंत्रता और संगठनात्मक स्वायत्ता एक दूरगामी साधन हो सकता है। योग्य भर्ती के प्रभावशाली और गुणात्मक कार्यक्रम तथा नौकरी उन्मुख प्रशिक्षण, संगठनात्मक दक्षता और व्यावसायिक क्षमता में योगदान कर सकते हैं। संगठनात्मक मोर्चे पर, पुलिस अधिनियम अनेक राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक बदलाव (जो पिछली सदी के दौरान समाज पर हावी रहे हैं) का सामना करने में नाकाम रहा है। विभिन्न प्रशासनिक स्तर पर किये गए सुधार, जैसे कि सब-इंस्पेक्टर के पद का उन्नयन और पुलिस स्टेशन पर कार्य के आवंटन का व्यवस्थित पुनर्गठन, सर्किल और जिला स्तर पर अनिवार्य लगते हैं। इसी प्रकार, विभाग के कामकाज में एकरूपता लागू करने के लिए आधिकारिक पदक्रम के समान ढांचे और विभागीकरण की तत्काल आवश्यकता है। इसे पूरा करने के लिए, यह तर्कसंगत लगता है कि पुलिस को संविधान की सातवीं अनुसूची की समवर्ती सूची में एक अंश के रूप में शामिल किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में इस तरह के विभागीय पुनर्गठन का एक नमूना दियागया है।

इसके अलावा, कुछ संरचनात्मक नवाचार, जैसे कि विभिन्न स्तर पर पब्लिक रिलेशन सेल और शिकायत निवारक एजेंसियों को भी प्रस्तावित किया जा सकता है।

कार्मिक प्रशासन के दायरे में, भर्ती, पदोन्नति, प्रशिक्षण और सेवा शर्तों से संबंधित नीतियों को संगठन की जरूरत के कार्यों के साथ युक्तिसंगत और समायोजित होना चाहिए। अनुभव बताता है कि पुलिस की भर्ती खास कर कांस्टेबल स्तर पर आत्मघाती होती है क्योंकि अनिच्छुक, अक्षम, असहाय और यहां तक कि बेमेल लोगों की भर्ती कर दी जाती है। कम-शिक्षित और गरीबी एवं कष्टों की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के बोझ से दबे, कांस्टेबल / सिपाही, पुलिस संगठन और समाज में अपनी भूमिका निभाते हुए इसकी अंतर्निहित चुनौतियों को समझने में असमर्थ होते हैं। यहां तक कि सर्वोत्तम प्रशिक्षण कार्यक्रम भी उनको कुशल और सक्षम पुलिसकर्मी में नहीं बदल सकता है। काम करने का घटिया माहौल और असंतोषजनक पदोन्नति के अवसरों की वजह से उत्पन्न कुंठाएं उन्हें निरुत्साहित करती हैं। फलस्वरूप उनका खराब प्रदर्शन उन्हें जन-संपर्क कार्यो के लिए अनुपयुक्त बना देता है।

4.10 सारांश

भारतीय समाज में सामाजिक व्यवस्था की स्थापना और रखरखाव के लिए पुलिस एक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करती है। भारतीय समाज और भारतीय पुलिस संगठन की मूल्य-प्रणालियों में असंगतता दृष्टिगोचर होती है। साथ ही लोकतांत्रिक, समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष समाज एवं पुलिस की पारस्परिक अंतर्क्रियाओं में कभी बेहतर संबंध नहीं स्थापित हो पाए है। पुलिस एवं समुदाय के संबंध कानून और व्यवस्था के अनुरक्षण में बाधक होने लगते हैं। इस समय नागरिक-पुलिस की आवश्यकता महसूस होती है। आवश्यकता है, जिससे पुलिस-भूमिका का नवीनीकरण किया जा सके।

4.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारतीय समाज एवं पुलिस के संदर्भ में कानून और व्यवस्था के अनुरक्षण में पेश होने वाली मुश्किलें क्या हैं?
2. भारतीय समुदाय एवं पुलिस की असंगतता एवं संबंधों का उल्लेख कीजिए।
3. "नई वर्दी में नई पुलिस" तथ्य से क्या अभिप्राय हैं? समझाइए।
4. निम्न पर टिप्पणी लिखिए-
   अ. पुलिस की भारतीय समाज में छवि
   ब. पुलिस संस्कृति में भेदन
   स. नागरिक-पुलिस

इकाई - 5
पुलिस एवं सामाजिक कानून

इकाई की संरचना

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 सामाजिक कानून के संदर्भ में पुलिस की भूमिका

5.3 सामाजिक कानून की व्यापक श्रेणियाँ

5.4 सामाजिक कानून के प्रवर्तन की प्रभावशीलता को प्रभावित करने वाले कारक

5.5 सामाजिक सुधार

5.6 सामाजिक कानून-वर्गीकरण

5.7 सफलता के उपाय

5.8 सामाजिक सुधार को प्रभावित करने में कानून की भूमिका

5.9 सामाजिक कानून का प्रवर्तन और पुलिस की भागीदारी

5.10 प्रवर्तन में अनाचार एवं भ्रष्टाचार

5.11 सशर्त संज्ञेयता

5.12 पुलिस की प्रतिक्रिया के निर्धारण के लिए सामाजिक कानूनों का वर्गीकरण

5.12.1 पहला समूह

5.12.2 दूसरा समूह

5.12.3 तृतीय समूह

5.12.4 चौथा समूह

5.12.5 पाँचवाँ समूह

5.13 सामाजिक कानून लागू करने के लिए पुलिस के विशेष दस्ते

5.14 सारांश

5.15 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य पुलिस एवं सामाजिक कानून के संदर्भ में निम्न बिन्दुओं से परिचित कराना है-

- सामाजिक सुधार हेतु सामाजिक कानून की आवश्यकता
- सामाजिक कानून के संदर्भ में पुलिस की भूमिका
- सामाजिक कानून के प्रवर्तन में पुलिस की भागीदारी
- सामाजिक कानून लागू करने के लिए पुलिस की विशेष व्यवस्था

5.1 प्रस्तावना

असमानताएं सभी समाजों में प्रचलित हैं। ऐसा, वर्ग, जाति, प्रजाति, लिंग, रस्मों या आय और धन पर आधारित ताकत और प्रतिष्ठा के असमान वितरण के कारण होता है। जबकि कुछ ऐसे अपराध मनुष्यों द्वारा वर्तमान और भविष्य के लाभ के लिए प्रत्यक्ष नियंत्रण के माध्यम से किये जाते हैं, तो कुछ को अन्य दूसरे तरीकों के माध्यम से बढ़ावा दिया जाता है। उदाहरण के लिए अलौकिक

तरीकों का आहवान करके। (मार्क्स ने कहा था धर्म जनता को दिया जाने वाला अफीम है)। अक्सर प्रथाएँ और रीति-रिवाज स्व-घोषित स्वयंभुओं द्वारा विकृत होती जाती हैं, जब तक कि वे एक भयावह रूप न ले लें। सभी शासन-प्रणालियों ने इन असमानताओं को दूर करने का प्रयास किया है, जिसे अब नागरिक जीवन के लिए अन्यायपूर्ण और कई बार असामान्यता के रूप में देखा जाता है। सुविधाहीनों को बढ़ावा देने के लिए नियम और कानूनों की स्थापना कर, सभी को विवश करने और कार्यो को निषिद्ध करने, विवश करने और मनाने के विभिन्न तरीकों के संयोजन द्वारा सरकार इसे करती है। सामाजिक कानून विषमताओं और असमानताओं के सभी प्रकारों को खत्म करना और सामाजिक असंतुलन और संघर्ष को दूर करना चाहता है। इसका उद्देश्य सभी के लिए समानता और समान अवसर सुनिश्चित करना है। यह कानून के नियमों और एक कल्याणकारी राज्य के आदर्श का संपोषण करता है। जबकि भेदभाव पर आधारित प्रथाओं को संबोधित करना एक कम मुश्किल कार्य है, लेकिन एक व्यक्ति की चेतना के साथ जुड़ने के कलंक को संबोधित करना ज्यादा मुश्किल कार्य होता है।

इस अभियान को बढ़ावा देने के इस चक्र में अनेक एजेंसियों की भूमिका होती है - शिक्षित करना - राजी करना से लेकर निषेध करना और बलपूर्वक व्यवहार करना। इसमें सरकार की एजेंसियाँ भी शामिल हैं जैसे समाज कल्याण विभाग, पुलिस और पंचायत और सामाजिक संगठन जो विशिष्ट क्षेत्रों में काम कर रहे हैं। इसलिए हमें समझना होगा कि केवल पुलिस ही एक ऐसी एजेंसी है जो सामाजिक कानून के उद्देश्यों के साथ जुड़ी हुई है। शेष की प्राप्ति केवल तभी हो सकती है जब सभी शामिल हितधारक सहक्रियता के साथ आपस में मिल जुल कर काम करें।

5.2 सामाजिक कानून के सन्दर्भ में पुलिस की भूमिका

सामाजिक कानून के संदर्भ में पुलिस की भूमिकाएँ अनेक हैं और मोटे तौर पर इन्हें निम्नलिखित चार शीर्षकों में बांटा जा सकता है -

1. कानून प्रवर्तन एजेंसी के रूप में
2. नागरिकों के अधिकारों और स्वतंत्रता के रक्षक के रूप में
3. समाज सेवा के एक साधन के रूप में
4. नागरिकों, विशेषत: युवाओं के लिए एक रोल मॉडल के रूप में

5.3 सामाजिक कानून की व्यापक श्रेणियाँ

यदि पुलिस के कामकाज के संदर्भ में देखा जाए तो सामाजिक कानूनों को मोटे तौर पर दो श्रेणियों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है:

अ) व्यवहार में लाने के लिए पुलिस पर कानूनी दायित्वों को डालने का कानून।

जब एक प्रतिमा संज्ञेय अपराध बनाती है, तो पुलिस, मजिस्ट्रेट या न्यायाधीश के किसी आदेश के बिना इसकी जांच कर सकती है और जिन पर इस कार्य के लिए यथोचित संदेह हो, इस आधार पर बिना वारंट के उन व्यक्तियों को गिरफ्तार भी कर सकती है। संज्ञेय अपराध की जांच एक ऐसा क्षेत्र है जो पुलिस के कार्यक्षेत्र के अंतर्गत आता है। सुरक्षा / कटौती और अपराधों की रोकथाम प्राथमिक कार्य हैं।

ब) कानून, जो पुलिस पर कोई कानूनी कर्तव्य लागू नहीं करते, लेकिन पुलिस न्याय के समर्थन में अपने विवेक का उपयोग कर प्रवर्तन प्रोत्साहन की भूमिका निभा सकती है।

सामाजिक कानून के दूसरे वर्ग में ये बातें शामिल हैं, जहां पुलिस को न तो कोई विशिष्ट शक्तियाँ प्रदान की गई हैं और न ही कोई निश्चित कर्तव्य दिये गए हैं। उदाहरण के लिए न्यूनतम

मजदूरी अधिनियम, 1948 को उद्धृत किया जा सकता है। मान लीजिए कि एक कृषि मजदूर एक पुलिस स्टेशन में आता है और यह आरोप लगाता है कि उसे न्यूनतम मजदूरी नहीं मिल रही है, पुलिस अधिकारी बिना देर किये उसे वहाँ और उसी समय विदा करने के बजाए, यह बता सकता है कि वह क्या प्राप्त होने का हकदार है और उसे उचित एजेंसी के साथ संपर्क करा सकता है। यह पुलिस की ओर से समर्थन गतिविधि का एक उदाहरण है और इसे बिना किसी बुनियादी पुलिस कर्तव्यों की हानि किए सामान्य रूप से किया जा सकता है।

क) विभिन्न कारणों से नागरिक कानून की कार्यवाही समाप्त होने में लंबा समय लेती है। यह जनता के सदस्यों को त्वरित न्याय के लिए पुलिस का हस्तक्षेप करवाने के लिए प्रोत्साहित करती है। (पहले के उदाहरण में, पुलिस अधिकारी मजदूर को न्यूनतम मजदूरी मिले यह सुनिश्चित करने के लिए नियोक्ता के साथ हस्तक्षेप कर सकता है आदि)। जहां पुलिस को हस्तक्षेप करने या मध्यस्थता करने का अधिकार नहीं है ऐसे मामलों में पुलिस हस्तक्षेप पर राय विभाजित है। जबकि कुछ का मानना है कि पुलिस को पुलिस की तरह होना चाहिए, क्योंकि कभी-कभी न्याय का उद्देश्य असफल हो जाता है, कुछ इस बात से डरते हैं कि प्रस्ताव में देरी ही अपराधीऔर कानून व्यवस्था की समस्या का कारण बन सकती है। कुछ अधिकारियों द्वारा विशेषज्ञ और सार्वजनिक मध्यस्थता प्रदान करने के लिए एक संस्थागत तरीके से मीडिया का माध्यम अपनाया जाता है, उदाहरण के लिए अनेक जिला पुलिस प्रमुखों ने विवादों और परिवार, विवाह आदि से संबंधित कानून के तहत मामलों के लिए मध्यस्थता केंद्रों की स्थापना की है। यहां पुलिस, बुनियादी ढांचा, परिवेश, स्वतंत्र मध्यस्थ और न्यायकर्ता प्रदान करती है और विवादी अपनी पसंद और विवेक से सेवा का लाभ लेते हैं। कुछ मध्यस्थता और परामर्श इतनी अच्छी तरह से कार्य कर रहे हैं कि कई बार न्यायालय विवादियों को उनका संदर्भ देते हैं। (उदाहरण के लिए इलाहाबाद में 2012 का आवेदन यू / एस 482 संख्या - 3490: श्रीमती अनीता रानी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य। निर्णय का विवरण भारत सरकार द्वारा स्थापित निर्णय सूचना प्रणाली पर उपलब्ध है। प्रणाली का यूआरएल (वेब साइट का पता) है।hub://judis.nic.in/)।

5.4 सामाजिक कानून के प्रवर्तन की प्रभावशीलता को प्रभावित करने वाले कारक

ऐसे अनेक मुद्दे हैं जो सामाजिक कानून के कार्यान्वयन की प्रभावशीलता को प्रभावित करते हैं। इनमें से कुछ नीचे सूचीबद्ध किये जा रहे हैं

1. मजबूत राजनीतिक इच्छाशक्ति
2. संबंधित सार्वजनिक सेवा के प्रति पहल और दृढ़ संकल्प
3. परिवर्तन की दिशा में कानून लागू करने वालों का सकारात्मक और निष्पक्ष रुख
4. पर्याप्त संसाधन
5. पर्याप्त सामाजिक चेतना और स्वीकार्यता की मौजूदगी
6. कुछ सामाजिक कानूनों की दिशा में विशेष रूप से दहेज, अस्पृश्यता, वेश्यावृत्ति, जुआ निषेध आदि के लिए लोगों के सभी वर्गो का सकारात्मक रवैया।
7. प्रवर्तन कर्मियों का ठीक से प्रशिक्षित और अभिविन्यस्त कैडर / संवर्ग
8. सरकारी एजेंसियों और स्वैच्छिक सामाजिक सेवा संगठनों के बीच प्रभावी और सामंजस्यपूर्ण समन्वय
9. जनता के कुछ तबके के बीच अज्ञानता और निरक्षरता दूर करने के लिए प्रभावी कार्यक्रम

10. सामाजिक कानून का प्रवर्तन, भारतीय दंड संहिता जैसे पारंपरिक आपराधिक कानून के कार्यान्वयन सेकाफी अलग है। यह सामाजिक न्याय का प्रतिरोधी नहीं बल्कि उसके अनुकूल है। सामाजिक कानून के सफल प्रवर्तन के लिए सभी संबंधित पक्षों का सहयोग आवश्यक है। कल्याणकारी गतिविधियों में स्वैच्छिक संगठन लगे हुए हैं पुलिस अधिकारियों को सामंजस्यपूर्ण सहयोग सुनिश्चित करने की दृष्टि से उनके साथ संपर्क करना चाहिए।

11. सामाजिक कानून को लागू करने के लिए गैर सरकारी संस्थाओं और पंचायतों की लंबी भागीदारी हो सकती है। इसके अलावा, लोगों के प्रभावित समूहों से भी परामर्श किया जाना चाहिए। सामाजिक तैयारियां भी एक बहुत ही महत्वपूर्ण कारक है। सामाजिक कानून का प्रवर्तन कटुता और संघर्ष को जन्म देने के लिए बाध्य है। पुलिस प्रशासकों को, जो लोग सामाजिक न्याय, कानून के नियमों और मानव अधिकार के लिए काम करने के इच्छुक लोगों के साथ सहयोग करके विरोधों का पूर्वानुमान करने और इससे उबरने के लिए कदम उठाने की स्थिति में होना चाहिए।

12. गैर सरकारी संगठनों (एनजीओ) के साथ समन्वय।

सामाजिक कानून के कार्यान्वयन के लिए पीड़ित के साथ और कभी-कभी अभियुक्त के साथ भी करीबी संबंध बना कर आगे की कार्यवाही और पुनर्वास की अनवरतता के साथ एक समन्वित दृष्टिकोण की आवश्यकता है। अक्सर पुलिस इस भूमिका को निभाने के लिए अनुपयुक्त होती है, और आदर्श रूप से केवल तभी प्रभावी हो सकती है जब यह सम्मानित गैर सरकारी संगठनों या सामाजिक विचारधारा वाले व्यक्तियों के साथ भागीदारी करे। इसी बात को ध्यान में रखते हुए गृह मंत्रालय ने सभी राज्यों और संघ शासित प्रदेशों को प्रत्येक राज्य और जिला मुख्यालय में एक नोडल अधिकारी गैर सरकारी संगठन समन्वय के रूप में एक अधिकारी नामित करने के लिए एक परिपत्र जारी किया है। इस उपाय में लगभग कोई लागत नहीं आएगी, और यदि ठीक से लागू किया जाए तो सामाजिक कानून के प्रभावी कार्यान्वयन में लंबी दूरी तय करेगा। यह सामाजिक समस्याओं के मामलों में गैर सरकारी संगठनों के समीप आने के लिए एक केंद्रीय बिंदु प्रदान करेगा, और पुलिस अधिकारी भी स्वैच्छिक क्षेत्र के साथ एक संबंध विकसित करेंगे और स्पष्ट रूप से उनकी सहायता प्राप्त कर पाएंगे। इस आदेश की प्रति वेब http://sdrv.ms/M3vyya पर प्राप्त की जा सकती है।

13. पुलिस और सामाजिक कानून के मुद्दे पर राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने काफी विस्तार से काम किया है। आगामी 10 से 20 अनुच्छेद वस्तुत: मौजूदा डेटा के आकडों को जोड़ कर और आज की जो स्थिति है उसमें सुधार के लिए मामूली परिवर्तनों के साथ आयोग की रिपोर्ट से उद्धृत किये गए हैं। (रिपोर्ट तीन से अधिक दशकों पहले लिखी गई थी)। राष्ट्रीय पुलिस आयोग, भारत सरकार, जून, 1980 की चौ थी रिपोर्ट में निहित अध्याय 32'सामाजिक कानून' पर है।

5.5 सामाजिक सुधार

सामाजिक सुधार के कई तरीके हैं जिनसे सामाजिक मूल्यों और सामाजिक व्यवहार के स्वरूप में परिवर्तन आ सकते हैं या लाए जा सकते हैं। सामाजिक सुधार एक ऐसा ही तरीका है और कानून एक महत्वपूर्ण रास्ता है जिसके माध्यम से सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए आम तौर पर सामाजिक सुधार किया जाता है। उन्नीसवीं और आरंभिक बीसवीं सदी के भारतीय समाज सुधार ने इस उद्देश्य के लिए कानून में एक बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सती प्रथा को खत्म करने, अंतरजातीय विवाह से उत्पन्न होने वाली अक्षमताओं को हटाने और बाल विवाह निरोध के कानूनों की जरूरत थी और इनका संपादन इस आशा के साथ हुआ कि ये कानून तत्कालीन सामाजिक बुराइयों को खत्म कर देंगे या कुछ वांछित परिवर्तनों को सुसाध्य करेंगे। हिंदू संयुक्त परिवार के व्यक्तिगत आय के सह समांशभागी

के अधिकारों से संबंधित कानून के परिवर्तन के लिए सीखने केअधिनियम के लाभ भी बनाए गए। आजादी के बाद से हिंदू विवाह और परिवार कानूनों में एक पत्नी विवाह लागू करने, तलाक प्रदान करने, अपनी पैतृक संपत्ति में बेटियों को हिस्सा देने और विवाह में दहेज भुगतान को निषिद्ध करने के द्वारा और भी सुधार किए गए। औद्योगिक श्रमिकों की भलाई को सुरक्षित करने के लिए कल्याण कानून के रूप में कुछ श्रमिक कानून भी आरंभ किए गए। हमारे संविधान निर्माताओं और संसद सदस्यों ने भी सामाजिक सुधार और परिवर्तन के लिए कानूनी रास्ते के प्रति समान विश्वास दिखाया है। संविधान ने घोषणा की कि अस्पृश्यता को समाप्त किया जाए और जब देखा गया कि इतना पर्याप्त नहीं है तो संसद ने 1955 में अस्पृश्यता अपराध अधिनियम पारित कर दिया और आगे चल कर इसके उल्लंघन के साथ निपटने के लिए ज्यादा गंभीर प्रावधानों के साथ 1976 में इसे नागरिक अधिकारों की सुरक्षा अधिनियम के रूप में संशोधित किया गया।

5.6 सामाजिक कानून-वर्गीकरण

कानून के प्रवर्तन में पैदा समस्याओं को समझने के लिए सामाजिक कानून को स्थूल रूप से दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। पहली श्रेणी को कानून का अनुमोदक प्रकार कहा जा सकता है जिसमें सुधारात्मक कानून, केवल कुछ क्षेत्रों में सामाजिक कार्य और बातचीत की स्वतंत्रता को विस्तार करना और व्यक्ति की रक्षा करने की कोशिश करता है जो किसी अक्षमता के कारण, जो उस पर हावी हो गई है लेकिन कानून पर नहीं के तहत कार्य कर रहा है। उदाहरण के लिए अंतर-जातीय विवाहों और तलाक की कार्यवाही से संबंधित कानून इसी प्रकार के हैं। दूसरी श्रेणी को कानून का प्रतिषेधात्मक प्रकार कहा जा सकता है जो कुछ सामाजिक प्रथाओं को प्रतिबंधितऔर कानून में विशेष रूप से निषिद्ध किसी भी आचरण को दंडित करने की कोशिश करता है। सती, बाल-विवाह, बहु विवाह प्रथा, दहेज और अस्पृश्यता से संबंधित कानून इसी श्रेणी के उदाहरण हैं। सामाजिक कानून की इस श्रेणी के प्रवर्तन को उन समूहों से प्रतिरोध मिलता है जो पुरानी प्रथाओं की निरंतरता में रुचि रखते हैं।"

5.7 सफलता के उपाय

सामान्य तौर पर हम देख सकते हैं कि सती की बुराई के खिलाफ कानून सफल रहे हैं जबकि अस्पृश्यता की प्रथा के खिलाफ बने कानून पूरी तरह से सफल नहीं रहे। बहु विवाह के खिलाफ कानून कुल मिला कर सफल रहा है लेकिन बाल-विवाह के खिलाफ कानून का उल्लंघन कई मामलों में अभी भी किया जाता है, विशेष रूप से कम शिक्षित समूहों और अमीरों के कुछ वर्गो में। शायद इसे स्वीकार करना होगा कि जहां सती और बहु विवाह दोनों मामलों में प्रतिषेधात्मक कानून सफल रहा वहां इसकी वास्तविक परंपरा अपने आप में भौगोलिक क्षेत्रों और लोगों के उस वर्ग तक ही सीमित थी जहां इसका अभ्यास किया जाता था। इन दोनों प्रथाओं में जिस हद तक इनका अस्तित्व रहा, ये कुछ जातियों और संपत्तिशाली समूहों की विशेषताएँ थीं। उन्नीसवीं और प्रारंभिक बीसवीं सदी के समाज सुधारक इन्हीं समूहों से आए थे और अपने अखबारों, उपन्यासों, नाटकों, व्याख्यानों और अपने लिए सुलभ मीडिया के सभी माध्यमों द्वारा उनके साथ संवाद करने और उन तक पहुंचने में सक्षम थे। हालांकि जिस परिवर्तन को वे लाना चाहते थे उसमें मूल्यों का परिवर्तन और जीवन प्रथाओं का परिवर्तन शामिल था, उन्होंने हितों के किसी बुनियादी संघर्ष को शामिल नहीं किया था। समाज सुधारकों की यह उम्मीद, कि कानून उनके हाथों को मजबूत बनाएगा और एक अड़ियल अल्पसंख्यकों के समूह से निपटने में उनकी मदद करेगा, उस स्थिति में अच्छी तरह से संस्थापित थी।

जहां तक शिक्षित, शहरी सेवा वर्ग समूह का सवाल है बाल-विवाह के खिलाफ कानून अधिक सफल रहा, हालांकि इसने अशिक्षित, ग्रामीण श्रमिक वर्ग के बीच कम प्रभाव नहीं डाला। सेवा वर्ग समूह में इसकी सफलता का कारण बड़े पैमाने पर शिक्षा और व्यावसायिक तैयारियों की अवधि के विस्तार और मध्यम वर्ग के नए आदर्श कि एक आदमी को विवाह करने से पहले अपने और अपने परिवार को समर्थन देने में सक्षम होना चाहिए, में निहित है। यदि शारदा अधिनियम ने वस्तुत: कुछ अशिक्षित, ग्रामीण क्षेत्रों के दृष्टिकोण को नहीं बदला तो ऐसा इसी कारण, कि जीवन में व्यवसाय में प्रविष्टि के लिए एक औसत आयु या इसके लिए आवश्यक तैयारी के रूप में उनका व्यावसायिक जीवन ज्यादा नहीं बदला था। ज्यादातर ग्रामीण व्यवसाय अभी भी विरासत में ही मिलते हैं, एक बेटा बचपन में ही कमाना शुरू कर देता है और आर्थिक सुख अभी भी अपेक्षाकृत मामूली हैं। कई सामाजिक खंडों को इसमें कोई अकाट्य कारण नजर नहीं आता कि कम आयु में और जैसे ही यौवन की दहलीज पर पहुंच जाए तो विवाह क्यों नहीं होना चाहिए? महिलाओं के स्वास्थ्य पर जल्दी विवाह के बुरे प्रभावों के प्रति बढ़ती चेतना का भी प्रभाव पड़ा है, फिर भी 2012 में 'इंटरनेशनल सेंटर फॉर रिसर्च ऑन विमेन'2 की रिपोर्ट में, भारत में 44 प्रतिशत लड़कियों का विवाह 18 वर्ष की आयु से पहले हो जाता है।

13. सामाजिक कानून संबोधन का एक प्रमुख हिस्सा हमेशा से ही पुलिस के कार्यक्रमों में सबसे आगे रहा है। जैसा कि अस्पृश्यता अपराध अधिनियम 1955 में परिगणित अनुसूचित जाति / जनजाति से संबंधित ये मामले, आगे चल कर 1976 में अधिक अपराधों को कवर करने के लिए बढ़ाए गए और नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955 के रूप में इसका शीर्षक रखा गया। बाद में अनुसूचित जाति / जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1383 को 12 सितंबर 1989 में अधिसूचित किया गया और यह महसूस किया गया कि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की समस्याओं के प्रति ज्यादा ध्यान देने की जरूरत थी। यह आरोप लगाया गया है कि शहरी क्षेत्रों में इन कानूनों की आशिक सफलता की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में इनकी सफलता सीमित है। इसे कलंक प्रतिमान - इस भेदभाव में समझा जा सकता है। हालांकि ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में कलंक का स्तर समान हो सकता है, मौखिक स्तर पर भेदभाव के रूप में इसकी अभिव्यक्ति, और शहरी क्षेत्रों के सार्वजनिक स्थानों पर अस्पृश्यता का अभ्यास ग्रामीण इलाकों से कम होने की संभावना है। यह आशिक रूप से अधिक शिक्षा के कारण या शायद कुछ शहरी शिक्षितों के बीच वास्तविक मूल्य परिवर्तन के कारण है। यह भी संभव है कि शिक्षा की कमी और परंपरा की पकड़, कई क्षेत्रों में अस्पृश्यता प्रथा की निरंतरता का कारण हो। हालांकि ग्रामीण क्षेत्रों में अस्पृश्यता के अभ्यास के आर्थिक पहलू का भी समान महत्व है। कुछ क्षेत्रों में अस्पृश्यता का अभ्यास सस्ती मजदूरी और बेगारी से जुड़ा हुआ है जहां अनुसूचित जाति अनुसूचित / जनजाति आबादी को अन्य व्यवसायों से दूर रखा जाता है। जैसा कि भारत में अपराध में कहा गया है अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति के खिलाफ अपराधों की प्रवृत्ति में गिरावट आई है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो द्वारा प्रकाशित, "वर्ष 2010 में अनुसूचित जातियों के खिलाफ अपराध में 2.6 प्रतिशत की गिरावट देखी गई है जैसा कि 2009 में 33,594 मामले दर्ज किये गए थे जो 2010 में घट कर 32,712 पर आ गए।"

5.8 सामाजिक सुधार को प्रभावित करने में कानून की भूमिका

कानून के माध्यम से सामाजिक सुधार प्राप्त करने में सफलता और असफलता के मौके कई कारकों पर निर्भर करते हैं। पहले के अनुच्छेदों की चर्चा में से इनमें से कम से कम तीन की पहचान की जा सकती है: (1) सुधारकों के शैक्षिक प्रयासों द्वारा समाज में पहले से आए मूल्य परिवर्तन का

परिमाण, (2) वस्तुनिष्ठ स्थिति में परिवर्तन के समर्थन पहलू और (3) परिवर्तन के परिणाम के रूप में बुनियादी समूह हितों के खतरों की मौजूदगी या गैरमौजूदगी। कई अतिरिक्त कारक भी हो सकते हैं जिन्हें सामाजिक कानून के व्यक्तिगत हिस्सों की सफलता या असफलता की परीक्षा से पहचाना जा सकता है। हालांकि, इस तरह की परीक्षा के बिना भी यह स्पष्ट होना चाहिए कि कानून अपनेआप में सामाजिक परिवर्तन के लिए आसान राह नहीं है। समाज में मूल्य परिवर्तन किये बिना सामाजिक परिवर्तन के कानून बनाने के किसी भी उपक्रम के लिए नए मूल्य ढांचे को लागू करने के लिए राज्य के अधिकार और प्रतिरोधी शक्ति का उपयोग करना पड़ता है। जब तक कि लोगों की व्यापकता के बीच उस परिवर्तन की वांछनीयता के प्रति आम सहमति न हो जिसे कानून प्राप्त करना चाहता है, तो इसके परिणाम में हमारी सामाजिक बदलाव की उम्मीद के साथ-साथ सामाजिक घृणा और दुश्मनी पैदा हो सकती है। जैसा कि पहले भी उल्लेख किया गया है इस प्रकार का सामाजिक कानून प्रतिषेधात्मक है, इसलिए इसे बहस, चर्चा और प्रचार के उपायों से आगे ले जाना होगा जो लोगों को सामान्य रूप से राजी करेगा और उन्हें प्रस्तावित परिवर्तन को स्वीकार करने के लिए तैयार करेगा। यदि प्रस्तावित परिवर्तन के लिए लोगों की तैयारियों के बिना कानून आगे तक चला जाता है, तो ऐसे कानून का प्रवर्तन लोगों के समर्थन पर भारी पड़ेगा और इसलिए लोगों और प्रवर्तन एजेंसियों के बीच एक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी।

देश में एक प्रमुख कानून प्रवर्तन एजेंसी के रूप में पुलिस, अक्सर सामाजिक सुधार को लक्षित करने वाले विभिन्न कानूनों के प्रवर्तन में शामिल रहती है। लोगों द्वारा अपेक्षित पुलिस की भूमिका जीवन की सुरक्षा और संपत्ति के संरक्षण से संबंधित कानून के क्षेत्र में होती है। पुलिस की इस भूमिका के प्रदर्शन के लिए भारतीय दंड संहिता देश का बुनियादी आपराधिक कानून है। लोग इस भूमिका को अच्छी तरह से समझते हैं और अलग-अलग मामलों में स्वेच्छा से पुलिस का सहयोग करते हैं लेकिन स्थिति तब अलग हो जाती है जब पुलिस उन सामाजिक सुधार कानून को लागू करने में शामिल हो जाती है जिसे स्वीकार करने के लिए जनता अभी भी बड़े पैमाने पर तैयार नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि सुधार के लिए कानून लाने से पहले हम प्रस्तावित सुधार के लिए पूरी जनता की स्वीकृति की प्रतीक्षा नहीं कर सकते हैं। लेकिन सामाजिक सुधार के कानून को लागू करने का समय और इसके प्रवर्तन में पुलिस की भागीदारी का परिमाण दोनों बारीकी से समायोजित और विनियमित होना चाहिए ताकि इसके प्रवर्तन के प्रति जनता की धारणा पक्षपातपूर्ण नहीं होगी। यहाँ एक सावधानीकी जरूरत है। पुलिस राज्य का अंतिम प्रतिरोधी हाथ है। इसलिए इसका उपयोग बहुत ही विवेकपूर्ण और ऐसा होना चाहिए कि लोग स्पष्ट तौर पर इसकी प्रासंगिकता की सराहना करने में सक्षम हों। ऐसे अवसर भी आए हैं जब अति उत्साही प्रशासकों ने अंतिम लक्ष्य प्राप्ति के लिए पुलिस बल का उपयोग वहां किया है जहां इसका कोई मतलब नहीं था। 1976 में परिवार नियोजन के उपायों के प्रवर्तन में पुलिस भागीदारी के दुखद नतीजों के बारे में हमें पता है। परिवार नियोजन के लिए बंध्याकरण और जन्म नियंत्रण, जो सामान्य तौर पर पर्याप्त शिक्षा और बहस के बाद लोगों द्वारा अपनाया जा सकता था, वह पूरी तरह से घृणास्पद बन गया जब लोगों को पता चला कि पुलिस इसे आपराधिक कानून की सारी गंभीरता के साथ लाग कर रही है। यहां यह याद करना दिलचस्प होगा कि एक सदी पहले भारतीय पुलिस आयोग 1902 ने क्या अवलोकन किया था। अपनी रिपोर्ट में उन्होंने बताया था कि, "ड्यूटी पर लगे कॉस्टेबलों को नियुक्त करने की बेवकूफी जिसने पुलिस को अनावश्यक रूप से अलोकप्रिय बना दिया जैसे कि टीकाकरण के लिए बच्चों को इकट्ठा करना"आज 1902 तक बड़े पैमाने पर जनता द्वारा टीकाकरण स्वीकार नहीं किया गया है। उस उपाय को करने के लिए पुलिस की भागीदारी ने पुलिस

को नाहक ही अलोकप्रिय बना दिया। आज टीकाकरण को सामान्य रूप में स्वीकार कर लिया गया है, इस कार्यकम में पुलिस का उपयोग करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। ये टिप्पणियां करने का हमारा उद्देश्य इस बिंदु को रेखांकित करना है कि सामाजिक मूल्य प्रणाली में परिवर्तन लाने के लिए कानून अपनेआप में प्रभावी नहीं होगा और इसलिए, सामाजिक परिवर्तन को प्रभावित करने के लिए पुलिस को प्राथमिक साधन के रूप में नहीं देखा जा सकता है।

5.9 सामाजिक कानून का प्रवर्तन और पुलिस की भागीदारी

सामाजिक कानून के कुछ सामान्य पहलुओं पर हमारे विचारों को रखने के बाद, अब हम सामाजिक कानूनों के प्रवर्तन में पुलिस की भागीदारी के सवाल पर चर्चा करेंगे। एक राय यह है कि बल की ताकत की समरूपी वृद्धि के बिना, बढ़ती जिम्मेदारियाँ मूल 'पारंपरिक जिम्मेदारियों के कुंद परिणामों की ओर ले जाएंगी। इसके अलावा समाज अनेक सामाजिक कानूनी अपराधों को एक अपराध के रूप में नहीं देखता है, और यह अलोकप्रियता की ओर ले जाता है, पुलिस जिसकीअधिकारी नहीं है। इस राय के खिलाफ, सामाजिक सुधारकों का समान कड़ाई से यह मानना है कि जब तक कि उन्हें पुलिस की सहायता और समर्थन नहीं प्राप्त होता तब तक वे सामाजिक सुधार के वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करने में सक्षम नहीं होंगे।

राज्य के लिए उपलब्ध प्राथमिक कानून प्रवर्तन एजेंसी के रूप में, पुलिस सामाजिक कानून के प्रवर्तन में भागीदारी से नहीं बच सकती है। पुलिस का कर्तव्य है कि इन कानूनों को लागू करे लेकिन लागू करने के तरीकों को विनियमित और नियंत्रित किया जा सकता है और इन कानूनों को लागू करने के लिए जिसके लिए उच्च सामाजिक कौशल की जरूरत होती है, पुलिस को संवर्धित और प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है। इसके अलावा शायद बल में महिलाओं के एकउच्च प्रतिशत की भी जरूरत हो, क्योंकि कई सामाजिक कानूनों को परिवारों के साथ मुख्य रूप से महिलाओं और बच्चों के साथ निपटने की आवश्यकता होती है।

5.10 प्रवर्तन में अनाचार एवं भ्रष्टाचार

कुछ विशेष प्रकार के सामाजिक कानून के तहत अपराध जैसे कि नागरिक अधिकार अधिनियम का संरक्षण और बंधुआ श्रम प्रणाली (उन्मूलन) अधिनियम, इस प्रकार के पीड़ितों को शामिल करता है जो अपराधके बारे में शिकायत करने के लिए उत्सुक होंगे और अपनी राहत के लिए कानून की प्रक्रिया को गति देंगे। सामाजिक कानून कुछ अन्य विशेष प्रकारों में, जैसे प्रतिषेध अधिनियम, जुआ अधिनियम और अनैतिक व्यापार के दमन का अधिनियम, दुराचार के अपराध शामिल होते हैं और ज्यादातर अपनी जांच के आधार पर पुलिस का ध्यान आकर्षित करते हैं न कि विशिष्ट शिकायत के आधार पर जैसे कि पीड़ित व्यक्ति से। कानून की इस श्रेणी में पहली श्रेणी की अपेक्षा उत्पीड़न, भ्रष्टाचार और संबद्ध अनाचार के लिए बहुत ज्यादा गुंजाइश होती है। यही वह पहलू है जो पुलिस के प्रमुखों द्वारा हमारे सामने जबरदस्ती लाया गया है जो दृढ़ता से महसूस करते हैं कि विभाग में ये मामले और अपराध जिस चुस्ती के साथ फैलते हैं उससे जनता की नजरों में विभाग की प्रतिष्ठा गिर गई है। इसलिए कोई ऐसा रास्ता ढूंढना होगा जिससे ऐसे सामाजिक कानून के प्रवर्तन में उत्पीड़न और भ्रष्टाचार की गुंजाइश न्यूनतम हो और प्रवर्तन में पुलिस की भागीदारी को प्रभावी ढंग से नियमित और नियंत्रित किया जा सके।

5.11 सशर्त संज्ञेयता

पुलिस की तहकीकात की शक्ति और जिम्मेदारी अब संज्ञेय अपराधों तक ही सीमित हो गई हैं जो कि इस प्रकार कानून में निर्दिष्ट हैं। नए सामाजिक कानून के प्रभावी प्रवर्तन को सुरक्षित करने की चिंता में, समाज सुधारक और विधायक सभी अपराधों को ऐसे कानून जो संज्ञेय हो के तहत लाने के लिए प्रवृत्त होते हैं और मामले को इस विश्वास के साथ वहीं छोड़ देते हैं कि पुलिस द्वारा सख्त और गंभीर प्रवर्तन उनके उद्देश्य की प्राप्ति कर लेगा। यही वो स्थान है जहां हमें लगता है कि कानून में कुछ सुधार की गुंजाइश है, जब पुलिस द्वारा अपराधों का संज्ञान लिया जाए तब अनाचार के अवसर कम होंगे। अब भी कई संज्ञेय अपराध हैं जिनमें पुलिस की जांच पूरी होने के बाद भी, अदालत के स्तर पर मुकदमा आरंभ होने के लिए मामले का संज्ञान लेने के लिए प्रतिबंधहै। भारतीय दंड संहिता के अध्याय 6 के तहत अपराध और समान कोड की धारा 153ए, 153बी 188, 295ए,471 और 505 के तहत अपराध इसी प्रकार के उदाहरण हैं जहां अदालत केवल विशिष्ट व्यक्ति की शिकायत कर या विशिष्ट प्राधिकारी की मंजूरी पर ही संज्ञान ले सकती है। सामाजिक कानून की जांच करने के लिए सशर्त संज्ञेयता की इस अवधारणा का विस्तार करने की गुंजाइश है।

5.12 पुलिस की प्रतिक्रिया के निर्धारण के लिए सामाजिक कानूनों का वर्गीकरण

इस प्रयोजन के लिए, 1980 के राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने सामाजिक कानून को पांच समूहों के तहत वर्गीकृत किया था जो कि निम्नलिखित अनुच्छेदों में दर्शाया गया है और यह सिफारिश की थी कि प्रत्येक समूह के प्रवर्तन में पुलिस की भागीदारी की प्रकृति और सीमा निम्न अनुसार हों।

5.12.1 पहला समूह

(1) यह समूह विवाह, तलाक, गोद लेना, विरासत आदि जैसी सामाजिक संस्थाओं के विनियमन के कानूनों को समाविष्ट करेगा।

(2) इन कानूनों के प्रवर्तन में पुलिस की कोई भी भूमिका नहीं होनी चाहिए। इसे प्रभावित वादी पर छोड़ दिया जाना चाहिए कि वह मामले को सीधे अदालत में ले जाए और अपने विवादों को न्यायिक अधिनिर्णय के माध्यम से हल करे।

5.12.2 दूसरा समूह

इसमें दहेज, महिलाओं के खिलाफ भेदभाव, भीख, आवारागर्दी आदि कुछ सामाजिक समस्याओं सेनिपटने के कानून समाविष्ट होंगे।

(2) इन कानूनों के प्रवर्तन में पुलिस की कोई भी भूमिका नहीं होनी चाहिए, अलावा इसके कि कुछ में सार्वजनिक व्यवस्था या अपराध की रोकथाम के पहलू हों। उदाहरण के लिए, यदि किसी निर्दिष्ट सार्वजनिक स्थलों पर भीख मांगने पर रोक लगाने का कानून हो तो केवल निर्दिष्ट स्थानों पर सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने की दृष्टि से पुलिस को प्रासंगिक प्रावधान लागू करने की शक्तियां होनी चाहिए। पुलिस को अलग-अलग भिखारियों को इकट्ठा करने और उन्हें पुनर्वास या इसी तरह की संस्था में ले जाने में लिप्त नहीं होना चाहिए। यह काम नगरीय एजेंसी के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए, जिससे यह सामाजिक कल्याण कार्य लगे न कि एक आक्रामक कार्रवाई।

5.12.3 तीसरा समूह

(1) इस समूह में सामान्य रूप से और विशेष रूप से लोगों के स्वास्थ्य को बढ़ावा देना, मादक पेय और दवाएँ जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं, की खपत को रोकने के उद्देश्य के कानून समाविष्ट होंगे।

(2) इन कानूनों के तहत वे अपराध आते हैं जिसमें व्यावसायिक तौर पर संगठित गतिविधि (उदाहरण के लिए: दवाओं का अवैध व्यापार) या सार्वजनिक व्यवस्था में अशांति शामिल हो, इन्हें पुलिस द्वारा पूरी तरह से संज्ञेय बनाया जाना चाहिए। ऐसे अपराध को, जिनमें ऐसा कोई दृष्टिकोण नहीं है लेकिन किसी सार्वजनिक व्यवस्था की स्थिति बनाए बिना व्यक्तिगत व्यवहार और आचरण शामिल है, उसे केवल एक व्यक्ति के विशेष आरोप पर कि उसको ऐसे व्यवहार और आचरण से झुंझलाहट या चोट पहुंची है और जिसे खुफिया पुलिस ने स्वयं इकट्ठा नहीं किया है पुलिस द्वारा संज्ञेय बनाया जा सकता है। निषेध लाग करने के संबंध में, पुलिस द्वारा सीमित संज्ञेयता लाने के लिए कानून में संशोधन की आवश्यकता है।

5.12.4 चौथा समूह

इसमें कुछ मनोरंजन, जो गरीब परिवारों की कमाई की क्षति के लिए संचालित किये जाते हैं और परिणाम स्वरूप उनके अल्प वित्तीय संसाधनों को नाली में बहा देते हैं, पर रोक लगाने और विनियमित करने के उद्देश्य से बने कानून समाविष्ट होंगे।

(2) ऐसे कानून जो जुआ, घुड़दौड़, लॉटरी आदि को विनियमित करे। इन कानूनों के तहत अपराध की पुलिस संज्ञेयता उन तक सीमित होनी चाहिए जिनका एक सार्वजनिक पहलू हो। उदाहरण के लिए, सार्वजनिक स्थान पर जुए से उच्छृंखलता और सार्वजनिक व्यवस्था में अशांति को बढ़ावा मिलेगा और इसलिए इसे पुलिस द्वारा पूरी तरह से संज्ञेय बनाया जाना चाहिए। अपराध जिनमें इस प्रकार के सार्वजनिक व्यवस्था के पहलू शामिल नहीं हैं उन्हें केवल प्रभावित वादी की विशिष्ट शिकायत पर ही संज्ञेय बना सकते हैं।

5.12.5 पांचवाँ समूह

(1) इस समूह में वे कानून समाविष्ट होंगे जो समाज के विकलांग और कमजोर वर्गो को पुनर्वासित करने और उनकी आर्थिक कमजोरी या दूसरी प्रकार की व्यथित स्थिति के शोषण को रोकने के लिए होंगे।

(2) पुलिस को इन कानूनों के प्रवर्तन में पूरी तरह शामिल किया जाना चाहिए। नागरिक अधिकार अधिनियमका संरक्षण और अनैतिक व्यापार के दमन का अधिनियम, इस समूह के तहत कानून के ऐसे ही उदाहरण हैं। इन कानूनों के तहत अपराधों को संज्ञेय बनाया जाना चाहिए और सामान्य पुलिस को उन्हें लागू करने का पूरा अधिकार होना चाहिए।

(3) अपराध की जांच में गिरफ्तारियाँ जो सशर्त संज्ञेय बनाई गई हैं, जैसा कि ऊपर सिफारिश की गई है, पुलिस को गिरफ्तारी के अधिकार की जरूरत नहीं है। वे जांच के निष्कर्ष पर, यदि ऐसी कार्रवाई के लिए सबूत कायम रहता है तो मामले को अदालत के सामने पेश कर सकते हैं और आरोपी व्यक्ति से जब तलब किया जाए तब अदालत में उपस्थिति होने के लिए एक बाँड ले ले।

5.13 सामाजिक कानून लागू करने हेतु पुलिस के विशेष दस्ते

राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने एक सुझाव को परखा है कि सभी सामाजिक कानून को लागू करने के लिए एक अलग पुलिस विंग स्थापित किया जा सकता है। इस अग्रवर्ती सुझाव का मुख्य कारण यह है कि सामाजिक कानून के प्रवर्तन के संचालन के लिए प्रवर्तन कर्मियों के एक निश्चित क्रियाशील दिमागी दृष्टिकोण और रवैये की आवश्यकता है जिसे केवल विशेषज्ञता और प्रशिक्षण द्वारा ही लाया जा सकता है। जबकि इस व्यवस्था का एक लाभ है, हमें इस तथ्य पर ध्यान देना होगा कि विशेष सामाजिक कानूनों के तहत अपराधों में, खास कर अनुच्छेदों के चौथे और पाँचवें समूह के अंतर्गत आते हैं, बुरे चरित्र, गुंडे और व्यक्ति और संपत्ति से जुड़े पारंपरिक अपराध से जुड़े पेशेवर अपराधियों की गतिविधियों के शामिल होने की संभावना है। इसलिए इस प्रकार के सामाजिक कानून के प्रवर्तन से सामान्य पुलिस को अलग कर देना वांछनीय नहीं है।

अभी तक प्रकाशित किया जाने वाले, टिप्पणियों के लिए आयोजित मसौदा दस्तावेज को पाठक कुछ सामाजिक कानून को लागू करने की आसान सहायता के रूप में पढ़ सकते हैं। शीर्षक "सामाजिक कानूनों के प्रवर्तन में पुलिस की भूमिका" को http://sdrv.ms/NCprmuपर देखा जा सकता है। यह उन कानूनों, जिसमें किसी की रुचि हो सकती है, के उपयुक्त संशोधनों और परिवर्धन के साथ की हस्तपुस्तिका के रूप में है, और वर्तमान में प्रावधानों, पुलिस की भूमिका और पुलिस अधिकारियों तथा स्वयंसेवी संगठनों के सरोकारों के कुछ सामाजिक कानून के महत्वपूर्ण मामलों के संदर्भो के साथ संबद्ध है। इस नोट के प्रारंभिक अनुच्छेदों के कुछ विचार भी इस हस्तपुस्तिका की प्रस्तावना पर ही आधारित हैं।

5.14 सारांश

समाज में प्रचलित विभिन्न असमानताओं और विषमताओं को दूर करने हेतु सामाजिक कानूनों की स्थापना की गई है जिसका उद्देश्य सभी के लिए समानता और समान अवसर सुनिश्चित करना है। सामाजिक कानूनों के अधिकारों की रक्षक, समाज सेवा के साधन एवं नागरिकों के लिए रोल मॉडल है। सामाजिक कानून के प्रवर्तन की प्रभावशीलता को अनेक कारक प्रभावित करते है। सामाजिक सुधार एवं परिवर्तन के लिए सामाजिक कानून पर विश्वास किया जाता है। सामाजिक कानून अनुमोदक एवं प्रतिषेधात्मक, दो प्रकार का हो सकता है। सामाजिक कानूनों की सफलता में समाज सुधारकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। सामाजिक कानून को लागू करने के तरीकों को विनियमित एवं नियंत्रित कर उच्च सामाजिक कौशल स्थापित करें। पुलिस की प्रतिक्रिया निर्धारण हेतु सामाजिक कानूनों के पाँच समूह वर्गीकृत किए गए है। साथ ही सामाजिक कानून लागू करने हेतु पुलिस के विशेष दस्ते बनाकर सामाजिक कानून के प्रवर्तन में सहायता ली जा सकती है।

5.15 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सामाजिक असमानताएँ एवं उनसे निपटने की आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।
2. सामाजिक कानून के संदर्भ में पुलिस की भूमिका एवं पुलिस की भागीदारी की विवेचना कीजिए।
3. सामाजिक कानून के प्रवर्तन को प्रभावशीलता को प्रभावित करने वाले कारकों पर चर्चा कीजिए।
4. सामाजिक सुधार एवं इसको प्रभावित करने में कानून की भूमिका पर अपने विचार व्यक्त करिए।
5. सशर्त संज्ञेयता से क्या अभिप्राय है? उदाहरण सहित समझाइये।

इकाई - 6
पुलिस एवं समाज के कमजोर वर्ग

इकाई की संरचना

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 कमजोर वर्ग : भारतीय संदर्भ

6.3 नई अपेक्षाएँ

- 6.3.1 सामाजिक सन्तुलन, विकास एवं प्रगति
- 6.3.2 अत्याचार निराकरण

6.4 कमजोर वर्ग : अर्थ, अवधारणा एवं आधार

- 6.4.1 पहिचान के आधार
- 6.4.2 संवैधानिक प्रावधान
- 6.4.3 अनुसूचित जाति एवं जनजातीय आधार
- 6.4.4 अन्य आधार
- 6.4.5 जन्म आधारित पहिचान

6.5 कमजोर वर्ग पर अत्याचार : अर्थ, प्रकृति तथा वर्गीकरण

- 6.5.1 वैधानिक स्वरूप
- 6.5.2 अत्याचार की परिभाषा, प्रकृति एवं स्वरूप
- 6.5.3 अत्याचार, अपराध एवं दण्ड विधान

6.6 अत्याचार निराकरण : कार्य योजना

6.7 पुलिस की भूमिका

- 6.7.1 प्रभावी पुलिस भूमिका के मानदण्ड
- 6.7.2 पुलिस भूमिका के प्रति आम धारणा
- 6.7.3 कमजोर वर्गो की पुलिस भूमिका के प्रति धारणा

6.8 पुलिस का सूचना तंत्र एवं व्यवस्थाएँ

- 6.8.1 उपेक्षा एवं असावधानी
- 6.8.2 अप्रभावी अनुसंधान
- 6.8.3 कमजोर वर्गो का पिछड़ापन, गरीबी एवं अशिक्षा
- 6.8.4 सामाजिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक स्थितियाँ

6.9 उत्कृष्ट पुलिस भूमिका की ओर

- 6.9.1 पुलिस - आत्मालोकन
- 6.9.2 पुलिस का रूपान्तरण
- 6.9.3 विशेषीकृत, भू भौतिकी तथा सांख्यिकी प्रणालियाँ
- 6.9.4 कानूनों का सही एवं प्रभावी क्रियान्वयन
- 6.9.5 सक्षम अनुसंधान

6.10 सारांश

6.11 अभ्यासार्थ प्रश्न
8.12 संदर्भ

6.0 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के उद्देश्य निम्नांकित है:-

- इस अध्याय के अध्यापन के पश्चात् विद्यार्थी कमजोर वर्ग की अवधारणाओं को समझने में सक्षम हो सकेंगे।
- यह अध्याय उन्हें कमजोर वर्गो पर होने वाले अत्याचारों से परिचित करवाने में सक्षम होगा।
- समाज के कमजोर वर्गो एवं सामाजिक असन्तुलन के सन्दर्भ में पुलिस की भूमिका स्पष्ट होगी।

6.1 प्रस्तावना

सामाजिक संगठन एक समाजशास्त्रीय अवधारणा है। इसका तात्पर्य यह है कि समाज के सभी वर्गो, स्तरों व क्षेत्रों में किसी प्रकार की अनुचित असमानता प्रचलन में नहीं है। सामाजिक, आर्थिक या अन्य प्रकार की असमानता समाज में संघर्ष, तनाव, अशान्ति एवं अव्यवस्था को जन्म दे सकती है, जिसकी वजह से सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक विकास व प्रगति प्रभावित हो सकते है। किसी भी समाज में प्रगति, विकास तथा शांति और व्यवस्था को स्थापित करने के लिए सामाजिक स्थिरता, सांस्कृतिक मेल-जोल तथा आर्थिक समानता की आवश्यकता होती हैं समाज में यदि कुछ वर्गो के पास बहुत ज्यादा संसाधन होने की वजह से समृद्धि आ जाती है और वे समाज में अपनी समृद्धि को प्रभावशाली रूप को प्रदर्शित करते हैं, तो दूसरे वर्गो को निश्चित ही कुछ सुविधाओं से वंचित होना पड़ता है। ऐसे वंचित वर्ग दीन-हीन और कमजोर बने रहने को विवश होते है। इस प्रकार समाज कालांतर में कमजोर एवं सम्पन्न वर्गो में बँट जाता है। सामाजिक समूहों का इस प्रकार का वर्गीकरण प्राय: जन्म, लिंग, शिक्षा, वैवाहिक स्थिति, भौतिक पदार्थो पर नियंत्रण, सामाजिक स्तरीकरण तथा सत्ता के सोपानों में व्यक्तियों की स्थिति जैसे आधारों पर होता है। इस प्रकार की प्रतिकूल स्थिति भारत जैसे बहुआयामी, बहुलवादी तथा विशाल राष्ट्र में होना स्वाभाविक हो सकता है परन्तु उसे लाभकारी एवं लोक कल्याणकारी नहीं माना जा सकता है।

6.2 कमजोर वर्ग : भारतीय सन्दर्भ

भारतीय समाज इस प्रकार के असंतुलन एवं चिन्हित कमजोर वर्गो में बंटे हुए समाज का एक विशिष्ट उदाहरण है। अंधविश्वासों, परम्पराओं और जड़ मान्यताओं पर आधारित सामाजिक संरचना के आधार पर वर्गीकृत एवं बंटे हुए भारतीय समाज ने कमजोर वर्गो को राष्ट्रीय विकास तथा सामाजिक जीवन की मुख्य धारासे अलग-थलग बने रहने की अवस्था में ला खड़ा किया है। इस प्रकार की स्थिति कमजोर वर्गो में अपराधों को पैदा करती है और प्राय: यह अपराधिकता उनकी जीविका का आधार बन जाती है। सामाजिक दूरियां, अलगाव, उदासीनता, शोषण, अज्ञानता का बंधन, बीमारियाँ और गरीबी तथा इन स्थितियों से पैदा हुई अपराधिक आदतों एवं मनोवृत्तियों की वजह से कमजोर वर्गो के प्रति नफरत का भाव समाज में व्याप्त रहता है। इसके कारण ही इन कमजोर वर्गो पर विभिन्न प्रकार के अत्याचार किये जाते हैं। इन सभी स्थितियों में समाज के कमजोर वर्गो के सम्बन्ध में पुलिस की भूमिका एक प्रासंगिक विषय बन जाता है।

6.3 नई अपेक्षाएँ

मानवतावादी मूल्यों एवं समतावादी मान्यताओं से संचालित समाज के चहुँमुखी विकास के लिए अपराधिक न्याय प्रशासन की यह मांग है कि प्रभावशाली पुलिस व्यवस्था तथा दण्ड के सख्त प्रावधानों के माध्यमों से कमजोर वर्गो की रक्षा करने के प्रभावी उपाय किये जाएँ। इस प्रकार कमजोर वर्गो पर हो रहे अत्याचारों को रोकने में पुलिस की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। सामाजिक सुरक्षा को सुनिश्चित कर तथा वैयक्तिक संरक्षा प्रदान करके पुलिस कमजोर वर्गो की रक्षा का कवच भी बन सकती है। इस संदर्भ में पुलिस अपनी उपयुक्त भूमिका का निर्वाह कर कमजोर वर्ग के लोगों में आत्मविश्वास तथा आत्म सम्मान पैदा कर सकती है।

6.3.1 सामाजिक सन्तुलन. विकास एवं प्रगति

कमजोर वर्ग के लोग हजारों वर्षो से शोषण, अन्याय तथा अत्याचार के शिकार होते रहे है। उनको आत्म सम्मान की स्थिति मिल जाने से जो नई पहचान बनेगी वह सामाजिक विकास में मदद करेगी। प्रभावी तथा सुरक्षात्मक पुलिस कार्यवाहियों के साथ-साथ यदि विकास की योजना को भी शुरू किया जाएँ तो कमजोर वर्गो पर होने वाले अत्याचारों में कमी आयेगी। यहीं नहीं विकास के कार्यों की वजह से ये पिछड़े वर्ग सम्पन्न बन सकेंगे और परिणाम स्वरूप कमजोर वर्गो की संख्या में कमी होने लगेगी। कमजोर वर्गो की संख्या में कमी होने से समाज में एकरूपता आने लगेगी और स्वाभाविक रूप से अत्याचारों में भी कमी संभव हो सकेगी। फलतः सामाजिक असंतुलन एवं वर्ग भेद तथा ऊँच-नीच की वजह से सभ्य समाज में जो संघर्ष, हिंसा तथा अपराध की स्थितियाँ बनी हुई हैं उनमें निरन्तर कमी आना शुरू हो जायेगा।

6.3.2 अत्याचार निराकरण

भारतीय समाज में कमजोर वर्गो पर अत्याचारों को रोकने के लिए आज के संदर्भ में पुलिस भूमिका की अवधारणा पर नये सिरे से विचार करने को आवश्यकता है। इसी तरह कमजोर वर्गो तथा अत्याचारों की अवधारणाओं को भी समाजशास्त्रीय तथा क्षेत्रीय वास्तविकताओं के संदर्भ में पुन: देखना होगा। भविष्य में देश में जो वातावरण बनेगा, उसे ध्यान में रखकर इन दोनों अवधारणाओं की नए सिरे से समीक्षा की जानी बहुत जरूरी है।

6.4 कमजोर वर्ग : अर्थ, अवधारणा एवं आधार

"समाज के कमजोर वर्ग" की अवधारणा एवं परिभाषा और समझ स्पष्ट नहीं रही है। भारतीय समाज के संदर्भ में यह अवधारणा और भी अधिक अस्पष्ट है। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि समाज का वह समूह जो विभिन्न प्रकार की सुविधाओं से वंचित है तथा आर्थिक, शैक्षणिक तथा राजनैतिक रूप से पिछड़ा हुआ है तथा जो जाति, धर्म, लिंग के भेदभाव के आधार पर शोषण का शिकार रहा है, को भारतीय समाज में कमजोर वर्ग के रूप में पहिचाना जा सकता हैं।

6.4.1 पहिचान के आधार

समाज का कोई वर्ग, दूसरे वर्ग की तुलना में कमजोर है या नहीं इस बात का पता करने के लिए कमजोरी का आधार किस क्षेत्र के लिए क्या हो, इसे मालूम करने के उद्देश्यों पर निर्भर करेगा। अर्थात् कोई एक वर्ग किसी एक क्षेत्र में कमजोर हो सकता है तो दूसरे क्षेत्र में वह सम्पन्न भी हो सकता है। आर्थिक विकास के लिए उपाय करने के समय आर्थिक कमजोरी का मूल्यांकन करना उचित रहेगा:।

शारीरिक रूप से कमजोर वर्गो की सूची में महिलाएँ, बच्चे, विकलांग तथा मानसिक रूप से अविकसित लोगों को शामिल किया जा सकता हैं। विधिक और कानूनी सहायता प्रदान करने के दृष्टिकोण से कमजोर वर्ग का पता करने के लिए, न्यायमूर्ति बी.आर.कृष्णा अय्यर की अध्यक्षता में गठित विधि सहायता समिति ने भौगोलिक रूप से वंचित, विकलांग, ग्रामीण, खेतीहर मजदूर, औद्योगिक श्रमिक, महिलाओं, बच्चों, हरिजन, अल्पसंख्यकों तथा कैदियों को कमजोर वर्ग माना है। भारतीय संदर्भ में अछूतों को समाज का कमजोर वर्ग माना जाता है।

6.4.2 संवैधानिक प्रावधान

संविधान के अनुच्छेद 46 में कमजोर वर्गो का उल्लेख किया गया है। उसमें कहा गया है कि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य कमजोर वर्ग के आर्थिक एवं शैक्षणिक हितों की रक्षा की जाए तथा उन्हें आगे बढ़ाने के अवसर दिये जाएँ। समाज का कोई भी वर्ग यदि सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक कारणों से पिछड़ा हुआ है तो उसे कमजोर वर्ग माना जा सकता है।

6.4.3 अनुसूचित जाति एवं जनजातीय आधार

भारतीय समाज में आमतौर से इस श्रेणी में अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जनजातियाँ आती है जिनका जाति और जन्म या अन्य सामाजिक आधार पर हजारों सालों से शोषण किया जाता रहा है। 2001 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जातियों का प्रतिशत कुल जनसंख्या का 19.31 है तथा इनकी संख्या 13 करोड़ से अधिक है एवं अनुसूचित जनजातियां 12.44 प्रतिशत है और इनकी जनसंख्या 6.77 करोड़ है। यदि इतनी बडी जनसंख्या के साथ अत्याचार की घटनाएं होती है तो समाज में उपद्रव तथा असंतुलन की स्थिति पैदा हो जाना स्वाभाविक है।

6.4.4 अन्य आधार

व्यापक अर्थों में, कमजोर वर्ग में शारीरिक तथा सामाजिक रूप से पिछड़े तथा विकलांग लोगों को सम्मिलित किया जा सकता है। इस प्रकार के लोगों में ऐसे समूह आते है जो जीवन में ठीक से स्थापित नहीं हो सके है यथा - बाल अपराधी, पीड़ित महिलाएँ, नशाखोर, भिखारी, ग्रामीण तथा पिछड़े क्षेत्रों के मानसिक रूप से अविकसित बच्चे, गंदी बस्तियों के बच्चे आदि को कमजोर वर्ग में सम्मिलित किया जा सकता है। इन वर्ग समूह के व्यक्तियों को कमजोर बनाने के लिए लिंग, आयु, शिक्षा, शक्ति, जन्म तथा सामाजिक सम्मान जैसे तत्व जिम्मेदार होते हैं। चूंकि आयु तथा लिंग मानव नियंत्रण से बाहर की स्थितियां है अत: इन्हें कमजोरी नहीं माना जाना चाहिए।

6.4.5 जन्म आधारित पहिचान

कमजोर वर्ग मे आमतौर पर एक बड़ा समूह उन लोगों का होता है जो अपने जन्म के कारण कई प्रकार की सामाजिक सुविधाओं से वंचित रह जाते है। इन सुविधाओं की व्यक्तिगत सुरक्षा तथा सामाजिक प्रतिस्पर्धा के बीच प्रगति करने के लिए विशेष आवश्यकता होती है। इन सुविधाओं में धन, शक्ति तथा सामाजिक सम्मान सम्मिलित है। भारतीय संदर्भो में बहुत सारे लोग महज अपने जन्म के कारण इन सुविधाओं को प्राप्त नहीं कर पाते है। परिणाम स्वरूप इनमें से अधिकतर लोग गरीबी की रेखा से नीचे जीवन जीते हैं। राजनीतिक रूप से कई ऐसे नागरिक होते हैं जो चारों ओर के वातावरण के कारण शोषण के शिकार होते रहते हैं। सामाजिक मानदण्ड भी उन्हें मूल मानवीय समानता नहीं देते है। सांस्कृतिक रूप से ऐसे वर्ग बहुत पिछड़े होते है क्योंकि उन्हें वे भूमिकाएँ तथा सुविधाएँ नहीं

दी जाती है जिनसे मान व सम्मान में वृद्धि होती है। वे किसी क्षेत्र मेंअल्पसंख्यक या बहुसंख्यक हो सकते है लेकिन शिक्षा, धन, योग्यता आदि की प्राथमिक अयोग्यताएँ उनके प्रयत्नों और प्रयासों को अर्थपूर्ण एवं लाभकारी नहीं बनने देती।

समाज के कमजोर वर्गो के प्रति पुलिस की भूमिका तथा जिम्मेदारियों की जांच पड़ताल करते वक्त समाज के किसी वर्ग विशेष को निरपेक्ष रूप से कमजोर मानने के निश्चित मानदण्ड बनाना संभव नहीं हैं देश के कानूनों के अंतर्गत किसी व्यक्ति को उसके जीवन, सम्पत्ति तथा अन्य मामलों में जो विधिक अधिकार दिये गए है वे उसे प्राप्त होते है या नहीं इस दृष्टिकोण से उसके कमजोर होने को इंगित किया जाना चाहिए। प्राचीन परम्पराओं, रीति-रिवाजों, विश्वासों तथा निहित स्वार्थों के अतिरिक्त गरीबी तथा अज्ञान के आधार पर, जिनके साथ सामाजिक अन्याय या अन्य प्रकार के शोषण किए जाते है, उन्हें इसी दृष्टिकोण के आधार पर "कमजोर वर्ग" माना जायेगा। पुलिस को इसी प्रकार के संदर्भ विशेष के अनुसार कमजोर वर्गो को चिन्हित करना चाहिए तथा कमजोर वर्गो पर होने वाले अत्याचारों को रोकने की भूमिका को निश्चित करना चाहिए।

6.5 कमजोर वर्गो पर अत्याचार : अर्थ, प्रकृति तथा वर्गीकरण

भारतीय जनसंख्या का बहुत बडा भाग, अनुसूचित जाति, जनजाति, हरिजन, क्षुद्र, शोषित एवं पिछड़े वर्गो का है। भारतीय जनसंख्या में 30 प्रतिशत से अधिक तो केवल अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोग है। अन्य कमजोर वर्गो का प्रतिशत तो इससे भी कहीं ज्यादा है। ये कमजोर वर्ग विभिन्न प्रकार के शोषणों का शिकार होते रहे हैं। समाज के तथाकथित उच्च वर्ग के लोगों ने इन कमजोर वर्ग के लोगों का विभिन्न प्रकार से शोषण किया है तथा उन पर कई तरह से जुल्म ढाये हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात राजनैतिक तथा सामाजिक तनावों ने और नई समस्याएं भी इनमें जोड़ दी हैं। समाज के कमजोर वर्गो पर अत्याचारों के संदर्भ में पुलिस की भूमिका को महत्वपूर्ण माना जाता है।

6.5.1 वैधानिक स्वरूप

कमजोर वर्गो के संदर्भ में अत्याचार को अभी तक निश्चित रूप से परिभाषित नहीं किया गया है। अनुसूचित जाति / जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989 में इसे प्रकारान्तर में अवश्य परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस संदर्भ में कई प्रकार के कानूनों को अधिनियमित करने के प्रयास किये गये है। इन कानूनों के माध्यम से अत्याचारों की धमकी का मुकाबला करने और उन्हें रोकने की कोशिश की गई है। खासतौर से छुआछूत के कारण पैदा हुई समस्याओं से निपटने के लिए कानूनों का निर्माण किया गया है। इस प्रकार का प्रथम प्रयास छुआछूत अपराध अधिनियम, 1955 को अधिनियमित करके किया गया था। इसी अधिनियम के प्रावधानों को अधिक सख्त बनाने के लिए उसे 1976 में संशोधित किया गया था। इन दोनों अधिनियमों में बहुत सारी कमियों तथा पुलिस की अप्रभावशाली भूमिका के कारण कमजोर वर्ग पर अत्याचारों को रोकने में वांछित सफलता नहीं मिली। इसलिए और अधिक प्रभावशाली अधिनियम, "अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989" बनाया गया है। इस अधिनियम के धारा 3 में अत्याचार के अपराधों की सजा का प्रावधान किया गया है। इस खण्ड में अनुसूचित जनजाति तथा अनुसूचित जाति पर होने वाले अत्याचारों के साथ-साथ अत्याचारों की अवधारणा को भी स्पष्ट किया गया है।

6.5.2 अत्याचार की परिभाषा, प्रकृति एवं स्वरूप

साधारण बोलचाल की भाषा में अत्याचार को बहुत ही दृष्टता का कार्य कहा गया है। अनुसूचित जाति और जनजाति आयोग की पहली रिपोर्ट में हत्या, बलात्कार, आगजनी तथा हिंसा जिससे गहरी चोट पहुंचती है आदि को अत्याचार माना गया है। अत्याचार की अवधारणा में जाति तत्व को सबसे अधिक विचारणीय माना गया है। अत्याचार शब्द का अर्थ गृह मंत्रालय के 1980-81 में दिये गये स्पष्टीकरण के अनुसार भारतीय दण्ड संहिता के अंतर्गत कोई भी अपराध चाहे वह संज्ञेय हो या असंज्ञेय हो, अपराध कारित करने वाला गैर अनुसूचित जातिया जनजाति का सदस्य है, और जिसके साथ अपराध हुआ है वह अनुसूचित जाति या जनजाति का सदस्य है, अपराध का उद्देश्य जो भी रहा हो, अत्याचार माना जायेगा। राष्ट्रीय पुलिस आयोग की रिपोर्ट के बाद 1983 में इस शब्द का अर्थ फिर बदल गया। राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने पाया कि अत्याचार के अपराधों से निपटने में एकरूपता नहीं है। इसलिए फलतःभारतीय दण्ड संहिता के कुछ खण्डों को अत्याचार के रूप में चिन्हित किया गया है। इस परिवर्तन से जाति आधारित अत्याचार की अवधारणा में बहुत परिवर्तन हुआ है

कमजोर वर्ग पर होने वाले अत्याचारों के स्वरूप तथा प्रकृति का विश्लेषण यह दर्शाता है कि हत्याओं और हिंसा में लगातार वृद्धि हो रही है जिससे गहरी चोट, बलात्कार तथा आगजनी की घटनाएं निरंतर घटित होती रहती है। यह बड़े गंभीर चिंतन का विषय है। इस परिस्थिति में विशेष तौर से कमजोर वर्ग पर अत्याचारों को रोकने में पुलिस की भूमिका के बारे में पुन: विचार करने की आवश्यकता हैं। अनुसूचित जाति / जनजाति तथा समाज के अन्य कमजोर वर्गो पर होने वाले अत्याचारों को विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकते हैं जैसे शारीरिक अत्याचार, मानसिक एवं भावनात्मक प्रताड़ना, शारीरिक एवं सम्पत्ति पर आक्रमण, अपमान तथा मानवीय बेइज्जती। सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक असमानताओं के कारण पैदा हुए अत्याचार, राजनैतिक तथा पुलिस अत्याचार आदि को चार्ट "अ"के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

6.5.3 अत्याचार, अपराध एवं दण्ड विधान

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों पर होने वाले अत्याचारों से सम्बन्धित अपराधों को अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3 में सजा का प्रावधान किया गया है। इस अधिनियम की धारा 3 का उल्लेख यहां किया जाना समीचीन प्रतीत होता है।

धारा 3 : कानूनी स्थिति

1. कोई भी व्यक्ति, जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है -
   (i) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य के परिसर या पड़ोस में मल-मूत्र कूड़ा, पशु शव या कोई अन्य घृणाजनक पदार्थ इकट्ठा करके उसे क्षति पहुँचाने, अपमानित करने या सुख करने के आशय से कार्य करेगा।
   (ii) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य के शरीर से बलपूर्वक कपड़े उतारेगा या उसे नंगा या उसके चेहरे या शरीर पर पोतकर घुमायेगा या उसी प्रकार का कोई अन्य कार्य ऐसा करेगा जो मानव के सम्मान के विरूद्ध है।
   (iii) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य के स्वामित्वाधीन या उसे आवंटित या किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा उसे आवंटित किए जाने के लिए अधिसूचित किसी भूमि

को सदोष अधिभोग में लेगा या उस पर खेती करेगा या उसे आवंटित भूमि को अन्तरित करा लेगा।

(iv) अनुसूचित जाति या जनजाति के किसी सदस्य को उसकी भूमि या परिसर से सदोष कब्जा करेगा या किसी भूमि, परिसर या जल पर उसके अधिकारों के उपभोग में हस्तक्षेप करेगा।

(v) अनुसूचित जाति या जनजाति के किसी सदस्य को बेगार करने के लिए या सरकार द्वारा लोक प्रयोजन के लिए अधिरोपित किसी अनिवार्य सेवा से भिन्न अन्य समरूप प्रकार के बाल श्रम या बंधुआ मजदूरी के लिए विवश करेगा या फुसलायेगा।

(vi) अनुसूचित जाति या जनजाति के किसी सदस्य को मतदान न करने के लिए या किसी विशिष्ट अभ्यर्थी के लिए मतदान करने के लिए या विधि द्वारा उपबन्धित से भिन्न रीति से मतदान करने के लिए मजबूर का अभित्रस्त करेगा।

(vii) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य के विरूद्ध मिथ्या, द्वेषपूर्ण या तंग करने वाला वाद या दाण्डिक या अन्य विधिक कार्यवाही स्थापित करेगा।

(viii) किसी लोक सेवक को कोई मिथ्या या तुच्छ जानकारी देगा और उसके द्वारा अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को क्षति पहुंचाने या क्षुब्ध करने के लिए ऐसे लोक सेवक से उसकी विधिपूर्ण शक्ति का प्रयोग करायेगा।

(ix) जनता को दृष्टिगोचर किसी स्थान में अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य का अपमान करने के आशय से साशय उसको अपमानित या अभित्रस्त करेगा।

(x) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति की किसी महिला का अनादर करने या उसकी लज्जा भंग करने के आशय से हमला या बल प्रयोग करना।

(xi) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति की महिला की इच्छा को अधिशासित करने की स्थिति में होने पर उस स्थिति का प्रयोग उसका लैंगिक शोषण करने के लिए, जिसके लिए वह अन्यथा सक्षम नहीं होती, करेगा।

(xii) किसी स्रोत, जलाशय या किसी अन्य उद्गम के जल को या आम तौर पर अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के सदस्यों द्वारा उपभोग में लाया जाता है, दूषित या गन्दा करेगा जिससे कि वह उस प्रयोजन के लिए कम उपयुक्त हो जाएं जिसके लिए उसका आमतौर पर प्रयोग किया जाता है।

(xiii) अनुसूचित जाति या जनजाति के किसी सदस्य को सार्वजनिक अभिगमन के स्थान के मार्ग के किसी रूढिजन्य अधिकार से वंचित करेगा या ऐसे सदस्य को बाधा पहुंचाएगा जिससे कि वह ऐसे सार्वजनिक अभिगमन के स्थान का उपयोग करने या वहां पहुँचने से निवारित हो जाये वहां जनता के अन्य सदस्यों या उसके किसी भाग को उपयोग करने की या पहुँचने का अधिकार हैं।

(xiv) अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को अपना मकान, गांव या अन्य निवास स्थान छोड़ने के लिए मजबूर करेगा या करायेगा।

वह, कारावास से, जिसकी अवधि छह माह से कम की नहीं होगी किन्तु जो पांच वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से, दण्डनीय होगा।

2. कोई भी व्यक्ति, जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है -

(i) मिथ्या साक्ष्य देगा या गड़ेगा जिससे उसका आशय अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य को किसी ऐसे अपराध के लिए जो तत्समय प्रवृत विधि द्वारा मृत्युदंड से दंडनीय है, दोष सिद्ध कराना है या वह जानता है कि इससे उसका दोष सिद्ध होना सम्भाव्य

है, वह आजीवन कारावास से और जुर्माने से दंडनीय होगा, और यदि अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी निर्दोष सदस्य को ऐसे मिथ्या या गढ़े हुए साक्ष्य के फलस्वरूप दोषसिद्ध किया जाता है और फांसी दी जाती है तो वह व्यक्ति जो ऐसा मिथ्या साक्ष्य देता है या गढ़ता है, मृत्युदंड से दण्डनीय होगा।

(ii) मिथ्या साक्ष्य देगा या गढ़ेगा जिससे उसका आशय अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति केकिसी सदस्य को ऐसे अपराध के लिए जो मृत्यु दंड से दंडनीय नहीं है किन्तु सात वर्ष या उससे अधिक की अवधि के कारावास से दण्डनीय है, दोषसिद्ध करना है या वह जानता है कि उससेउसका दोषसिद्ध होना सम्भाव्य है, वह कारावास से, जिसकी अवधि छह माह से कम की नही होगी किन्तु जो सात वर्ष या उससे अधिक की हो सकेगी और जुर्माने से दण्डनीय होगा।

(iii) अग्नि या किसी विस्फोटक पदार्थ द्वारा नष्ट करेगा जिससे उसका आशय अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य की किसी सम्पति को नुकसान पहुंचाना है या वह यह जानता है कि उससे ऐसा होना सम्भाव्य है, वह कारावास से जिसकी अवधि छह माह से कम की नहीं होगी किन्तु जो सात वर्ष तक की हो सकेगी, और जुर्माने से दण्डनीय होगा।

(iv) अग्नि या किसी विस्फोटक पदार्थ द्वारा नष्ट करेगा जिससे उसका आशय किसी ऐसे भवन को जो अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के किसी सदस्य द्वारा साधारण: पूजा के स्थान के रूप में या मानव आवास के स्थान के रूप में या सम्पत्ति की अभिरक्षा के लिए किसी स्थान के रूप में उपयोग किया जाता है, नष्ट करता है या वह जानता है कि उससे ऐसा होना सम्भाव्य है, वह आजीवन कारावास से और जुर्माने से दण्डनीय होगा।

(v) भारतीय दंड संहिता (45 आफ 1960) के अधीन दस वर्ष या उससे अधिक की अवधि के कारावास से दण्डनीय कोई अपराध किसी व्यक्ति या सम्पत्ति के विरूद्ध इस आधार पर करेगा कि ऐसा व्यक्ति अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य है या ऐसी सम्पत्तिज्ञ ऐसे सदस्य की है, वह आजीवन कारावास से और जुर्माने से दण्डनीय होगा।

(vi) यह जानते हुए या यह विश्वास करने का कारण रखते हुए कि इस अध्याय के अधीन कोई अपराध किया गया है, वह अपराध किए जाने के किसी साक्ष्य को, अपराधी को विधिक दण्ड से बचाने के आशय से गायब करेगा या उस आशय से अपराध के बारे में कोई ऐसी जानकारी देगा जो वह जानता है या विश्वास करता है कि वह मिथ्या है, वह उस अपराध के लिए उपबन्धित दण्ड से दण्डनीय होगा या

(vii) लोक सेवक होते हुए इस धारा के अधीन कोई अपराध करेगा, वह कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष से कम की नहीं होगी किन्तु जो उस अपराध के लिए उपबन्धित दण्ड तक हो सकेगी, दण्डनीय होगा।

6.6 अत्याचार निराकरण: कार्य योजना

संविधान तथा विभिन्न कानूनों ने देश के कमजोर वर्गो को सामाजिक तथा आर्थिक न्याय के अवसरों तथा सामाजिक परिस्थितियों में समानता की गारंटी प्रदान की गई है। इन रक्षा उपायों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

(क) वे उपाय जिनका उद्देश्य उन अपराधों तथा अत्याचारों को रोकना जो बुराइयों यथा छुआछूत, बंधक मजदूरी आदि से पैदा होते है।

(ख) वे उपाय जो संविधान के अनुच्छेद 19,46,164,244,275,338,339,340,341 तथा 342 केमाध्यम से रक्षाकरते हैं।

(ग) वे उपाय जो रक्षात्मक तरीके से विभेदीकरण को रोकते है यथा चुनावों में सीटों का आरक्षण तथा रोजगार तथा आर्थिक प्रगति में विशेष अवसरों की व्यवस्था करते है।

समाज में कमजोर वर्गो पर होने वाले अत्याचारों से मुकाबला करने के लिए तथा उनकी सर्वत्र उन्नति के लिए पुलिस को बहुत बड़ी भूमिका निभाने की आवश्यकता है। समाज के कमजोर वर्ग को राष्ट्रीय चेतना कीमुख्य धारा में सम्मिलित करके उन्हें राष्ट्रीय विकासमें मिलाना है। इसके बिना वास्तविक सामाजिक उन्नति नहीं हो सकती हैं

6.7 पुलिस की भूमिका

"समय पर किया गया थोड़ा सा प्रयत्न भी बड़े लाभ का होता है तथा रोग के फैलने से पूर्व बरती गई सावधानियाँ अधिक लाभकारी होती है"। ये दोनों कहावतें समाज के कमजोर वर्गो पर होने वाले अत्याचारों को रोकने में पुलिस की भूमिका के लिए बहुत सटीक है। समाज के कमजोर वर्ग पर अत्याचार तथा कभी-कभार घटित होने वाली कुछ घटनाएं समूह संघर्ष की रूप ले लेती हैं जिससे समाज में गंभीर तनाव और असंतुलन की स्थिति बन जाती है। दूसरी ओर कमजोर वर्ग पर बड़े पैमाने पर अक्सर होने वाले अत्याचार हिंसा के गंभीर मामले बन जाते है। इन स्थितियों के बने रहने से समाज के विभिन्न वर्गो में उपद्रव तथा तनाव का माहौल बन जाता है। इस प्रकार के वातावरण से समाज को अपूरणीय क्षति होती है। इस प्रकार की घटनाओं की पुनरावृत्ति समाज पर सामाजिक और राजनैतिक कलंक लगाती है।

6.7.1 पुलिस भूमिका के मानदण्ड

पुलिस भूमिका की प्रभावशीलता तथा क्षमता को अक्सर समाज में व्याप्त शांति एव सौहार्द से उत्पन्न होने वाली सामंजस्यता के आधार पर आंका जाता है। इस आधार पर पुलिस भूमिका का विशेष मूल्यांकन होता है कि वह किस हद तक कमजोर वर्गों पर होने वाले अत्याचारों को रोकने में सफल रही है। देश की वर्तमान सामाजिक-राजनैतिक तथा आर्थिक स्थितियों में कमजोर वर्गो पर होने वाले अत्याचारों की रोकथाम सामाजिक, प्रशासनिक तथा राजनैतिक रूप से सभी के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हो गई है। इस सुरक्षात्मक भूमिका को प्रभावशाली तरीके से पूरा करने के लिए पुलिस को जनता के सहयोग एवं भागीदारी पर निर्भर होना पड़ेगा। समाज के कमजोर वर्ग पर घटित घटनाएं अत्याचार का रूप न लें लें, इसके लिए पुलिस को सामान्य माहौल में भी अतिरिक्त सतर्कता बरतनी होती है। सुरक्षात्मक भूमिका की पालना में जरा सी ढिलाई या उपेक्षा खतरनाक साम्प्रदायिक हिंसा का रूप ले सकती है और कानून व्यवस्था की स्थिति को खतरा पैदा हो सकता है। पुलिस संगठन के अंदर तथा बाहर दोनों जगह पुलिस की सुरक्षात्मक भूमिका का बहुत महत्व है। खासतौर से उन खेमों में जहाँ छोटी-छोटी सामाजिक संघर्ष की घटनाएँ कमजोर वर्ग पर अत्याचार का कारण बनती रहती हैं।

6.7.2 पुलिस भूमिका के प्रति आम धारणा

गोरखपुर के साम्प्रदायिक दंगों पर रघुवीर दयाल कमीशन की रिपोर्ट में बताया गया है कि किस तरह से छोटी घटनाओं को नहीं रोक पाने से साम्प्रदायिक दंगों ने विकराल रूप धारण कर लिया। कानून ने पुलिस को हिंसा और जातीयसंघर्षों से निपटने के लिए बहुत शक्तियां प्रदान की हैं। समाजशास्त्रीय बोध, भौगोलिक स्थितियां, अपराध ज्ञान, कर्तव्य के प्रति समर्पण, वैधानिक प्रक्रिया की जानकारी के होने से एक पुलिस कर्मी समय रहते अत्याचार की घटनाओं को रोक सकता है। प्रभावशाली सुरक्षात्मक भूमिका समाज में पवित्रता, अच्छी गुणवत्ता का जीवन तथा आपसी सद्भाव का माहौल सुनिश्चित कर सकती हैं। इस क्षेत्र में वैज्ञानिक तथा प्रायोगिक अनुसंधानों की अभी आवश्यकता

हैं। यह एक सर्वसाधारण सत्य है कि कमजोर वर्गो के लोगों में पुलिस की व्यावसायिक कार्य सीमा तथा सुरक्षात्मक भूमिका की छवि बहुत खराब है वे ऐसा महसूस करते है कि पुलिस उनकी बस्तियों में पहरा नहीं देती है। यही नहीं, वे यह भी महसूस करते है कि पुलिस उन पर हुई अत्याचार की घटनाओं की जांच या उन्हें रोकने के मामले में कोई विशेष ध्यान नहीं देती हैं। इन वर्गो के अधिकतर लोगों का यह विश्वास है कि उनकी अधिकतर परेशानियाँ तो पुलिस के कारण ही है। उनकी यह भी मत है कि पुलिस उन पर होने वाले अत्याचारों को रोकने में कोई रूचि नहीं लेती है। भावनात्मक तथा काफी सीमा तक पूर्वाग्रहों से ग्रस्त हो सकती हैं, परंतु सच्चाई यही है कि कार्यो की उलझनपूर्ण वरीयताओं या काम की अधिकता के कारण पुलिस समाज के कमजोर वर्गो पर होने वाले अत्याचारों को प्रभावी तरीके से रोकने में प्राय: चूक जाती हैं।

6.7.3 कमजोर वर्गों की पुलिस भूमिका के प्रति धारणा

भारतीय समाज के कमजोर वर्गो को प्रदत्त सामाजिक न्याय की अवधारणा, संविधान तथा राजनैतिक प्रणाली में 1950 से पूर्व ही स्वीकार कर ली गई थी। परंतु उन्हें प्राथमिकता देने तथा सुरक्षात्मक व्यवहार की बातें समकालीन और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की घटनाएं है। स्वतंत्रता के बाद विधायिका के स्तर पर, सरकार ने कमजोर वर्ग पर होने वाले अत्याचारों की घटनाओं से मुकाबला करने के कई प्रभावशाली उपाय किये हैं। परंतु कमजोर वर्गो की दुनिया अभी बदली नहीं है और यदि बदल भी गई है तो उसने उनके पहले के कष्टों और दबावों में नये आयाम और तनाव जोड़ दिए हैं। उनकी पुलिस के बारे में मान्यता भी अभी बदली नहीं है और इसलिए पुलिस के व्यवहार, आचरण और कार्य के बारे में भी उनके मूल्यांकन में कोई परिवर्तन नहीं आया है। यहाँ तक कि कमजोर वर्ग के सदस्य पुलिस को एक क्रूर संगठन मानते हैं जो कि समाज के शक्तिशाली वर्गो की आज्ञा से काम करता है। उनकी सुरक्षा की समस्याओं के संबंध में वे पुलिस को असंवेदनशील, रूक्ष तथा कठोर मानते हैं। वे पुलिस ज्यादतियों की भी शिकायत करते है। इन परिस्थितियों में कमजोर वर्गो को विश्वास अर्जित करना पुलिस के लिए बहुत महत्वपूर्ण कार्य है। भारत में पुलिस संगठन को कभी सामाजिक न्याय के अभिकरण के रूप में ढाला ही नहीं गया। संसद या राज्यों के विधान मंडलों द्वारा बनाये गये सामाजिक कानूनों को अनिच्छुक भाव से पुलिस को नकारात्मक विश्वास भंग के भाव के साथ सौंपा गया है। यदि किसी मामले में कमजोर वर्ग के व्यक्ति के साथ ज्यादती हुई है या कमजोर वर्ग का व्यक्ति मुजरिम है या उस पर कोई संदेह है तो ऐसे मामलों में भी पुलिस स्टेशन जहां अपराधिक मामले दर्ज होते है, कोई विशेष प्रक्रिया नहीं अपनाई जाती है। उनके पास किसी प्रकार के विशेष स्टाफ की भी व्यवस्था नहीं होती है, जो उन क्षेत्रों की विशेष देखभाल कर सकें जहां कमजोर वर्ग के लोग निवास करते हैं। पुलिस समुदाय में उपलब्ध प्रशासनिक और पुलिस संस्कार तथा नैतिक मानदण्ड सुरक्षात्मक उपायों को कठिन बना देते है। स्थिति का सबसे ज्यादा विरोधाभास यह है कि जहां पुलिस का कोई सम्मान नहीं है तथा ना ही पुलिस और कानून का कोई भय है वहाँ पुलिस की पर्याप्त व्यवस्था नहीं है। कमजोर वर्ग के लोगों की घनी आबादी के क्षेत्रों के लिए पुलिस के पास पर्याप्त व्यवस्था नहीं है। कमजोर वर्ग के लोगों की घनी आबादी के क्षेत्रों के लिए पुलिस के पास पर्याप्त पहरेदारी का स्टाफ नहीं है और ना ही प्रभावशाली बीट प्रणाली अस्तित्व में है।

6.8 पुलिस का सूचना तंत्र एवं व्यवस्थाएँ

सामान्य तौर पर थाना स्तर पर स्टाफ की कमी के कारण व्यवस्थित तथा विस्तृत सामाजिक तथा अपराधिक आसूचना की कमी बनी रहती है। विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहां कमजोर वर्ग के लोग

रहते हैं, वहां तो उन सूचनाओं को संग्रह करने की स्थिति और भी कमजोर है। आसूचना के अभाव में पुलिस को वे सूत्र नहीं मिलते हैं जिनसे यह पता चल सकें कि सामाजिक संघर्ष या हिंसा की घटनाएं कौन से कारणों से शुरू होती है। अनुपयुक्त पुलिस कर्मी, विशेषकर कांस्टेबल, गंभीर तथा संवेदनशील समाजशास्त्रीय जटिल परिस्थितियों को समझने, उनका मूल्यांकन करने तथा अव्यवस्था की स्थिति को संभालने में प्राय: असमर्थ होते है। इन संवेदनशील, जटिल तथा विसंगतिपूर्ण समाजशास्त्रीय परिस्थितियों तथा दुराग्रहों के कारण ही समाज के कमजोर वर्ग के लोग व्यक्तिगत तथा समूह हिंसा के शिकार बन जाते हैं पुलिस की ये व्यावसायिक तथा कार्यकारी कमजोरियाँ ही कमजोर वर्ग पर होने वाले अत्याचारों के संदर्भ में पुलिस की प्रभावशाली भूमिका के निर्वाह में बाधा डालती हैं।

6.8.1 उपेक्षा एवं असावधानी

समाज के कमजोर वर्गो पर होने वाले अत्याचारों की यह स्थिति और अधिक गंभीर इसलिए हो जाती है क्योंकि प्राय: कमजोर वर्गो पर होने वाले अत्याचारों के मुकदमे पुलिस थानों में या तो दर्ज नहीं किये जाते या उनकी ठीक तरह से तफ्तीश नहीं की जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि कमजोर वर्ग पर होने वाले क्रूर अत्याचारों को फैलने एवं रोकने के लिए तो पुलिस असमर्थ होती ही है। सामयिक कार्यवाही नहीं होने सेअत्याचारियों के हौसले बुलंद हो जाते हैं और अत्याचारों की निरंतर एवं दीर्घ अवधि तक चलने वाली स्थितियां जन्म ले लेती है। आम पुलिस कर्मी पर काम के अधिक बोझ तथा पुलिस स्टेशन पर जिम्मेदारियों की अधिकता की वजह से पुलिस कार्यो की वरीयता प्राय: गड़बड़ा जाती हैं। पुलिस के पास कमजोर वर्ग पर सम्पन्न वर्गो द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों की रोकथाम तथा सम्पन्न वर्गो द्वारा पैदा किये जाने वाले तनावों और दबावों के बारे में सूचना इकट्ठा करने का ना तो समय है और ना ही ऐसे संसाधन एवं स्थितियाँ है कि वे इन स्थितियों से निपट सकें। ग्रामीण क्षेत्रों में कमजोर वर्ग के लोग दूर दराज के गांवों में फैले हुए है। पुलिस स्टेशनों के लिए इनकी पहरेदारी करना तथा उन्हें निरंतर सुरक्षा प्रदान करना प्राय: मुश्किल होता है।

6.8.2 अप्रभावी अनुसंधान

कमजोर वर्गो पर जुल्म के मामलों की तफ्तीश नहीं होने से पुलिस की रक्षात्मक भूमिका महत्वहीन हो जाती है। पुलिस इस प्रकार के अपराधों की जांच-पड़ताल आमतौर पर परम्परागत तरीकों से करती है। अपराधी पर इसका कोई ठोस प्रभाव नहीं पड़ता है। इसके अलावा नैतिक स्तर में गिरावट तथा असुरक्षा के माहौल के कारण तथा तफ्तीशी कमियों के कारण अपराधियों को प्राय: अवांछित लाभ भी मिल जाता है। अपराधी भी कमजोर वर्ग के लोगों को लालच में डाल कर तथा पुलिस को अपने प्रभाव में लेकर अत्याचार की घटनाओं को रफा-दफा करवा देते है।

6.8.3 कमजोर वर्गो का पिछड़ापन, गरीबी एवं अशिक्षा

सामान्य शिक्षा एवं प्रगति के अभाव, सरकारी सेवा में अपर्याप्त प्रतिनिधित्व, व्यापार, वाणिज्य तथा औद्योगिक क्षेत्र में निम्न स्थिति के होने से भी कुछ क्षेत्रों के समुदाय विशेष अत्याचारों के शिकार हो जाते हैं। समाजशास्त्रीयों का मानना है कि कमजोर वर्ग के लोग आर्थिक अवसरों की कमी, सामाजिक प्रस्थिति, निवास स्थान तथा काम की प्रकृति की गुणात्मक तथा मात्रात्मक कमजोरियों के कारण परेशान होते है तथा इन्हीं स्थितियों के कारण वे दीन-हीन और दुर्बल बने रहते हैं और प्रकारांतर में सम्पन्न लोग उन पर अत्याचारों का सिलसिला शुरू कर देते है। अत्याचार के मामलों की जांच-पड़ताल करने वाले अधिकांश पुलिस अधिकारी और पुलिस कर्मी समाज में कमजोर वर्ग से नहीं होते हैं। वे उन वर्गो

से सम्बन्ध रखते है, जो कमजोर वर्ग के लोगों के प्रति पूर्वाग्रहों एवं दुराग्रहों से ग्रस्त रहते है। बहुत संभव है कि इस दृष्टिकोण के कारण उनमें से ज्यादातर का झुकाव एवं सहानुभूति उन कमजोर लोगों की तरफ नहीं रहे जो किसी ना किसी कारण से अत्याचार का शिकार हो गये हैं।

6.8.4 सामाजिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक स्थितियाँ

समाजशास्त्रीय, प्रशासनिक, कार्यात्मक तथा राजनैतिक कमियों के कारण पुलिस की भूमिका को गहरी चोट लगती हैं। इसके अतिरिक्त, कमजोर वर्ग में उनके अधिकारों के प्रति चेतना तथा सामाजिक क्रिया कलापों में उनकी भागीदारी ने भी विभिन्न सामाजिक तनावों को पैदा किया हैं। प्राचीन सामाजिक रिवाजों एवं जाति तथा वर्गो की दूरियों ने भी शारीरिक संघर्ष एव तनाव की स्थिति को जन्म दिया है। यह स्थिति अक्सर कमजोर वर्गो पर अत्याचार के रूप में परिणित हो जाती है। कमजोर वर्गो पर अत्याचारों की समस्या ने आज सामाजिक, राजनैतिक तथा प्रशासनिक स्तरों पर भयावह रूप ग्रहण कर लिया है। समाज के कमजोर वर्गो पर निरंतर बढ़ती अत्याचारों की इन घटनाओं ने आपत्तिजनक रूप ग्रहण कर सभी को चिंतित कर दिया है। अत: पुलिस को बहुत बारीकी से इस समस्या को समझ कर कमजोर वर्गो पर होने वाले अत्याचारों को प्रभावी रूप से रोकने के लिए नई विधि और रणनीति तैयार करनी होगी।

6.9 उत्कृष्ट पुलिस भूमिका की ओर

विभिन्न प्रकार की सामाजिक, प्रशासनिक तथा राजनैतिक विसंगतियां और बाधाएं कमजोर वर्गो पर होने वाले अत्याचारों की घटनाओं को रोकने में अवरोध पैदा करती है। संगठनात्मक त्रुटियां, कार्मिक तंत्र की कमियां, व्यवहारगत दोष तथा कानूनी प्रक्रिया की पेचीदगियों ने भी कमजोर वर्ग पर होने वाले अत्याचारों को रोकने में बाधा पैदा कर दी है। जब तक इन बाधाओं तथा अड़चनों को दूर नहीं किया जायेगा तब तक पुलिस की भूमिका प्रभावशाली नहीं हो सकती।

6.9.1 पुलिस - आत्मालोकन

भारतीय समाज के कमजोर वर्ग के सदस्य सामाजिक तथा राजनीतिक स्तर पर प्रताड़ित होने के साथ-साथ पुलिस के द्वारा भी विभिन्न प्रकार के अत्याचारों के शिकार होते है। ये अत्याचार विभिन्न रूपों में देखने को मिलते है। इसका पहला रूप तो इसी तथ्य में मिलता है कि पुलिस को जब इन अत्याचारों की शिकायत की जाती है तो उन पर तुरंत कार्यवाही करने में पुलिस लापरवाही दिखाती है। पुलिस का दृष्टिकोण आमतौर से इन घटनाओं की तरफ सकारात्मक नहीं होता है। शोषण तथा दुर्व्यवहार की सामान्य घटनाओं को पुलिस संवेदनशील घटनाएं मान कर चुस्ती से कार्यवाही नहीं करती है। यहां तक की ऐसी शिकायतों पर उचित ध्यान तक नहीं दिया जाता है। कमजोर वर्ग पर होने वाले अपराध के मामले या तो जाना स्तर तक रिपोर्ट ही नहीं किए जाते हैं और यदि इनकी सूचना थाने के स्तर पर पहुंच भी जाती है तो उचित प्रकार से तथा सही धाराओं में मुकदमें दर्ज नहीं होते हैं। यदि अत्याचार के मामले येन-केन प्रकारेण दर्ज हो भी जाते है तो अनुसंधान की गति बहुत धीमी रखी जाती है और इस बीच अपराधकर्ता शिकायतकर्ता पर या उसके सहायकों या उससे सहानुभूति रखने वालों पर नये तरीकों से अत्याचार करने की कोशिश करता हैं। कभी-कभी अनुसंधान को जान-बूझ कर लम्बा खींचा जाता है, जिससे इन घटनाओं की गंभीरता कम हो जाए। ऐसी भी घटनाएं हुई है, जब समर्थ समूह के इशारे पर पुलिस कमजोर और गरीब वर्ग का कोई व्यक्ति यदि पुलिस के शिंकजे में फंस जाता है

तो उसके साथ कभी-कभी अमानवीय व्यवहार भी किया जाता है। पुलिस अभिरक्षा में कमजोर वर्ग के लोगों की हत्या तथा बलात्कार की घटना भी यदा-कदा घटती है।

पुलिस कर्मी आमतौर पर समाज के ऊंचे वर्ग से तथा सम्पन्न और समृद्ध समूह से संबंध रखते है। उनमें अपने समूहों के हितों की सुरक्षा की भावना बलवती रहती है। साथ ही वे कमजोर वर्ग के लोगों में से अपराधी छांटने की कोशिश भी करते है। इन परिस्थितियों में यह स्वाभाविक है कि कमजोर वर्ग के लोग पुलिस को अपना संरक्षक नहीं मानते। इसलिए इस बात को सुनिश्चित करने के प्रयास किये जाने चाहिए कि कमजोर वर्ग के लोग पुलिस ज्यादतियों के शिकार ना हो। इस संदर्भ में पर्यवेक्षक स्तर के अधिकारियों की भूमिका को पुन: निर्धारित करना होगा जिससे कि वे अधिक सतर्क रहें और यह देख सके कि थाना स्तर पर थाने में शिकायत दर्ज कराने वाले या गवाही देने वाले कमजोर वर्ग के व्यक्तियों के साथ पुलिस कोई ज्यादती नहीं करें। समाज के कमजोर वर्ग के लोगों के प्रति पुलिस कर्मियों के दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन आने से इन वर्गो पर होने वाले अत्याचारों में काफी सीमा तक कमी आना संभव है। पुलिस के दृष्टिकोण में यह परिवर्तन लाना एक दुरूह तथा दुष्कर काम है परंतु यदि इस दिशा में ठोस एवं सकारात्मक कार्यवाही की जाए तो समाज के कमजोर वर्गो पर होने वाले अत्याचारों को काफी सीमा तक कम किया जा सकता है।

6.9.2 पुलिस का रूपान्तरण

अनुपयुक्त भर्ती प्रणालियाँ, अकुशल प्रशिक्षण प्रयास, अनुचित दृष्टिकोण, गैर संवेदनशील कार्य प्रणाली तथा पृथक-पृथक समाजशास्त्री अवधारणाएँ पुलिस को कमजोर वर्ग की समस्याओं को समझने में अक्षम बनाती है। उदाहरण के लिए छुआछूत जैसी अमानवीय व्यवस्था जिसके कारण कमजोर वर्गो पर अत्याचार होते है उसके उन्मूलन के लिए भी प्राय: पुलिस कर्मी समर्पित नही है तथा यह नहीं सोचते कि छुआछूत जैसी सामाजिक बुराई को समाप्त किया जाएं। पुलिस इस ओर न तो जागरूक है और न ही क्रियाशील जिससे कि समाज के कमजोर वर्गों के सामाजिक मान व प्रतिष्ठा में बढ़ोतरी हो।

भर्ती प्रणाली को, विशेषकर कांस्टेबलरी स्तर पर, बदला जाना चाहिए जिससे इस संगठन में योग्य व्यक्तियों को भर्ती किया जा सके। वैज्ञानिक भर्ती प्रणाली तथा उसके बाद उपयुक्त प्रशिक्षण की व्यवस्था होने से पुलिस कमी अच्छे दृष्टिकोण को अपना सकेंगे जिससे समाज में असंतुलन तथा भेदभाव पैदा नहीं होगा। अच्छे प्रशिक्षण से वे समाज के कमजोर तथा सम्पन्न वर्गो में होने वाले संघर्षों, झगड़ों की प्रकृति को समझकर उन्हें रोकने के लिए प्रभावशाली भूमिका निभा सकेंगे।

6.9.3 विशेषीकृत भू भौतिकी तथा सांख्यिकी प्रणालियाँ

थाना स्तर पर सभी क्षेत्रों में कमजोर वर्गो की समस्याओं का पता लगाने के लिए विशेष प्रकोष्ठ स्थापित किए जाने चाहिए। ये प्रकोष्ठ जनसांख्यिकी, अपराधिक, सामाजिक तथा अन्य प्रकार की आसूचनाओं को एकत्र करें। ये प्रकोष्ठ उन परिस्थितियों का भी पता करें जिनसे भूतकाल में तनाव या संघर्ष हुए थे तथा जिनसे भविष्य में संघर्ष हो सकता है और जो अंत में कमजोर वर्ग पर अत्याचारों में परिवर्तित हो जाते हैं। समय-समय पर एकत्र की गई उपयुक्त आसूचना के आधार पर, हर अवसर पर संघर्ष को टालने की व्यवस्था की जा सकती है और इससे कमजोर वर्ग पर होने वाले अत्याचारों को भी टाला जा सकता है। यह प्रकोष्ठ सामाजिक सर्व का कार्य भी कर सकता है तथा भूतकालीन घटनाओं का अध्ययन इस दृष्टि से कर सकता है कि उनके ज्ञान से अनहोनी घटनाओं को टाला जा सके। इसके साथ-साथ यह प्रकोष्ठ समाज के कमजोर वर्ग को ऊपर उठाने के लिए भी सकरात्मक भूमिका निभा सकता है।

6.9.4 कानूनों का सही एवं प्रभावी क्रियान्वयन

पुलिस की भूमिका का एक महत्वपूर्ण पक्ष सक्रिय तथा उद्देश्यात्मक भागीदारी से राष्ट्र का निर्माण करना है। पुलिस की यह भागीदारी समानता, पंथ निरपेक्षता तथा समाजवाद के सिद्धान्तों पर आधारित होती है। पुलिस विभिन्न सामाजिक कानूनों तथा विकास के कार्यक्रमों के प्रभावशाली क्रियान्वयन के माध्यम से प्रगति के लिए किये गये निवेश तथा वांछित सामाजिक परिवर्तन को सही रूप तथा सही दिशा में बढ़ा सकती है। अनुसूचित जाति-जनजाति तथा समाज के कमजोर वर्ग के लोगों को सम्पन्न तथा उच्च वर्ग के लोगों के अत्याचारों से बचाने के लिए सुरक्षात्मक तथा सुधारात्मक कानूनों का आजादी के बाद समय-समय पर निर्माण किया गया है। इन कानूनों का क्रियान्वयन पुलिस का उत्तरदायित्व है। परन्तु, आंकड़े यह दर्शाते है कि पुलिस कमजोर वर्ग पर होने वाले अत्याचारों तथा अपराधों की सही जांच कर उन्हें कम करने और कानूनी प्रावधानों को सक्षम रूप से लागू करने में सफल नहीं हो सकी है। इस स्थिति के लिए कोई भी कारण उत्तरदायी रहे हो परन्तु वे पुलिस की निष्क्रियता को कम नहीं कर सकते। कानूनों का गलत तरीके से क्रियान्वयन या क्रियान्वयन नहीं होने से स्थिति और अधिक खराब होती है तथा ऐसे में संसदीय प्रयास भी बेकार हो जाते है। कानूनों का सही एवं सामयिक क्रियान्वयन नहीं होने से शरारती तत्वों के हौसले बढ़ने लगते है तथा उनकी कमजोर वर्गो, विशेषकर अनुसूचित जाति /जनजाति के लोगों पर अत्याचार करने की योजना भी विकराल एवं भयावह रूप धारण कर लेती है। इसलिए इस बात की तत्काल आवश्यकता है कि विशेषीकृत पुलिस इकाईयां स्थापित की जाएं जिससे कि इन कानूनों को क्रियान्वित किया जा सके। ये इकाईयाँ भौतिक, मानसिक, व्यावसायिक तथा दृष्टिकोण केस्तर पर हर तरह से सम्पन्न हो जिससे कि वे इन कानूनी प्रावधानों को सही तरह से क्रियान्वित कर सके। इस प्रकार का दल उचित समय पर एक ऐसा माहौल तैयार कर सकेगा जो कमजोर वर्ग के लोगों पर होने वाले अत्याचारों को रोकने में सफल बनेगा।

6.9.5 सक्षम अनुसंधान

सामाजिक न्याय के उद्देश्यों की प्राप्ति की घोषणा से सामाजिक तनाव तथा हिंसा में वृद्धि हुई है। परम्परागत रूप से सक्षम तथा सम्पन्न वर्ग के लोग पिछड़े तथा गैर सम्पन्न लोगों को समानता का स्तर पाने से रोकना चाहते है तथा पिछड़े लोग समानता का स्तर प्राप्त करना चाहते है। इसी वजह से सामाजिक तनाव में निरंतर बढ़ोतरी हुई है। बदले हुए सामाजिक, राजनैतिक, प्रशासनिक वातावरण में पुलिस की सामाजिक विकास तथा उन्नति को बढ़ाने वाली स्वीकार्य भूमिका होनी चाहिए। पुलिस के लिए यह जरूरी है कि वह समाज के कमजोर वर्गों तथा अल्पसंख्यकों में विश्वास और सुरक्षा की भावना का विकास करें जिससे कि वे राष्ट्रीय विकास के प्रयत्नों में भागीदार हो सकें तथा उसका लाभ उठा सकें। पुलिस इस उद्देश्य को तभी पूरा कर सकती है जब वह गरीब और कमजोर वर्गो के लोगों पर होने वाले अत्याचारों तथा शोषण के अपराधों से सस्ती तथा सक्षमता से निपटे। अपराधों के सही अनुसंधान के प्रभाव से अपराधी पुन: उसी तरह का अपराध करने से हिचकिचाएंगे। कमजोर वर्ग पर होने वाले अत्याचारों की रोकथाम तथा पुलिस भूमिका को प्रभावशाली तथा अर्थपूर्ण बनाने के लिए इस बात की तत्काल आवश्यकता है कि ऐसे मामलों में अनुसंधान के कार्य की गति को बढ़ाया जाए, अनुसंधान सक्षम तरीके से तथा समय पर किया जाए। "सक्षम तथा सही अनुसंधान कारगर रोकथाम की कार्यविधि है"यह सिद्धान्त पुलिस के लिए अच्छा मागदर्शक तथा पथ- प्रदर्शक बन कर पुलिस भूमिका को अर्थपूर्ण बना सकता है। पुलिस को निरंतर यह ध्यान रखना होता है कि अपराध को होने से रोक देना सबसे अच्छा अनुसंधान है।

6.10 सारांश

यह कहना कोरा मानववाद या उच्च आदर्शवाद नहीं है कि समाज में कमजोर की रक्षा की जानी चाहिए। किसी भी समय समाज में कोई कमजोर वर्ग नहीं होना चाहिए और यदि कोई है भी तो अपराध न्याय संस्थाओ के उपकरण इस तरह से तैयार किए जाएं जिससे कि ये कमजोर वर्ग सम्पन्न वर्गो द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों का सामना कर अपनी रक्षा कर सके। अपर्याप्त प्रशिक्षित तथा प्रेरणा रहित कांस्टेबलरी का नियोजन पुलिस संगठन के लिए कमजोर वर्गो पर होने वाले अत्याचारों को रोकने में सबसे बड़ी बाधा है। इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि कमजोर वर्गो की सुरक्षा एवं संरक्षा जैसे महत्वपूर्ण पहलु को पुलिस भूमिका के सर्वग्राही स्वरूप में न तो कही चिन्हित किया गया है तथा ना ही इस संवेदनशील कार्य के लिए इसे कहीं परिभाषित किया गया है। पुलिस थानों में कमजोर वर्गो पर होने वाले अत्याचारों को रोकने के लिए ना तो पर्याप्त साधन है ना ही संसाधन और ना ही पुलिस बल। अपराध बिना दर्ज हुए रहते है क्योंकि अत्याचारों को रोकने में अधिकारी की निपुणता इसी बात से आँकी जाती है कि कितने कम अत्याचारगत अपराध उसके क्षेत्र में घटित हुए है। फलतःअपराध का ग्राफ नीचे की ओर रखने का प्रयास किया जाता है और इसका आसान और कारगर तरीका यह है कि अपराध दर्ज ही नहीं किए जाए।

भारतीय पुलिस को कमजोर वर्ग के सदस्यों की समस्या को सहानुभूतिपूर्वक समझना चाहिए तथा उनकी जायज परेशानियों को दूर करने की प्रभावशाली विधि खोजनी चाहिए। खासतौर से पुलिस को उस स्थिति में प्रभावशाली तरीका निकालना चाहिए जहां सम्पन्न, शक्तिशाली वर्ग के लोग कमजोर वर्ग पर हिंसा करें और उनके सम्मान पर चोट करें।

भारतीय समाज में कमजोर वर्ग के लोगों की समस्या बहुआयामी है। स्पष्टत: उनके हल के लिए धैर्य, सम्मिलित प्रयास तथा सहयोग के साथ काम तथा चौतरफा कार्यवाही की जरूरत है। अच्छी पुलिस, गुणवत्ता के पुलिस कार्य तथा संवेदनशील पुलिस दृष्टिकोण कमजोर वर्ग पर होने वाले अत्याचारों की समस्या का तार्किकसमाधान तथा उत्तर है। पुलिस बल द्वारा इनकी बस्तियों की विशेष रक्षा की जानी चाहिए। विशेष पुलिस इकाइयाँ स्थापित करके, पहरेदारी तथा व्यावहारिक सुधार करके इन लोगों को विकास में भागीदार बनाया जा सकता है। पुलिस इस प्रयास में लाभदायक तरीके से अपनी भागीदारी निभा सकती है। पुलिस के सहयोग से समाज के कम भाग्यशाली लोग उपयुक्त सुरक्षा प्राप्त कर अत्याचारों से अपने आपको मुक्त कर सकते है।

6.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कमजोर वर्ग की अर्थ, अवधारणा एवं आधारों को स्पष्ट कीजिए।
2. 'पुलिस एवं समाज के कमजोर वर्ग' विषय पर एक सारगर्भित लेख लिखिए।
3. कमजोर वर्गो के संदर्भ में पुलिस की भूमिका की दुर्बलताओं की समीक्षा कीजिए।
4. कमजोर वर्गो के संदर्भ में पुलिस भूमिका को कैसे अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है? संदर्भ

6.12 संदर्भ

1. शर्मा पी.डी., पुलिस पालिटी एण्ड पीपल इन इंडिया, दिल्ली उप्पल पब्लिशिंग हाऊस, 1981
2. विस्तृत विवरण के लिए देखे - वत्स राजेन्द्र सिंह, दी डिप्रेस्ट क्लास ऑफ इंडिया, दिल्ली गीतांजली प्रकाशन, 1977
3. बेट एण्ड शेसमु, पुलिस एण्ड मायनर्टी ग्रुप्स क्रिमनल जिस्टस एण्ड कम्युनिटी, न्यूयार्क हारपर एण्ड रॉ, 1976

4. रिपोर्ट ऑफ दी कमिश्नर फॉर शिड्यूल्ड कास्ट एण्ड शिड्यूल्ड ट्राइब्स, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, न्यू देहली
5. रिपोर्ट ऑफ दी कमिश्नर फॉर शिड्यूल्ड कास्ट एण्ड शिड्यूल्ड ट्राइब्स, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, न्यू देहली
6. देखे, चारी आर.के., वीकर सैक्शन्स ऑफ सोसायटी : दी प्रोब्लम, दी सिनेरियो एण्ड पर्सपैक्टिव्स
7. रिपोर्ट ऑफ नेशनल पुलिस कमीशन, थर्ड रिपोर्ट, चैप्टर पैरा 19.1
8. रिपोर्ट ऑफ नेशनल पुलिस कमीशन, थर्ड रिपोर्ट, चैप्टर पैरा 19.1
9. दी शिड्यूल्ड कास्ट एण्ड शिड्यूल्ड ट्राइब्स (प्रिवेन्शन ऑफ ए ट्रो सिटीज) एक्ट, 1989, सैक्शन 2 एण्ड 3
10. डायज एस.एम., न्यू डायमेशन्स टू पुलिस रोल एण्ड फंक्शन्स इन इंडिया, हैदराबाद: एन.पी.ए., 1977
11. कृष्णा आयर बी.आर.,लॉ एण्ड द पीपल, बॉम्बे: पीपल्स पब्लिशिंग हाऊस, 1972
12. गजेन्द्रगडकर पी.बी., लॉ लिब्रेटी एण्ड सोशियल जस्टिस
13. सक्सेना एन.एस., दी पुलिस एण्ड दी प्रोटेक्शन ऑफ दी शिड्यूल्ड कास्ट्स एण्ड अदर वीकर सैक्शन्स ऑफ दी सोसायटी, सी.बी.आई. बुलेटिन, देहली, अप्रैल 1973
14. शर्मा आर.डी.रिड्रेसल ऑफ ग्रिवान्सेज ऑफ वीकर सैक्शन्स ऑफ सोसायटी : ए पेपर प्रेजेन्टेड एट पुलिस साइंस कांग्रेस
15. रूस्तम जी के.एफ., पुलिस एट कोस-रोड्स, ए सेमीनार पेपर, एन.पी.ए.

इकाई - 7
पुलिस एवं अल्पसंख्यक

इकाई संरचना

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 बहु लतावादी भारतीय समाज में अल्पसंख्यक

7.3 अल्पसंख्यकों के संवैधानिक अधिकार तथा सुरक्षा

7.3.1 मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित सामान्य क्षेत्र

7.3.2 अल्पसंख्यक अधिकारों के पृथक क्षेत्र

7.4 राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग

7.5 अल्पसंख्यक सम्बन्धी मिथक

7.6 साम्प्रदायिक दंगे: ऐतिहासिक सिंहावलोकन

7.7 पुलिस एवं दंगा प्रबन्धन

7.8 सारांश

7.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.0 उद्देश्य

इस इकाई के उद्देश्य निम्नांकित हैं-

- अल्पसंख्यकों की परिभाषा, भारत में उनकी स्थिति तथा उनके संवैधानिक अधिकारों से परिचित करना।
- भारत जैसे बहु लतावादी समाज में औपनिवेशिक काल से विविध कारणों से बहु संख्यक एवं अल्पसंख्यकों के बीच होने वाले संघर्षों अथवा दंगों के दौरान पुलिस द्वारा दंगा प्रबन्धन एवं अल्पसंख्यकों का विश्वास जीतने के लिए किए जाने वाले प्रयासों का अध्ययन करना।
- अल्पसंख्यक सम्बन्धी मिथकों का वैज्ञानिक विवेचन करना।

7.1 प्रस्तावना

भारत लोकतान्त्रिक एवं कल्याणकारी राज्य है जिसमें अल्पसंख्यकों के कल्याण में राज्य की भूमिका सुनिश्चित की गई है। भारतीय संविधान एवं राज्य व्यवस्था में अल्पसंख्यकों को सामान्य मौलिक अधिकारों के साथ-साथ अपनी संस्कृति को अक्षुण्ण रखने के लिए संवैधानिक अधिकार एवं विधिक अधिकार प्राप्त है। लोकतांत्रिक समाज में पुलिस कीलॉ इन्फोर्समेन्ट एजेन्सी' के रूप में साम्प्रदायिक संघर्ष को रोकने, दंगा नियन्त्रण करने अल्पसंख्यकों के अधिकारों की सुरक्षा करने आदि में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भारत में होने वाले ऐसेसंघर्षों की जाँच के लिए बनाये गये आयोगों ने इस बात का उल्लेख किया है कि पुलिस का अव्यवहार अल्पसंख्यकों के साथ भेदभावपूर्ण रहा है। अनेक स्थानों पर पुलिस बल बहु संख्यक बल के रूप में रूपांतरित हो जाता है। जिससे पुलिस एंव अल्पसंख्यकों के बीच खाई बढ़ जाती है। सामान्य दिनों में एवं दंगों के दौरान पुलिस के लिए यह आवश्यक हैं कि अल्पसंख्यकों का विश्वास अर्जित किया जाय। इस सम्बंध में एक पुलिस कोड भी सुनिश्चित किया गया हैं।

7.2 बहुलतावादी भारतीय समाज में अल्पसंख्यक

भारतीय समाज ऐतिहासिक रूप से बहुलतावादी समाज रहा हैं। भारतीय बहुल्तावादी समाज में 4700 से अधिक नृजातीय समाज, तीन सौ से अधिक बोलियाँ एवं भाषाएँ, विविध आर्थिक वर्ग, दक्षिण एवं वामपंथ जैसी विविध विचारधाराएँ विद्यमान है। भाषायी दृष्टि से भारतीय समाज में चार मुख्य परिवार - इन्डोयूरोपियन, द्रविड, चीनी-तिब्बती प्रमुख रूप से विद्यमान हैं। धार्मिक रूप से भारत में विविध धर्मों, सम्प्रदायों, पथो, उपपंथो के लोग निवास करते हैं। जिनके अपने-अपने विविध एवं विशिष्ट रीति-रिवाज भी हैं। भारतीय समाज में दो प्रकार के धर्मों-भारतीय भूमि से उद्भूत धर्म - (हिन्दू, बौद्ध, जैन, सिख) तथा विदेशी भूमि से उद्भूत धर्म (इस्लाम, ईसाई, फारसी) का उल्लेख मिलता है। यद्यपि भारत के संविधान में अल्पसंख्यक शब्द की स्पष्ट व्याख्या नहीं की गई है केवल अल्पसंख्यकों जो धर्म या भाषा पर आधारित हैं का उल्लेख किया गया है। 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में पांच अल्पसंख्यकों मुस्लिम (13.4) ईसाई (2.34) सिख (1.87)बौद्ध (0.77) पारसी (0.01) विद्यमान हैं। अल्पसंख्यकों के कल्याण का दायित्व क्यों कि राज्य पर निर्भर है एवं पुलिस राज्य का एक अभिन्न अंग है। इसलिए पुलिस एवं अल्पसंख्यकों के सम्बंध का अध्ययन करना अल्पसंख्यकों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

अल्पसंख्यकों के रूप में सरकार द्वारा चिन्हित धार्मिक समुदाय
(2001 की जनगणना के अनुसार)

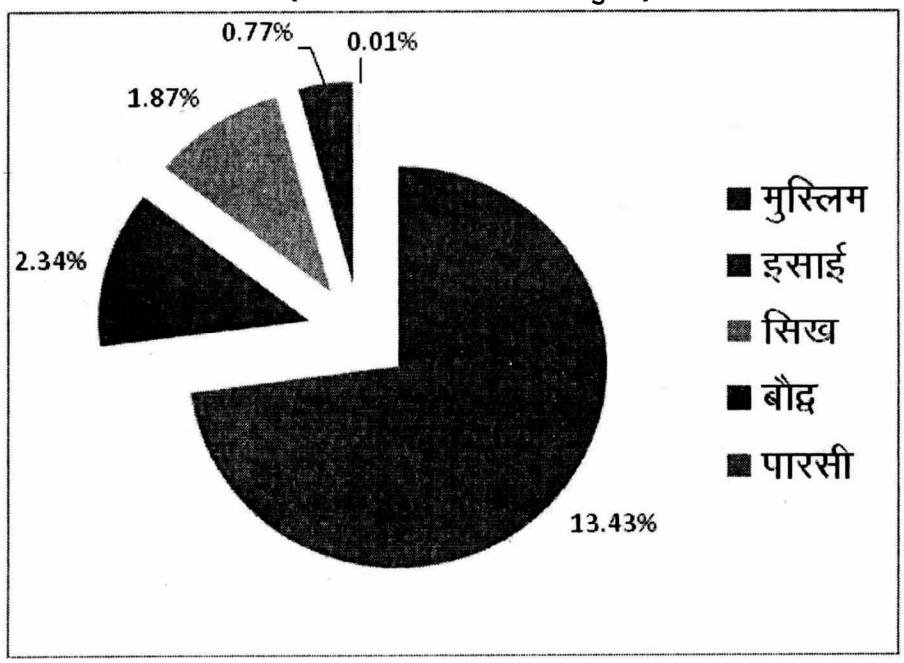

भारतीय संविधान नागरिकों की समानता और भाषा, धर्म और संस्कृति जैसे मुद्दों पर अल्पसंख्यकों को संरक्षण, सुरक्षा और हक दिलाने की देश की जिम्मेदारी के प्रति प्रतिबद्ध है। राष्ट्रीय, जातीय, धार्मिक व भाषाईअल्पसंख्यकों के हक से संबंधित संयुक्त राष्ट्र उद्घोषणा में कहा गया हैं कि ऐसे अल्पसंख्यकों के हकों को सुरक्षा प्रदान करना और बढ़ाया देना उन देशों की राजनीतिक व सामाजिक स्थिरता को सुनिश्चित करता है, जिसमें वे रहते हैं। उनकी उम्मीदों पर खरा उतरना और उनके हकों को सुनिश्चित करना, सभी व्यक्तियों की समानता और समान को स्वीकृत करने के बराबर है और सहयोगात्मक विकास को बढ़ावा देता है। सभी विकसित देश और अधिकतम विकासशील देश

अल्पसंख्यकों के हितों का ध्यान रखने पर पर्याप्त जोर देते हैं। इसलिए किसी भी देश की कार्यप्रणाली में अल्पसंख्यकों को यह विश्वास और आस्था होना कि उनके साथ कोई भेद-भाव नहीं किया जाता, उस देश के न्यायप्रिय कहलाने की वास्तविक परीक्षा है।

7.3 अल्पसंख्यकों के संवैधानिक अधिकार तथा सुरक्षा

यद्यपि भारत के संविधान में अल्पसंख्यक शब्द की स्पष्ट व्याख्या नहीं की गई है केवल अल्पसंख्यकों, जो धर्म या भाषा पर आधारित हैं, का उल्लेख किया गया है। संविधान में अल्पसंख्यकों के अधिकारों के बारे में सविस्तार वर्णन किया गया है। भारतीय संविधान अल्पसंख्यकों के अधिकारों के दो समूह प्रदान करता है। जिन्हें 'सामान्य क्षेत्र' में रखा सकता है। वे अधिकार जो सामान्य क्षेत्र में आते है: वे अधिकार हैं जो भारत के सभी नागरिकों लिए लाग होते हैं। वे अधिकार जो पृथक क्षेत्र में आते है, ये वे हैं जो केवल अल्पसंख्यकों पर लागू होते हैं और उनकी विशिष्टता को संरक्षण प्रदान करने के लिए आरक्षित हैं। संविधान में 'सामान्य क्षेत्र' तथा 'पृथक क्षेत्र' के मध्य भिन्नता तथा इनके संयोग को स्थापित और संरक्षित किया गया है।

7.3.1 मौलिक अधिकारों से संबंधित सामान्य क्षेत्र

संविधान ने 'सामान्य' तथा 'पृथक' दोनों क्षेत्रों के लिए एक निश्चित स्थान प्रदान किया है। संविधान के भाग 'सामान्य क्षेत्र' में निम्नलिखित मौलिक अधिकार तथा स्वतंत्रता आती है।

1. कानून के समझ 'समानता' तथा 'कानून का समान संरक्षण' का लोगों का अधिकार। (अनुच्छेद 14)
2. धर्म, नस्ल, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर नागरिकों के विरूद्ध भेदभाव का निषेध। (अनुच्छेद15(1) तथा (2)
3. राज्य के अधिकारी के द्वारा सामाजिक तथा शैक्षणिक रूप से नागरिकों के पिछड़े वर्गो के उत्थान के लिए विशेष प्रावधान करना। (अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों को छोड़कर) अनुच्छेद (4)
4. राज्य के अधीन किसी कार्यालय में रोजगार या नियुक्ति से संबंधित मामलों, अवसर की समानता का नागरिकों का अधिकार तथा इस संबंध में धर्म, नस्ल जाति, लिंग तथा जन्म स्थान के आधार पर किसी प्रकार के भेदभाव का निषेध है।
5. राज्य अथॉरिटी के द्वारा नागरिकों में किसी पिछड़े वर्ग के पक्ष में, नियुक्ति को या पदों के आरक्षण का प्रावधान करना, राज्य की राय में राज्य की अधीनस्थ सेवाओं में जिनका उचित प्रतिनिधित्व नहीं है। (अनुच्छेद 16,4)
6. लोगों की अन्तर्आत्मा की स्वतंत्रता, सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता तथा अन्य मौलिक अधिकारों की शर्त के साथ-धर्म को मानने, अमल करने तथा प्रचार करने की स्वतन्त्रता। (अनुच्छेद 25,1)
7. सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता तथा स्वास्थ्य की शर्त पर हर धार्मिक सम्प्रदाय या इसके किसी वर्ग को धार्मिक तथा दानपुण्य के उद्देश्य से संस्थानों को स्थापित करने तथा इनकी देख रेख करने, धार्मिक मामलों में अपने स्वयं के मामले का प्रबंध करना तथा चल-अचल संपत्ति का स्वामित्व तथा इसे प्राप्त करने और कानून के अनुसार इसका प्रबंध करने का अधिकार। (अनुच्छेद 26)
8. किसी विशेष धर्म को प्रोत्साहित करने के लिए किसी व्यक्ति को टैक्स का भुगतान करने पर मजबूर करने का निषेध। (अनुच्छेद 27)

9. शैक्षणिक संस्थानों जो पूर्ण रूप से चलाए जा रहे है, मान्यता प्राप्त हों या राज्य के द्वारा सहायता प्राप्त हों धार्मिक निर्देश या धार्मिक पूजा के लिए उपस्थित होने की लोगों की स्वतंत्रता। (अनुच्छेद 28)

7.3.2 अल्पसंख्यक अधिकारों के 'पृथक क्षेत्र'

अल्पसंख्यक अधिकार जो संविधान में प्रदान किए गए है वह 'पृथक क्षेत्र' के वर्ग में आते हैं, इस प्रकार हैं :-

1. नागरिकों के किसी वर्ग को अपनी विशिष्ट भाषा, लिपि या संस्कृति को 'सुरक्षित' रखने का अधिकार। (अनुच्छेद 29,1)
2. केवल धर्म, नस्ल,जाति भाषा या इनमें से किसी आधार पर किसी शैक्षणिक संस्थान में जो राज्य द्वारा चलाया जा रहा हो या सहायता प्राप्त है, में दाखिले से इंकार करने पर पाबंदी। (अनुच्छेद 29,2)
3. सभी धार्मिक तथा भाषाई अल्पसंख्यकों को अपनी मर्जी के शैक्षणिक संस्थान खोलने तथा प्रबंध करने का अधिकार। (अनुच्छेद 30,1)
4. राज्य से सहायता प्राप्त करने के मामले में अल्पसंख्यक प्रबंधन की शैक्षणिक संस्थानों के साथ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं। (अनुच्छेद 30,2)
5. किसी राज्य की आबादी के एक वर्ग के द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष प्रावधान। (अनुच्छेद 5,347)
6. प्राइमरी स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करने की सुविधा का प्रावधान। (अनुच्छेद 350)
7. भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए एक विशेष अधिकारी तथा उसके कर्त्तव्य का प्रावधान। (अनुच्छेद 350)
8. सिख समुदाय के कृपाण रखने तथा ले जाने का अधिकार।

7.4 राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग

भारत के गृह मंत्रालय के संकल्प विशेषरूप से उल्लेख किया गया कि संविधान तथा कानून में संरक्षण प्रदान किए जाने के बावजूद अल्पसंख्यक असमानता एवं भेदभाव को महसूस करते हैं। इस क्रम में धर्मनिरपेक्ष परंपरा को बनाए रखने के लिए तथा राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार अल्पसंख्यकों के लिए सुरक्षा उपायों का लाग करने पर विशेष बल दे रही है। अल्पसंख्यकों की स्थिति सुदृढ़ बनाने के लिए संयुक्त राष्ट्र ने दिसंबर 18, 1992 में अल्पसंख्यकों के जातीय, धार्मिक तथा भाषायी अधिकारों के संबंध में घोषणा में कहा कि अमेरिका संबंधित अल्पसंख्यकों के राष्ट्रीय, जातीय, सांस्कृतिक, धार्मिक अधिकारों एवं अस्तित्व की रक्षा करेगा तथा उनकी पहचान को बनाए रखने के लिए उनकी स्थिति को प्रोत्साहित करेगा। भारत में राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग की स्थापना संसद के द्वारा 1992 के राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम के नियमन के साथ हुई थी। राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग हर साल 18 दिसंबर को अल्पसंख्यक अधिकार दिवस को रूप में मनाता है। कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा 23 अक्टूबर, 1993 को अधिसूचना जारी कर अल्पसंख्यक समुदायों के तौर पर पाँच धार्मिक समुदाय यथा मुस्लिम, ईसाई, सिख, बौद्ध तथा पारसी समुदायों को अधिसूचित किया गया था। 2001 की जनगणना के अनुसार देश की जनसंख्या में पांच धार्मिक अल्पसंख्यक समुदायों का प्रतिशत 18.42 है।

आयोग की संरचना

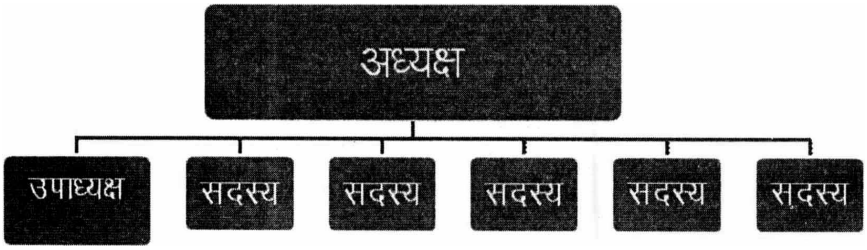

आयोग के कार्य

- संघ तथा राज्यों के अर्थात अल्पसंख्यकों की उन्नति तथा विकास का मूल्यांकन करना।
- संविधान में निर्दिष्ट तथा संसद और राज्यों की विधानसभाओं / परिषदों के द्वारा अधिनियमित कानूनों के अनुसार अल्पसंख्यकों के संरक्षण से संबंधित कार्यो की निगरानी करना।
- केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकारों के द्वारा अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिए संरक्षण के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए अनुशंसा करना।
- अल्पसंख्यकों को अधिकारों तथा संरक्षण से वंचित करने से संबंधित विशेष शिकायतों को देखना तथा ऐसे मामलों की संबंधित अधिकारियों के सामने प्रस्तुत करना।
- अल्पसंख्यकों के विरूद्ध किसी भी प्रकार के भेदभाव से उत्पन्न समस्याओं के कारणों का अध्ययन और इनके समाधान के लिए उपायों की अनुशंसा करना।
- अल्पसंख्यकों के सामाजिक आर्थिक तथा शैक्षणिक विकास से संबंधित विषयों का अध्ययन अनुसंधान तथा विश्लेषण की व्यवस्था करना।
- अल्पसंख्यकों से संबंधित ऐसे किसी भी उचित कदम का सुझाव देना जिसे केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकारों के द्वारा उठाया जाना है।
- अल्पसंख्यकों से संबंधित किसी भी मामले विशेषतायें उनके सामने होने वाली कठिनाइयों पर केन्द्रीय सरकार हेतु नियतकालिक या विशेष रिपोर्ट तैयार करना।
- कोई भी अन्य विषय जिसे केन्द्र सरकार के सामने प्रस्तुत किया जा सकता है, रिपोर्ट तैयार करना।

अधिसूचित अल्पसंख्यक से प्राप्त शिकायतें

आयोग को प्राप्त होने वाली अधिकतर शिकायतें पुलिस अत्याचारों, सेवा मामलों, अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थानों तथा धार्मिक सम्पत्तियों के अतिक्रमण से संबंधित होती हैं। प्राप्त शिकायतें संबंधित राज्य एवं संघ सरकारों के प्राधिकारियों को भेज दी जाती हैं।

आयोग को प्राप्त शिकायतों की संख्या

(2001- 01 से 2009 - 2010 के बीच)

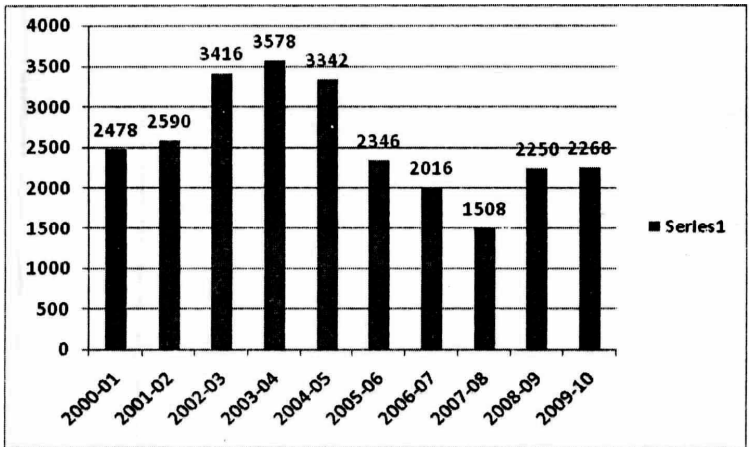

महत्वपूर्ण दिवस	
अल्पसंख्यक	दिसम्बर 18
एनदिवस .एम.सी.	जुलाई 5
कौमी एकता सप्ताह	नवम्बर 19
प्रति आतंकवाद दिवस	मई 21
राज्य अल्पसंख्यक आयोग की वार्षिक मीटिंग	प्रत्येक वर्ष जनवरी में

7.5 अल्पसंख्यक सम्बंधी मिथक

भारत की बहुलतावादी समाज में मुस्लिम, ईसाई, सिख, बौद्ध, पारसी विद्यमान हैं। भारतीय समाज में अल्पसंख्यकों के सांस्कृतिक ताने-बाने एवं रीति-रिवाजों के सम्बंध में बहुसंख्यकों में अनेक मिथक विद्यमान रहे हैं। विशेष रूप से मुस्लिम अल्पसंख्यकों को लेकर भारतीय समाज में अनेक मिथक देखे जा सकते हैं। इन मिथको के कारण बहुसंख्यकों एवं अल्पसंख्यकों के बीच खाई को पाटना एक चुनौती बन जाती है। समाज में अवैज्ञानिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी इन मिथको का हस्तानान्तरण होता रहा है। पुलिस बल के अधिकांश सदस्यों का सामाजीकरण एवं सांस्कृतिकरण इन्हीं मिथको के परिवेश में होता है। इस कारण पुलिस बल के बहुसंख्यक वर्ग के सदस्य अल्पसंख्यक समुदाय के सम्बंध में वे ही मान्यताएँ रखते हैं जो उन्हें मिथकों के अन्तर्गत प्राप्त हुई है। इससे पुलिस बल का दृष्टिकोण भी अल्पसंख्यकों के प्रति वैज्ञानिक एवं सहानुभूतिपूर्ण नहीं हो पाता। इन मिथकों में भारत के विभाजन के लिए मुसलमानों का उत्तरदायी होना, मुसलमानों द्वारा अनेक विवाह (4) किया जाना, मुसलमानों का पाकिस्तान समर्थक होना, धर्म निरपेक्षता को मुस्लिम अल्पसंख्यकों का तुष्टीकरण मानना, मुसलमानों द्वारा धार्मिक कारणों से परिवार नियोजन नहीं अपनाया जाना, मुसलमानों में जनसंख्या वृद्धि दर बहुत अधिक होना आदि प्रमुख हैं।

अल्पसंख्यक समुदाय संबंधी मिथक वैज्ञानिकएवं सांस्कृतिक दोनों की दृष्टि से उचित नहीं हैं। भारत मे अल्पसंख्यकों के सम्बंध में बताए गये इन मिथको मे वैज्ञानिक सत्य नही है। भारत के विभाजन के लिए मुसलमान उत्तरदायी नहीं थे अपितु जिन्ना एवं लीग का दृष्टिकोण तथा अंग्रेजी की नीति विभाजन के लिए उत्तरदायी रही। मुस्लिम लीग मुसलमानों की पार्टी अवश्य थी किन्तु यह समस्त भारतीय मुसलमान का प्रतिनिधित्वनहीं करती थी। मोटे तौर पर मुस्लिम लीग भारतीय मुसलमान को 10% भाग का ही प्रतिनिधित्व करती थी। इसके अतिरिक्त बड़ी संख्या में भारतीय मुसलमान कांग्रेस में सम्मिलित थे। दूसरा महत्वपूर्ण मिथक यह है कि मुसलमान कई विवाह करते हैं क्योंकि इस्लाम में चार विवाह करने की अनुमति है। किन्तु मुसलमानों का लिंगनुपात पिछले जनगणनाओं एक हजार मुसलमान पुरूषों पर 932 से भी कम रहा है। एक रिपोर्ट के अनुसार बहुविवाह का सर्वाधिक प्रतिशत जनजातियों (15.25%) में रहा है। इसके उपरान्त बौद्ध (7.9%), जैन (6.72%), हिन्दू (5.8%), मुसलमान (5.7%) समुदाय में बहुविवाह रहा। मुसलमानों से सम्बंधित मिथकों का वैज्ञानिक रूप से स्पष्टीकरण पुलिस प्रशिक्षण के दौरान पुलिस कार्मिकों को दिये जाने से अल्पसंख्यकों के सम्बंध में भ्रान्तियों को दूर किया जा सकता है।

7.6 साम्प्रदायिक दंगे : ऐतिहासिक सिंहावलोकन

भारत के इतिहास में स्वतंत्रता प्राप्ति एवं उसके उपरान्त अल्पसंख्यकों एवं बहुसंख्यकों के बीच होने वाली अन्तक्रिया का वीभत्स रूप साम्प्रदायिक दंगों के रूप में देखा जा सकता है। इस कालखण्ड में होने वाले प्रमुख दंगों में 1946 के प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस के दौरान कलकत्ता में होने वाले दंगे,

1947 के विभाजन के दौरान के दंगे, 1946 एवं 1989 भागलपुर के दंगे, 1967 रांची के दंगे, 1970 भिवंडी के दंगे, 1979 जमशेदपुर के दंगे, 1984 के सिख विरोधी दंगे, 1987 में मेरठ-मलियाना के दंगे, 1990 के हैदराबाद के दंगे, 1992 अयोध्या दंगे, 1992-93 के बम्बई के दंगे, 2002 के गुजरात के दंगे आदि प्रमुख रहे हैं। स्वतंत्रता आंदोलन के अंतिम चरण के दौरान हिन्दुओं एवं मुसलमानों के बीच राजनीतिक एवं अन्य कारणों से वैमनस्य अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचने लगा था। कांग्रेस के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप होने के बावजूद साम्प्रदायिक ताकतों ने ब्रिटिश औपनिवेशिक सहयोग से ऐसी परिस्थितियाँ पैदा कर दी जिनकी चरम परिणति विभाजन के दौरान होने वाले भयावह दंगों के रूप में रही। इस प्रक्रिया में 1945 के उपरान्त ही पंजाब में साम्प्रदायिक हिंसा का वातावरण बनने लगा था। मार्च 1947 में रावलपिण्डी, मुल्लान, लाहौर, अमृतसर आदि में साम्प्रदायिक हिंसा प्रारंभ हुई जिसमें हजारों लोग मारे गये। लीग द्वारा इस अवसर पर प्रतिक्रियावादी रवैया अपनाया गया। साम्प्रदायिक हिंसा के अन्तर्गत चारों ओर भारी गुण्डागर्दी होने लगी। 3 जून की घोषणा ने आग में घी का काम किया।

कलकत्ता एवं नोआखली के साम्प्रदायिक दंगों का प्रभाव बिहार एवं संयुक्त प्रांत पर गहराई से पड़ा। बिहार में जो साम्प्रदायिक दंगे हुए, बिहार में होने वाली इस साम्प्रदायिक हिंसा में 7000 से अधिक लोग काल-कलवित हो गये। सरकार इन साम्प्रदायिक दंगों को बिहार में रोकने में असफल रही। नेहरू का कहना था कि 'लोगों में इस वक्त पागलपन सवार है।' उनका यह भी मानना था कि, इन साम्प्रदायिक दंगों को करवाने में जमींदार वर्ग का हाथ है, जो किसानों का ध्यान कृषि एवं भूमि सम्बन्धी समस्या से हटाकर साम्प्रदायिकता की ओर मोड़ना चाहता हैं। नवम्बर 1946 में साम्प्रदायिक दंगे गढमुक्तेश्वर (उ.प्र.) में हुये। गंगा नदी के किनारे बसे इस धार्मिक शहर में एक छोटे से झगड़े ने दंगों का रूप ले लिया। इन साम्प्रदायिक दंगों के कारण सरकार की राजनीतिक स्थिति कमजोर होने लगी, क्योंकि उस समय अंतरिम सरकार सत्ता में थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस की धर्मनिरपेक्ष सरकार बनी। यह देश का सौभाग्य रहा कि नेहरू के प्रधानमंत्रित्व के काल में किसी प्रकार के दंगे नहीं हुये। इसी कारण कुछ विचारक नेहरू के काल को अल्पसंख्यकों के लिये स्वर्णिम माना है। नेहरू की मृत्यु के उपरान्त राजनीतिक समीकरणों में परिवर्तन आने लगा। इस समय तक साम्प्रदायिक शक्तियां भी राजनीति में सक्रिय होने लगी थी। राजनीतिक समीकरणोंके परिवर्तन के साथ बिहार में संयुक्त विधायक दलकी सरकार ने सत्ता में आने से पूर्व उर्दू को दूसरी राजभाषा बनाये जाने का दर्जा देने का आश्वासन दिया था। इस दौरान उर्दू लादने के विरोध में जुलूस पर पत्थर फैंके जाने पर साम्प्रदायिक हिंसा हो गई।

इसी प्रकार 1970 में भिवंडी में शिव जयंती जुलूस के दौरान साम्प्रदायिक हिंसा हुई। वस्तुतः यह हिंसा पिछले कुछ वर्षों से शिव जयंती के अवसर पर जुलूस ले जाना, भड़काऊ नारे लगाना आदि के कारण हुई। इसकी चरम परणति भिवंडी के दंगों के रूप में हुई। इन दंगों की जांच के लिये न्यायमूर्ति मदान की अध्यक्षता में एक आयोग बनाया गया। स्वतंत्रता के उपरान्त की दंगों की अगली कड़ी में 1979 के जमशेदपुर के दगे महत्वपूर्ण रहे। इन दंगों का स्वरूप एक सीमा तक राजनीति से भी प्रेरित था। 1887 में मेरठ-मलियाना में साम्प्रदायक दंगे हुऐ। रामजन्म भूमि मामले के कारण यहाँ की स्थिति विस्फोट बन गई इन दंगों में उत्तर प्रदेश की पी.ए.सी. की भूमिका विवादित रही। 1989 के भागलपुर के दंगों में लगभग एक हजार लोग मारे गये। जाँच आयोग के अनुसार दुकानें एवं मकान ज लाए जाने से हजारों लोग प्रभावित रहे। रामजन्म भूमि को लेकर 1992-93 में देश के विभिन्न भागों में साम्प्रदयिक

दंगे हुये। 2002 में गुजरात में साम्प्रदायक संघर्ष में बडी संख्या में जन-धन की हानि हुई। पुलिस पर इस संघर्ष के दौरान पक्षपाती होने का आरोप लगाया गया।

भारत में हिन्दुओं व मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक संघर्ष के अतिरिक्त 1984 में सिक्खों के विरूद्ध होने वाली हिंसा एवं कुछ अवसरों पर ईसाई समुदाय के पादरियों आदि के विरूद्ध होने वाली हिंसा भी बहुसंख्यक अल्पसंख्यक सम्बंधी को लेकर विवाद में रही है।

7.7 पुलिस एवंदंगा प्रबन्धन

लोक व्यवस्था को बनाये रखने में पुलिस की भूमिका 'लॉ इन्फोर्समेन्ट एजेंसी' के रूप में अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। देश में होने वाले विभिन्न दंगों से सम्बधित जाँच आयोगों की रिपोर्टस में पुलिस की भूमिका पर अनेक बार प्रश्नचिन्ह लगाया गया है। यह कहा जाता हैं कि दंगों के दौरान पुलिस अल्पसंख्यकों के साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार करती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत में होने वाली साम्प्रदायिक हिंसा के सम्बन्ध में विविध विद्वानों एवं अकादमिक संस्थाओं द्वारा गहन तथा अनुभवपरक अध्ययन किये गये हैं। सामान्य रूप से आलोचक यह कहते हैं कि पुलिस दंगों में अनेक बार नकारात्मक भूमिका निभाती है। राष्ट्रीय पुलिस अकादमी हैदराबाद के फैलो रहे वी.एन. रॉय ने 'कंबेटिंग कम्युनल कनफिलक्ट्स' में 1968 से 1980 के बीच हुये दंगों के दौरान आकड़ों एवं जुलूसों का विश्लेषण किया है। उन्होंने इस मिथक को तोड़ने का प्रयास किया है कि जातीय दंगों के दौरान दंगे अल्पसंख्यक प्रारंभ करते हैं। सरकारी आकड़ों के अनुसार इन दंगों के दौरान कुल 3949 वारदातें हुई जिनमें 2289 लोग मारे गये। वी.एन. रॉय ने अपनी रिपोर्ट में यह भी लिखा है कि दंगों के दौरान पुलिस तंत्र अल्पसंख्यकों के साथ भेद-भाव करता है। साम्प्रदायिक संघर्ष के लिए हिंसा फैलाने वाले तत्व काफी समय पहले ही तैयारी प्रारंभ कर देते हैं एवं एक मामूली सी घटना भी गहरी नफरत होने के कारण साम्प्रदायिक हिंसा को जन्म देती है। अनेक बार यह देखा गया है कि कारोबार सम्बन्धी शत्रुता एवं भूमि विवाद जैसे मामले भी इस प्रकार की हिंसा द्वारा सुलझाये जाने के प्रयास किये जाते हैं। राय के अनुसार प्राय: पहला पत्थर फेंकने वाले या हमले के लिए पहला हाथ उठाने वाले से पता चल जाता है कि उसके पीछे कोई बाहरी एजेंसी कार्य कर रही है। यह एजेंसी ऐसी स्थिति पैदा करना चाहती है जिससे सरकार के लिये बड़ी मुसीबत खड़ी हो जाये।

पुलिस अधिकारी वी.एन रॉय ने दंगों का वृहत अध्ययन करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि अधिकांश दंगों में पुलिस पक्षपातपूर्ण कार्यवाही करती है। पुलिस बल निष्पक्ष रूप से कार्य नहीं करते। दंगों के दौरान पुलिस बल द्वारा भेदभाव किये जाने एवं निष्पक्ष न रहने का संकेत भेदभावपूर्ण गिरफ्तारियों, कर्फ्यू लागू करने, पुलिस कस्टडी में लोगों के साथ दुर्व्यवहार करने, तथ्यों की जानकारी देने एवं अभियोजन सभी स्तरों पर देखा जा सकता है। सामान्य रूप से पुलिस कार्मिक (विशेष रूप से अधीनस्थ सेवा एवं कॉनिस्टेबिल) के रूप में बड़ी संख्या मेंएक सम्प्रदाय के लोग सेवा में आते हैं। संवैधानिक एवं विधिक रूप से पुलिस कार्मिकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे सभी समुदायों की रक्षा करे किन्तु व्यावहारिक रूप से ऐसा नहीं हो पाता। मुंबई दंगों के सम्बन्ध में श्री कृष्ण आयोग की रिपोर्ट में पुलिस बल द्वारा पक्षपात किये जाने का उल्लेख किया है। अमरीक सिंह ने 'रायट्स एण्ड लॉ एनफोर्समेंट' में लिखा है कि पुलिस का पक्षपातपूर्ण व्यवहार उनके नजरिये को तय करता है।

वस्तुत: दंगों से पूर्व भीड़ का मनोविज्ञान अत्यन्त जटिल होता है। किसी भी समुदाय के तत्व भीड़ को दूसरे समुदाय के विरूद्ध उकसाने का कार्य करते हैं। समूह या भीड़ को दूसरे पक्ष द्वारा आसन्न हमले का 'डर' दिखाकर इकट्ठा किया जाता है। संगठित रूप से चलाई गई गतिविधियाँ जैसे जुलूस (महाआरती), भड़काने वाले भाषण, लेखन आदि आग में घी का काम करते हैं। अफवाहें जन मनोविज्ञान

की वाहक बन जाती हैं। ये अफवाहें बहुत तेजी से फैलती हैं। जुलूस में उकसाने वाले नारे लगाये जाने से दंगे भड़क उठते है। किसी गैर जातीय प्रेम संबंध से भी दंगे भड़क उठते हैं।

पुलिस प्रशिक्षण के दौरान पुलिस कर्मियों को भीड़ मनोविज्ञान के सम्बंध में जानकारी दी जाती है। भीड़ नियंत्रण के सम्बंध में कोई सर्वमान्य सिद्धान्तप्रतिपादित नहीं किया जा सकता किन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि भीड़ की संख्या प्रकृति को समझा जाये। पुलिस महानिरीक्षकों की 1929 में हुई द्वितीय कॉन्फ्रेन्स में लिये गये निर्णय अर्थात् 'गोली एक नियम के रूप में उपद्रवियों की टांगो पर निशाना साधकर चलाई जानी चाहिए' का अक्षरशः पालन किया जाना चाहिए। भीड़ अत्यधिक नजदीक हो तो 303 राईफल के प्रयोग से बचना चाहिए क्योंकि इससे अधिक जन हानि का भय रहता है। इस सम्बन्ध में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू की यह पंक्तियाँ भी स्मरण योग्य हैं कि "भीड़ संख्या में पुलिस बल से ज्यादा होती है। पुलिस निश्चित ही जनता पर गोली चलाकर उसे भयभीत कर सकती है परन्तु यह अतीत कदम है। साधारण जनता की प्रतिक्रिया इस बात पर निर्भर करती है कि आपने उसे व्यवहार कुशल तरीके से निपटा है या नहीं। उन्होंने यह भी कहा कि पुलिस के जवानों को बताया जाना चाहिए कि वे तेज आवाज में चिल्लाये नहीं और न ही इधर-उधर भाग-दौड़ करें क्यों कि यह भीड़ को प्रभावित कर सकता है। इस मामले में भीड़ का मनोवैज्ञानिक अध्ययन सहायक हो सकता है।"

राष्ट्रीय पुलिस आयोग की छठी रिपोर्ट में साम्प्रदायिक संघर्ष के दौरान पुलिस की भूमिका की विस्तृत विवेचना की गई है। वस्तुत: लोक व्यवस्था बनाये रखने में पुलिस की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। इसी के अन्तर्गत पुलिस को दंगे होने से रोकने एवं दंगा नियन्त्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ती है। पुलिस द्वारा किये जाने वाले उपायों में साम्प्रदायिक तनाव पैदा करने वाले मुद्दों की पहचान करना, दोनों समुदाय के बीच बातचीत करवाना, कार्यकारी समूहों को स्थापित करना अफवाहों के फैलने से रोकना, दंगा प्रबन्धन करना आदि होते है।

भारत सरकार द्वारा मुस्लिम समुदाय के सामाजिक आर्थिक शैक्षणिक स्थिति पर प्रकाश डालने के लिए 2005 में न्यायमूर्ति राजेन्द्र सच्चर की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरीय कमेटी का गठन किया गया। केन्द्र सरकार इस कमेटी की सिफारिशों को लागू करने की दिशा में अग्रसर है। इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा बहुसंख्यकों एवं अल्पसंख्यकों के बीच होने वाले संघर्ष को रोकने के लिए साम्प्रदयिक हिंसा रोकथाम विधेयक बनाया गया है। ताकि साम्प्रदायिक हिंसा भड़काने वालों के खिलाफ सख्त कार्यवाही की जा सके।

विधेयक के अनुसार सांप्रदायिक सौहार्द, न्याय और क्षतिपूर्ति के लिए एक सात सदस्यीय राष्ट्रीय प्राधिकरण होगा। सात सदस्यों में से चार समूह अर्थात अल्पसंख्यक समुदाय से होगे। इसी तरह का प्राधिकरण राज्यों के स्तर पर भी गठित होगा। इस अधिनियम के तहत जांच के लिए जो प्रक्रिया अपनाई जानी है वह साधारण है। सी.आर.पी.सी. की धारा 161 के तहत कोई बयान दर्ज नहीं किया जाएगा। पीड़ित के बयान केवल धारा 164 के तहत होंगे अर्थात अदालतों के सामने। इस बिल के आलोचकों का यह मानना है कि यह भारतके संघीय ढाँचे को प्रभावित करेगा एवं भारत मे अन्तर समुदायिक सम्बन्धों में असंतुलन पैदा करेगा। कुल के अनुसार विधेयक का यह प्रारूप अपराधी को मनमाने ढंग से पुनर्परिभाषित करता है। इस प्रस्तावित विधेयक के तहत बहुसंख्यक समुदाय के खिलाफ सांप्रदायिक अपराध करने वाले अल्पसंख्यक समुदाय के सदस्य दोषी नहीं ठहराए जा सकते।

इस प्रकार बहुसंख्यको व अल्पसंख्यकों के बीच में होने वाले संघर्ष को रोकने एवं उनके बीच सद्भाव को बनाने में पुलिस की भूमिका महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीय एकता को बनाये रखने के लिए सांम्प्रादायिक

सौहार्द अत्यन्त आवश्यक है। पुलिस संस्थागत रूप से कानून एवं न्याय, मौलिक अधिकारों के संरक्षण आदि में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर साम्प्रादायिक सौहार्द बनाने में अपना योगदान दे सकती है। विविध राज्य के पुलिस ट्रेनिंग अकादमियों द्वारा पुलिसिंग: रिचिंग आउट टू द माईनियोरिटीज द्वारा पुलिस कार्मिकों को बी.पी.आर.एन.डी के सौजन्य से प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

7.8 सारांश

भारत के बहु लतावादी समाज में मुख्य रूप से पाँच अल्पसंख्यक मुस्लिम, ईसाई, सिक्ख, बौद्ध, पारसी विद्यमान है। भारतीय संविधान नागरिकों की समानता और भाषा, धर्म और संस्कृति जैसे मुद्दों पर अल्पसंख्यकों को संरक्षण, सुरक्षा और हक दिलाने की देश की जिम्मेदारी के प्रति प्रतिबद्ध है। भारतीय संविधान में अल्पसंख्यकों के लिए विशिष्ट संवैधानिक प्रावधान भी किये गये हैं। पुलिस एवं अल्पसंख्यकों के बीच राष्ट्रीय पुलिस आयोग के अध्ययन में संवेदनशील संबंध बताया गया है। पुलिस अधिकारी वी.एन.राय के अध्ययन के अनुसार अल्पसंख्यकों को विशेष रूप से साम्प्रदायिक दंगों के दौरान पुलिस के दुर्व्यवहार एवं विभेद का सामना करना पड़ता है। भारत सरकार द्वारा 1992 में अल्पसंख्यकों के हितों संरक्षण एवं सामाजिक आर्थिक विकास के लिए राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग बनाया गया। अल्पसंख्यकों से सम्बंधित मिथकों को वैज्ञानिक उपाय के अन्तर्गत तोड़ा जाना अपेक्षित है क्योंकि साम्प्रदायिक संघर्ष के मूल में ये मिथक भी विद्यमान रहते हैं। पुलिस के लिए यह अपेक्षित है- कि वह अल्पसंख्यकों के साथ व्यवहार करते हु ए उनका विश्वास अर्जित करें। ताकि लोकतान्त्रिक समाज में अल्पसंख्यक पूर्ण समर्पण एवं विश्वास के साथ देश के विकास में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सके।

7.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारत में अल्पसंख्यकों का संख्यात्मक निरूपण कीजिए।
2. अल्पसंख्यक सम्बंधी मिथकों का वर्णन कीजिए।
3. अंग्रेज सरकार द्वारा रियासतों के साथ की जाने वाली प्रत्यार्पण संधियों की विवेचना कीजिए।
4. राजस्थान के एकीकरण के समय पुलिस व्यवस्था सम्बंधी चुनौतियों का परीक्षण कीजिए।

7.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. कम्यूनल वॉयलेन्स इन पोस्ट इन्डेपेन्डंस इण्डिया, ऑरियेन्ट लोंगमैन मुम्बई
2. ऑन डवलेपिंग थ्योरी ऑफ कम्यूनल राइट्स, सी.एस.एस.एस., मुम्बई
3. प्लाईट ऑफ द माइनोरिटीस प्रॉब्लम एण्ड ग्रेवियेन्सस इन देयर एजुकेशन, ठाकुर; आर.एन., न्यू देहली ज्ञान पब्लिशिंग हाऊस, 1999
4. माइनॉरिटीस इन द डेमोक्रेसी द इण्डियन एक्सपीरियन्स मेसी, जेक्स न्यू देहली, मनोहर पब्लिशर्स, 1999
5. डेमोक्रेसी एण्ड द लिमिट्स ऑफ मॉइनॉरिटी राईट्स, राजन नलिनी, न्यू देहली, सेज पब्लिशर्स, 2002
6. नेशन एण्ड माइनॉरिटीस इण्डियाज प्लूरल सोसाइटी एण्ड इट्स कॉन्सटिट्यून्टस, एडीटर : माजिद अख्तर, न्यू देहली, कनिष्का पब्लिशर्स, 2002
7. राइट्स ऑफ रिलीजियस माइनॉरिटीस इन इण्डिया, मंजु, सुभाश, न्यू देहली, नेशनल बुक ऑरगेनाइजेशन, 1998

8. माइनॉरिटीस एण्ड पुलिस इन इण्डिया, एडिटर इंजीनियर असगर अली एण्ड नारंग, अमरजीतएस., न्यू देहली, मनोहर पब्लिशर्स, 2006
9. साम्प्रदायिक राजनीति : तथ्य एवं मिथक, राम पुनियानी

इकाई - 8
सामुदायिक पुलिस व्यवस्था

इकाई संरचना

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 सामुदायिक पुलिस व्यवस्था का अर्थ
8.3 सामुदायिक पुलिसिंग के मूल तत्व
8.4 सामुदायिक पुलिसिंग बनाम पारंपरिक पुलिसिंग
8.5 सामुदायिक पुलिसिंग के लाभ
8.6 सामुदायिक पुलिसिंग की विदेशों में कार्य-प्रणाली
8.7 सामुदायिक पुलिसिंग की भारत में कार्य-प्रणाली
8.8 सामुदायिक पुलिसिंग कानून की आवश्यकता
8.9 सामुदायिक पुलिसिंग का भविष्य
8.10 सारांश
8.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.0 उद्देश्य

इस इकाई के उद्देश्य निम्नांकित हैं-

- सामुदायिक पुलिसिंग, इसके घटक और पुलिस व समुदाय को लाभ पहुँचाने की संकल्पना से अवगत कराना।
- स्वदेश और विदेश में सामुदायिक पुलिसिंग की कार्य-प्रणाली की संक्षिप्त जानकारी प्रदान करना।
- देश में सामुदायिक पुलिस व्यवस्था का भविष्य, विकास और लागू करने हेतु कानूनकी आवश्यकता जैसे मुद्दों को परखना।

8.1 प्रस्तावना

समुदाय के उद्भव की प्रारंभिक अवस्था में लोगों की सुरक्षा की आवश्यकताएँ समुदाय के सदस्यों द्वारा स्वयं ही देखी जाती थीं। कानून और व्यवस्था के सामान्य रख रखाव की पूरी जिम्मेदारी समुदाय ही उठाती थी। जैसे-जैसे समुदाय बढ़ता गया और गांवों में और बाद में कस्बों और शहरों जैसी बड़ी इकाइयों में विकसित होता चला गया, इसकी सुरक्षा की जरूरतों को देखना समुदाय के लिए पूरी तरह से असंभव हो गया और इसके स्थान पर एक ऐसी संस्थान बनाने की जरूरत महसूस की गई, जो अपराध को नियंत्रित करने, व्यवस्था को सुचारू बनाए रखने और सुरक्षा प्रदान करने की जिम्मेदारी का निर्वाह करे। यह सुनिश्चित करने के लिए कि समुदायके आदर्शों और आदेशों का इसके सभी सदस्यों द्वारा पालन किया जाए और ऐसा नहीं करने वालों को दंडित किया जाए, इसके लिए पुलिस का एक सामुदायिक संस्थान के रूप में उत्थानहुआ।

कम्युनिटी के और अधिक विकसित होने के साथ ही पुलिस बल की भूमिका और उनके सामने आने वाली चुनौतियाँ और ज्यादा मुश्किल हो गई और वे पहले से कहीं अधिक व्यवस्थित और फेशेवर हो गए। शासक वर्ग और समुदाय के अन्य प्रभावी सदस्यों द्वारा भी उनका नियंत्रण होने लगा। इसके परिणामस्वरूप सामान्य रूप से समुदाय के सदस्यों से पुलिस की विरक्ति हो गई। यद्यपि कि सर्व

सत्तावादी देशों के लिए यह पूर्णत: सत्य है, यहाँ तक कि जनतंत्र भी कुछ हद तक इस समस्या का सामना करता है।

वर्षो से भारतीय पुलिस का क्रमिक विकास भी व्यापक स्तर पर प्रमुख शासक वर्ग की अनिवार्यता और जरूरतों से निर्देशित होती रही है, जबकि इसके पहले राजाओं, बाद में उपनिवेशी सरकार और दुर्भाग्यवश आज, वर्तमान लोकतांत्रिक सरकारों द्वारा निर्देशित हो रही है। गदर के बाद लागू की गई 'दी इंडियन पुलिस एक्ट 1861 भारतीय नागरिकों के लिए पुलिस को मित्रवत बनाने के लिए कभी अभिप्रेत नहीं था। इसे विशेषत: भारतीय नागरिकों के दमन के लिए बनाया गया था।

इस ऐतिहासिक विरासत के कारण भारत में पुलिस एक प्रमुख माध्यम बन गई है, जिसके द्वारा प्रभावशाली वर्ग येन केन प्रकारेण सत्ता एवं अधिकार पर अपनी पकड़ बनाए रखना चाहता है। इसने पुलिस को अत्याचार का एक उपकरण बना दिया है, जिससे इसकी छवि अशिष्ट और प्रभावी शासक के अनुकूल काम करने वाले संस्थान की बन गई है, बजाय एक निष्पक्ष और तटस्थ एजेंसी के जो यर्थाथत: कानून के नियमों का पालन करती है।

यह आवश्यक है कि एक सच्चे लोकतंत्र में सिर्फ इसके चुने गए प्रतिनिधि का ही नहीं, बल्कि स्थानीय समुदाय का भी अपने समुदाय की पुलिस व्यवस्था में उल्लेखनीय प्रभाव होना चाहिए। पब्लिक व्यवस्था से संबंधितसमस्याएँ, सुरक्षा और अपराध नित्य प्रतिदिन और भी जटिल होते जा रहे हैं, जिससे पुलिस बल उस समुदाय से अलग-थलग पड़ गई है, जिसकी वह सेवा करती है और उभरती हुई चुनौतियों का प्रभावी रूप से मुकाबला नहीं कर पा रही है। ऐसे में सामुदायिक पुलिस व्यवस्था की जरूरत महसूस होती है।

1809 में यूके में आधुनिक पुलिस के संस्थापक पिता रोबर्ट पील द्वारा प्रतिपादित कई बड़े उद्देश्यों में से एक सामुदायिक पुलिसिंग की आवश्यकता को समझा जा सकता है। 'जनता के साथ हमेशा संबंध बनाए रखना, ऐतिहासिक रीति कि पुलिस जनता है और जनता पुलिस है, पुलिस जनता का सिर्फ एक सदस्य होता है, जिसको अपना पूरा समय कर्तव्य निभाने के लिए भुगतान किया जाता है, जो समुदाय के कल्याण और अस्तित्व के हित में प्रत्येक नागरिक के लिए अनिवार्य होता है, को यथार्थत: प्रदान करती है।'

8.2 सामुदायिक पुलिस व्यवस्था का अर्थ

सामुदायिक पुलिस व्यवस्था की संकल्पना अपेक्षाकृत नई है। सामुदायिक पुलिसिंग में व्यक्तिगत तत्व जैसे सामुदायिक पुलिसिंग संबंधों में सुधार, 1960 के दशक में यूएस में नागरिक अधिकार आंदोलन के बाद धीरे-धीरे दिखाई पड़ना शुरू हुआ, जिसने पारंपरिक पुलिस व्यवस्था की खामियों को उजागर किया। इसके बावजूद 1980 और 1990 के दशक में एक सुसंगठित संकल्पना के रूप में सामुदायिक पुलिसिंग का विकास हुआ॥ दो सामाजिक विशेषज्ञों- जेम्स क्यू विल्सन और जॉर्ज एल केलिंग द्वारा लिखे एक लेख 'ब्रोकन विंडोज' और आस नेशनल मैगजीन 'द अटलांटिक मंथली' में प्रकाशित लेख ने सामुदायिक पुलिसिंग की संकल्पना और अभ्यास में अहम योगदान दिया। तब से अधिक से अधिक पुलिस बल विशेषत: विकसित और लोकतांत्रिक देशों में सामुदायिक पुलिसिंग कार्यक्रमों को चलाया जा रहा है।

अलग-अलग लोगों के लिए सामुदायिक पुलिसिंग का अर्थ भी अलग-अलग होता है। सामुदायिकपुलिसिंग की उतनी ही परिभाषाएँ हैं, जितनी इस विषय के पेशेवरों और सिद्धांतकारों की संख्या है। फिर भी सामुदायिक पुलिसिंग के सारे तत्व में पुलिस समुदाय के साथ परामर्श और दोनों के बीच

लाभकारी आपसी साझेदारी विकसित करना शामिल है। यह एक सहजीवी व्यवस्था है, जिसमें पुलिस के अधिकारी और नागरिक अपराध, सुरक्षा, अव्यवस्था और पड़ोस के तनाव से संबंधित समकालीन सामुदायिक समस्याओं का हल करने के लिए रचनात्मक तरीके से एक साथ काम करते हैं। सामुदायिक पुलिसिंग दोनों है- एक दर्शन शास्त्र (सोचने का एक तरीका) और एक संस्थागत कार्यनीति (दर्शनशास्त्र को लागू करने का एक कार्यक्रम)।

निम्न परिभाषाएँ सामुदायिक पुलिस व्यवस्था की संकल्पना पर प्रकाश डालेंगे :

1. सामुदायिक पुलिसिंग प्रभावी आकलन को विकसित करने, पुलिस और समुदाय के बीच समस्या का हल निकालने की साझेदारी है।
2. सामुदायिक पुलिसिंग में पुलिस व्यवस्था का ऐसा कोई भी तरीका शामिल हो सकता है, जिसमें पुलिस अधिकारी स्थानीय समुदाय के साथ मिलकर स्थानीय समस्याओं की पहचान करके, उसके करने योग्य समाधान में सहयोग करे।
3. सामुदायिक पुलिसिंग, पुलिसिंग के लिए व्यवस्था के बारे में बताती है, जो अपने इलाके में पुलिसिंग को परिभाषित करने और दिशा निर्देशित करने के लिए समुदाय को महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करती है।
4. सामुदायिक पुलिसिंग अंततः समुदाय के साथ परामर्श, सहायता और साझेदारी में एक समाज की साधारण पुलिसिंग का जिक्र करती है।

सफल सामुदायिक पुलिसिंग की कार्यनीति का आधार है, स्थानीय पुलिस और स्थानीय नागरिक, जो उस क्षेत्र में निवास करते हैं, के बीच आपसी लाभकारी बंधन। सामुदायिक पुलिसिंग का मुख्य सिद्धांत जैसे परामर्श, मतैक्य और सहयोग, पंचायत की भारतीय विरासतों के अनुरूप हैं, जो परामर्श विधि से समाज पर अनौपचारिक नियंत्रण लाग करते हैं।

सामुदायिक पुलिसिंग का उद्देश्य

(क) नागरिकों तक पहुंचना और पुलिस के काम में हर स्तर पर एक प्रभावी साझेदारी में उनको शामिल करना।

(ख) पुलिस और नागरिकों के बीच अंतर को उस हद तक कम करना कि पुलिस उस समुदाय का अटूट हिस्सा बन जाए, जिसकी वह सेवा करती है और वे समुदाय की स्वीकृति और विश्वास को हासिल करें और उन्हें लोगों का स्वाभाविक सहयोग मिलने लगे।

(ग) समुदाय द्वारा सामना की जा रही समस्याओं की पहचान करना।

(घ) परामर्श के द्वारा इन समस्याओं का उचित समाधान निकालना।

(ङ) अपराध का पता लगाने और रोकने, व्यवस्था बनाए रखने और समुदाय की सुरक्षाके लिए पुलिस और समुदाय के बीच एक आपसी लाभकारी साझेदारी को विकसित करना।

(त) कानून के नियमों का पालन करने वाले एक दक्ष, पारदर्शी और प्रतिक्रियाशील कानून लागू करने वाला तंत्र समुदाय को प्रदान करना।

(थ) समुदाय की सदबुद्धि एवं संसाधनों का बेहतर प्रबंधन।

(द) पारंपरिक प्रतिक्रियाशील पुलिस बल को अग्र सक्रिय बल में परिवर्तित करना।

8.3 सामुदायिक पुलिसिंग के मूल तत्व

1. **नागरिक सहयोग :-** पुलिस को सिर्फ समुदाय के नेताओं के लिए ही नहीं अंततः समुदाय के लिए संचार के द्वार खोलने पड़ेंगे, और इसके अलावा लोगों की उम्मीदों के अनुरूप पुलिस की प्रमुखताओं को पुर्नगठित करना होगा। सर्वेक्षण बताता है कि जनता आम तौर पर उन मुद्दों से ज्यादा चिंतित रहती

है, जो उनके जीवन की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं, जिसे विशिष्ट पेशेवर पुलिस किसी खास मुद्दा ना होने की तरह भी देख सकता

2. **समुदाय की भागीदारी :-** अपराध और अव्यवस्था के विरुद्ध लड़ाई में सक्रिय भागीदारी के लिए और सामुदायिक योजनाओं में अपना समय देने के लिए पुलिस को लोगों को आमंत्रित और उत्साहित करना पड़ेगा।

3. पुलिस अधिकार को विस्तृत करना - सामुदायिक पुलिस एक विशिष्ट अग्र सक्रिय तत्व को पुलिस की पारंपरिक प्रतिक्रियाशील भूमिका में मिला लेती है, जिसके परिणामस्वरूप सेवा के श्रेणियों में विस्तार हो जाता है। पड़ोस की सुरक्षा में वृद्धि, मत भिन्नता को समाप्त करने, पीड़ित को सहायता मुहैया करने, अपराध के भय को कम करने और स्थानीय सामुदायिक चिंताओं जैसे पड़ोस का क्षय इत्यादि को पुलिसिंग के विस्तृत कार्य के रूप में देखा जाता है। यह पुलिस के कार्य को विस्तृत करता है ताकि पुलिस ऐसा बदलाव करके अधिकाधिक प्रभाव डाल सके, जो समुदायों को सुरक्षित रखने और रहने के लिए जगहों को अधिक आकर्षित बनाने के वादे को पूरा करता हो।

4. **विकेंद्रित निर्णय करना :-** अनेक पुलिसिंग क्रियाओं का विकेंद्रीकरण, पैदा होने वाली समस्याओं की प्रतिक्रिया का अधिकाधिक लचीलापन इसमें शामिल है और इसलिए फील्ड पुलिस अफसर को निर्णय लेने के लिए अधिक अधिकार प्रदत्त होना अनिवार्य है।

5. **अधिक अच्छी सेवा प्रदान करना :-** यह सेवा की गुणवत्ता, नागरिकों की संतुष्टि, समुदाय के प्रति पुलिस की प्रतिक्रियाशीलता और समस्या के समाधान के लिए तरीके पर जोर देती है।

6. **समुदाय को अधिकार प्रदान करना :-** सामुदायिक पुलिसिंग का आखिरी उद्देश्य है, समुदाय को अधिकार प्रदान करना। सभी मामलों में सहायता के लिए पुलिस की ओर उन्मुख होने की बजाय समुदाय को अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं निकालने के लिए उत्साहित करना होगा। जनता को यह समझाना चाहिए कि अपराध नियंत्रण में और स्थानीय समस्याएँ जो भविष्य में अपराध के लिए वातावरण तैयार कर रही हैं, में वे भागीदार हैं। एक अधिकृत नागरिक अपने अधिकारों और कर्तव्यों को समझेगा और अपने क्षेत्र को रहने के लिए बेहतर बनाने के लिए अपने समय और ऊर्जा का उपयोग करेगा।

8.4 सामुदायिक पुलिसिंग बनाम पारंपरिक पुलिसिंग

अधिकांश विकसित देशों में शुरुआत में पुलिसिंग गश्ती पुलिस तक ही केंद्रित थी, जो अपने गश्त में हर एक को जानती थी। इसके सकारात्मक पहलू के बावजूद इस पुलिसिंग प्रारूप में कुछ भारी खामियां थीं, जैसे गश्त करने वाले अधिकारी का राजनैतिक और अन्य स्थानीय प्रभावों से सुभेज्ञय होना, खराब प्रशिक्षण और पेशेवर वृत्ति की कमी। विकसित हो रही चुनौतियाँ, शीघ्र प्रतिक्रिया की जरूरत और वैज्ञानिक और अपराधी ठहराने के लिए अधिक विश्वसनीय प्रमाणों की आवश्यकता इत्यादि प्रोफेशनल पुलिसिंग मॉडल (व्यावसायिक पुलिसिंग प्रारूप) के विकास पर जोर देता है, जो पूरी तरह से बेहतर प्रशिक्षण, गतिशीलता और पेशेवर वृत्ति के विकास पर निर्भर करता था। इस प्रक्रिया में समुदाय के साथ कम से कम संपर्क रखते हुए पुलिस व्यवस्था कहीं ज्यादा घटना ऊन्मुखी हो गई।

इन दो पुलिसिंग प्रारूपों में कुछ अंतर हैं

(क) पारंपरिक पुलिसिंग में पुलिस प्रतिक्रियाशील होती है और घटनाओं एवं अपराधों के बादप्रतिक्रिया करती है, जबकि सामुदायिक पुलिसिंग, पुलिसिंग समस्याओं के प्रति अग्र सक्रिय पद्धति है।

(ख) पारंपरिक पेशेवर पुलिसिंग प्रारूप उन घटनाओं पर जोर देती है, जिसमें अपराध और जनता व्यवस्था परिस्थितियां शामिल होती है। सामुदायिक पुलिसिंग एक बेहतर समग्र पद्धति है, जिसमें समस्याओं

के मूल कारणों का पता लगाकर हमेशा के लिए उसका समाधान निकालने और समस्याओं का हल तलाशने पर जोर रहता है।

(ग) पारंपरिक पुलिसिंग में, पुलिस व्यवस्था की प्रमुखताएँ पुलिस और सरकार द्वारा निर्धारित की जाती है, जबकि सामुदायिक पुलिसिंग में स्थानीय समुदाय का कथन महत्वपूर्ण होता है और इसलिए यह अधिक लोकतांत्रिक है।

(घ) पारंपरिक पुलिसिंग में पुलिस की सेवा प्रक्रिया को कम प्रमुखता प्राप्त होती है, जबकिसामुदायिक पुलिसिंग में इसे प्रमुखता प्रदान की जाती है।

(ङ) (ड़) सामुदायिक पुलिसिंग पुलिस को जनता के प्रति जिम्मेदार ठहराती है, जबकि पारंपरिक पुलिसिंग में जिम्मेदारी सरकार, न्यायालय और विधायिका तक ही सीमित होती है।

(त) पारंपरिक पुलिसिंग का प्रारूप पुलिस को समुदाय से दूर करता है, जबकि सामुदायिक पुलिसिंग उसे समुदाय के पास लाती है।

(थ) पारंपरिक पुलिसिंग प्रक्रिया गोपनीयता प्रवृत्त होती है, जबकि सामुदायिक पुलिसिंग पुलिस के कार्यो में अधिक पारदर्शिता लाती है।

फिर भी यहां इस बात पर जोर देना चाहिए कि सामुदायिक पुलिसिंग पारंपरिक पेशेवर पुलिसिंग का विकल्प नहीं है, यह सिर्फ एक पूरक है, पारंपरिक पुलिसिंग का एक अनिवार्य पूरक।

8.5 सामुदायिक पुलिसिंग के लाभ

सामुदायिक पुलिसिंग विभिन्न कारणों से बहुत महत्वपूर्ण हो गई है, इनमें से दो अहम हैं। पहला, इस बात की समझ की अपराध की बढ़ती प्रवृत्ति और समाज में अव्यवस्था अकेले पुलिस द्वारा ही नियंत्रित नहीं की जा सकती है, भले ही वे कितने भी संसाधनों से सुसज्जित हों या अच्छी तरह से प्रशिक्षित हों। दूसरा, लोकतांत्रिक संस्कृति का फैलाव, जिसके लिए पुलिसिंग को भी आवश्यक रूप से लोकतांत्रिक बनना होगा।

पुलिस बल हर जगह लगातार तर्क देती है कि यदि उन्हें अधिक संसाधन मुहैया करवाया जाए, विशेष रूप से कर्मचारी, तो वे समुदाय को अपराध से संरक्षित रखने में समर्थ होंगे। विभिन्न अपराध विशेषज्ञों और विकसित देशों, जहां संसाधन कोई बड़ी बाधा नहीं है, के अनुभवों के अनुसार यह मात्र एक भ्रम है। अपराध रोकने और जनता व्यवस्था को बनाए रखने के लिए पुलिस को समुदाय के संसाधनों को अधिक से अधिक गतिशील बनाए रखना होगा। एक बार सफलतापूर्वक इसे करते हैं, तो कई गुणा बल के साथ इसका प्रभाव होगा।

पुलिस विभाग, जिसे विभाग के लिए अच्छा समझता है, जरूरी नहीं की वो वैसा ही हो, या यह समुदाय के सिर्फ उस भाग के लिए अच्छा हो सकता है, जिसके लिए पुलिस विशेष रूप से प्रतिक्रियाशील है। प्राय: उन मामलों में समुदाय के कुछ हिस्सों से पूर्ण रूपेण परामर्श नहीं ली जाती है, जो अंतत: समुदाय के सभी सदस्योंको प्रभावित करती है। सामुदायिक पुलिसिंग ऋग्वेद में प्रतिपादित 'अनोभ्रद: कर्थवो यंतु विश्वत: ' (अच्छे विचारों को चारों तरफ से आने दो) के सिद्धांत का प्रसार करती है।

पारंपरिक पुलिसिंग पुलिस अधिकारियों को समुदाय को त्रस्त करने वाली समस्याओं के सही कारणों को समझने की योग्यता प्रदान करती है। साथ ही समाधान तलाश करने के लिए उनको विवेकशीलता भी देती है, जिससे समुदाय संतुष्ट हो सके। समुदाय पुलिस की उन समस्याओं में शामिल

होने को महत्व देती है, जिसमें अपराध या पब्लिक व्यवस्था शामिल नहीं होता और उन्हें हल करने में उनके योगदान की सराहना करती है।

सामुदायिक पुलिसिंग पुलिस व्यवस्था के खर्च को कम करती है, अपराध नियंत्रण में सुधार लाती है और अपराध के भय को कम करती है। सेवा उन्मुक्तता, लचीलापन और उपभोक्ता के प्रति प्रतिक्रियाशीलता पर जोर देकर यह पुलिस की छवि में बदलाव लाती है। यह समाधान, परामर्श और समझौता वार्ता के माहौल को बढ़ावा देती है। हालांकि इन दिनों अपर्याप्त बजट में पुलिस को उन विशेष चुनौतियों, जिनका वे हमेशा सामना करते हैं, पर जीत हासिल करने नए समाधान और कार्यनीति को विकसित करना चाहिए।

सामुदायिक पुलिस व्यवस्था, सिर्फ जन संपर्क अभ्यास ही बनकर रह जाएगी, जब तक कि इसका परिणाम पुलिस द्वारा अपराध नियंत्रण और बेहतर पब्लिक व्यवस्था के रूप में सामने नहीं आता। यह तभी संभव होगा, जब समुदाय के साथ परामर्श करके स्थानीय समस्याओं को पहचाना जाए, उपयुक्त सामुदायिक पुलिसिंग की पहल को चुना जाए या लाग करने के लिए तैयार किया जाए और समुदाय के सदस्यों और क्षेत्र में तैनात पुलिसकर्मियों दोनों को ही पूरे उत्साह और समर्पण के साथ इसे लागू करने के लिए प्रेरित किया जाए। इस पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि एक विशेष प्रारूप सभी परिस्थितियों या स्थानों में उपयुक्त नहीं हो सकता है इसलिए जब भी इस प्रकार के कार्यक्रम लागू किए जा रहे हों, तो स्थानीय जरूरतों और उभर रही परिस्थिति के अनुरूप उसमें परिवर्तन के सकारात्मक अवसर होने चाहिए, ताकि आवश्यक संशोधन किए जा सकें। हालांकि यह भी समझना चाहिए कि सामुदायिक पुलिसिंग समाज या पुलिस विभाग की सभी समस्याओं के लिए रामबाण दवा नहीं है।

8.6 सामुदायिक पुलिसिंग की विदेशों में कार्य-प्रणाली

विकसित देशों में पुलिस बल की एक बड़ी संख्या 1980 से सामुदायिक पुलिसिंग की अगुआई करती आ रही है। इस प्रकार की पहल की संख्या इतनी बड़ी है कि अंतरराष्ट्रीय पुलिसिंग के जाने-माने विशेषज्ञ, डेविड एच. बैले ने अवलोकन किया कि सामुदायिक पुलिसिंग की नैतिकता ऐसी है कि हर कोई इसे करता हुआ दिखाई देना चाहता है।' कुछ ऐसे ही जाने-माने और सफल प्रयोगों का यहां संक्षिप्त वर्णन किया जाएगा।

जापान सबसे अधिक सुरक्षित देशों में है, मुख्यत: सामुदायिक पुलिसिंग सिस्टम के कारण, जो पड़ोस की पुलिस चौकी (जिसे कोबन्स कहते हैं) पर आधारित है। एक पुलिस स्टेशन कई कोबन्स में बंटा होता है। जापान में करीब 15000 कोबन्स हैं, जिसमें युवा अधिकारियों के दल के साथ कुछ वरिष्ठ पर्यवेक्षी अधिकारी होते हैं, जो अपराध नियंत्रण और पब्लिक व्यवस्था में नागरिकों के सहयोग की सूची तैयार करते हैं। कोबन के सामुदायिक पुलिस अधिकारी की पुलिस शक्ति लगभग 40 प्रतिशत होती है। कोबन स्थानीय समुदाय का एक हिस्सा होता है, जो एक 'कम्यूनिटी सिटी सेंटर' (सामुदायिक सुरक्षा केंद्र) के रूप में कार्य करता है। पड़ोस में स्थाई पुलिस की उपस्थिति समुदाय से निकटता में परिणामित होता है और अपने सहयोग को दर्शाता है। अत: कोबन्स अपराध का पता लगाने और उसे रोकने में काफी सफल रहे हैं।

सिंगापुर ने कोबन्स का अध्ययन किया और इसका अपना संस्करण 'नेबरहुड पुलिस पोस्ट्स' (पड़ोस की पुलिस चौकी) के नाम से विकसित किया। नेबरहुड पुलिस पोस्ट्स अपराध नियंत्रण कार्यों जैसे नेबरहुड वॉच ग्रुप्स (पड़ोसियों पर निगरानी रखने के लिए समूह) को संगठित करना, प्रदर्शनी लगाना

और अपराध नियंत्रण, उनकेउपायों के बारे में जनता में जागरूकता पैदा करने के लिए वार्ता और इलाके का सुरक्षा सर्वेक्षण करवाने की जिम्मेदारी लेता है।

सफल सामुदायिक पुलिसिंग प्रोग्राम्स वाला यूके एक दूसरा देश है। पुलिस रिफॉर्म एक्ट 2002 के द्वारा संशोधित द क्राइम एंड डिसऑर्डर एक्ट 1988 अपराध और अव्यवस्था से निपटने के लिए पुलिस और अन्य एजेंसियों को समुदाय का सहयोग लेने के लिए अनिवार्य बनाता है। यूके ने एक नेशनल कम्यूनिटी सिटी प्लान विकसित किया है। लंदन के हर वार्ड में पूरे स्टाफ के साथ 'सेफर नेबरहुड्स पुलिसिंग टीम' है, जो स्थानीय समुदायों के साथ मिलकर समाज विरोधी आचरण और अपराध को निशाना बनाता है। लंदन पुलिस भी आतंक के विरुद्ध लड़ने में समुदाय की सहायता ले रही है। कम्यूनिटी सपोर्ट ऑफिसर और नेबरहुड वार्डन्स पुलिस की सहायता करते हैं। कम्यूनिटी सपोर्ट ऑफिसर्स के पास नियमित पुलिस अधिकारियों के सभी अधिकार नहीं होते हैं, लेकिन उन्हें गश्त के लिए काम में लिया जाता है और वे छोटे-मोटे अपराधों के लिए जुर्माना लगा सकते हैं। नेबरहुड वार्डन्स स्पष्ट, समान गश्त से परिचित करा दिए गए हैं, लेकिन उनके पास पुलिस का कोई भी अधिकार नहीं होता है। सामुदायिक पुलिसिंग ने पुलिस कर्मियों के साथ ही कम्यूनिटी सपोर्ट स्टाफ में वृद्धि की है। पुलिस, कम्यूनिटी सपोर्ट ऑफिसर्स, नेबरहुड वार्डन्स और नागरिक नियमित रूप से मिलते हैं। क्षेत्र के अपराध और अव्यवस्था के मुद्दों की पहचान की जाती है और उनके समाधान के लिए यदि अन्य एजेंसियों के दखल की जरूरत पड़ती है, तो उनके साथ बात की जाती है। इंग्लैंड और वेल्स में डिसऑर्डर रिडमान पार्टनरशिप सभी संबंधित विभागों, जो स्थानीय स्तर से जुड़े हुए हैं पुलिस, पुलिस अधिकारी, स्थानीय सरकार, प्राइमरी केयर ट्रस्ट्स, चिल्ड्रन्स ट्रस्ट्स, अग्नि सेवा और अन्य पब्लिक सेक्टर संस्थानों को अपराध और समाज विरोधी आचरण नियंत्रित और कम करने के लिए एक स्तर पर लेकर आती है। यूके में सामूहिक सहभागिता के साथ नेबरहुड पुलिसिंग भी काफी सफल रही है।

यू.एस. उन देशों में पहला था, जिसने महसूस किया कि पुलिस को समुदाय से दूर करने के लिए पुलिस की गाड़ियाँ जिम्मेदार थीं। लोगों ने शायद ही पुलिस को पैदल चलते देखा होगा, वह हमेशा अपनी कार से चलती थी। 1960 के दशक में सिविल राइट मूवमेंट (नागरिक अधिकार आंदोलन) के बाद आस पुलिसिंग सिस्टम की मुख्य खामियों का पर्दाफाश हुआ जैसे समुदाय से इसकी बेरुखी। जनसंपर्क को विकसित करने के उपाय शुरू किए गए और 1960 के दशक से अनेक पुलिस बलों द्वारा बड़ी संख्या में सामुदायिक पुलिसिंग उपायों की शुरूआत की गई। गश्त को मजबूत करना, जिला और मुख्यालयों के स्तर पर बीट पर नागरिकों की समितियाँ बनाना और निवासियों की समस्याओं के समाधान के लिए शहर की एजेंसियों को शामिल करना मुख्य उपाय थे, जिसे शिकागो पुलिस ने अपनी कम्यूनिटी अल्टरनेटिव पुलिसिंग सिस्टम (सी.एपी.एस) में लिया गया था। 'क्राइम स्टॉपर्स' एक दूसरा प्रोग्राम है, जिसमें अपराध रोकने के लिए मीडिया और समुदाय का उपयोग किया गया। सैन डीगो पुलिस की 'प्रॉब्लम ओरिएंटेड पुलिसिंग' ने भी पहचानी गई विशिष्ट समस्याओं के समाधान पाने के लिए सामुदायिक संसाधनों को एकत्रित किया। गंभीर अपराधों के साथ ही अपराधों में कमी -पाने में इन सभी कार्यक्रमों का दमदार नतीजा रहा।

1980 के दशक के आरंभ मे शुरू किया गया नेबरहुड वॉच, यू.एस.ए. के सामुदायिक पुलिसिंग के सबसे लोकप्रिय स्वरूपों में से एक है। इन प्रोग्राम का सार यह है कि नागरिकों को अपने पड़ोस की संदेहात्मक घटनाओं को ध्यान से देखकर और उसकी सूचना देकर पुलिस के आँख और कान बनने के लिए उत्साहित करना चाहिए। इस कार्यक्रम के तहत स्थानीय अपराधिक समस्याओं के बारे में

सूचनाओं को साझा करने, अपराध रोकने के उपायों के आपसी लेन देन और अपने पड़ोस पर निगरानी रखने के लिए योजना तैयार करने के लिए निवासियों के छोटे-छोटे समूह मिल-जुलकर साथ आते हैं। मीटिंग के दौरान मुद्दों की पहचान की जाती है और समाधान निकाले जाते हैं। घर-घर में सर्वेक्षण किए जाते हैं और निवासियों को सुरक्षा की जानकारी और सुरक्षा के उपकरण जैसे दरवाजे की चेन, मैजिक आईज आदि दिए जाते हैं।

8.7 सामुदायिक पुलिसिंग की भारत में कार्य-प्रणाली

भारत के अनेक हिस्सों में सामुदायिक पुलिसिंग प्रोग्राम के विभिन्न प्रकार काम में लिए जाते हैं और तेजी से उनकी स्थिति बढ़ रही है। उन सभी को यहां सूचीबद्ध करना संभव नहीं है। सुविधा के लिए इन प्रोग्राम्स को व्यापक रूप से कम्यूनिटी आउटरीच प्रोग्राम्स (समुदाय की पहुंच से परे के लिए कार्यक्रम), ऑल्डरनेट डिस्प्यूट रिजॉल्यूशन प्रोग्राम्स (विवादों के समाधान के विकल्प के लिए कार्यक्रम), प्रोग्राम्स फॉर मेंटिनेंस ऑफ पब्लिक ऑर्डर (जनता की सुव्यवस्था के रख-रखाव के लिए कार्यक्रम) व अन्य कार्यक्रमों में वर्गीकृत किया जा सकता है, जिन्हें विशिष्ट समस्याओं से निपटने के लिए तैयार किया गया है।

इनमें से कम्यूनिटी आउटरीच प्रोग्राम्स को व्यापक रूप से काम में लिया गया है। यह प्रोग्राम या तो समुदाय को लक्षित करता है या विशिष्ट लक्ष्य समूह को। पुलिस जनता समन्वय कार्यक्रम के कुछ प्रारूप को परामर्श समितियां बनाकर पुलिस स्टेशन या गावों या मोहल्लों के स्तर पर अनेक राज्यों में परीक्षण किए गए हैं। महाराष्ट्र में मोहल्ला कमेटी, आंध्रप्रदेश में मैत्री प्रोग्राम, पंजाब में पुलिस एडवाइजरी कमेटी और राजस्थान में कम्यूनिटी लायजन यूप ऐसे प्रमुख कार्यक्रम हैं।

साम्प्रदायिक पुलिसिंग प्रोग्राम्स की एक बड़ी संख्या विशिष्ट ग्रुप्स- जैसे वरिष्ठ नागरिक, महिलाएँ, युवा, विद्यार्थी, किशोर और समाज के सुविधा विहीन संभाग, को टारगेट करती है, जो भारत और विदेशों में ज्यादातर समान है। इस कार्यक्रम की अंतर्वस्तु विषय और पहुंच एक स्थान से दूसरे स्थान पर बदल जाती है। लेकिन आम तौर पर इन सभी प्रोग्राम्स का लक्ष्य होता है, गश्त पुलिसकर्मियों और कुछ मामलों में समुदायों के स्वयं सेवकों द्वारा टारगेट ग्रुप तक पहुंचना और साथ मिलकर काम करना। इन प्रोग्राम्स का मंतव्य है कि इन दलों को उनके सामने आ रही समस्याओं के बारे मे संवेदनशील बनाना, स्वयं समस्याओं का समाधान ढूंढना और अनेक मामलों में लक्ष्य समूह को सशक्त बनाना। अनेक राज्यों ने कुछ लक्ष्य समूहों के लिए हेल्पलाइन भी शुरू कर दी हैं।

विद्यार्थी, जो किसी देश के भावी नागरिक होते हैं, भारत और विदेशों में पुलिस बलों के लिए एक प्रमुख टारगेट ग्रुप बन गए हैं। द स्टूडेंट आउटरीच प्रोग्राम्स आम तौर पर पुलिस अधिकारियों को शामिल करता है, जो विद्यार्थियों को उनसे संबंधित मामलों की जानकारी देते हैं, यातायात नियमों और ड्रग समस्याओं के प्रति उन्हें संवेदनशील बनाते हैं, विभिन्न तरह की प्रतियोगिताओं का आयोजन करते हैं, विद्यार्थियों को पुलिस स्टेशन का मुआयना करवाते हैं आदि। हालांकि 2005 में केरल पुलिस ने विद्यार्थियों के लिए एक अनूठा कार्यक्रम शुरू किया था- 'स्टूडेंट पुलिस कैडेट प्रोग्राम'- ठीक एनसीसी के पुलिस विंग की तरह। यह कार्यक्रम काफी लोकप्रिय है और इसके परिणाम काफी उत्साहवर्द्धक हैं। 1971 में पुलिस प्रशिक्षण पर गठित गोरे कमेटी ने इस तरह की संस्था स्थापित करने की सिफारिश की, फिर भी ऐसा करने वाली केरल पुलिस ही एक मात्र है।

कच्ची बस्तियाँ, यदि उचित तरीके से पुलिस द्वारा नियंत्रित न की जाएँ, तो बड़ी संख्या में अपराध पनप सकते हैं और यह अपराधी पैदा करने वाला स्थान बन सकता है। कुछ अग्र सक्रिय पुलिस

अधिकारियों ने इस समस्या से निपटने के लिए सामुदायिक पुलिसिंग प्रोग्राम शुरू किए हैं। तमिलनाडू में त्रिची पुलिस और पश्चिम बंगाल में आसनसोल पुलिस ने कच्ची बस्तियों को गोद लेकर उल्लेखनीय शुरुआत की है।

इसी तरह का बीच-बचाव त्रिची और राजस्थान के कुछ जिलों खास तौर पर झालावाड़ में दिखाया गया है कि कठिन पेशेवर अपराधियों को भी अपराध छोड़ने और जीविका के लिए उचित साधनों को अपनाने के लिए तैयार किया जा सकता है। झालावाड़ पुलिस एक ऐसे समुदाय को सुधारने में समर्थ रही है, जो पीढ़ियों सेअपराध कार्यो में लिप्त रही है, जो ब्रिटिश राज के दौरान क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट के तहत आती थी। त्रिची पुलिस ने जहां एक ओर कठिन अपराधियों को सुधार के लिए इसे चुना, तो दूसरी ओर अनुचित तरीके से शराब बनाने में लिप्त पूरे गांव को सुधारने के लिए।

कुछ थोड़े से उच्च अग्रसक्रिय पुलिस अधिकारियों द्वारा वर्ष 2001 में शुरू किए गए दो सामुदायिक पुलिसिंग को पहले से दिखलाया गया है कि इस तरह के पहल से नक्सली और आतंकवादी समूह को भी सुधारा जा सकता है। एक पहल जिसे पुलिस मीकोसम (पुलिस आपके लिए) कहलाता है आंध्रप्रदेश के अदिलाबाद जिले में स्थानीय लोगों को नक्सली प्रभाव से मुक्त कराने और विकासोन्मुख योजनाओं की शुरुआत करने में सफल रहा है। इसी प्रकार प्रहरी नाम का प्रयोग असम के कोक्राझाड़ में शुरू किया गया, जिसका अशांत क्षेत्र के गांवों में ऐसा ही प्रभाव पड़ा था।

सामुदायिक पुलिसिंग द्वारा गंदी बस्तियों, नक्सलाइट प्रभावित और अशांत क्षेत्रों के लिए और अपराधियों को सुधारने के लिए किए गए प्रयोग का अनुभव कमोबेश एक समान ही है। इनमें स्थानीय पुलिस अधिकारियों द्वारा बार-बार निरीक्षण लक्ष्य समूह के साथ नियमित बातचीत मूलभूत की कमी से समुदाय द्वारा सामना किए जा रहे समस्याओं की पहचान और अन्य समस्याएँ संबंधित सरकारी एजेंसी या एनजीओ और अन्य दाताओं बातचीत से स्थानीय झगड़ों का निवारण, आजीविका के उचित साधनों की पहचान, इसके लिए स्थानीय लोगों को प्रशिक्षित करना और एनजीओ या दूसरे संस्थानों की सहायता से रोजगार दिलाना, बच्चों में साक्षरता को बढ़ावा देना आदि शामिल है। इन पहलुओं के सरकार या कारपोरेट सत्ता के सीएसआर कॉरपोरेट सोशल रेस्पॉन्सिबिलिटी के विकासोन्मुख और जीविकोपार्जन, योजनाओं के साथ समन्वित किया जा सकता है। इन पहलुओं में पुलिस की भूमिका इन्हें सुसाध्य बनाने की होगी।

इसके अलावा अनेक राज्य जैसे असम, गुजरात, जम्मू एंड कश्मीर, कर्नाटक, मध्यप्रदेश में विशिष्ट नियत कार्य के लिए प्रोग्राम्स तैयार किए गए हैं-विलेज डिफेंस सोसायटीज उसमें सबसे अधिक उभयनिष्ठ है। शहरी क्षेत्र के लिए आउन डिफेंस सोसायटीज भी है। इन समितियों को मुख्य रूप से उन क्षेत्रों के गश्त के लिए बनाया गया है, जो सम्पत्ति के विरुद्ध अपराध उन्मुख है। वास्तव में शुरू में डकैती के विरुद्ध सुरक्षा के रूप में इसकी शुरुआत मध्यप्रदेश में की गई थी, जो 1970 के दशक तक अधिक प्रचलित थी।

अपराध रोकने के लिए अनेक स्थानों पर अनेक दूसरे प्रोग्राम्स आजमाए गए हैं। विशेष रूप से संपत्ति के विरुद्ध अपराध। बैंगलुरू, चंडीगढ़ और दिल्ली में वॉच प्रोग्राम लागू किया गया है। दिल्ली, मुंबई, पुणे, नागपुर और नासिक में पुलिस हाउसिंग सोसायटी के नियमित संपर्क में रहती है। पंजाब और राजस्थान में स्थानीय निवासियों को अपने इलाके में प्रवेश द्वारों पर गेट लगाने के बाद वॉचमैन की नियुक्ति करने के लिए कम्यूनिटी पुलिस ऑफिसर्स नाम से एक योजना को आजमाया गया। पुलिस एक्ट, 1861 डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को अधिगत करता है कि डिस्ट्रिक्ट सुप्रिटेंडेंट ऑफ पुलिस के अनुशंसा पर योग्य पब्लिक के सदस्यों को स्पेशल पुलिस ऑफिसर के रूप में नियुक्त करे। प्रभावी अपराध नियंत्रण

और विभिन्न दूसरे नियत कार्यो के लिए दिल्ली पुलिस स्पेशल पुलिस ऑफिसर्स को काम में लिया था। जम्मू एवं कश्मीर पुलिस उन्हें आतंकवाद से लड़ने के लिए काम लिया है।

फ्रैंड्स ऑफ पुलिस नाम से एक दूसरी स्कीम सफलतापूर्वक तमिलनाडू में लागू की गयी, जिसे बाद में पॉन्डिचेरी और गुजरात के कुछ हिस्सों में नकल किया गया। इस योजना के अंतर्गत अनेक प्रकार के कार्यक्रमों को लागू करने और पब्लिक के सदस्यों को अवैतनिक अपनी सेवाएँ प्रदान करने के लिए आमंत्रित किया जाता है। एक बार नामांकन होने के बाद फ्रैंड्स ऑफ पुलिस को जिस कार्य के लिए स्वयं सेवा देने को तैयार होते हैं, उन्हें उसके लिए प्रशिक्षित किया जाता है और सीमित साजो सामान मुहैया किया जाता है।

भारत और विदेशों में अनेक प्रकार के पुलिस बलों द्वारा ऑल्टरनेट डिसप्यूट रिजोल्यूशन प्रोग्राम्स आजमाए गए हैं। इन प्रोग्राम्स का उद्देश्य पब्लिक और समुदाय के सदस्यों द्वारा समझा बुझाकर बिना कचहरी में जाए विवादों का निपटारा करना होता हैं, उन्हें कचहरी में ले गए बिना। भारत में इस तरह के स्कीम में सबसे अधिक सफल और कामयाब रहने वाला महाराष्ट्र का महात्मा गांधी तंत मुक्ति गांव योजना है। इसे आंध्रप्रदेश और राजस्थान में भी सफलतापूर्वक आजमाया गया है। पिछले कुछ समय में फैमिली काउंसलिंग सेंटर्स लोकप्रियता प्राप्त कर रहे हैं। इन्हें घरेलू विवादों में हस्तक्षेप करने, अनजाने युग्म को परामर्श देने और एक मित्रवत समझौता तक पहुंचने के लिए प्रयास करने के लिए संस्थापित किया गया है। इन केंद्रों का प्रबंधन एन.जी.ओ. या सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा किया जाता है। ये विवादों के एक बड़े प्रतिशत को कानूनी प्रक्रिया के बिना ही निपटारा करने में सक्षम रहे हैं।

भारत में करीब-करीब सभी राज्य पब्लिक व्यवस्था और सामुदायिक दंगा उन्मुख क्षेत्रों में शांति बनाए रखने के लिए ट्रेडिशनली पीस कमेटी का प्रयोग किया गया है। पुलिस मिकोसम और प्रहरी जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है। ऐसा उदाहरण है जिससे प्रमाणित होता है कि सामुदायिक सहभागिता पब्लिक व्यवस्था और यहां तक कि अशांत और नक्सलवादी समस्या से प्रभावित क्षेत्रों में भी एक ठोस अंतर लाता है।

अधिकांश विकसित देशों के विपरीत भारत के अधिकांश राज्यों के पास क्रियाशील और प्रभावी गश्त सिस्टम नहीं है, जो पारंपरिक एवं सामुदायिक पुलिसिंग दोनों के लिए अनिवार्य है।

8.8 सामुदायिक पुलिसिंग कानून की आवश्यकता

सामुदायिक पुलिसिंग प्रोग्राम्स की सफलता के लिए यह महत्वपूर्ण है कि उनका कार्यान्वयन दल के सिर्फ एक या दो नेताओं के पहल पर निर्भर नहीं करना चाहिए। सामुदायिक पुलिसिंग आवश्यक रूप से पुलिस के मूल सिद्धांत का अभिन्न भाग बने। इस संदर्भ में यह व्यक्त किया गया है कि सामुदायिक पुलिसिंग को अनिवार्य करने के लिए कानून की जरूरत है। तथापि इस संबंध में विचारों का मतैक्य नहीं है। अधिकांश दूसरे देशों में सामुदायिक पुलिसिंग प्रोग्राम्स को स्वयं पुलिस बल या कुछ मामलों में सरकार द्वारा जारी किए गए शासन देश के अंतर्गत काम में लेते हैं।

भारत में कुछ राज्य हैं, जिनके पास सामुदायिक पुलिसिंग प्रोग्राम्स को अनिवार्य करने के कानून हैं। द मध्यप्रदेश विलेज एंड टाउन डिफेंस कमेटी एक्ट 1999, कर्नाटक का विलेज डिफेंस पार्टीज एक्ट 1964 एंड असम विलेज डिफेंस ऑर्गेनाइजेशन एक्ट 1956 सामुदायिक पुलिसिंग के लिए कुछ भारतीय कानून हैं। सोली सोराबजी कमेटी द्वारा तैयार किए गए मॉडल पुलिस एक्ट 2006 के धारा 85 सभी पुलिस स्टेशनों में कम्यूनिटी लायजन ग्रुप मुहैया कराने के लिए कहता है और पुलिस एक्ट 1861 के स्थान पर कुछ राज्यों द्वारा तैयार किए नए पुलिस एक्ट में भी इसे सम्मिलित किया गया है।

अनुभव बताता है कि सामुदायिक पुलिसिंग के लिए मात्र कानून का होना यह सुनिश्चित नहीं करेगा कि पुलिस बल सामुदायिक पुलिसिंग को कार्यान्वित करेगा। कानून होने के बावजूद उन सभी प्रथाओं को छोड़ना संभव नहीं है, जिनकी किसी विशेष राज्य में जरूरत है या साध्य है। जिसकी अधिक आवश्यकता है, वह है ऊपर से नीचे तक के पुलिसकर्मियों का विश्वास, लेकिन सामुदायिक पुलिसिंग के दर्शन (सिद्धांत) में विशेषकर नेतृत्व के स्तर पर और अगर ऐसा है, तो सामुदायिक पुलिसिंग प्रोग्राम्स सफलतापूर्वक क्रियान्वित किया जा सकता है। बिना किसी कानून के भी जैसा कि अनेकों राज्य पुलिस बल या व्यक्तिगत पुलिस अधिकारी देश के कोने-कोने में आज कर रहे हैं।

8.9 सामुदायिक पुलिसिंग का भविष्य

सामुदायिक पुलिसिंग के दर्शन में भारत में सामुदायिक पुलिसिंग पहल को क्रियान्वयन में मुख्य बाधा है। संपूर्ण भारतीय पुलिस में दृढ़ विश्वास की कमी। भारत में अनेकों बार सामुदायिक पुलिसिंग के दृढ़ विचारधारा वाले अधिकारियों को सोशल वर्कर्स के रूप में अपमानपूर्वक संदर्भित किया जाता है, ऐसा करने वाले हम लोग अकेले नहीं हैं, यहाँ तक कि यू.एस. में अधिकारियों को लॉलीपॉप्स या ग्रिन एंड वेव स्क्वाड कहकर खिल्ली उड़ाई जाती है।

सामुदायिक पुलिसिंग में अधिकांश पहल अग्रसक्रिय पुलिस अधिकारियों के व्यक्तिगत पहल हैं, विशेष रूप से डिस्ट्रिक्ट सुपरिटेंडेंट ऑफ पुलिस। दुर्भाग्यवश प्रोग्राम को आरंभ करने वाले अधिकारी के स्थानांतरण के बाद अनेकों प्रोग्राम बीच में ही रुक गए। भाग्यवश कुछ अग्रसक्रिय वरिष्ठों ने इस सफल प्रोग्राम को ध्यान में रखा है और अपने पूरे राज्य में क्रियान्वयन के लिए अपनाया है, जिससे ये प्रोग्राम संस्थापित हो रहे हैं और आगे बढ़ रहे हैं। यदि किसी प्रोग्राम को भविष्य में बिना किसी बाधा के सफल होना है, तो इसे प्रतिभावान अधिकारियों के व्यक्तिगत पहल की अपेक्षा राज्य पुलिस विभाग के सभी प्रमुख स्तरों पर मतैक्य विकसित करने के बाद संस्थागत क्रियान्वित पहल होना होगा।

हाल के वर्षो में भारत सरकार ने सामुदायिक पुलिसिंग के प्रति अपनी मजबूत वचनबद्धता, बार-बार दोहरायी है। आंतरिक सुरक्षा के संबंध में केंद्र द्वारा आयोजित प्राय: सभी मीटिंग्स में केंद्रीय गृहमंत्री एव प्रधान मंत्री में सामुदायिक पुलिसिंग प्रोग्राम्स लागू करने के लिए राज्यों को प्रोत्साहित करते रहे हैं। वर्ष 2005 में भारत सरकार ने छह माइक्रो मिशन डे के साथ जो पुलिसिंग के मुख्य पहलुओं के बारे में कार्य कर रहे हैं, नेशनल पुलिसिंग मिशन को लाग किया। माइक्रो मिशन 2 सामुदायिक पुलिसिंग के साथ कार्यरत है। सरकार को इसने अनेकों रिपोर्ट प्रस्तुत की है। इनमें से कुछ स्वीकृत किए गए हैं जबकि अन्य जांच चला रही हैं। द नेशनल पुलिस एकेडमी, हैदराबाद और देश के कुछ अन्य पुलिस ट्रेनिंग संस्थान पुलिसकर्मियों में सामुदायिक पुलिसिंग के दर्शन में विश्वास जगाने का प्रयत्न कर रहे हैं और इस संबंध में अच्छे कार्यो के बारे में बताते हैं। अत: यह उम्मीद कर सकते हैं कि धीरे-धीरे भारत में सामुदायिक पुलिसिंग का परिचालन आगे चलकर गतिशीलता प्राप्त कर लेगा। वर्तमान में भारतीय पुलिस और समुदाय जिसकी यह सेवा करती है के बीच एक गहरी खाई है। सामुदायिक पुलिसिंग इस अंतर को पाटने का सबसे अच्छा साधन है। इसके साथ ही पुलिस कर्मियों की प्रवृत्ति और संयत प्रवीणता को उचित प्रशिक्षण के माध्यम से विकसित करने की आवश्यकता भी है।

8.10 सारांश

सामुदायिक पुलिस व्यवस्था की संकल्पना नवीन है तथा यह दर्शन-शास्त्र एवं संस्थागत कार्यनीति का मिश्रण है। यह एक सहजीवी व्यवस्था है, जिसमें पुलिस के अधिकारी और नागरिक

अपराध, सुरक्षा, अव्यवस्था एवं तनाव से सम्बन्धित समकालीन सामुदायिक समस्याओं को हल करने के लिए रचनात्मक तरीके से मिल कर काम करते हैं।

सामुदायिक पुलिस के मूल तत्वों में नागरिक सहयोग, समुदाय की भागीदारी, समुदाय को अधिकार, पुलिस अधिकारों में विस्तार, विकेन्द्रित निर्णय एवं बेहतर सेवाएँ प्रदान करना सम्मिलित हैं।

सामुदायिक पुलिसिंग एवं पारम्परिक पुलिसिंग एक-दूसरे से कई अर्थों में भिन्न हैं यद्यपि सामुदायिक पुलिसिंग पारम्परिक पुलिसिंग का अनिवार्य पूरक है, विकल्प नहीं।

विदेशों एवं भारत में सामुदायिक पुलिसिंग कार्यरत है। फिर भी सामुदायिक पुलिसिंग को अनिवार्य करनेके लिए कानून की जरूरत है। वर्तमान में भारतीय पुलिस एवं समुदाय के बीच एक गहरी खाई है तथा सामुदायिक पुलिसिंग इस अंतर को पाटने का सबसे उत्तम साधन है। सामुदायिक पुलिसिंग का भविष्य अनन्त सम्भावनाएँ समेटे हैं।

8.11 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सामुदायिक पुलिस व्यवस्था से आप क्या समझते हैं? विस्तारपूर्वक समझाइये।
2. सामुदायिक पुलिस व्यवस्था के मूल तत्व एवं इसके लाभों पर प्रकाश डालिए।
3. सामुदायिक एवं पारम्परिक पुलिसिंग में भेद बतलाइये।
4. सामुदायिक पुलिसिंग की कार्यप्रणाली पर एक लेख कीजिए।
5. सामुदायिक पुलिसिंग के भविष्य की सम्भावनाओं पर टिप्पणी लिखिए।

इकाई - 9

मानव अधिकार

इकाई संरचना

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 अर्थ व परिभाषा

9.3 मानव अधिकारों की पृष्ठभूमि

9.4 मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा

9.4.1 प्रस्तावना

9.4.2 अनुच्छेद मानव अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिज्ञा पत्र

9.6 नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों का प्रतिज्ञा पत्र

9.7 सार्वदेशिक घोषणा का महत्व

9.8 घोषणा की दुर्बलता

9.9 घोषणा की उपयोगिता

9.10 घोषणा का प्रभाव

9.11 मानवाधिकार आयोग

9.11.1 संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार उच्चायुक्त

9.11.2 मानवाधिकार केन्द्र

9.12 राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग

9.13 नागरिक स्वतन्त्रताएँ एवं मानवाधिकार

9.14 सारांश

9.15 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- मानव अधिकार के अर्थ एवं इनकी पृष्ठभूमि से परिचित हो सकेंगे।
- मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की विषय वस्तु के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- मानव अधिकारों से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय व राजनीतिक अधिकारों के प्रतिज्ञा पत्रों से अवगत हो सकेंगे।
- सार्वभौमिक घोषणा के महत्व, मर्यादाओं व उपयोगिता का विवेचन कर सकेंगे।
- राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के गठन, कार्य, शक्तियों आदि से अवगत हो सकेंगे।
- इन घोषणाओं का विश्व पर क्या प्रभाव पड़ा है उसका अवलोकन कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

जब से एक व्यक्ति ने अपने आपको एक मनुष्य या एक ऐसा प्राणी माना जो दूसरे जानवरों से अलग था अर्थात् एक सामाजिक प्राणी समझा तभी से वह अपने निजी व्यक्तित्व तथा उसके विकास के लिए आवश्यक कुछ मांगों के प्रति जागरूक होना आरम्भ हो गया। कुछ समय बाद इन मांगों को व्यक्ति के अधिकारों के रूप में स्वीकृति प्राप्त हुई तथा मनुष्य के प्राकृतिक अधिकारों की प्राप्ति का

विचार एक आदर्श लक्ष्य बन गया। अमरीकी स्वतन्त्रता की घोषणा तथा नागरिकों और मनुष्यों के अधिकारों की फ्रांसिसी घोषणा में मनुष्य के अधिकारों के प्रति प्यार और इच्छा का पूर्ण प्रमाण मिला। इसके पश्चात् उदारवादी लोकतान्त्रिक संविधानों में सदैव ही लोगों के अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं के मौलिक अधिकारों को लोगों को प्रदान करने तथा उनकी गारंटी देने की प्राथमिकता दी जाने लगी। 20वीं शताब्दी में सबके लिए मानव अधिकारों की प्राप्ति को सभ्य जीवन के महान् उद्देश्य के रूप में मान्यता प्राप्त हुई। सभी व्यक्तियों के मानव अधिकारों के प्रति सम्मान तथा सुरक्षा के उद्देश्य को संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में स्थान दिया गया तथा इसमें इनकी प्राप्ति को मानव समुदाय का एक साझा और महान् उद्देश्य माना गया। संयुक्त राष्ट्र के घोषणा पत्र में मानव अधिकारों को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्रदान की गयी है। संयुक्त राष्ट्र का एक उद्देश्य है, "जाति, लिंग, भाषा अथवा धर्म के आधार पर बिना भेदभाव किए समस्त लोगों के लिए मानव अधिकारों एवं मूलभूत स्वतन्त्रताओं के प्रति सम्मान को बढ़ावा देने तथा उन्नत करने में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना। " प्रस्तुत अध्याय में हम मानव अधिकारों की धारणा के शुद्ध अर्थ को व्यापक रूप से समझते हुए इसके अन्य पक्षों पर प्रकाश डालेंगे।

9.2 अर्थ एवं परिभाषा

साधारण रूप में अधिकारों को व्यक्ति के ऐसे क्लेम्स कहा जाता है जो समाज द्वारा स्वीकृत हो तथा राज्य द्वारा लागू किए जा रहे है। यह अधिकार व्यक्ति के लिए इतने महत्वपूर्ण माने जाते है कि इनकी अनुपस्थिति में कोई भी व्यक्ति अपने श्रेष्ठ स्वरूप को प्राप्त नहीं कर सकता। प्रसिद्ध फ्रांसिसी दार्शनिक तथा लेखक रूसो ने आज से लगभग 200 वर्ष पूर्व लिखा था, "मनुष्य स्वतंत्र पैदा हुआ है पर हर जगह वह जंजीरों से जकड़ा हुआ है"रूसो ने शोषण व असमानता के बन्धनों में जकड़े हुए जन साधारण के स्वतंत्र होने की और स्वाधीनता, आजादी तथा समानता का बेहतर जीवन प्राप्त करने की आकांक्षा को व्यक्त किया था। अधिकार सामाजिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ है, जिनके बिना न व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और न ही समाज के लिए उपयोगी कार्य कर सकता है। अधिकारों के बिना मानव जीवन के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। राज्य का सर्वोत्तम लक्ष्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास है। राज्य के द्वारा व्यक्ति को कतिपय सुविधाएँ प्रदान की जाती है और इन बाहरी सुविधाओं का नाम ही अधिकार है। परन्तु मानव अधिकारों की धारणा अधिकार की धारणा से एक अधिक व्यापक धारणा है।

रैण्डम हाऊस एनसाइक्लोपीडिया के अनुसार, "मानव अधिकारों का अर्थ है- एक मनुष्य होने के नाते ही एक व्यक्ति के शक्तियों अस्तित्व की शर्तों एवं प्राप्तियों के दावे होते है। ये वह अधिकार होते है, जो मनुष्यकी प्रकृति में निहित होते है तथा जो उस के मनुष्य जीवन को जीने के लिए नितांत आवश्यक है। यह व्यक्ति की योग्यताओं के पूर्ण विकास के साथ-साथ मानवीय योग्यताओं, वृद्धि तथा चेतना के प्रयोग द्वारा अपने हितों और आवश्यकताओं को पूर्ण करने की आवश्यक शर्त है।"

मानव अधिकारों का अस्तित्व किसी विशेष समाज की विशेष परिस्थितियों तथा स्वीकृति पर निर्भर न होकर एक चेतना युक्त, आत्म सम्मान वाले मानव व्यक्ति की प्रकृति में ही निहित होती है। यह विश्व के लोगों द्वारा सुखद तथा समृद्ध जीवन जीने के लिए प्राकृतिक तथा आवश्यक परिस्थितियाँ है।

9.3 मानव अधिकारों की पृष्ठभूमि

अमेरिकी स्वतन्त्रता की घोषणा तथा नागरिकों एवं मनुष्यों के अधिकारों की फ्रांसिसी घोषणा में मनुष्य के अधिकारों के प्रति प्यार तथा इच्छा का पूर्ण प्रमाण मिला। इसके बाद उदारवादी लोकतान्त्रिक

संविधानों में सदैव ही लोगों के अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं के मौलिक अधिकारों को गारंटी देने की प्राथमिकता दी जाने लगी है।

संयुक्त राष्ट्र के घोषणापत्र में मानव अधिकारों की व्यवस्था कोई नई नहीं है। वह सदियों के विकास का परिणाम है। मानव को अपने अधिकारों के लिए लम्बा संघर्ष करना पड़ा है तथा आज भी संसार के कई देशों में यह संघर्ष चल रहा है। संयुक्त राष्ट्र की स्थापना से पूर्व ही अनेक महत्वपूर्ण घोषणाओं में मानव अधिकारों को मान्यता प्रदान की जा चुकी थी। 1215 का मैग्नाकार्टा, 1679 का बन्दी प्रत्यक्षीकरण अधिनियम 1689 का बिल ऑफ राइट्स, 1776 की अमरीकी स्वतन्त्रता की घोषणा तथा 1789 की मानव अधिकारों की फ्रांसिसी घोषणा को मानव अधिकारों की मान्यता के महत्वपूर्ण आधारस्तम्भ कहा जा सकता है। बर्लिन कांग्रेस ब्रुसेल्स सम्मेलन तथा दोनों हेग शान्ति सम्मेलनों से मानव के व्यक्तित्व को मान्यता प्रदान करने के अनेक प्रयास किए गए। मानव अधिकारों की सुरक्षा के लिए 19वीं सदी में अफ्रीकी दासों को खरीदने बेचने की कड़ी आलोचना की गयी। पश्चिमी एशिया में अल्पसंख्यकों के नर-संहार के विरूद्ध पश्चिमी राष्ट्रों ने आवश्यक कार्यवाही की। महात्मा गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में रंग भेद की नीति के विरूद्ध आन्दोलन चलाया तथा उनका यह आन्दोलन वास्तव में मानव अधिकारों की रक्षा के लिए था।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान मित्र राष्ट्रों के अध्यक्षों ने अनेक सम्मेलनों में तथा घोषणाओं में मानव अधिकारों को महत्व दिया। अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने 1941 में एक घोषणा की, जिसमें उन्होंने चार स्वतन्त्रताओं का वर्णन किया। ये स्वतंत्रताएँ है- (1) भाषण तथा विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता, (2) धार्मिक स्वतन्त्रता, (3) भय से मुक्ति तथा (4) अभाव से मुक्ति। एटलांटिक चार्टर 1941,1942 के वाशिंगटन सम्मेलन में, 1943 के मास्को सम्मेलन में तथा 1944 के डम्बार्टन ओक्स प्रस्ताव में मानव अधिकारों पर बल दिया गया।

द्वितीय विश्व युद्ध के समाप्त होने पर संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के लिए सेन फ्रांसिस्को में मित्र राष्ट्रों ने 1945 में एक व्यापक सम्मेलन बुलाया। सम्मेलन में भाग लेने वाले अनेक प्रतिनिधियों ने चार्टर में ही मानव अधिकारों को सम्मिलित करने की मांग की। इन अधिकारों के समर्थन में जनरल स्मट्स ने कहा कि, "मैं यह सुझाव दूँगा की घोषणा पत्र के प्रारम्भ में और उसकी प्रस्तावना में मानव अधिकारों की घोषणा रखनी चाहिए। इस घोषणा पत्र में उस सामान्य विश्वास को भी व्यक्त करना चाहिए, जिसके द्वारा मित्र राष्ट्रों ने उन अधिकारों के लिए एक महान् किन्तु दीर्घ संघर्ष किया है।"

20वीं शताब्दी में अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय इस विचार को अपनाने के लिए आगे आया कि मानव अधिकार तथा स्वतन्त्रताएँ सब में ध्यान का साझा विषय है तथा यह अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का उत्तरदायित्व है कि वह ऐसे कदम उठाए जिससे सब में मानव अधिकारों के प्रति चेतना विकसित हो तथा इनकी सुरक्षा व विकास मानवता का साझा उद्देश्य तथा ध्यान का केन्द्र बन जाए। इस दिशा में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कदम तब उठाया गया जब 10 दिसम्बर 1948 को मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को अपनाया गया।

9.4 मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा

विश्व के सभी मानवों को समान अधिकार दिलाने के लिए संयुक्त राष्ट्र की सामाजिक एवं आर्थिक परिषद् ने अनुच्छेद 68 के अन्तर्गत मानव अधिकार आयोग की स्थापना की। श्रीमती इलेनोर रूजवेल्ट इस आयोग की अध्यक्ष थी। इस आयोग को सर्वप्रथम अधिकारों का एक अन्तर्राष्ट्रीय लेख तैयार करने को कहा गया। मानव अधिकार आयोग ने लगभग तीन वर्षो के परिश्रम के पश्चात् मानव अधिकारों का लेख तैयार किया, जिसे महासभा की सामाजिक समिति ने 7 दिसम्बर 1948 को स्वीकार

कर लिया। महासभा ने 10 दिसम्बर 1948 को मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा को स्वीकार कर संयुक्त राष्ट्र द्वारा 10 दिसम्बर 1948 को मानव अधिकारों की घोषणा की गयी। 10 दिसम्बर को संसार भर में मानव अधिकार दिवस मनाया जाता है। मानव अधिकार आयोग अब भी आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् की सहायक संस्था के रूप में कार्य करता है तथा इन अधिकारों को सभी देशों में लाग करने में प्रयासरत है।

मानव अधिकारों की घोषणा में एक प्रस्तावना तथा 30 अनुच्छेद है। प्रस्तावना में मानव प्राणी की गरिमा तथा मूल्य पर अधिक जोर दिया गया है। घोषणा पत्र में नागरिक और राजनीतिक अधिकारों के साथ ही आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार भी सम्मिलित किये गये है।

अधिकारों की सर्वव्यापी घोषणा की विशेषताएँ -

1. **कानूनी दस्तावेज नहीं :-** मानवीय अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा कोई कानूनी दस्तावेज नहीं है।
2. **व्यापक और विस्तृत प्रलेख :-** मानव अधिकारों की घोषणा एक व्यापक तथा विस्तृत प्रलेख है। इस घोषणा में व्यक्ति के सभी प्रकार के अधिकारों का वर्णन किया गया है। इसमें व्यक्ति के नागरिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक अधिकार सम्मिलित है।
3. **अधिकार सभी व्यक्तियों के लिए :-** मानव अधिकारों की घोषणा में दिए गए अधिकार विश्व के समस्त लोगों के लिए है। इस घोषणा में इस बात पर बल दिया गया है कि सभी देश इन अधिकारों को अपने सभी नागरिकों को देने में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करेंगे। जाति, धर्म, भाषा, रंग, लिंग आदि के भेदभाव के बिना ये अधिकार सभी को देने का आश्वासन दिया गया है।
4. **अधिकारों के साथ कर्त्तव्य :-** घोषणा में न केवल अधिकारों बल्कि व्यक्ति के कर्त्तव्यों का भी वर्णन किया गया है।
5. **अधिकार असीमित नहीं :-** मानव अधिकारों की घोषणा में वर्णित अधिकार असीमित नहीं है। घोषणा अधिकारों पर उचित सीमाओं को स्वीकार करती है। अधिकारों पर नैतिकता, सार्वजनिक व्यवस्था, सामान्य कल्याण आदि के प्रतिबन्ध लगे रहते है।

   मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में एक प्रस्तावना तथा 30 अनुच्छेद है, जिनमें नागरिक,राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों का वर्णन है।

9.4.1 प्रस्तावना

विश्व में स्वतन्त्रता, न्याय तथा शान्ति का आधार है। वर्तमान में मानव परिवार के सभी सदस्यों के लिए समान तथा अभिन्न अधिकारों तथा निहित सम्मान की स्वीकृति के विषय को प्राथमिकता प्रदान की है। संयुक्त राष्ट्र चार्टर में भी मौलिक मानव अधिकारों,मनुष्य के सम्मान, मूल्यों,तथा स्त्रियों तथा पुरूषों के एक समान अधिकारों में विश्वास प्रकट किया है और यह निश्चय किया है कि अधिक स्वतन्त्रता में सामाजिक प्रगति तथा जीवन के उच्चतर स्तरों को विकसित किया जाए। सदस्यों ने यह प्रतिज्ञा ली है कि वे संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ पूर्ण सहयोग करते हुए मानवअधिकारों के प्रति सार्वभौमिक सम्मान बढ़ाने तथा इसकी पालना के लिए कार्य करेंगे। इनकी प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि इन मानव अधिकारों की स्वतन्त्रता के. प्रति एक साझी समझ विकसित की जाए।

इसी कारण अब महासभा मानव अधिकारों को सार्वभौमिक घोषणा के लिए प्राप्त किए जाने के सम्बन्ध में एक साझे मानदण्ड के रूप में घोषित करती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सभी राष्ट्रों, व्यक्तियों एवं समाजों से, इस घोषणा को सामने रखते हुए, शिक्षा के माध्यम से इन मानव अधिकारों के प्रति सम्मान प्राप्त करें तथा राष्ट्रीय तथा प्रांतीय स्तर पर सभी सदस्य राज्य के लोगों के लिए

तथा अन्य सभी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के लिए प्रगतिशील कदम उठाकर इनके प्रति प्रभावी स्वीकृति तथा पालन को प्राप्त करने का प्रयास करें।

9.4.2 अनुच्छेद

इन मौलिक अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में जिन अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं को शामिल किया गया है, उसका विवरण निम्नलिखित हैं -

अनुच्छेद- 1 :- सभी मनुष्य अधिकार एवं सम्मान के सम्बन्ध में स्वतन्त्र तथा समान उत्पन्न होते है। उनको चेतना तथा बुद्धि प्राप्त है तथा उन्हें एक-दूसरे के साथ भ्रातृत्व की भावना में कार्य करना चाहिए।

अनुच्छेद-2 :- इस घोषणा में सम्मिलित सभी अधिकार तथा स्वतन्त्रताएँ प्रत्येक व्यक्ति का, बिना किसी नस्ल, लिंग, रंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक या अन्य विचार, राष्ट्रीय या सामाजिक उत्पत्ति, सम्पत्ति, अन्य या दूसरे दर्जे के भेदभाव के प्राप्त होने चाहिए।

अनुच्छेद-3 :- प्रत्येक व्यक्ति को जीवन, स्वतन्त्रता तथा अपने व्यक्तित्व का अधिकार है।

अनुच्छेद-4 :- किसी को भी दासता या बन्धन में नहीं रखा जाएगा, सभी स्वरूपों में दासता तथा दास व्यापार का निषेध होगा।

अनुच्छेद-5 :- किसी को भी यातना या क्रूर मानवता विरोधी, नीचा दिखाने वाला व्यवहार या दण्ड नहीं दिया जाएगा।

अनुच्छेद-6 :- प्रत्येक व्यक्ति को कानून के सामने तथा सभी जगह एक व्यक्ति के रूप में मान्यता प्राप्त होगी।

अनुच्छेद-7 :- सभी कानून के सम्मुख समान है तथा सभी को बिना किसी भेदभाव के कानून के सामने एक समान सुरक्षा उपलब्ध होगी। सभी को किसी भी प्रकार के शोषण के विरूद्ध सुरक्षा प्राप्त होगी।

अनुच्छेद-8 :- संविधान या कानून के अधीन प्राप्त मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में प्रत्येक को योग्य न्यायालयों की शरण / सुरक्षा प्राप्त होगी। अपने अधिकारों की उल्लंघन के विरूद्ध वह न्याय प्राप्ति के अधिकारी होगे।

अनुच्छेद-9:- किसी को भी निरंकुश रूप से बन्दी नहीं बनाया जाएगा, हिरासत में नहीं लिया जाएगा तथा देश निकाला नहीं दिया जाएगा।

अनुच्छेद- 10 :- प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों और कर्तव्यों के निर्धारण तथा अपने विरूद्ध आपराधिक दोष के मामले में एक तटस्थ तथा स्वतन्त्र न्यायालय के सामने सम्मान तथा उचित सार्वजनिक सुनवाई का अधिकार होगा।

अनुच्छेद- 11 :- प्रत्येक ऐसे व्यक्ति, जिस पर कोई आपराधिक दण्डनीय दोष लगा हो, उसे तब तक निर्दोष समझा जाएगा, जब तक कानून और सार्वजनिक मुकदमें में उसका अपराध सिद्ध नहीं हो जाता। ऐसे मुकदमें के समय उसे अपने बचाव की पूरी सुविधा प्राप्त होगी।

अनुच्छेद - 12 :- किसी के निजी जीवन, परिवार, घर, पत्र-व्यवहार में निरंकुश हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा, न ही उसके सम्मान तथा सम्मान की स्थिति के विरूद्ध आक्रामक कार्यवाही की जाएगी, इन सब के लिए उसे कानून की सुरक्षा का अधिकार प्राप्त होगा।

अनुच्छेद-13 :- अपने राज्य की सीमा के अन्दर रहने तथा घूमने फिरने की स्वतन्त्रता का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त होगा। किसी को भी किसी देश को या अपने देश को भी छोड़ने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद-14 :- प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जान बचाने के लिए दूसरे देश में शरण प्राप्त करने का अधिकार होगा, लेकिन यह शरण उनको प्राप्त करने का अधिकार नहीं होगा, जिन्हें गैर-राजनीतिक अपराधी या फिर संयुक्त राष्ट्र के सिद्धान्तों एवं उद्देश्यों के विरूद्ध लिए गए अपराधों के सन्दर्भ में बन्दी बनाने की आवश्यकता होगी।

अनुच्छेद- 15 :- प्रत्येक व्यक्ति को एक राष्ट्रीयता (नागरिकता) प्राप्ति का अधिकार है। न ही किसी को निरंकुश रूप में उसकी राष्ट्रीयता से वंचित किया जाएगा और न ही उसे अपनी राष्ट्रीयता को बदलने के लिए मजबूर किया जाएगा।

अनुच्छेद- 16:- निश्चित आयु की स्त्रियों एवं पुरूषों को बिना किसी नस्ल, राष्ट्रीयता या धर्म की सीमा के विवाह तथा परिवार बनाने का अधिकार प्राप्त होगा। परिवार समाज की एक प्राकृतिक तथा मौलिक समूह इकाई है, जिसे समाज तथा राज्य से सुरक्षा प्राप्ति की योग्यता प्राप्त है।

अनुच्छेद- 17 :- प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आय में या दूसरों के साथ मिल कर सम्पति का स्वामी बनने का अधिकार है। किसी को भी निरंकुश रूप में उसकी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद- 18 :- प्रत्येक व्यक्ति को विचारों, चेतना तथा धर्म की स्वतन्त्रता का अधिकार है। इस में धर्म या विश्वास परिवर्तन करने का अधिकार है। ऐसा कोई व्यक्ति स्वयं अकेले या दूसरों के साथ मिलकर सार्वजनिक अथवा निजी रूप में कर सकता है। प्रत्येक अपने धर्म का पालन, पूजा-पाठ कर सकता है तथा उसका प्रचार कर सकता है।

अनुच्छेद- 19 :- प्रत्येक को विचार रखने और उन्हें प्रकट करने का अधिकार है। ऐसा वह बिना किसी हस्तक्षेप के कर सकता है। वह जन-प्रसार साधनों के माध्यम से कोई भी सूचना प्राप्त कर सकता है तथा प्रकट भी कर सकता है।

अनुच्छेद-20 :- प्रत्येक व्यक्ति को शान्तिपूर्ण रूप से इकट्ठे होने तथा संस्थाएँ बनाने का अधिकार है। किसी को किसी संस्था का सदस्य बनने के लिए विवश नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद-21 :- प्रत्येक को अपने देश की सरकार में, प्रत्यक्ष रूप में या फिर अपने द्वारा स्वतन्त्रतापूर्वक निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से, भाग लेने का अधिकार है। सभी को अपने देश में सार्वजनिक सेवा में पहुंच का समान अधिकार है।

अनुच्छेद-22 :- समाज का सदस्य होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है। वह अपने सम्मान तथा स्वतन्त्र विकास के लिए आवश्यक आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों की प्राप्ति अपने राष्ट्रीय प्रयासों तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा प्रत्येक राज्य के संगठन व संसाधनों के अनुसार कर सकता है।

अनुच्छेद-23 :- प्रत्येक को काम का अधिकार प्राप्त है, वह अपना व्यवसाय अथवा नौकरी स्वतन्त्रतापूर्वक चुन सकता है, वह अपने काम के सम्बन्ध में अच्छी परिस्थिति प्राप्त करने का अधिकारी है तथाउसे बेरोजगारी के विरूद्ध सुरक्षा प्राप्ति का अधिकार है। बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक को समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार है। प्रत्येक अपने हितों की सुरक्षा के लिए व्यापार संघ बना सकता है या उनमें शामिल हो सकता है।

अनुच्छेद : 24 :- प्रत्येक व्यक्ति को आराम करने तथा आनन्द प्राप्ति का अधिकार है, इसमें काम के घण्टे तथा वेतन सहित अवकाश प्राप्त करने की व्यवस्था निहित है।

अनुच्छेद-25 :- अपने तथा अपने परिवार के स्वास्थ्य के लिए प्रत्येक व्यक्ति को जीवन के एक उचित मानदण्ड की प्राप्ति का अधिकार है।

अनुच्छेद-26 :- प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार है। शिक्षा उस दिशा की ओर निर्देशित होगी, जिससे मानव व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो सके, मानव अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं के प्रति सम्मान हो सके, सभी राष्ट्रों, नस्ली या धार्मिक समूहों में मित्रता हो सके तथा शान्ति के रख रखाव में संयुक्त राष्ट्र की गतिविधियों को आगे ले जाया सके।

अनुच्छेद-27 :- समुदाय की सांस्कृतिक जीवन कला तथा वैज्ञानिक प्रगति की क्रिया में स्वतन्त्रतापूर्वक भागीदारी का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त है। प्रत्येक को अपने द्वारा किए जाने वाले किसी वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक उद्यम का लाभ प्राप्त करने का अधिकार है।

अनुच्छेद-28:- प्रत्येक व्यक्ति को एक ऐसी सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में शामिल होने का अधिकार है, जिसमें इस घोषणा में दर्ज अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं को प्राप्त किया जा सकता है।

अनुच्छेद-29 :- प्रत्येक व्यक्ति के अपने समुदाय जिसमें ही उसके व्यक्तित्व का विकास हो सकता है, उसके प्रति कर्तव्य भी है। उसके अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं के सम्बन्ध में केवल वही प्रतिबन्ध या सीमाएं लागू हो सकती है जो कि उसके कानून तथा समाज द्वारा उसके अधिकारों एवं स्वतन्त्रताओं की सुरक्षा एवं मान्यता के लिए आवश्यक है।

अनुच्छेद-30:- इस घोषणा के किसी भी भाग की व्याख्या तथा विश्लेषण किसी भी राज्य, समूह या व्यक्ति के लिए इस प्रकार नहीं की जा सकती, जिससे वह कोई ऐसी कार्यवाही करने लगे जो कि इन अधिकारों तथा स्वतन्त्राओं को सीमित अथवा नष्ट करने की दिशा में हो।

मानव अधिकारों की इस सार्वभौमिक घोषणा को अपनाते समय यह स्पष्ट किया गया कि यह घोषणा किसी भी तरह से किसी भी राज्य के घरेलू अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करेगी। यह तो समस्त मानवता की साझी चेतना का सामूहिक रूप में प्रतिनिधित्व करती है। सभी के मानव अधिकारों की सुरक्षा और इस का सम्मान बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रों के परिवार के प्रत्येक राज्य को यह अधिकार प्राप्त हो कि वह पृथ्वी के किसी भाग के सम्बन्ध में मानव अधिकारों के स्तर पर चर्चा कर सके। इसी कारण मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा ने राष्ट्रों को बहुत प्रभावित किया है। परन्तु मौलिक स्वरूप में इस घोषणा का आधार नैतिक ही है, कानूनी नही। यह भविष्य के अच्छे व्यवहार के प्रति मानवता की साझी इच्छा और साझे ध्यान की प्रतिनिधि है।

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में शामिल अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं को कानूनी आधार देने के लिए बाद में कई विशेषतया दो, अन्तर्राष्ट्रीय समझौते किए गए। यह दो प्रमुख समझौते है आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों पर समझौता तथा नागरिक और राजनीति अधिकारों पर समझौता, जो कि संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 1966 में स्वीकार किए हो तथा जो 1976 से लागू हुए।

इस घोषणा-पत्र को 'मानवतावाद की दमकल' कहा गया है। चार्ल्स मलिक के अनुसार," यहघोषणा-पत्र केवल प्रस्ताव मात्र न होकर संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर का अंग है।"श्रीमति रूजवेल्ट ने इस घोषणा-पत्र को समस्त मानव समाज के मेग्नाकार्टा का नाम दिया। पामर एवं पार्किन्स के अनुसार,

"यह घोषणा केवल आदर्शो का प्रतिपादन है, कानूनी रूप से बाध्य करने वाला कोई समझौता नहीं है, परन्तु यह एक महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय दस्तावेज है।"

9.5 मानव अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिज्ञापत्र

संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के समय से ही मानव अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिज्ञापत्र के लिए कार्य प्रारम्भ हो गया था। इसी उद्देश्य से महासभा ने मानव अधिकार आयोग को दो प्रतिज्ञा-पत्र तैयार करने का कार्य सौंपा-एक, नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों के सम्बन्ध में तथा दूसरा आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों के सम्बन्ध में। इन प्रतिज्ञा पत्रों का आशय मानव अधिकारों की ओर अधिक स्पष्ट व्याख्या करना तथा उनके पालन करवाने की व्यवस्था करना था। इन प्रसंविदाओं का उद्देश्य यह था कि महासभा की स्वीकृति के पश्चात् इन्हें सदस्य राज्यों के सम्मुख सन्धि पत्र के रूप में पेश किया जाना था तथा जो राज्य इस पर हस्ताक्षर करेंगे उन पर ये बाध्यकारी रूप से लागू होंगे। हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्रों को अपने-अपने देश में आवश्यक कानून बनाने तथा उन्हें लाग करने की व्यवस्था करनी होगी। 16 दिसम्बर 1966 को अपने प्रस्ताव के द्वारा महासभा ने मानव अधिकार सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिज्ञापत्रों को राज्यों के हस्ताक्षर तथा पुष्टि के लिए प्रस्तुत किया जिसमें अनेक मानव अधिकारों तथा मूल स्वतन्त्रताओं की अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा की व्यवस्था की गयी है। इन अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिज्ञापत्रों में दो प्रसंविदाएं तथा एक ऐच्छिक प्रोटोकॉल है, जो इस प्रकार है -

(i) नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा
(ii) आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिज्ञापत्र
(iii) राजनीतिक अधिकारों सम्बन्धी प्रसंविदा की वैकल्पिक व्यवस्था।

16 दिसम्बर, 1966 को महासभा ने सर्वसम्मति से इन प्रतिज्ञापत्रों को अपनाया। 23 मार्च, 1976 को 'नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिज्ञापत्र, 1966 को लागू किया गया। मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा, उपर्युक्त दोनों प्रतिज्ञापत्र तथा ऐच्छिक प्रोटोकॉल मिलकर 'मानव अधिकारों का अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिज्ञापत्र' कहलाते है।

आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों सम्बन्धी प्रतिज्ञा पत्र द्वारा जिन मानवाधिकारों को प्रोत्साहित एवं संरक्षित किया गया है वे तीन प्रकार के है -

- न्यायपूर्ण तथा उचित परिस्थितियों में काम का अधिकार
- सामाजिक संरक्षण, उचित जीवन स्तर और शारीरिक एवं मानसिक सुख के लिए उपलब्ध किए जा सकने वाले उच्चतम स्तरों का अधिकार
- शिक्षा तथा सांस्कृतिक स्वतन्त्रता एवं वैज्ञानिक प्रगति से मिले लाभों का आनन्द लेने का अधिकार

आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय समझौते में जिन अधिकारों स्वतन्त्रताओं को शामिल किया गया, उसका विवरण निम्न है -

अनुच्छेद- 1 :- सभी लोगों को आत्म निर्णय का अधिकार है। इस अधिकार के अधीन वह स्वतन्त्रता से अपना राजनीतिक स्तर निर्धारित करते है तथा स्वतन्त्रतापूर्वक अपने आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास की ओर बढ़ते है।

अनुच्छेद- 2 :- इस समझौते में शामिल राज्य प्रण लेते है कि वह व्यक्तिगत रूप में तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहायता और सहयोग, विशेषकर आर्थिक तथा तकनीकी सहयोग से अपने उपलब्ध संसाधनों

के अधिकतम प्रयोग से इस समझौते द्वारा स्वीकृत सभी अधिकारों की पूर्ण प्राप्ति के लिए सभी उचित साधनों द्वारा सभी कदम, कानून सहित उठाएगा।

अनुच्छेद-3 :- इस समझौते में शामिल राज्य प्रण लेते है कि वह सभी स्त्रियों और पुरूषों को इस समझौते में वर्णित सभी सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों की समान प्राप्ति विश्वसनीय बनाएंगे।

अनुच्छेद-4 :- इस समझौते में शामिल राज्य यह स्वीकार करते है कि इसमें वर्णित अधिकारों को लागू करते समय एक राज्य इस पर केवल वही प्रतिबन्धित सीमाएं लगा सकता है, जो किए कानून द्वारा निर्धारित हो तथा जो इन अधिकारों की प्रकृति के अनुरूप हो तथा जो एक लोकतन्त्रीय समाज में साधारण जन सहायता के उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए आवश्यक हो।

अनुच्छेद-5 :- इस समझौते में शामिल धाराओं की इस तरह व्याख्या नहीं की जाएगी, जिससे कोई राज्य, समूह या व्यक्ति कोई ऐसा अधिकार अपना ले जिसका उद्देश्य इस समझौते में शामिल अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं को सीमित करना या उल्लंघन करना हो।

अनुच्छेद-6 :- इस समझौते में शामिल राज्य काम के अधिकार को स्वीकार करते हैं, जिसमें प्रत्येक का अपनी जीविका अर्जित करने का आधार प्राप्त करने का अधिकर शामिल होता है। अपना काम व्यक्ति स्वतन्त्रता से चुन सकता है। राज्य इस अधिकार की सुरक्षा के लिए आवश्यक कदम उठाएगा।

अनुच्छेद-7 :- इस समझौते में शामिल राज्य प्रत्येक व्यक्ति को काम करने के अधिकार के साथ-साथ काम करने की अच्छी शर्तें और परिस्थितियाँ भोगने का भी अधिकार देता है। काम की समय अवधि निश्चित होगी और सामाजिक एवं सार्वजनिक अवकाशों के लिए वेतन दिया जाना होगा।

अनुच्छेद-8 :- इस समझौते में शामिल राज्य यह प्रण करते है कि प्रत्येक को अपना व्यापार संघ बनाने या फिर किसी व्यापार संगठन का सदस्य बनने का अधिकार होगा। ऐसा वह अपने आर्थिक सामाजिक हितों की सुरक्षा तथा वृद्धि के लिए कर सकता है। इस सम्बन्ध में कोई निरंकुश प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकेगा।

अनुच्छेद-9 :- इस समझौते को करने वाले राज्य प्रत्येक व्यक्ति के सामाजिक सुरक्षा, सामाजिक बीमा सहित के अधिकार को स्वीकार करते है।

अनुच्छेद- 10 :- इस समझौते में शामिल राज्य यह स्वीकार करते है कि परिवार, जो कि समाज की प्राकृतिक और मौलिक समूह इकाई है, को अधिक से अधिक सुरक्षा तथा सहायता दी जानी चाहिए।

अनुच्छेद- 11:- राज्य प्रत्येक जीवन के उच्च स्तर तथा उसके परिवार के लिए रोटी, कपड़े एवं मकान के अधिकार को स्वीकार करते है। व्यक्ति के द्वारा इस अधिकार की प्राप्ति के लिए राज्य आवश्यक तथा उचित कदम उठाएगा तथा इस सम्बन्ध में प्रत्येक राज्य स्वतन्त्र सहमति पर आधारित अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के महत्व को स्वीकार करता है।

अनुच्छेद- 12 :- इस समझौते में शामिल राज्य प्रत्येक व्यक्ति के शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य के सम्भव उच्चतम मानदण्डों की प्राप्ति के अधिकार को स्वीकार करते है।

अनुच्छेद- 13 :- राज्य प्रत्येक व्यक्ति के लिए शिक्षा के अधिकार को स्वीकार करते है। वह सहमत है कि शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास, उसमें सम्मान की भावना भरना तथा उसमें मानव अधिकारों और मौलिक स्वतन्त्रताओं के प्रति सम्मान को पैदा करना है।

अनुच्छेद-14 :- इस समझौते में शामिल प्रत्येक राज्य जिसने अभी तक ऐसा नहीं किया है, दो वर्षो के अन्दर-अन्दर प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य तथा निःशुल्क बनाने के लिए व्यापक कार्य योजना बनाकर इस उद्देश्य की क्रमिक प्राप्ति के लिए प्रयास करके, इसे प्राप्त भी करेगा।

अनुच्छेद- 15:- इस समझौते में शामिल राज्य यह स्वीकार करते है कि प्रत्येक व्यक्ति को (क) सांस्कृतिक जीवन में भाग लेने (ख) वैज्ञानिक प्रगति तथा इस के प्रयोग के लाभ प्राप्त करने (ग) वैज्ञानिक साहित्यिक या कलात्मक उत्पादन से उत्पन्न नैतिक एवं मौलिक हितों की सुरक्षा का अधिकार है।

अनुच्छेद- 16 :- इस समझौते में शामिल राज्य अपने पर यह उत्तरदायित्व लेते है कि इस समझौते, जो कि उन्होंने अपनाया है, में शामिल अधिकारों की पालना के सम्बन्ध में अपने द्वारा उठाए गए कदमों के बारे में रिपोर्ट पेश किया करेंगे।

इस समझौते के 8 अनुच्छेदों (17 से 24 तक) में उन निर्देशों / कदमों का वर्णन किया गया जो कि इसमे दिए गए अधिकारों को लाग करने के सम्बन्ध में आवश्यक समझे गए।

9.6 नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों का प्रतिज्ञा पत्र

नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के अन्तर्गत निम्न अधिकारों को शामिल किया गया :-

अनुच्छेद-1:- सभी लोगों को आत्म निर्णय का अधिकार है। इस अधिकार के अधीन वह स्वतन्त्र रूप में अपने राजनीतिक स्तर को निर्धारित करते है तथा अपने आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास के लिए कार्य करते है।

अनुच्छेद-2:- सभी सदस्य राज्य यह प्रण करते है कि वे अपने भू-क्षेत्रों तथा अपने अधिकार के क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के अधिकारों की प्राप्ति को, बिना किसी नस्ल, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक या दूसरे मत, राष्ट्रीय तथा सामाजिक उत्पत्ति, सम्पत्ति, जनन तथा अन्य भेदभाव के विश्वसनीय बनाएंगे।

अनुच्छेद-3 :- सदस्य राज्य यह प्रण लेते है कि इस समझौते में शामिल नागरिक और राजनीतिक अधिकारों को वे सभी स्त्री पुरूषों के लिए समान रूप में उपभोग के योग्य बनाएंगे।

अनुच्छेद-4 :- सार्वजनिक संकटकाल जो कि राष्ट्र के जीवन तथा अस्तित्व को चुनौती दे रहा हो तथा जिसे सरकारी रूप से घोषित किया गया हो, कि स्थिति में राज्य इस समझौते में शामिल उत्तरदायित्वों पर प्रतिबन्ध लगा सकते है, परन्तु उसी सीमा तक जो कि संकटकाल की स्थिति का सामना करने के लिए नितांत आवश्यक है।

अनुच्छेद-5 :- इस समझौते में शामिल धाराओं को कोई भी राज्य समूह या व्यक्ति इस तरह के कार्य करने के लिए प्रयोग नहीं कर सकता, जिनके द्वारा इन अधिकारों और स्वतन्त्रता को हानि हो अथवा यह नष्ट हो।

अनुच्छेद- 6 :- प्रत्येक मनुष्य को जीवन का अधिकार है। जीवन की कानून द्वारा रक्षा की जाएगी।

अनुच्छेद-7 :- किसी को भी यातना नहीं दी जानी चाहिए और न ही उसके साथ क्रूर मानवता विरोधी तथा नीचता पूर्ण व्यवहार किया जाना चाहिए। विशेष रूप में, किसी को भी उसकी स्वतंत्र सहमति के बिना डॉक्टरी तथा वैज्ञानिक प्रयोगों के लिए प्रयुक्त नहीं किया जा सकेगा।

अनुच्छेद-8 :- किसी को भी दासता में नहीं रखा जाएगा। सभी स्वरूपों में दासता तथा दास-व्यापारनिषेध किया जाता है।

अनुच्छेद-9 :- सभी को स्वतन्त्रता तथा व्यक्तिगत सुरक्षा का अधिकार है। किसी को भी निरंकुश रूप से कैद अथवा हिरासत में नहीं लिया जाएगा। किसी को, बिना उचित कानूनी प्रक्रिया तथा कार्यवाही के, उसको स्वतन्त्रता से वंचित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद- 10 :- ऐसे सभी व्यक्तियों, जिन्हें उनकी स्वतन्त्रता से वंचित किया गया हो, के साथ मानवतावादी सम्मान के साथ व्यवहार किया जाएगा।

अनुच्छेद- 11 :- किसी व्यक्ति को केवल इसलिए बन्दी नहीं बनाया जाएगा कि वह अपने अनुबन्धित कर्तव्य का पालन करने में असमर्थ रहा है।

अनुच्छेद- 12 :- एक राज्य के भू-क्षेत्र में कानूनी रूप में निवास कर रहे प्रत्येक व्यक्ति को क्षेत्र में घूमने-फिरने तथा निवास स्थापित करने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद- 13 :- एक राज्य के भू-क्षेत्र में निवास कर रहे विदेशी नागरिक को भी केवल कानून के आधार पर राज्य से बाहर चले जाने का आदेश दिया जा सकेगा। राष्ट्रीय सुरक्षा के हित की आवश्यकता के अतिरिक्त, बाकी सभी प्रकार के ऐसे कारणों को स्पष्ट किया जाएगा जिसके आधार पर उस विदेशी को निष्कासित किया गया हो।

अनुच्छेद- 14 :- सभी व्यक्ति न्यायालयों के सामने समान होंगे। किसी व्यक्ति के विरूद्ध किसी आपराधिक दोष या फिर उसके अधिकारों और उत्तरदायित्वों का निर्धारण करते समय उसे कानून द्वारा स्थापित एक योग्य स्वतन्त्र तटस्थ अदालत में न्यायोचित सार्वजनिक सुनवाई का अधिकार होगा।

अनुच्छेद- 15 :- किसी भी व्यक्ति को किसी ऐसे आपराधिक मामले में सजा नहीं दी जा सकती जिसमें उसने ऐसा कार्य उस समय किया हो, जो कि किए जाने के समय न तो राष्ट्रीय और न ही अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अधीन अपराध था।

अनुच्छेद- 16 :- प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक स्थान पर कानून के सम्मुख एक व्यक्ति के रूप में समान स्वीकृति का अधिकार होगा।

अनुच्छेद-17 :- किसी के भी निजी जीवन, परिवार, घर, पत्राचार के विरूद्ध गैर कानूनी और निरंकुश हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद- 18 :- प्रत्येक व्यक्ति को विचार, सोच, चेतना तथा धर्म की स्वतन्त्रता का अधिकार होगा। किसी को स्वतन्त्रतापूर्वक किसी एक धर्म या विश्वास को चुनने तथा पालन करने की स्वतन्त्रता होगी।

अनुच्छेद- 19 :- प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी हस्तक्षेप के अपने विचार रखने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद-20 :- युद्ध के लिए प्रचार कानून द्वारा वर्जित होगा। राष्ट्रीय, नस्लवादी, धार्मिक घृणा की वकालत, जिसके द्वारा भेदभाव, शत्रुता तथा हिंसा को उभारा जाए, कानूनी रूप से वर्जित होगी।

अनुच्छेद-21 :- शान्तिपूर्ण इकट्ठे होने के अधिकार को स्वीकार किया जाएगा। एकलोकतन्त्रीय समाज में केवल कानून तथा व्यवस्था तथा राष्ट्रीय सुरक्षा, सार्वजनिक सुरक्षा, सार्वजनिक व्यवस्था, सार्वजनिक स्वास्थ्य, नैतिक नियमों या दूसरे के अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं की सुरक्षा की आवश्यकताओं के आधार पर ही इस स्वतन्त्रता को सीमित या प्रतिबन्धित किया जा सकेगा।

अनुच्छेद-22:- सभी को दूसरों के साथ मिलने तथा संघ बनाने का अधिकार होगा। इस अधिकारमें व्यापार संघ बनाने या फिर उनकी सदस्यता प्राप्त करने का अधिकार शामिल होगा।

अनुच्छेद-23 :- परिवार, जो समाज की एक प्राकृतिक तथा मौलिक समूह इकाई है, को समाज तथा राज्य की सुरक्षा प्राप्त होगी।

अनुच्छेद-24 :- बिना किसी प्रकार के नस्ल, लिंग, रंग, भाषा, धर्म, राष्ट्रीय या सामाजिक उत्पत्ति, सम्पत्ति तथा जन्म के भेदभाव के प्रत्येक बच्चे को उसके परिवार, समाज तथा राज्य की ऐसी सुरक्षा प्राप्त होगी जो कि उसके नाबालिग स्तर के लिए आवश्यक हो। प्रत्येक बच्चे को जन्म के समय नाम दिया जाएगा तथा उसके जन्म को पंजीकृत किया जाएगा। प्रत्येक बच्चे को एक राष्ट्रीयता प्राप्त करने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद-25 :- प्रत्येक नागरिक को प्रत्यक्ष रूप मे या फिर स्वतन्त्र रूप में निर्वाचित अपने प्रतिनिधियों द्वारा सार्वजनिक मामलों के व्यवहार में भाग लेने का अधिकार एवं अवसर प्राप्त होगा। प्रत्येक को समानता के सिद्धान्त के आधार पर, देश की लोक सेवा में प्रवेश का अधिकार होगा।

अनुच्छेद-26 :- सभी व्यक्ति कानून के सम्मुख समान है तथा सभी को बिना किसी भेदभाव के कानून की सुरक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। इस सम्बन्ध में कानून किसी भी प्रकार के भेदभाव के विरूद्ध सभी को गारंटी देगा।

अनुच्छेद-27 :- ऐसे राज्यों जिनमें नस्ली, धार्मिक या भाषायी अल्पसंख्यक रहते हो, उनमें अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों को अपने समूह के अन्य सदस्य के साथ किसी भी अधिकार से अपनी संस्कृति को बनाए रखने से अपने धर्म के पालन या प्रचार करने या अपनी भाषा का प्रयोग करने से वंचित नहीं किया जाएगा।

इन दो अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों (आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अधिकारों के समझौता तथा नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों को समझौता) ने मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में शामिल अधिकारों को कानूनी आधार दिया। इन दोनों तथा कई अन्य ऐसे ही अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों को मिलाकर मानव अधिकारों का अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार पत्र बना है।

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा तथा इसको कानूनी आधार दिए जाने के लिए किए गए अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों ने राष्ट्रों के परिवार के सदस्यों को न केवल इनमें शामिल अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं को अपने-अपने संविधानों में शामिल करने के लिए प्रेरित किया, अपितु सभी ने मानव अधिकारों की सुरक्षा के मुद्दे को भरपूर समर्थन देने के लिए भी प्रोत्साहित किया। 1981 में कुछ राज्यों ने संयुक्त राष्ट्र महासभा को यह प्रार्थना की कि एक नई अन्तर्राष्ट्रीय मानव - व्यवस्था की स्थापना की जाए। इसमें यह व्यवस्था की जानी थी कि सभी सदस्य राज्य यह घोषित करें कि प्रत्येक समाज की प्रगति सरकार तथा राज्य की स्थिरता अभिन्न रूप में मनुष्यों के विकास तथा प्रगति के साथ सम्बन्धित हो। इसलिए सभी विकास कार्यक्रमों को जनता के स्तर के लिए बनाया तथा लागू किया जाए। लोग ही ऐसी विकास प्रक्रिया से लाभ प्राप्त करने वाले होते है।

आज मानव अधिकार और स्वतन्त्रताएँ 21वीं शताब्दी की कार्य-सूची के पहले विषय है। मानव अधिकारों को सब के लिए प्राप्त किया जाना है तथा ऐसा आने वाले दिनों में किया जाना है। मानव अधिकारों के प्रति विद्यमान जागरूकता तथा चेतना को एक ऐसे शक्तिशाली अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन में परिवर्तित किया जाना है जो कि इस पृथ्वी पर रहने वाले सभी व्यक्तियों के मानव अधिकारों को सुरक्षित, विकसित तथा उत्साहित करने की ओर निर्देशित हो।

ऐसा किए जाने के लिए आवश्यक है कि इस उद्देश्य की पूर्ति के मार्ग में आने वाली कठिनाईयों / रूकावटों को दूर किया जाए -

(i) नव बस्तीवाद की समाप्ति परम और पहली आवश्यकता है।

(ii) एक अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के मार्ग की सभी कठिनाइयों को दूर किए जाने की आवश्यकता है।

(iii) इस बात की आवश्यकता है कि विकसित देशों को मानव अधिकारों के सम्बन्ध में अपनेदृष्टिकोण को तीसरी दुनिया के देशों पर थोपने से रोका जाए।

(iv) संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका को अदा करने के लिए, संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् के विस्तार तथा लोकतन्त्रीय बातों के मार्ग मे आने वाली रूकावटों को दूर किया जाना चाहिए।

(v) तीसरी दुनिया के देशों में तीव्र औद्योगिक तथा तकनीकी विकास की प्रक्रिया को शक्तिशाली बनाया जाना चाहिए ताकि वह भी उस विश्व के समान तथा गतिमान सदस्य बन सकें जो कि अब पूर्णतया अन्तर्निभर विश्व बनता दिखाई देता है।

प्रभुसत्ता सम्पन्न एवं समान राष्ट्र राज्यों के मध्य विद्यमान असमानताओं को दूर किया जाना चाहिए। यह कदम ही बिना जातीय, लिंग, भाषा, धर्म, संस्कृति, राष्ट्रीयता, निवास स्थान तथा नागरिकता के भेदभाव के, आवश्यक रूप में मानव अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं की, पूर्तिके उद्देश्य की प्राप्ति को सम्भव बना सकता है। मानव अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं की पूर्ण सुरक्षा के लिए आवश्यक है कि विश्व के सभी राष्ट्र राज्यों को समान रूप से प्रगति करने तथा विकसित होने के अवसर दिए जाएँ।

9.7 सार्वदेशिक घोषणा का महत्व

मानव अधिकारों की विश्व व्यापी घोषणा संसार की एकमहत्वपूर्ण घटना है। महासभा ने यह घोषणा की कि मानव अधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा सभी राष्ट्रों तथा व्यक्तियों के लिए सफलता का मापदण्ड है। महासभा के चौथे अधिवेशन के अध्यक्ष कार्ल्स पी. रोम्यूलो के विचारानुसार, "यह सब से व्यापक लेख है। यह इतिहास का प्रथम लेख है, जिसमें समस्त विश्व के दृष्टिकोण से संसार के सब व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों और स्वतन्त्रताओं की परिभाषा की गयी है। "मानव अधिकार आयोग की अध्यक्ष श्रीमती रूजवेल्ट के मतानुसार,"मानव अधिकारों की यह घोषणा सब मनुष्यों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मैग्नाकार्टा का स्वरूप ग्रहण कर सकती है।" भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं, जवाहर लाल नेहरू ने कहा था, "इस घोषणा के द्वारा संसार के सभी मनुष्यों के हृदय में इस विचार का पुनरूत्थान होगा कि जीवन में निश्चयात्मक कुछ ऐसे मूल्य है, जिनका आदर सबको करना चाहिए। यदि जीवन को भली-भांति व्यतीत करना है तो उन्हीं के अनुसार कार्य करना चाहिए। मानव अधिकारों की घोषणा के महत्व को हम निम्नलिखित रूप में स्पष्ट कर सकते है -

(i) उत्तम आंकाक्षाओं का प्रदर्शन :- मानव अधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा मनुष्यों की सबसे उत्तम आंकाक्षाओं को दर्शाती है।

(ii) सार्वभौमिक :- मानव अधिकारों की घोषणा सर्वव्यापी है। यह किसी विशेष देश या क्षेत्र के लिए नहीं, समस्त संसार के लिए है।

(iii) समस्त मानवता के लिए :- मानव अधिकारों की घोषणा न केवल समस्त विश्व के लिए है, बल्कि इसका महत्व इस बात में है कि ये अधिकार सभी मनुष्यों के लिए समान रूप से है।

अधिकारों की यह घोषणा जाति, धर्म, लिंग, रंग, भाषा, राजनीतिक, सामाजिक स्तर के भेदभाव को स्वीकार नहीं करती है।

(iv) अधिकारों का व्यापक क्षेत्र :- मानव अधिकारों की घोषणा में वर्णित अधिकारों और स्वतन्त्रताओं का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। इतिहास में यह पहला अवसर है जब मानव अधिकारों की इतनी व्यापक प्रणाली को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्रदान की गयी है।

(v) सभी राष्ट्रों के संगठित समाज द्वारा निर्माण:- मानवीय अधिकारों की घोषणा की रचना किसी एक व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के किसी एक व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के विशेष समूह द्वारा नहीं की गयी है, बल्कि सभी राष्ट्रों के एक संगठित समाज में इसका निर्माण किया गया है। आस्ट्रेलिया के डॉ. इवाट का कथन है, "यह पहला अवसर है जब राष्ट्रों के संगठित समाज ने मानव अधिकारों तथा मौलिक स्वतन्त्रताओं की घोषणा की है।"

(vi) अधिकारों को अन्तर्राष्ट्रीय आधार प्राप्त :- मानव अधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा ने मानव अधिकारों को अन्तर्राष्ट्रीय आधार प्रदान किया है।

9.8 घोषणा की दुर्बलता

मानव अधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा की आलोचना अनेक आधारों पर की जाती है। इस घोषणा की मुख्य कमजोरियाँ निम्नलिखित है -

(i) वैधानिकता का अभाव :- इस घोषणा का महत्वपूर्ण दोष यह है कि यह घोषणा कानूनी नहीं है, केवल एक नैतिक प्रलेख है। इस घोषणा ने सदस्य राज्यों पर कोई वैधानिक प्रतिबन्ध नहीं लगाया है। इन अधिकारों को लागू करने के लिए इस घोषणा में किसी प्रकार के साधन की व्यवस्था नहीं की गयी है। संसार के राष्ट्रों पर इन अधिकारों और स्वतन्त्रताओं का सम्मान करने का कोई उत्तरदायित्व नहीं है। यह कोई कानूनी अथवा वैधानिक उत्तरदायित्व भी नहीं है और न ही इससे यह आशा की जाती है। हंस केल्सन ने मानव अधिकारों की घोषणा की आलोचना करते हुए कहा है कि इस घोषणा का कोई वैधानिक महत्व नहीं है और न बहुचर्चित मानव अधिकारों के उपबन्धों का समुचित अर्थ लगाया जा सकता है।

(ii) अन्तर्राष्ट्रीय कार्यवाही का अभाव :- मानव अधिकारों की घोषणा का एक दोष यह है कि अधिकारों की अवहेलना की स्थिति में कोई अन्तर्राष्ट्रीय कार्यवाही की व्यवस्था नहीं है।

(iii) महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख न किया जाना :- मानव अधिकारों की घोषणा की आलोचना इस आधार पर भी की जाती है कि इसमें बहुत सी अनावश्यक बातों का तो उल्लेख किया गया है पर महत्वपूर्ण बातों को छोड़ दिया गया है। उदाहरण के लिए घोषणा के चौथे अनुच्छेद में दासता एवं दासत्व को निषिद्ध ठहराया गया है, परन्तु बेगारी के प्रश्न पर विचार नहीं किया गया।

(iv) दार्शनिक तथा प्राकृतिक सिद्धान्तों का उल्लेख व्यर्थ :- ब्राजील के प्रतिनिधि ने आर्थिक व सामाजिक परिषद् की बैठक में अपने एक भाषण में कहा था कि अधिकारों की इस घोषणा में दार्शनिक सिद्धान्तों अथवा प्राकृतिक नियमों का वर्णन व्यर्थ है।

(v) अधिकार केवल राज्य द्वारा संरक्षित :- अधिकार केवल राज्य द्वारा ही संरक्षित होते है, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कोई संस्था इन्हें संरक्षित करने में असमर्थ होती है।

(vi) विकासशील देशों की विशेष परिस्थितियों की अवहेलना :- ऐसा प्रतीत होता है, जैसे मानव अधिकारों की घोषणा पश्चिमी उदारवादी लोकतांत्रिक देशों की विचारधारा पर आधारित है जिसमें विकासशील देशों की विशेष परिस्थितियों की अवहेलना की गयी है।

(vii) मानवाधिकारों की निराशाजनक वास्तविक स्थिति :- मानव अधिकारों के सम्बन्ध में जो स्थिति विश्व के विभिन्न देशों में पायी जाती है, उसके आधार पर यह कहना असंगत नहीं है कि मानवाधिकारों की सर्वव्यापी घोषणा का कोई खास महत्व नहीं हैं। अनेक देशों में धर्म, नस्ल, वंश, जाति, रंग, लिंग आदि के आधार पर अमानवीय भेदभाव बरता जाता है।

(viii) अल्पसंख्यक वर्ग के अधिकारों की अवहेलना :- मानव अधिकारों की घोषणा अल्पसंख्यकों के अधिकारों का कोई वर्णन नहीं करती। विश्व के प्रत्येक देश में अल्पसंख्यक वर्ग के लोगों की कोई कमी नहीं। इनके अधिकारों के संरक्षण तथा सुरक्षा की एक विशेष समस्या पायी जाती है। यह समस्या तभी हल हो सकती है, जब प्रत्येक देश इन अल्पसंख्यकों के अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करें। किन्तु मानवाधिकारों की सर्वव्यापी घोषणा में इस सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं किया गया है।

(ix) उचित सामाजिक व अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की स्थापना केवल एक कल्पना है :- घोषणा पत्र के अनुच्छेद 28 में लिखा गया है कि, "प्रत्येक व्यक्ति को एक ऐसी सामाजिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का अधिकार है, जिसमें इस घोषणा के अन्तर्गत अंकित अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं की पूर्ण प्राप्ति हो सके। "किन्तु ऐसी सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था किस प्रकार स्थापित की जा सकती है, इसके विषय में निश्चित रूप से कुछ लिखा नहीं गया हैं।

9.9 घोषणा की उपयोगिता

निःसन्देह मानव अधिकारों की घोषणा में अनेक त्रुटियाँ पाई जाती है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इस घोषणा का कोई मूल्य नहीं है। इस घोषणा की बहुत उपयोगिता है और इसका संसार के देशों पर काफी अच्छा प्रभाव पड़ा है।

(i) मानव अधिकारों के पीछे शक्ति न होकर नैतिक शक्ति है। मानव अधिकारों के पीछे अन्तर्राष्ट्रीय जनमत की शक्ति है, जिसकी अवहेलना करना आसान नहीं है।

(ii) मानव अधिकारों की उपयोगिता यह है कि इसमें राजनीतिक लक्ष्य दिया हुआ है। मानव अधिकारों को राजनीतिक स्वतन्त्रता तथा राजनीतिक अधिकारों से अलग नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वे वास्तविक राजनीति का सार है। आज विश्व के अनेक देशों में राजनीतिक अधिकारों का हनन हो रहा है, फलस्वरूप राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ अधिक जटिल हो गई है।

(iii) डॉ. राधा कृष्णन के अनुसार विश्व शान्ति को कायम रखने के लिए इस घोषणा पर कार्य करना अति आवश्यक है। वास्तव में मानव अधिकारों की घोषणा बहुत अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती है यदि विश्व के सभी देश इन अधिकारों में विश्वास व्यक्त करें। यदि विश्व के सभी राष्ट्र इस घोषणा का पूरी तरह पालन करें, तो संयुक्त राष्ट्र की आवश्यकता ही समाप्त हो जाएगी।

(iv) निःसन्देह मानव अधिकारों की घोषणा मनुष्यों को बलपूर्वक स्वतन्त्रता नहीं दिला सकती, परन्तु यह मानव गरिमा के पक्ष में विश्व जनमत को अवश्य जाग्रत कर सकती है। जिस प्रकार धर्म मनुष्यों का हृदय परिवर्तन कर सकता है एवं उसके आचरण के लिए मापदण्ड निर्धारित कर सकता है, उसी प्रकार मानव अधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा सब राष्ट्रों एवं मनुष्यों के राज दर्शन का अंग बन सकती है। पं. जवाहर लाल नेहरू ने मानव अधिकारों को सभ्यता का सार कहा था।

(v) मानव अधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा पिछड़े हुए देशों के लिए आशा की किरण है। सभ्य जीवन के सार्वभौमिक घोषणा-पत्र के निर्माण की दिशा में यह घोषणा का पहला कदम है।

9.10 घोषणा का प्रभाव

मानव अधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। अनेक राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर मानव अधिकारों की घोषणा के प्राधिकार को स्वीकार किया गया है। मानव

अधिकारों की घोषणा को बहुत ही सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। इस घोषणा के आधार पर ही संयुक्त राष्ट्र तथा उसकी विशेष एजेन्सियों ने मानव अधिकार से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार किया है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों तथा अन्तर्राष्ट्रीय समझौते में इस घोषणा का उल्लेख किया गया है। उसके क्षेत्रीय संगठनों में मानव अधिकारों की घोषणा पर सहमति प्रकट की है। कई देशों के संविधानोंमें इस घोषणा को पूर्ण या आंशिक रूप से अपना लिया गया है। स्वतन्त्र राज्यों के बीच होने वाले राजनीतिक पत्र व्यवहार में इस घोषणा के उपबन्धों का उल्लेख किया गया है। मानव अधिकारों की इस घोषणा के आधार पर ही मानव अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं को परिभाषित किया जाता है। इतना ही नहीं, अनेक न्यायिक निर्णय इस घोषणा के आधार पर ही किए गए है।

9.11 मानवाधिकार आयोग

आर्थिक और सामाजिक परिषद् द्वारा 1946 में स्थापित मानवाधिकार आयोग महासभा को मानवाधिकारों से सम्बन्धित मुद्दों पर अपने प्रस्ताव, सिफारिशें और जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत करता है। इस आयोग में देशों, अन्त: शासकीय और गैर सरकारी संगठनों को अपनी बातें रखने को अवसर मिलता है। इस आयोग में 53 सदस्य देश शामिल है। इन देशों को 3 वर्ष की अवधि के लिए चुना जाता है। इस आयोग की हर साल 6 सप्ताह के लिए जेनेवा में बैठकें आयोजित की जाती है।

आर्थिक और सामाजिक परिषद ने 1946 में इस आयोग की मदद के लिए एक आयोग गठित किया था, जिसका काम अल्पसंख्यकों के साथ भेदभाव को रोकना और उनका संरक्षण करना है। इस उप-आयोग में विश्व के सभी क्षेत्रों के 26 विशेषज्ञों को शामिल किया गया है तथा यह नस्ली, धार्मिक, जातीय और भाषायी अल्पसंख्यकों के विरूद्ध भेदभाव को रोकने और उन्हें संरक्षण प्रदान करने से सम्बन्धित मुद्दों की जांच और उन पर अपनी सिफारिशें पेश करता है।

9.11.1 संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार उच्चायुक्त

20 दिसम्बर, 1993 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने मानव अधिकारों की रक्षा के लिए एक मानवाधिकार उच्चायुक्त का गठन किया। उच्चायुक्त का पद उप-महासचिव के स्तर का रखा गया है तथा उसका कार्यकाल 4 वर्ष है। उच्चायुक्त का मुख्यालय जेनेवा में है तथा उसकी एक शाखा न्यूयार्क में है। उच्चायुक्त का कार्य संयुक्त राष्ट्र प्रणाली के मानव अधिकार कार्यकलापों में समन्वय स्थापित करना है।

9.11.2 मानवाधिकार केन्द्र

संयुक्त राष्ट्र के अंगों को मानवाधिकारों के प्रोत्साहन और संरक्षण के कार्य में मदद करने सम्बन्धित अंगों द्वारा अनुरोध करने पर शोध कार्य करने तथा मानवाधिकारों से सम्बन्धित सूचनाओं को प्रकाशित एवं प्रसारित करने हेतु मानवाधिकार केन्द्र की स्थापना की गयी। यह केन्द्र अनेक मानवाधिकार संगठनों जैसे मानवाधिकार आयोग और अल्पसंख्यकों के प्रति भेदभाव को रोकने तथा उनसे संरक्षण से सम्बन्धित उप-आयोग की मदद करता है। जेनेवा में स्थित इस केन्द्र में मानवाधिकारों के लिए उप-महासचिव कार्यालय और 5 शाखाओं के अतिरिक्त मानवाधिकारों से सम्बन्धित उच्चायुक्त का कार्यालय शामिल है। इस केन्द्र की संचार शाखा कथित रूप से हुए मानवाधिकार उल्लंघनों के बारे में मिली सूचनाओं की जांच करती है। विशेष कार्य पद्धति शाखा इन सूचनाओं के आधार पर जाँच दलों जैसे कार्यदल और विशेष रेपर्टियर्स को नियुक्त करती है तथा क्षेत्रीय प्रतिनिधिमण्डलों की यात्राओं का आयोजन करती है। एक अन्य शाखा अन्तर्राष्ट्रीय संधियों व सम्मेलनों की मानवाधिकारों के क्रियान्वयन

के सम्बन्ध में निगरानी करती है, जबकि कानूनी और भेदभाव निवारण शाखा अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार दस्तावेज तैयार करने के साथ अध्ययन और रिपोर्ट तैयार करने का काम करती है। तकनीकी और सलाहकार सेवा शाखा तकनीकी मदद देने के साथ सलाहकारी सेवाओं के प्रशासन का काम देखती है। इस केन्द्र के ग्वाटेमाला, कम्बोडिया, बुरूण्डी, क्रोएशिया, रुआंडा तथा मलावी में क्षेत्रीय कार्यालय है।

9.12 राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग

भारत सरकार द्वारा 14 मई, 1993 को मानव अधिकार आयोग से सम्बन्धित बिल लोकसभा मे पेश किया गया। लोकसभा अध्यक्ष ने उसबिल को गृह मंत्रालय से सम्बन्धित स्थाई समिति के पास अपने विचार व सिफारिश करने के लिए भेजा, परन्तु इस बिल की तुरन्त आवश्यकता थी, जिस कारण 28 सितम्बर 1993 को राष्ट्रपति ने मानव अधिकारों की सुरक्षा से सम्बन्धित अध्यादेश जारी कर दिया। इस अध्यादेश के जारी होने के बाद गृह मंत्री ने 14 मई, 1993 को लोकसभा में पेश किया गया मानव अधिकार आयोग विधेयक वापिस ले लिया। संसद के शीतकालीन अधिवेशन के दौरान, सित. 1993 में मानव अधिकारों की सुरक्षा से सम्बन्धित जारी किए गए अध्यादेश को कानून का दर्जा देने के लिए गृहमंत्री शंकर राव चव्हाण ने 9 दिसम्बर 1993 को "मानव अधिकार सुरक्षा विधेयक" पुन: लोक सभा में पेश किया। लोकसभा व राज्य सभा द्वारा इस बिल पर अपनी सहमति प्रकट कर दिए जाने के बाद राष्ट्रपति ने भी इस पर अपनी सहमति प्रकट कर दी तथा यह बिल कानून बन गया। इस अधिनियम द्वारा राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की नियुक्ति कर दी गयी जो कि भारतीय सीमा के अन्तर्गत किए जा रहे मानव अधिकारों के उल्लंघन की जाँच-पड़ताल करता है और उन संस्थाओं, व्यक्तियों के विरूद्ध कानूनी कार्यवाही करने की सिफारिश सम्बन्धित सरकार व सर्वोच्च न्यायालय को करता है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की संरचना :- मानवाधिकार सुरक्षा अधिनियम के अन्तर्गत गठित राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग में निम्न सदस्य शामिल किए गए है -

(i) इस आयोग की अध्यक्षता भारतीय सर्वोच्च न्यायालय का एक पूर्व मुख्य न्यायाधीश करेगा।
(ii) वह एक सदस्य जो कि सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश हो या वह रह चुका हो।
(iii) एक सदस्य वह जो कि उच्च न्यायालय का न्यायाधीश हो या रह चुका हो।
(iv) मानव अधिकारों से सम्बन्धित विशेष ज्ञान रखने वाले दो व्यक्ति।
(v) इन सदस्यों के अलावा कुछ विशेष कार्यो के लिए अल्पसंख्यक आयोग, अनुसूचित जाति व जनजातियों से सम्बन्धित राष्ट्रीय आयोग व महिलाओं से सम्बन्धित राष्ट्रीय आयोग के अध्यक्षों की कुछ समय के लिए मानव अधिकार आयोग के सदस्यों के रूप में भी नियुक्ति की जा सकती है।

इस तरह स्पष्ट है कि मानव अधिकार आयोग में एक अध्यक्ष के अलावा चार अन्य स्थाई सदस्य होते है। अस्थाई सदस्यों के रूप में मानव अधिकार आयोग में अल्पसंख्यक, अनुसूचित जाति व जन-जातियों तथा महिला आयोगों के अध्यक्षों की कुछ समय के लिए किसी विशेष कार्य हेतु नियुक्ति की जा सकती है। इस आयोग में एक महासचिव भी होता है जिसको आयोग का मुख्य कार्यकारी अधिकारी कहा जाता है। इसकी नियुक्ति केन्द्र सरकार द्वारा मानव अधिकार आयोग के लिए की जाती है। इसका पद केन्द्र में सचिव स्तर का होता है। आयोग द्वारा सौंपे गए कार्य सचिव के द्वारा ही सम्पन्न किए जाते है।

आयोग के अध्यक्ष व सदस्यों की नियुक्ति :- राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष व अन्य सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। इनकी नियुक्ति राष्ट्रपति एक समिति के द्वारा की गयी सिफारिशों के आधार पर करता है। उस समिति में निम्नलिखित सदस्य होते है-

(i) समिति का अध्यक्ष भारत का प्रधानमंत्री होगा,

(ii) लोकसभा अध्यक्ष,

(iii) गृहमंत्री या आन्तरिक सुरक्षा राज्यमंत्री

(iv) लोकसभा में विरोधी दल का नेता,

(v) राज्यसभा का उप-सभापति

(vi) राज्य सभा में विरोधी दल का नेता।

राष्ट्रपति इस समिति की सिफारिश के बिना राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग में किसी भी सदस्य की नियुक्ति नहीं कर सकता। मानव अधिकार आयोग में शामिल सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश व उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की सलाह के बिना नहीं हो सकती है।

सदस्यों का कार्यकाल :- दिसम्बर, 1993 में पारित मानव अधिकार सुरक्षा अधिनियम के अनुसार मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष की नियुक्ति 5 वर्ष के लिए की जाती है, परन्तु यदि वह 5 वर्ष की अवधि पूरी होने से पूर्व 70 वर्ष का हो जाए, तो उसे इस पद से सेवा निवृत्त होना पड़ता है। आयोग के अन्य सदस्यों की नियुक्ति भी पाँच वर्ष के लिए ही की जाती है और सदस्यों को अपने पुन: अपने पद पर नियुक्त किया जा सकता है। सेवानिवृत्ति के पश्चात् मानव अधिकार आयोग के सदस्य केन्द्र सरकार या राज्य सरकार के किसी भी लाभकारी पद पर नियुक्त नहीं किए जा सकते है।

पद से हटाने की विधि :- राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष व अन्य सदस्यों को उनके पद से हटाने की विधि का वर्णन 'मानव अधिकार सुरक्षा अधिनियम' में किया गया है। आयोग के सदस्यों को राष्ट्रपति उनके निश्चित कार्यकाल की समाप्ति से पहले भी हटा सकता है। मानव अधिकार आयोग के सदस्यों को केवल निम्नलिखित आधारों पर ही हटाया जा सकता है-

(i) आयोग के अध्यक्ष व किसी अन्य सदस्य की सिद्ध हो चुकी अयोग्यता तथा कदाचार केआधार पर पदच्युत किया जा सकता है।

(ii) अपने पद के दुरुपयोग के आधार पर।

राष्ट्रपति, अध्यक्ष और अन्य सदस्यों को हटाने से पहले सर्वोच्च न्यायालय को इन आरोपों की जाँच-पड़ताल का कार्य सौंप सकता है। सर्वोच्च न्यायालय आयोग के अध्यक्ष या अन्य सदस्यों के विरूद्ध लगाएगए आरोपों की जाँच-पड़ताल करता हो। उसके आधार पर वह अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को भेजता है। अगर रिपोर्ट में अध्यक्ष या अन्य सदस्यों के विरूद्ध लगाए गए आरोप सही सिद्ध हो जाते है, तो राष्ट्रपति उनको तुरन्त हटा देता है और अगर आरोप सही साबित नहीं होता तो राष्ट्रपति इस सम्बन्ध में कोई कार्यवाही नहीं कर सकता है। अध्यक्ष व अन्य सदस्यों की पदच्युति के लिए राष्ट्रपति निम्न कारणों में आदेश जारी कर सकता है -

(i) यदि अध्यक्ष या अन्य किसी सदस्य को दिवालिया घोषित किया गया हो,

(ii) कोई भी अन्य लाभकारी पद की प्राप्ति के दौरान

(iii) किसी भी तरह की शारीरिक अयोग्यता के कारण

(iv) अगर किसी भी अदालत के द्वारा पागल घोषित करने की स्थिति में,

(v) नैतिक चरित्रहीनता के आरोप में दोषी पाए जाने की स्थिति में।

मानव अधिकार आयोग का कार्यालय :- 1993 के मानव अधिकार कानून के अनुसार इसका स्थान दिल्ली रखा गया है, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर आयोग राष्ट्रपति की स्वीकृति से अन्य स्थानों पर भी बैठक कर सकता है।

आयोग के कार्य व शक्तियाँ :- 1993 के अधिनियम के अनुसार आयोग के सभी आदेश व निर्णय आयोग के सचिव द्वारा प्रमाणित किए जाते है। मानव अधिकार आयोग निम्न कार्य करता है

(i) भारत के किसी क्षेत्र में मानव अधिकारों की अवहेलना होने पर उनकी जांच पड़ताल मानव अधिकार आयोग पीड़ित व्यक्ति की प्रार्थना पर करता है।

(ii) आयोग लोक-कल्याणकारी अधिकारी द्वारा मानव अधिकारों के उल्लंघन को रोकने में की गयी ढील की जांच पड़ताल करता है।

(iii) आयोग मानव अधिकारी के क्षेत्र में गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा उठाए जा रहे कदमों कोप्रोत्साहित करता है।

(iv) आयोग संविधान व राष्ट्रीय कानूनों में वर्णित मानव अधिकारों से सम्बन्धित व्यवस्था पर विचार करता है और उन्हें प्रभावशाली ढंग से लागू करने की सिफारिश करता है।

(v) आयोग मानव अधिकारों के उल्लंघन से सम्बन्धित किसी भी अदालत में चल रही कार्यवाही में उस अदालत की स्वीकृति से हिस्सा ले सकता है।

(vi) आयोग किसी भी राज्य की जेल या ऐसी जगहों पर जहाँ मनुष्यों को नजरबंद रखा गया होता है, का दौरा कर सकता है।

(vii) आयोग आतंकवादी कार्यवाहियों समेत उन सभी तथ्यों सम्बन्धी कानूनों आदि पर पुन: विचार करता है जो कि मानव अधिकारों को लागू करने के मार्ग में बाधा है।

(viii) आयोग आतंकवादी कार्यवाहियों समेत उन सभी तथ्यों सम्बन्धी कानूनों आदि पर पुन: विचार करता है जो कि मानव अधिकारों को लागू करने के मार्ग में बाधा है।

(ix) मानव अधिकार आयोग मानव अधिकारों से सम्बन्धित जानकारी समाज के विभिन्न वर्गो को देता है।

(x) आयोग मानव अधिकारों के क्षेत्र में विस्तार के प्रयास करता है और इसके विकास के लिए प्रयत्नशील रहता हैं।

आयोग द्वारा की गयी जाँच पड़ताल :- मानव अधिकार आयोग मानव अधिकारों के उल्लंघन से सम्बन्धित शिकायतों पर निम्न ढंग से कार्यवाही करता है -

(i) मानव अधिकार आयोग मानव अधिकारों के उल्लंघन से सम्बन्धित किसी भी तरह सूचना या रिपोर्ट केन्द्र सरकार, राज्य सरकार या सम्बन्धित संस्था से मांग सकता है।

(ii) मानव अधिकार आयोग को यदि निश्चित समय के भीतर सम्बन्धित संस्था से मानव अधिकारों के उल्लंघन की रिपोर्ट नहीं मिलती तो आयोग स्वयं उसकी जांच पड़ताल शुरू कर देता है।

(iii) आयोग रिपोर्ट मिलने पर अगर यह अनुभव करें कि मानव अधिकारों का उल्लंघन करने वाले अधिकारियों को या संस्था को दण्ड दिया जा चुका है और विरूद्ध आवश्यक कार्यवाही कर ली गयी है तो इसकी सूचना वह पीड़ित व्यक्ति को देता है।

जाँच-पड़ताल के बाद उठाए गए कदम :-

(i) मानव अधिकार आयोग सम्बन्धित व्यक्ति या संस्था के विरूद्ध जाँच पड़ताल में मानव अधिकारों का उल्लंघन सिद्ध होने पर उचित कार्यवाही करता है और उसके विरूद्ध मुकदमे दर्ज करने के लिए सिफारिश भी कर सकता है।

(ii) मानव अधिकारों की रक्षा हेतु आदेश या लेख जारी करवाने के लिए आयोग सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय को सिफारिश करता है।

(iii) पीड़ित व्यक्ति को उचित राहत दिलवाने के लिए आयोग सम्बन्धित व्यक्ति या संस्था के कार्यवाही करता है।

(iv) अगर पीड़ित व्यक्ति को उचित राहत राशि समय पर नहीं मिलती तो आयोग सम्बन्धित व्यक्ति या संस्था के विरूद्ध कार्यवाही करता है।

सशस्त्र बलों के विरूद्ध कार्यवाही की विधि :- आयोग सशस्त्र बलों के द्वारा किए जा रहे मानव अधिकारों के उल्लंघन की शिकायतों की जाँच-पड़ताल के लिए निम्नलिखित कदम उठाता है-

(i) आयोग पीड़ित व्यक्ति की प्रार्थना पर या सरकार से किसी ऐसी घटना की जिसमें मानव अधिकारों का उल्लंघन किया गया हो, रिपोर्ट मांग सकता है।

(ii) आयोग रिपोर्ट मिलने पर उसकी जांच-पड़ताल करता है तथा अपनी सिफारिशें सम्बन्धित सरकार को भेजता है।

(iii) आयोग की सिफारिशों पर की गयी कार्यवाही की सूचना, सम्बन्धित सरकार तीन मास के भीतर आयोग को अवश्य भेजेगी।

(iv) आयोग सम्बन्धित सरकार द्वारा की गयी कार्यवाही की रिपोर्ट को प्रकाशित करवाता है, ताकि पीड़ित व्यक्ति को उसकी सम्पूर्ण जानकारी मिल सके।

मानव अधिकार आयोग की रिपोर्ट :- मानव अधिकार आयोग अपने कार्यो की वार्षिक रिपोर्ट केन्द्र सरकार व राज्य सरकार को देता है। किसी विशेष कार्य की, रिपोर्ट तथा सिफारिशों की जानकारी केन्द्र सरकार व राज्य सरकार अपने-अपने दोनों सदनों को देती है। अगर किसी मामले में केन्द्र सरकार मानव अधिकार आयोग की किसी सिफारिश से अपनी स्वीकृति प्रदान नहीं करती तो उसके बारे में अपनी लिखित रिपोर्ट सदन को देती है।

मानव अधिकार आयोग की स्थिति :- मानव अधिकार आयोग द्वारा की गयी प्रत्येक कार्यवाही को न्यायिक दर्जा प्राप्त है। मानव अधिकारों के उल्लंघन की जांच पड़ताल करते समय इसे दीवानी अदालत के समान शक्तियाँ प्राप्त होती है। आयोग जाँच पड़ताल के लिए और जानकारी हासिल करने के लिए केन्द्र सरकार व राज्य सरकारों की खुफिया एजेन्सियों की मदद ले सकता है। यह मानव अधिकारों का उल्लंघन करने वाले व्यक्ति या सम्बन्धित अधिकारी के विरूद्ध कार्यवाही करने की केवल सिफारिश ही कर सकता है, यह स्वयं उनके विरूद्ध कोई कार्यवाही नहीं कर सकता। मानव अधिकार आयोग की स्थापना करना भारत सरकार का सराहनीय कदम है, परन्तु इसे केवल मात्र सिफारिशें करने वाली संस्था ही न बनाकर कुछ मामलों में दोषियों के विरूद्ध कार्यवाही करने का भी अधिकार देना चाहिए। भारत में मानव अधिकार आयोग अभी अपनी शैशवास्था में है। हम आशा करते है कि आने वाले वर्षो में यह महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा।

9.13 नागरिक स्वतन्त्रताएँएवं मानव अधिकार

स्वतन्त्रता व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है। मॉण्टेस्क्यू के मतानुसार, स्वतन्त्रता को छोड़कर किसी अन्य शब्द ने व्यक्ति के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव नहीं डाला है। प्रत्येक व्यक्ति में स्वतन्त्रता प्राप्ति की इच्छा होती है। इस इच्छा की पूर्ति के लिए मनुष्य को अनेक शताब्दियों तक संघर्ष करना पड़ा है। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है, जब मनुष्यों ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए खुशी से बलिदान किए। अत: प्रत्येक राष्ट्र स्वतन्त्रता की प्राप्ति उसी प्रकार चाहता है जिस प्रकार एक व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता को बनाए रखना चाहता है।

नागरिक स्वतन्त्रता का अभिप्राय उस स्वतन्त्रता से है, जो नागरिक को एक संगठित समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त होती है।

प्रो. आशीर्वादम के अनुसार नागरिक स्वतन्त्रता को सीधे शब्दों में 'समाज में प्राप्त स्वतन्त्रता' को कह सकते है। व्यक्ति समाज का एक अंग है। समाज की उन्नति तभी हो सकती है, जब उसके सदस्यों की उन्नति हो। समाज अपने नागरिकों के विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है, जिनके बिना नागरिक अपना विकास नही कर सकता। इन परिस्थितियों एवं सुविधाओं को ही नागरिक स्वतंत्रता कहा जाता है। नागरिक स्वतंत्रता राज्य के अन्दर रहने वाले सभी व्यक्तियों को प्राप्त होती है। नागरिक स्वतन्त्रता में व्यक्तिगत स्वतंत्रता, जीवन की स्वतन्त्रता, सम्पत्ति रखने की स्वतन्त्रता, भाषण देने की स्वतन्त्रता, घूमने-फिरने की स्वतन्त्रता, व्यवसाय करने की स्वतन्त्रता, विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता, शिक्षा प्राप्त करने की स्वतन्त्रता, समुदाय बनाने की स्वतन्त्रता, कानून के सामने समानता, पारिवारिक जीवन की स्वतन्त्रता, तथा धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार शामिल है।

अमेरिका के संविधान में लिखा गया है, "कानून की उचित प्रक्रिया के अभाव में कोई मनुष्य अपने जीवन, स्वतंत्रता तथा सम्पत्ति से विमुक्त नहीं किया जाएगा।" भारत के संविधान में नागरिक स्वतन्त्रता का स्पष्ट वर्णन किया गया है। जिन देशों में नागरिक स्वतन्त्रता का वर्णन संविधान में किया गया है, वहाँ पर नागरिकता के अधिकारों का यदि कोई उल्लंघन करता है, तो नागरिक अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए न्यायालय के पास जा सकता है।

प्रो लास्की ने कहा है कि, "यदि सरकार को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता, तो स्वतंत्रता कभी भी वास्तविक नहीं हो सकती। स्वतंत्रता का उल्लंघन करने के कारण सरकार को सदा जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए।"

9.14 सारांश

पामर एवं पार्किन्स ने लिखा है कि, "विश्व के कुछ ही भागों में मानव अधिकार तथा आधारभूत स्वतन्त्रताएं वास्तव में सुरक्षित है, अधिकांश क्षेत्रों में तो अभी इनका कोई अर्थ नहीं है।"

संयुक्त राष्ट्र के प्रयासों के बावजूद मानवाधिकारों के उल्लंघन की व्यापक घटनाएं बराबर हो रही है। मानवाधिकारों की वैश्विक घोषणा के पांच दशक बीत जाने के बावजूद विश्व भर की मुख्य खबरों में मानवाधिकारों के व्यापक उल्लघंनों की घटनाएं छाई रहती है। किन्तु कुछ सीमा तक मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ाने के प्रयासों, समस्यामूलक क्षेत्रों की निगरानी, खासकर बच्चों के प्रति दुर्व्यवहार, महिलाओं के प्रति हिंसा और दुर्व्यवहार रोकने के प्रयासों को कुल स्थिति में आए सुधारों को श्रेय दिया जाता है।

वास्तव में, मानवाधिकारों को संरक्षण और बढ़ावा देने के उपाय तो पहले से ही कहीं ज्यादा मजबूत है और उन्हें सामाजिक न्याय, आर्थिक विकास तथा लोकतन्त्र के लिए चल रहे संघर्ष से ज्यादा जोड़ा जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र सुधार कार्यक्रम में महासचिव कोफी अन्नान ने घोषणा की थी कि मानवाधिकारों का मुद्दा संगठन के विविधतापूर्ण दायित्वों में हमेशा प्रमुख रहेगा तथा इन अधिकारों को संरक्षण और बढ़ावा देने की बात सभी नीतियों और कार्यक्रमों में शामिल की जाएगी। मानवाधिकार उच्चायुक्त की जोरदार कार्यवाही और संयुक्त राष्ट्र के भागीदारों के बीच सहयोग तथा तालमेल बढ़ाने के लिए किए गए उपाय मानवाधिकारों के लिए संघर्ष में संयुक्त राष्ट्र प्रणाली की योग्यता और कुशलता बढ़ाने के ठोस प्रयासों की अभिव्यक्ति है।

9.15 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मानव अधिकार क्या है? मानव अधिकारों पर सार्वभौमिक घोषणा की प्रकृति तथा क्षेत्र का वर्णन करें।
2. संक्षेप रूप में व्याख्या करें-
   (i) मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा।
   (ii) आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय समझौता।
   (iii) नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय समझौता।
3. राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की रचना एवं कार्यों का वर्णन कीजिये।
4. "नागरिक स्वतंत्रता" से क्या अभिप्राय हैं?

इकाई - 10
पुलिस व मानवाधिकार

इकाई संरचना

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 मानव अधिकार जनित विचारधाराएँ

10.2.1 प्राकृतिक एवं राज्य-प्रदत्त अधिकार

10.3 अधिकार: अर्थ एवं अवधारणा

10.3.1 मानव अधिकार: सामान्य विशेषताएँ

10.3.2 मानवाधिकार: विशिष्ट सन्दर्भ

10.4 नागरिक अधिकारों के संदर्भ में पुलिस की भूमिका

10.4.1 अपराध, मानव अधिकार व पुलिस

10.4.2 पुलिस जन-सम्पर्क, मानव अधिकार व पुलिस भूमिका

10.4.3 शांति व्यवस्था, सुरक्षा, मानव अधिकार व पुलिस

10.4.4 अपराधी के मानव अधिकार व पुलिस

10.5 मानव-अधिकार अवहेलना के पुलिस प्रसंग

10.6 पुलिस से अपेक्षाएँ

10.7 पुलिसकर्मी एवं मानव-अधिकारों की अवहेलना

10.8 पुलिस-अभिरक्षा में मृत्यु

10.9 मानव-अधिकारों की अवहेलना रोकने के उपाय

10.10 पीड़ित और पुलिस

10.11 गवाह के अधिकार

10.12 अभियुक्त के अधिकार

10.13 आपराधिक न्याय-व्यवस्था व मानव अधिकार

10.14 विधि-प्रवर्तन अधिकारियों हेतु आचार संहिता

10.15 सारांश

10.16 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.0 उद्देश्य

इस अध्याय के उद्देश्य निम्नांकित हैं-

- विद्यार्थियों को मानव अधिकारों के विविध पक्षों की जानकारी प्रदान करना।
- मानव अधिकारों की सामान्य विशेषताओं एवं विशिष्ट संदर्भो को स्पष्ट करना।
- मानव अधिकारों के संदर्भ में पुलिस की भूमिका का विवेचन करना।
- मानव अधिकारों की अवहेलना के संदर्भो एवं कारणों को समझाना।
- पीड़ित व्यक्तियों, गवाहों एवं अभियुक्तों के अधिकारों के बारे में ज्ञान प्रदान करना।
- अपराधिक न्याय व्यवस्था एवं मानव अधिकारों के पारस्परिक सम्बन्धों की जानकारी प्रदान करना।

- मानव अधिकारों के संदर्भ में विधि प्रवर्तन अधिकारियों की आचार संहिता के बारे में जानकारी प्रदान करना।

10.1 प्रस्तावना

पुलिस का यह बुनियादी दायित्व है कि वह आमजन की सुरक्षा करें और उनके अधिकारों की रक्षा भी। मानव अधिकारों के सन्दर्भ में पुलिस को दोहरी भूमिका का निर्वाह करना होता हैं। एक तरफ जहां उसे आमजन के अधिकारों की अवहेलना करने वाले लोगों के खिलाफ कार्रवाई करने की अपेक्षा रखी जाती है, वहीं उनसे यह भी आशा की जाती है कि वे स्वयं नागरिकों के मानव अधिकारों की अवहेलना नहीं करेंगे। अत: जरूरी यह है कि पुलिस को इस विषय के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्षों की जानकारी हो। मानव अधिकारों की प्रकृति, प्रकार एवं विकास का एक लम्बा इतिहास रहा है। यह इतिहास, "एकाधिकार" "विशेषाधिकार, "प्राकृतिक अधिकार", "बुनियादी व मौलिक अधिकार", के स्तरों एवं श्रेणियों से गुजरता हुआ आज "मानव-अधिकार"के रूप में एक व्यापक आधार एवं आयाम प्राप्त कर चुका है।

10.2 मानव अधिकार जनित विचारधाराएँ

अधिकारों के संबंध में अनेक प्रकार की विचारधाराएं अस्तित्व में हैं। मूल रूप से इन विचारधाराओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है। पहली विचारधारा की मान्यता है कि अधिकार मनुष्य को स्वाभाविक, नैसर्गिक एवं प्राकृतिक तौर पर इसलिए मिले हुए है कि वह मान है। दूसरी विचारधारा के चिन्तक यह मानते है कि अधिकार समाज एवं राज्य की उपज है। अत: प्रत्येक राज्य अपने नागरिकों को अधिकार उपलब्ध करवाते है। वस्तुत: अधिकारों की प्रकृति, स्वरूप एवं प्रकार का गहराई से किया गया अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि अधिकारों की समग्रता के पीछे दोनों विचारधाराएं अर्थपूर्ण एवं कारगर रूप से मौजूद रहती है। अत: पुलिस जन को इस सन्दर्भ में अपनी भूमिका के निर्वाहन के दौरान इन दोनों ही पक्षों को ध्यान में रखना चाहिए।

10.2.1 प्राकृतिक एवं राज्य-प्रदत्त अधिकार

कुछ ऐसे अधिकार हैं जो प्राणीमात्र को प्रकृति से मिले होते हैं। ये अधिकार राज्य एवं समाज के आविर्भाव के पूर्व से मौजूद रहे हैं। उदाहरण के लिए "जीने का अधिकार"एवं "आत्मरक्षा का अधिकार" ऐसे अधिकार हैं जो प्राणीमात्र को और विशेष रूप से मानव मात्र को प्राकृतिक प्राकृतिक तौर पर मिले हुए हैं। यही वजह है कि अपने ऊपर आए खतरे को टालने के लिए आत्मरक्षा का अधिकार सभी समूहों और कबीलों में भी मौजूद रहा है। अब इस अधिकार को कानूनी स्वीकृति सभी समाजों द्वारा मिली हुई हैं। दूसरी तरफ ऐसे अधिकार है जोराज्य विशेष तौर पर अपने नागरिकों को उनके विकास एवं कल्याण के लिए प्रदान करते हैं। इन अधिकारों की व्यवस्था सभी देश अपने संविधान में या विशेष कानून बना कर करते है।

अधिकार प्रकृतिदत्त है या राज्य-प्रदत्त, इस पर मतभेद हो सकता है, परन्तु अधिकारों की सुरक्षा करने का दायित्व राज्य का है, इस बिन्दु पर किसी प्रकार का मतभेद नहीं है। यही वजह है कि राज्य की भूमिका अधिकारों के संदर्भ में महत्वपूर्ण मानी जाती है। राज्य की उत्पति एवं प्रकृति के अनुरूप अधिकारों का स्वरूप भी निर्धारित होता है। यही कारण है कि दैविक एवं शक्ति के सिद्धान्त पर राज्य की उत्पति को मानने वाले विचारक आमजन के अधिकारों के बजाय राजा के एकाधिकार एवं विशिष्ट जन के विशेषाधिकारों की बात करते हैं राजनैतिक निरंकुश शासन-तंत्र, संवैधानिक राजतंत्र,

लोकप्रिय जनतंत्र एवं साम्यवादी राजनैतिक व्यवस्थाओं में उपलब्ध नागरिकों के अधिकारों की गुणवत्ता में भिन्नता राज्य के स्वरूप एवं प्रकृति के अनुरूप अधिकारों की गुणवत्ता एवं प्रकृति परिवर्तित होती रहती है। राज्य के विकास के साथ एवं लोकमत-आधारित राजनैतिक व्यवस्थाओं की स्थापना के बाद आम नागरिक के अधिकारों के प्रति संवेदनशीलता निरन्तर बढ़ी है। प्रत्येक पुलिसजन को नागरिकों में उपजी अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता व संवेदनशीलता को समझने के लिए प्रयासरत रहना चाहिए।

10.3 अधिकार : अर्थ एवं अवधारणा

अधिकारों को जीवन की न्यूनतम, प्राथमिक एवं उच्चतम आवश्यकताओं के रूप में भी पहचाना गया है। प्रसिद्ध विद्वान हाब हाउस का कथन है कि अधिकार वही है जैसा कि हम अन्यों से अपने प्रति आशा करते हैं और जैसा कि अन्य हमसे आशा करते है। अरस्तु ने अधिकारों के महत्व को बहुत ही खूबसूरती से प्रतिपादित करते हुए कहा है कि जीवन केवल जीना भर नहीं है, बल्कि अच्छी तरह से जीवन बसर करना है। अधिकार अच्छी तरह से जीवन बसर करने की अनिवार्य स्थितियां है, जिनके बिना सामान्यत: कोई भी आदमी अपने पूर्ण विकास की उच्चता को नहीं पहुँच सकता या फिर यह कहा जा सकता है कि अधिकार प्रत्येक व्यक्ति के आत्म-विकास एवं संपूर्ण प्रगति की आवश्यक शर्तें हैं।

10.3.1 मानव अधिकार : सामान्य विशेषताएँ

अधिकारों, विशेषकर मानव-अधिकारों की कुछ ऐसी सामान्य विशेषताएँ है जिनके कारण ये अधिकार कारगर एवं अर्थपूर्ण बनते हैं। मानव-अधिकारों की सामान्य विशेषताएँ निम्नांकित हैं-

(i) वैयक्तिक या सामूहिक मांग :- मानव-अधिकार एक प्रकार की वैयक्तिक या सामूहिक मांग है, जो समाज से ही की जाती है। प्रत्येक व्यक्ति की कुछ इच्छाएँ या मूलभूत आवश्यकताएं होती है, जिनकी पूर्ति के लिए विशेष परिस्थितियों व बुनियादी सुविधाओं की आवश्यकता होती है। नागरिक एवं व्यक्ति-समूह राज्य या समाज से उन परिस्थितियों की मांग करते हैं। यह मांग ही प्रकारान्तर से मानव-अधिकारों का स्वरूप ग्रहण करती है।

(ii) समाज एवं राज्य की मान्यता :- अधिकार का अस्तित्व समाज से ही सम्भव है। अधिकार के लिए सामाजिक स्वीकृति आवश्यक है। सामाजिक स्वीकृति के अभाव में व्यक्ति जिन शक्तियों का उपयोग करता है वे उसके अधिकार न होकर प्रकृति शक्तियाँ हैं, जिनका उपयोग वह मात्र अपने ही स्वार्थों की पूर्तिके लिए स्वेच्छापूर्वक करता है। ऐसी दशा में जिनकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत चरितार्थ होने लगती है। अधिकार तो राज्य द्वारा नागरिकों को प्रदान की गयी विशेष स्थिति और सुविधा का नाम है। इस सुविधा की आवश्यकता तथा उपयोग समाज में ही सम्भव है। शून्य में व्यक्ति के कोई अधिकार नहीं हो सकते।

(iii) लोकहित के आधार पर :- व्यक्ति को अधिकार स्वयं के व्यक्तित्व के विकास और सम्पूर्ण समाज के सामूहिक हित के लिए प्रदान किए जाते हैं। अत: यह आवश्यक है कि अधिकारों का प्रयोग इस प्रकार कियाजाय कि व्यक्ति की स्वयं की उन्नति के साथ-साथ सम्पूर्ण समाज की उन्नति हो, यानि सर्वजन सुखाय व सर्वहिताय जैसी प्रकृति अधिकारों में होनी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति अधिकारों का दुरूपयोग करता है एवं सम्पूर्ण समाज के हित-साधन में बाधा पहुँचाता है तो ऐसे व्यक्ति के अधिकारों को सीमित किया जा सकता है।

(iv) राज्य का संरक्षण :- मानव-अधिकारों का एक आवश्यक लक्षण यह है कि उसकी रक्षा का दायित्व राज्य अपने ऊपर लेता है और इस सम्बन्ध में राज्य आवश्यक व्यवस्था करता है। अर्थात्

मानव-अधिकारों को राज्य का संरक्षण प्राप्त होता है। बिना इसके अधिकारों के रक्षण की परिकल्पना सम्भव नहीं हो सकती।

(v) कल्याणकारी स्वरूप :- मानव-अधिकारों का सम्बन्ध आवश्यक रूप से व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास से होता है। इस कारण अधिकार के रूप में केवल वे ही स्वतंत्रताएँ और सुविधाएँ प्रदान की जाती है जो व्यक्तित्व के विकास हेतु आवश्यक या सहायक हो। व्यक्ति को कभी भी वे अधिकार नहीं मिल सकते हैं जो व्यक्ति के विकास में बाधक हो। इसी कारण मद्यपान, जुआ खेलना या आत्महत्या मानव-अधिकार के अन्तर्गत नहीं आते हैं। अत: कहना होगा कि अधिकारों का कल्याणकारी होना एक अनिवार्य शर्त है।

(vi) तर्क और नैतिकता :- व्यक्ति की केवल उन मांगों को ही अधिकार का रूप दिया जा सकता है, जो उसके व्यक्तित्व एवं समाज के सामूहिक जीवन के लिए उचित एवं आवश्यक हो। तर्क एवं नैतिकता का साथ-साथ प्रयोग जरूरी है, क्योंकि बहुत सी मांगे नैतिकता के आधार पर स्वीकार कर ली जाती है, परन्तु उन्हें तर्क के आधार पर उचित एवं न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता।

(vii) समानता की आधार शिला:- भेदभाव रहित समता, व्यापक एवं बुनियादी अधिकार का सेतुबन्ध है। अधिकार का उपयोग किसी एक वर्ग तक ही सीमित होना उचित नहीं है। वह समाज के सभी व्यक्तियों को समान रूप से प्राप्त होना चाहिए। जब अधिकार किसी एक वर्ग या जाति के लिए सुरक्षित होता है, तब वह अधिकार न होकर कुछ लोगों का विशेषाधिकार हो जाता है। अधिकार का उपभोग बिना जातिगत, वर्गगत भेदभाव के सभी के लिए होना आवश्यक है।

10.3.2 मानवाधिकार : विशिष्ट सन्दर्भ

मानव-अधिकारों की इन सामान्य विशेषताओं के कारण ही वे सामान्य अधिकारों एवं विशिष्ट अधिकारों के साथ अपनी एकात्मकता स्थापित किए हुए है। उपर्युक्त सामान्य विशेषताओं के अलावा मानव-अधिकारों की अपनी विशिष्ट पहचान भी है, जिसे निम्नांकित बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है।

(i) सार्वभौमिकता :- मानव-अधिकारों की प्रकृति सार्वभौमिक एवं सार्वलौकिक है। विश्व के सभी समाज एवं मुल्क मानव-अधिकारों को स्वीकार करते हैं। उनका सम्मान करते हैं तथा उन्हें लागू करते हैं। मानव-अधिकार भौगोलिक सीमाओं में बंधे हुए नहीं है। सभी राष्ट्र बिना किसी भेदभाव के इन्हें लागू करते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ ने वर्ष 1984 में सार्वभौमिक मानव-अधिकारों की घोषणा की, जिसके अन्तर्गत मानव-मात्र के लिए मानव अधिकारों को लागू किए जाने का संकल्प की अभिव्यक्ति की गई है। विश्व के करीब सभी देश इस घोषणा को स्वीकार करते हैं एवं सम्मान करते हैं जिसकी वजह से इस घोषणा एवं मानव-अधिकारों का महत्व सार्वलौकिक होकर इन अधिकारों की प्रकृति सार्वभौमिक बन गई है।

(ii) अभिवक्ता :- मानव-अधिकार अभिव्यक्त प्रकृति के होते है। इन्हें विभाजित नहीं किया जा सकता। जिस व्यक्ति एवं वर्ग-समूह को ये मिले हुए होते हैं उनके साथ अभिन्न रूप से जुड़े हुए रहते हैं। इन्हें उन नागरिकों से हटाकर अन्य को बांटा नहीं जा सकता है। किसी के आजादी के अधिकार को आधा-आधा करके दो नागरिकों में विभक्त नहीं किया जा सकता है क्योंकि मानव-अधिकार अपने आप में सम्पूर्ण, मुकम्मल एवं अभिन्न रूप से उसी नागरिक को उपलब्ध रहते हैं जिनको ये मिले हुए हैं।

(iii) अन्योन्याश्रितता :- मानव-अधिकार अन्योन्याश्रित होते है। वे एक तरफ कर्त्तव्यों के सांगोपांग निर्वाह पर निर्भर करते हैं, वहीं दूसरी तरफ विविध प्रकार के मानव-अधिकार एक-दूसरे पर भी आश्रित

रहते हैं। स्वतंत्रता, समानता, आत्म-सम्मान एवं राष्ट्र-गौरव के अधिकार एक-दूसरे से आपस में जुड़े हुए रहते हैं तथा एक की पूर्ति के लिए दूसरे अधिकार का आलम्बन स्वाभाविक तौर पर होता है।

(iv) अहस्तान्तरणीयता :- मानव-अधिकार अहस्तान्तरणीय होते हैं। कोई भी नागरिक अपने अधिकार को किसी और को हस्तान्तरित नहीं कर सकता। कोई व्यक्ति, अपनी स्वतंत्रता, समानता या व्यवसाय के अधिकार को यह कह कर किसी और को नहीं दिलवा सकता कि मेरे हिस्से का यह अधिकार पूरी तौर पर या आंशिक तौर पर अमुक व्यक्ति को दे दिया जाये।

(v) पवित्रता :- मानव-अधिकार पवित्र एवं पाकीज होते हैं। उन्हें दूषित करने पर या उनका अतिक्रमण करने पर, अवहेलना करने वाला व्यक्ति दोषी माना जाता है। जिस तरह से पवित्र स्थानों एवं आदरणीय व्यक्तियों की मर्यादा एवं सम्मान की स्थितियाँ होती है, वैसी ही मान-मर्यादा एवं सम्मान की स्थिति मानव-अधिकारों को प्राप्त है।

(vi) क्रियान्वितता :- मानव-अधिकारों का स्वरूप क्रियान्वयनकारी होता है। जो व्यक्ति मानव अधिकारों की अवहेलना करता है, उसके खिलाफ कानूनी कार्यवाही अमल में लाई जा सकती है। पुलिस जैसे अनेक कानून-क्रियान्वयन-अभिकारण राज्य द्वारा अस्तित्व में लाए जाते हैं, जो यह सुनिश्चित करते हैं कि मानव-अधिकार की अवहेलना नहीं हो और यदि कोई इनकी अवहेलना करता है तो दोषी व्यक्ति के खिलाफ कानूनी कार्यवाही की जाकर उसे दण्डित करवाया जाए।

(vii) सकारात्मकता :- मानव-अधिकार सकारात्मकता की बुनियाद पर अस्तित्व में आते हैं। व्यष्टि एवं समष्टि के स्तर पर इनका उद्देश्य सकारात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करने का होता है। सृजन, निर्माण एवं विकास के मूल उद्देश्य से मानव अधिकार अस्तित्व में आते हैं एवं इन लक्ष्यों को प्राप्त करना ही इनका मुख्य ध्येय होता है। नकारात्मकता एवं संकुचित स्थितियों से हटकर व्यापक एवं सर्वग्राही हितों से जुड़कर ही मानव-अधिकार अर्थपूर्ण बनते हैं। अत: कहा जा सकता है कि मानव-अधिकारों की प्रकृति नकारात्मक नहीं होकर सकारात्मक होती है।

(viii) लोक-कल्याणोन्मुखी :- मानव-अधिकार अपने मूल स्वरूप में लोक-कल्याणकारी एवं सर्वजन हिताय के मूलमंत्र से प्रेरित रहते हैं। इनका मुख्य लक्ष्य जन-जन का हित संवर्धन एवं सार्वजनिक कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना है। समाज के सभी वर्गो का हित हो और जहाँ उन्हें कल्याणकारी स्थितियाँ मिले उसी दिशा में मानव-अधिकारों की गति बनी रहती है।

(ix) विकासोन्मुखी :- मानव-अधिकार मूल रूप से विकासोन्मुखी होते हैं। इनकी दिशा सदैव विकास और समृद्धि की ओर रहती है। समाज एवं देश निरन्तर विकास एवं समृद्धि की ओर बढ़ते जाएँ, यही मानव-अधिकारों का लक्ष्य होता है। सामाजिक एवं आर्थिक असंतुलन को खत्म या कम करके समाज में विकास एवं गति लाने का कार्य मानव-अधिकारों की सुरक्षा एवं संरक्षण के माध्यम से किया जाता है। गरीबी-उन्मूलन, स्वरोजगार योजना, स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों का विकास जैसे कार्यक्रम मानव-अधिकारों की मूल प्रेरणा से प्रेरित होकर ही आयोजित किये जाते हैं। इन कार्यक्रमों के सफल क्रियान्वयन से समाज स्वाभाविक तौर पर विकास के प्रतिमान स्थापित प्राप्त करता है तथा गरीबी का उन्मूलन होने पर ही राष्ट्र समृद्धि की ओर अग्रसर होते हैं।

(x) मानवतावादी :- उदारता, करूणा, स्नेह, सहयोग एवं भाईचारा जैसी मूलभूत मानवीय संवेदनाओं से प्रेरित होने के कारण मानव-अधिकारों को मूलत: मानवतावादी माना जाता है। मानव-मात्र को मान-सम्मान प्रतिष्ठा एवं आदर का अधिकारी मानने की मूल भावना से मानवतावादी विचारधारा प्रेरित रहती है। मनुष्य से बड़ा कुछ नहीं है। मानव ईश्वर की श्रेष्ठतम कृति है। अत: उसका स्थान उच्च एवं सुविधाएँ श्रेष्ठ होनी चाहिए। मनुष्यकी श्रेष्ठता बनी रहे और उसकी गरिमा एवं गौरव में कोई अवरोध नहीं आये, इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विविध प्रकार के मानव-अधिकारों को समाज में प्रचलित किया

जाकर, राज्य के माध्यम से उनकी सुरक्षा करवाये जाने की व्यवस्था आधुनिक युग में सभी समाजों में की जा रही है।

(xi) प्रगतिशीलता :- मानव-अधिकार प्रगतिशील जीवन-मूल्यों पर आधारित होते हैं और प्रजातंत्र, समानता, भाईचारा स्वतंत्रता तथा समृद्धि और विकास के बुनियादी लक्ष्यों से प्रेरित एवं संचालित होने के कारण उनको मूलरूप से प्रगतिशील विचारधारा का संवाहक माना गया हैं।

10.4 नागरिक अधिकारों के संदर्भ में पुलिस की भूमिका

पुलिस एवं समाज एक दूसरे की सहयोगी इकाइयां है। इनके आपसी सहयोग से बेहतर जिन्दगी जीने की स्थितियाँ बनती है। पुलिस एवं समाज एक दूसरे से गहरे तक जुड़े हुए है तथा अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए एक दूसरे पर निर्भर रहते है। पुलिस को नागरिकों के अधिकारों के प्रहरी, रक्षक एवं संवाहक के रूप में पहचाना जाता है। नागरिक-अधिकारों के संदर्भ में इस प्रकार पुलिस की भूमिका को महत्वपूर्ण माना गया है।

आपराधिक एवं सामान्य न्याय-व्यवस्था की संरचना एवं संचालन का पुलिस एक महत्वपूर्ण अंग है। यही कारण है कि नागरिकों के अधिकारों से जुड़े प्रकरण चाहे वे संविधान से संबंधित हों या फिर दीवानी या आपराधिक कानूनों से संबंधित हो, पुलिस का सहयोग एवं भूमिका सभी मामलों में महत्वपूर्ण होती है। आपराधिक न्याय-व्यवस्था के अन्तर्गत तो यह भूमिका और भी अधिक उल्लेखनीय होती है। आपराधिक कानूनों अपराध-विधि एवं आपराधिक न्याय व्यवस्था के अन्तर्गत पुलिस भूमिका के संदर्भ में नागरिक अधिकारों की चर्चा विषयवस्तु को समग्रता प्रदान करने में सक्षम है।

10.4.1 अपराध, मानव अधिकार व पुलिस

प्रत्येक अपराध की घटना को पीड़ित नागरिक के किसी न किसी अधिकार की अवहेलना के रूप में समझा जा सकता है। आपराधिक घटनाओं की पड़ताल करना पुलिस का प्राथमिक दायित्व है। इस तरह नागरिक अधिकार की अवहेलना की सीधा संबंध पुलिस से हो जाता है। पुलिस तत्काल, त्वरित एवं प्रभावी कार्यवाही कर दोषी व्यक्ति को न्यायिक प्रक्रिया के सुपुर्द कर पीड़ित नागरिकों को न्याय दिलवाती है तथा उनके अधिकारों की गरिमा को बनाए रखती हैं।

10.4.2 पुलिस जन-सम्पर्क, मानव अधिकार व पुलिस भूमिका

पुलिस विभाग से नागरिकों का संपर्क फरियादी, मुल्जिम, गवाह, मुखबिर या सहयोगी के रूप में होता रहता है। फरियादी के रूप में जब भी कोई नागरिक पुलिस से संपर्क बनाता है तो यह उस नागरिक का अधिकार है कि पूरी संजीदगी, संवेदनशीलता, धैर्य एवं ध्यान से उसकी तकलीफ एवं समस्या को सुना जाए। फरियादी की रिपोर्ट की प्रकृति के अनुरूप उसका यह भी अधिकार होता है कि पुलिस उसकी सहायता करें। यह सहायता परामर्श, मार्गदर्शन, एवं पुलिस इमदाद के रूप में हो सकती है। यदि समस्या की प्रकृति ऐसी है जिसमें पुलिस सीधे कार्यवाही कर सकती है, तो मुकदमा दर्ज कर लिया जाना चाहिए। इस प्रकार की घटनाओं को संज्ञेय काबिल दस्तनदाजी या कांगनेजेबिल अपराध कहा जाता है। अपराध की घटनाएं दो तरह की होती है, संज्ञेय और असंज्ञेय। संज्ञेय अपराधों को रोजनामचे में दर्ज कर तफ्तीश करती है। अंसज्ञेय आपराधिक घटनाओं को रोजनामचे में दर्ज किया जाकर फरियादी को अदालत में सीधे कार्यवाही के लिए परामर्श किया जाता है। कुछ प्रकरणों में पुलिस अदालत में शिकायत भी दर्ज कर सकती है। जिन मामलों में पुलिस ने मुकदमे दर्ज किये है, उन सब में नागरिकों का यह अधिकार है कि उनसे संबंधित प्रकरणों में तत्काल, तटस्थ एवं शीघ्र कार्यवाही अमल मे लाई

जाकर दोषी व्यक्तियों को कानून के हवाले किया जाएं। नागरिकों का यह भी अधिकार है कि उन्हें शीघ्र, सुलभ एवं सस्ता न्याय मिले। न्यायिक प्रक्रिया को शीघ्र और प्रभावी बनाने में पुलिस की कारगर भूमिका होती है। गवाहों एवं मुल्जिमानों को गवाही एवं न्यायिक प्रक्रिया के लिए उपलब्ध करवाने का दायित्व पुलिस का होता है। अपने इस दायित्व का निर्वाह कर पुलिस नागरिकों के शीघ्र न्याय प्राप्त करने के नागरिक अधिकार को व्यावहारिक बना सकती हैं।

10.4.3 शांति व्यवस्था, सुरक्षा, मानव अधिकार व पुलिस

चाहे शान्तिभंग होने की स्थिति हो या फिर अपराध घटित होने की संभावना, दोनों ही स्थितियों में आम नागरिक का यह अधिकार है कि उन्हें इन स्थितियों से बचाया जाएं। साथ ही अपराधों की रोकथाम कर समाज में शांति एवं व्यवस्था की स्थापना भी की जाएं। नागरिकों के इन अधिकारों की रक्षा करना पुलिस का बुनियादी दायित्व है। फरियादियों और आम नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करके तथा उनके अधिकारों पर हो रहे अतिक्रमणों एवं हमलों से उन्हें बचाव देकर पुलिस नागरिकों के अधिकारों की रक्षा कर सकती है और उनकी सच्ची मित्र बन सकती हैं।

10.4.4 अपराधी के मानव अधिकार व पुलिस

फरियादी के अलावा नागरिक मुल्जिम की हैसियत में भी पुलिस के संपर्क में आते है। पुलिस अभिरक्षा में लिए गए व्यक्तियों के भारत में सुपरिभाषित अधिकार है। न्यायालय समय-समय पर इस संबंध में दिशा निर्देश भी जारी करते रहे है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने पुलिस अभिरक्षा के लिए गए नागरिकों के अधिकारों के बारे में विस्तार से चर्चा की हैं। देश के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयानुसार अपराधी एवं पुलिस अभिरक्षा में लिए गये नागरिकों के निम्नांकित अधिकार है:-

पुलिस को नागरिकों को गिरफ्तार करने एवं उनकी स्वतंत्रता पर सार्वजनिक हित में रोक लगाने का अधिकार है। पुलिस को इस अधिकार का प्रयोग पूरे संयम एवं नियंत्रण के साथ करना चाहिए क्योंकि उनका यह कार्य नागरिकों के मूल अधिकारों पर अंकुश लगाता है। इसी प्रकार जमानत पर रिहा करने, घर की तलाशी, व्यक्तिगत तलाशी एवं पूछताछ जैसे अनेक ऐसे पुलिस दायित्व हैं जिनका निर्वाह प्रकारान्तर में नागरिकों के अधिकारों पर अंकुश लगाता है। अत: यह जरूरी है कि पुलिस पूरी संजीदगी, शालीनता एवं विवेक से इन दायित्वों का निर्वाह करें, जिससे वे नागरिकों के अधिकारों के हनन के आरोपों से बच सकें।

10.5 मानव-अधिकार अवहेलना के पुलिस प्रसंग

अनुभव एवं तथ्य यह संकेत देते है कि पुलिस अपने विवकाधिकारों का प्रयोग करते समय निर्धारित सीमाओं का उल्लंघन करती है, और ऐसे में जाने-अनजाने वह अपने नागरिक अधिकारों की अवहेलना का दोषी बना लेती है। हथकड़ी का प्रयोग, पूछताछ मे वैज्ञानिक साधनों का उपयोग नहीं करना, अभिरक्षा के लिए गए व्यक्तियों की शारीरिक जांच तथा चिकित्सा जैसे अनेक ऐसे बिन्दु हैं जिनको लेकर पुलिस पर नागरिक अधिकारों की अवहेलना के आरोप लगते रहते है। लोकतन्त्र में पुलिस अपनी कार्यप्रणाली के सभी क्षेत्रों में विवेक, धैर्य, संतुलन एवं सूझ-बूझ का प्रयोग करे और नागरिक अधिकारों की अवहेलना के आरोपों से बचे। पुलिस-अभिरक्षा में गए व्यक्तियों एवं पूछताछ के दौरान अविवेकशील एवं अनुपयुक्त तौर तरीके अपनाने की शिकायतों पर न्यायालयों ने समय-समय पर इस संदर्भ में दिशा-निर्देश जारी किए है। इन दिशा निर्देशों पर चर्चा किया जाना प्रासंगिक है।

संविधान के अनुच्छेद 22 के मुताबिक गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति को तत्काल गिरफ्तार के कारणों से अवगत कराया जाना चाहिए तथा तत्काल संबंधित अदालत के सामने पेश किया जाना चाहिए। नागरिकों के गिरफ्तारी से संबंधित इन प्रावधानों का कड़ाई से पालन नहीं किया जाता है जिसके कारण पुलिस को आलोचना का शिकार होना पडता हैं किसी भी व्यक्ति की गिरफ्तारी चूंकि संबंधित व्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर रोक लगाती है, अत: गिरफ्तारी महत्वपूर्ण और जरूरी प्रकरणों में ही की जानी चाहिए। उच्चतम न्यायालय से जोगिन्दरसिंह तथा प्रेमशंकर शुक्ला के मामलों मे गिरफ़्तारी के संबंध में महत्वपूर्ण निर्देश जारी किए हैं जिनकी अनुपालना कर पुलिस नागरिक अधिकारों की अवहेलना के आरोपों से बच सकती है। देश की विभिन्न न्यायालयों, उच्चतम न्यायालय, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग एवं राज्य मानव अधिकार आयोगों ने गिरतारी तलाशी, पूछताछ, अभिरक्षा में लिए गये नागरिकों के साथ व्यवहार आदि पर जो निर्देश दिए है, उनकी अनुपालना पुलिस नागरिक अधिकारों की रक्षा कर मानव गरिमा को बनाए रख सकती है। पुलिसकर्मियों का ऐसा व्यवहार रूख एवं सम्मान उनकी छवि में सुधार लाएगा। पुलिस की छवि में सुधार के साथ ही पुलिस जनता संबंधों की स्थिति बेहतर बनेगी जिसकी वजह से नागरिक-अधिकारों के उपयोग एवं सम्मान की स्थितियां भी बेहतर बन सकेंगी।

नागरिक अधिकारों के मामले किसी भी जागरूक, संवेदनशील एवं खुले समाज में बडे महत्व के विषय माने जाते है। अत: पुलिस को अपने कार्य, व्यवहार एवं आचरण को तदनुरूप ही ढालना चाहिए। आजादी के छ: दशक के बाद भी नागरिक अधिकारों के संदर्भ में पुलिस को जब-तब कटघरे मे खड़ा कर दिया जाता है। कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने की परम्परागत भूमिका से हट कर कल्याणकारी राज्य की स्थापना में सहायक होने से पुलिस के कार्य, कार्यशैली और सामाजिक जीवन में भागीदारी बढ़ गई हैं। पुलिस की कार्य-सूची में गैर परम्परागत कार्यो की संख्या में वृद्धि हुई है। दूसरी ओर सामाजिक विषमता एवं विसंगतियों में भी बढ़ोतरी हुई है। इससे पुलिस का कार्य पहले की अपेक्षा अधिक जटिल हुआ है। आम नागरिक पहले की अपेक्षा अपने अधिकारों के प्रति अधिक सचेत है। यद्यपि पुलिस से सामाजिक और नागरिक अपेक्षाओं के प्रकार और मात्रा दोनों में वृद्धि हुई है, तथापि आम पुलिसकर्मी को अभी भी स्थापित संवैधानिक व कानूनी सीमाओं में अपने कर्तव्य को अंजाम देना होता है। अत: पुलिस को इस संबंध में गहरे अंतरावलोकन की आवश्यकता है। साथ ही उसे अपनी सोच और अभिवृत्तियों में बदलाव की भी आवश्यकता हैं।

10.6 पुलिस से अपेक्षाएँ

मानव-अधिकारों के प्रति जागरूकता का स्तर निरन्तर बढ़ता जा रहा हैं। यह एक अच्छी स्थिति हैं त्रस्त मानवता के लिए यह एक शुभ संकेत भी हैं। मानव अधिकारों के प्रति उपलब्ध जागरूकता का स्तर किसी भी समाज की सभ्यता व संस्कृति की गुणवत्ता को मापने का एक महत्वपूर्ण पैमाना होता है। यही कारण है कि आज मानव-अधिकारों की सुरक्षा एक अहम मुद्दा बन गया है।

मनुष्य प्रकृति की श्रेष्ठतम रचना है। इसी वजह से आदमी को अन्य प्राणियों की तुलना में बेहतर दर्जा व विशिष्ट सम्मान प्राप्त हैं। इस विशिष्टता को बनाये रखने के लिए उसे जिन मूलभूत सुविधाओं से सज्जित किया जाता है, उन्हें मानव-अधिकारों के रूप में जाना एवं पहचाना जाता है। इन अधिकारों की रक्षा का दायित्व प्रत्येक व्यक्ति, समाज, सरकार एवं विशिष्ट संगठनों का होता है। इस संदर्भ में पुलिस की भूमिका का विशेष महत्व है। मानव-अधिकारों की रक्षा में पुलिस बहुत कुछ निर्णायक भूमिका का निर्वहन करती है। लेकिन, यदि पुलिसकर्मी, जिन्हें इन अधिकारों की रक्षा का

दायित्व सौंपा गया है, वे ही उनकी अवहेलना करने लग जायें तो मामला और अधिक संवेदनशील बन जाता है। जरूरी है कि पुलिस मानव-अधिकारों की अवहेलना के प्रति जागरूक रहे। इन अधिकारों पर होने वाले अतिक्रमणों एवं आक्रमणों को रोके। उससे भी अधिक जरूरी यह है कि पुलिस मानव-अधिकारों की अवहेलना स्वयं नहीं करे।

अपराध की प्रत्येक घटना पीड़ित व्यक्ति के मानव-अधिकार की अवहेलना है। उस अपराध की ईमानदारी एवं निष्ठा से तफतीश कर पुलिस मानव-अधिकारों के हनन की क्षतिपूर्ति करती है। पुलिस भूमिका की इस मूल प्रकृति के कारण पुलिस को मानवअधिकारों के संवाहक एव संरक्षक के रूप में सभी समाजों में स्वीकृति मिली हुई रहती है। तीसरी दुनिया के पिछड़े, गरीब एवं अविकसित समाजों की पुलिस को इस भूमिका का सही निर्वाह नहीं कर पाने के कारण कटघरे में खड़ा किया जाता रहा हैं। मानव-अधिकारों की अवहेलना के कारण उन्हें समाज की आलोचना एवं उपेक्षा का शिकार भी होना पड़ता हैं।

10.7 पुलिसकर्मी एवं मानव अधिकारों की अवहेलना

पुलिस द्वारा मानव-अधिकारों की अवहेलना के प्रकरणों को मुख्य रूप से दो श्रेणियों में रखा जा सकता है। पहली श्रेणी में पुलिस अभिरक्षा में मृत्यु, बलात्कार एवं गंभीर चोट लगने के प्रकरण आते हैं। दूसरी श्रेणी में अनुसंधान सही संपन्न नहीं करने, अपने कार्यो के निर्वाह में पक्षपात पूर्ण रवैया अपनाने, दुर्व्यवहार करने एवं साधारण मारपीट की घटनाओं को सम्मिलित किया जा सकता है।

पुलिसकर्मी मानव-अधिकारों की अवहेलना आमतौर पर असावधानी, अज्ञान, अहंकार एवं संवेदन हीनता के कारण करते है। असावधानी के अन्तर्गत वे घटनायें आती हैं जिनमें पुलिस द्वारा अकारण नागरिकों को अवैध तौर पर थाने पर बुला लिया जाता है। भय एवं आतंक का ऐसा माहौल बना दिया जाता है कि संबंधित व्यक्ति किसी न किसी दुर्घटना का शिकार हो जाता है। ऐसे प्रकरणों में संबंधित व्यक्ति कभी-कभी तो आत्महत्या तक कर लेता है। अज्ञान के कारण मानव-अधिकारों की अवहेलना की श्रेणी में वे घटनायें आती हैं, जिनमें पुलिस द्वारा उनके संपर्क में आए व्यक्ति के ऐसी चोट दी जाती है जिसके परिणामस्वरूप या तो वह मर जाता है या गंभीर रूप से घायल हो जाता हैं। अहंकार-जनित घटनाओं के अन्तर्गत पुलिस मनमाना व्यवहार करती है। पुलिसकर्मियोंकी इसी अहमन्यता के कारण नागरिकों 'के साथ गैरकानूनी कार्यवाही एवं गलत व्यवहार किया जाता है। अकारण मारपीट तक की जाती है। परिणामस्वरूप गंभीर घटनायें घटती है। नागरिकों को अपूरणीय क्षति का सामना करना पड़ता है। पुलिस-विभाग को गंभीर नुकसान भुगतना होता है। पुलिस मुख्यालय व राज्य सरकार के सामने असमंजसपूर्ण स्थितियाँ बनती है। ऐसे में पुलिस द्वारा मानव-अधिकारों की अवहेलना सभी के लिये गंभीर चिन्ता का विषय हैं। अत: पुलिसकर्मियों को इस विषय पर गहरा मनन एवं चिंतन कर अपने कार्य व व्यवहार, सोच व चिंतन तथा अभिवृतियों में बदलाव लाने की जरूरत है।

10.8 पुलिस-अभिरक्षा में मृत्यु

पुलिस-अभिरक्षा में मृत्यु एक बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण घटना होती है। संबंधित पुलिसकर्मियों पर हत्या के मुकदमें दर्ज होते है। थाने के सारे स्टाफ को बदलना पड़ता है। ऐसी घटनाओं से प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से जुड़े पुलिसकर्मियों के विरूद्ध कानूनी व विभागीय कार्यवाही करनी होती है। इन सब स्थितियों से पुलिस की छवि व मनोबल पर प्रतिकूल असर पड़ता है। जनता के आक्रोश के कारण कानून एवं व्यवस्था की गंभीर स्थितियां पैदा हो जाती है। राज्य सरकार को अनेक परेशानियों का सामना करना पड़ता हैं। पुलिस बल को भी कानून एवं व्यवस्था की स्थितियों से निपटने के लिए गंभीर चुनौतियों

का सामना करना पडता है। पुलिस द्वारा मानव-अधिकारों की अवहेलना की चर्चा समाचार पत्रों एवं मीडिया में व्यापक तौर पर होती है। परिणामस्वरूप इस प्रकार की घटनाओं से सभी को गंभीर नुकसान होता है। अत: जरूरी है कि ऐसी घटनाओं से पूरे तौर से बचा जाये। इन पर प्रभावी नियन्त्रण लगाया जाएं।

10.9 मानव-अधिकारों की अवहेलना-रोकने के उपाय

पुलिस द्वारा मानव-अधिकारों की अवहेलना नहीं हो, इसकी पुख्ता व्यवस्था होना जरूरी हैं। इस संदर्भ में प्रस्तावित कार्यक्रमों को चार भागों मे बांटा जा सकता है। सबसे पहले प्रत्येक पुलिसकर्मी के सोच व चिंतन मे बदलाव लाना जरूरी है। यह बदलाव पुलिसकर्मियों को शिक्षित व प्रशिक्षित कर किया जा सकता है। इस संदर्भ में पुलिस-प्रशिक्षण स्कूलों की भूमिका महत्वपूर्ण हैं सभी प्रशिक्षण-पाठ्यक्रमों मे मानव-अधिकार विषय को सम्मिलित किया जाना चाहिये। विशिष्ट प्रकार के पाठ्यक्रम भी मानव-अधिकार विषय पर समय-समय पर आयोजित किये जा सकते है। पुलिस की सोच में बदलाव व उनकी अभिवृत्तियों में परिवर्तन एक बहुत ही कठिन व दुष्कर काम हैं परन्तु यह काम है बडा महत्त्वपूर्ण। इस दिशा में किये जाने वाले सभी प्रयासों की यह आधारशिला है।

पुलिस को मानव-अधिकारों की रक्षा का प्रभावी अभिकरण बनाने के लिए सुधारात्मक प्रयास किये जाने जरूरी है। ऐसे सुधार पुलिस थानों, चौकियों व कार्य क्षेत्र में तैनात पुलिसकर्मियों के परिवेश में वांछित सुधार लाये जाकर किये जा सकते है। सभी स्तर के पुलिसकर्मियों के साथ-अधिकार विषय पर चर्चा की जानी चाहिए। अवहेलनाओं की घटनाओं के बारे में संवाद निरन्तर बनाये रखा जाना जरूरी हैं मानव-अधिकारों की अवहेलना की छोटी से छोटी घटना को दरगुजर करना पुलिस को परेशानी में डाल सकता है। कार्य-क्षेत्र में तैनात वरिष्ठ अधिकारियों की भूमिका इस संबंध में बहुत महत्वपूर्ण हैं।

इन सभी प्रयासों तथा सुधारात्मक कोशिशों के बावजूद भी जिन पुलिसकर्मियों के कार्य एवं व्यवहार में सुधार नहीं आता है, उनके खिलाफ प्रभावी दण्डात्मक कार्यवाही की जानी जरूरी है। बड़ी घटनाओं में तो कार्यवाही हो जाती है। ऐसी घटनायें पुलिस मुख्यालय, राज्य सरकार व मीडिया के ध्यान में आ जाती है। छोटी घटनाओं पर लीपा-पोती कर दी जाती है। यह सही नहीं हैं, क्योंकि छोटी घटनायें अन्तोगत्वा गंभीर घटनाओं का रूप ले लेती है। पुलिस-प्रशिक्षण-स्कूलों के चेतनागत तथा सुपरवाइजरी अधिकारियों के सुधारात्मक व दण्डात्मक प्रयासों के साथ पुलिस की समग्र कार्यप्रणाली में सुधार लाया जाना भी बहुत जरूरी है। पुलिस को गैर कानूनी कार्य करने से रोका जाना चाहिये। नागरिकों को अवैध रूप से थानों पर बुलाना, उन्हें यातनायें देना, अपराधियों एवं गवाहों को अनावश्यक रूप से प्रताडित करना, अनुचित गिरफ़्तारियां करना एवं नागरिकों के साथ थर्ड डिग्री का प्रयोग करना पुलिस कार्यप्रणाली के साथ जुड़े हुये वे अवैध कार्य है जिन्हे रोकना बहुत आवश्यक है।

किसी भी व्यक्ति को अवैध तौर पर थाने पर बुलाना, उस व्यक्ति के मानव-अधिकार की गंभीर अवहेलना हैं। लोगों को अवैध रूप से थाने में नही बुलाया जाय, इसके लिये कोई कारगर व्यवस्था होना जरूरी है। थाने पर आने वाले व्यक्तियों एवं नागरिकों के आवागमन के संबंध में एक आगन्तुक रजिस्टर थाने के मुख्य द्वार पर संतरी के पास रखा जा सकता है। राजस्थान के दो-एक जिलों में यह प्रयोग किया गया है जिसके अच्छे परिणाम सामने आये है। यह व्यवस्था सभी जगह स्थापित की जा सकती है। गिरतारी के संबंध में भी पुलिस विवेकशील रूख नहीं अपनाती है।

जमानती अपराधों में भी पुलिस नागरिकों को तुरंत जमानत पर रिहा नहीं करती है। उन्हें परेशान करने की शिकायतें मिलती रहती है। अत: यह सुनिश्चित किया जाना चाहिये कि जमानती अपराधों के थाने के बाहर ही जमानत ले ली जाये। किसी भी व्यक्ति को बिना सफीने के थाने में नहीं बुलाया

जाना चाहिये। गैर जमानती अपराधों में भी गिरफ्तारी तफ्तीशी आवश्यकताओं के अनुसार की जानी चाहिए। गिरफ्तार व्यक्तियों को अनावश्यक पुलिस रिमाण्ड पर नहीं लिया जाना चाहिए। गिरफ्तार व्यक्ति के अधिकारों के बारे में प्रत्येक पुलिसकर्मी को जानकारी होना बहुत जरूरी है। इस संबंध में अदालतों एवं राष्ट्रीय मानव- अधिकार-आयोग के निर्देशों की कडाई से पालना की जानी चाहिये। गिरफ्तार व्यक्ति की सूचना थाने के सूचना पट्ट पर लगाना, गिरफ्तारी की सूचना रिश्तेदारों को देना, गिरफ्तार शुदा व्यक्ति का मेडीकल परीक्षण करवाना, बीमार व्यक्ति को तुंरत अस्पताल ले जाना तथा हथकड़ी का न्यायपूर्ण प्रयोग करना, ऐसे निर्देश है जिनकी पालनाकर पुलिस मानव-अधिकारों की अवहेलना के आरोपों से बच सकती है।

पुलिस के अनुसंधान करने के तौर-तरीके पुराने एवं रूढिवादी है। अनुसंधान में वैज्ञानिक तकनीक के प्रयोग का प्राय: अभाव रहता है। अपने जिम्मे का कार्य पुलिसकर्मी समय पर नहीं करते है। परिणामस्वरूप उन पर काम का बोझ बढ़ता रहता है। काम के इस बोझ के कारण एवं पुलिस-कार्यो की प्रकृति से उत्पन्न तनाव के फलस्वरूप तथा शीघ्र फल-प्राप्ति की आशा में पुलिस थर्ड डिग्री मैथड्स का प्रयोग करती है। आश्चर्य की बात यह है कि आम पुलिसकर्मी यह नहीं जानता कि फर्स्ट डिग्री व सैकिण्ड डिग्री मैथड्स क्या है। पुलिस कार्य प्रणाली के फर्स्ट एव सैकिण्ड डिग्री मैथड्स के अज्ञान के कारण अधिकांश पुलिसकर्मी थर्ड डिग्री मैथड्स का प्रयोग करते है। फर्स्ट डिग्री मैथड्स का तात्पर्य यह है कि पुलिसकर्मी अपने कार्यो के निस्तारण में वैज्ञानिकतरीकों का प्रयोग करें। सैकिण्ड डिग्री मैथड्स का तात्पर्य यह है कि सभी व्यक्तियों से पूछताछ वैज्ञानिक तरीकों से की जाकर साक्ष्यों का संग्रह किया जाएं। उक्त दोनों ही तरीकों का प्रयोग पुलिसकर्मी प्राय: नहीं करते है और तत्काल फल-प्राप्ति के लिए थर्ड डिग्री मैथड्स का इस्तेमाल करते है। यह भी होता है कि पुलिसकर्मी थर्ड डिग्री व्यक्तियों के साथ फर्स्ट डिग्री का व्यवहार करते है एवं फर्स्ट डिग्री व्यक्ति के साथ थर्ड डिग्री का व्यवहार करते है।

पुलिस को यह समझना भी जरूरी है कि आज हम एक खुले समाज मे रह रहे है। स्वाभाविक है कि पुलिस की कोई गतिविधि छुपी हुई नहीं रह सकती। साथ ही जनता भी अब अपने अधिकारों के प्रति बहुत जागरूक हो चुकी हैं। विभिन्न राजनीतिक दल, समाज सेवी संस्थाएँ, मास मीडिया, जन प्रतिनिधि एवं प्रबुद्ध वर्ग ऐसे विशेष दबाव समूह है, जो पुलिस के कार्य एवं व्यवहार पर कडी नजर रखते हैं तथा निरन्तर उनके कार्यो का लेखा-जोखा रखते है। यहां तक की समय आने पर छोटी से छोटी त्रुटि पर व्यापक प्रतिक्रिया व्यक्त करते है। इन सभी बातों को मद्देनजर रखते हुए तथा समय की बदली मांग के अनुसार प्रत्येक पुलिसकर्मी को अपने कार्य एवं व्यवहार में व्यापक संजीदगी एवं मानवीयता का समावेश करना चाहिए। नई सहस्त्राब्दी के आगाज एवं पुलिस मानव अधिकारों की अवहेलना को रोककर नागरिकों के अधिकारों की रक्षा का प्रभावी संवाहक बने, यह जरूरी हैं इस संदर्भ एक व्यापक, वैज्ञानिक एवं प्रभावी अभियान चलाकर, पुलिस की अभिवृतियो, रूझान, कार्य-प्रणाली एवं व्यवहार में सुधार लाना जरूरी हैं। प्रजातांत्रिक समाज की पुलिस के रूप में पुलिस संगठन ढ़ले, यह बडी चुनौती सहस्त्राब्दी के प्रारम्भ में आम पुलिसकर्मी एवं पुलिस नेतृत्व के सामने हैं। इस चुनौती का सामना पुलिस को एक संगठन के रूप में तथा प्रत्येक पुलिसकर्मी को अपने व्यक्तिगत स्तर पर करना हैं। पुलिस के संपर्क में आने वाले नागरिकों के मानव-अधिकारों का हनन पुलिसकर्मी नहीं करें, यह बहुत जरूरी है। संदर्भ में पीडित व्यक्तियों, गवाहों अपराधियों एवं बंदियों के मानव-अधिकार के बारे में पुलिस को जानकारी होना बहुत ही जरूरी है। इन सभी वर्गो के व्यक्तियों के मानव-अधिकार के विविध पक्षों की किया जाना समीचीन प्रतीत होता है।

10.10 पीडित और पुलिस

कोई भी पीडित व्यक्ति प्राय: सबसे पहले पुलिस के संपर्क में आता है। मानवाधिकारों के इस दौर में पीडित व्यक्ति के कई अधिकार सुनिश्चित है। यह आवश्यक है कि पीडित के मानव-अधिकारों का पुलिस सम्मान करें। इसके लिए जरूरी है कि पुलिस निम्नांकित कार्य करें:-

(i) प्रथम सूचना तत्काल एवं बिना परेशानी के दर्ज करें।

(ii) पीड़ित व्यक्ति की पीड़ा को पुलिस अधिकारियों द्वारा सहानुभूति द्वारा सहानुभूति सुना जाना चाहिए।

(iii) महिला पीड़ित के मामले में पुलिस को सावधानी और संवेदनशीलता से काम लेना चाहिए। ऐसे मामले में पुरूष पुलिसकर्मी की बजाय महिला पुलिसकर्मी द्वारा कार्यवाही की जानी चाहिए।

(iv) वाहन-दुर्घटना के अपराधों में यदि पीड़ित व्यक्ति जख्मी होकर मौके पर पड़ा है तो पुलिस अधिकारी को तुरंत मौके पर जाकर कार्यवाही करनी चाहिए। इलाज व चोटों के परीक्षण के लिये घायल को चिकित्सालय पहुंचाना चाहिए।

(v) सांप्रदायिक दंगें, जातीय झगडे, डकैती या आतंकवादी हमले के कारण एक साथ बहुत से लोग पीड़ित हो जाते हैं तथा सामूहिक नरसंहार की घटनाएं भी हो जाती है। ऐसे प्रकरणों में सबसे पहले पीडितों को चिकित्सा-सुविधा प्रदान करवाने में पुलिस को मदद करनी चाहिए। पीड़ितोंके गुस्से से मनोवैज्ञानिक तरीके से निपटना चाहिए। पीडितों के बयान लेते समय यह सावधानी रखनी चाहिए कि बिना घबराहट व भय के वे सच्ची बात बताएं। लाशों को जल्दी से जल्दी पोस्टमार्टम करके हटाने की कोशिश की जानी चाहिये। घटना में पीडितों को क्षतिपूर्ति की पहल भी पुलिस को करनी चाहिये।

(vi) पीड़ितों के प्रति न सिर्फ अच्छा व्यवहार करना चाहिये, बल्कि पीडित को मदद देने के लिये गैर सरकारी संगठनों की मदद ली जानी चाहिए।

(vii) गतिमान अनुसंधान भी पीडित को राहत दिलाने का एक उचित तरीका है। इससे न सिर्फ पीडित को मानसिक रूप से दिलासा मिलती है, बल्कि अभियुक्त के खिलाफ सबूतों को भी नष्ट होने से पूर्व ही एकत्र किया जा सकता है।

(viii) अग्निकांड व बाढ आदि के मामलों में तुरन्त मौके पर पहुंच कर सहायता करनी चाहिये और पीडित के नुकसान की रिपोर्ट रोचनामचे में दर्ज कर एक प्रति पीड़ित को दे कर उसे निर्देशित करना चाहिए कि सक्षम अधिकारी के पास राहत की राशि प्राप्त करने के लिए आवेदन करें।

10.11 गवाह के अधिकार

आपराधिक न्याय-प्रशासन में गवाह की स्थिति काफी महत्वपूर्ण हैं। दंड के निर्धारण में गवाह की भूमिका अपरिहार्य है। यह एक विडम्बना ही है कि अक्सर लोग गवाह के लिए आसानी से तैयार नहीं होते है। इस समस्या से निपटने का यही सबसे अच्छा तरीका है कि गवाहों के अधिकारों को ध्यान में रखा जाएं, उनके अधिकारों का सम्मान किया जाएं। सबसे पहले पुलिस बल के प्रत्येक स्तर के अधिकारी को गवाही की कानूनी स्थिति और उनके अधिकारों के बारे में जानकारी होना जरूरी है।

दण्ड-प्रक्रिया-संहिता की धारा 160 के अनुसार अनुसंधान अधिकारी को यदि किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में जानकारी मिलती है जो मामले के तथ्यों से परिचित होता प्रतीत होता है, तो उस गवाह को वह अपने समक्ष हाजिर होने के लिए लिखित आदेश दे सकता है। परंतु किसी स्त्री और 15 वर्ष से कम आयु के अवयस्क पुरूष को उसके निवास स्थान से भिन्न किसी स्थान पर हाजिर होने की अपेक्षा नहीं की जाएगी। गवाह की यात्रा का खर्चा पुलिस अधिकारी द्वारा दिए जाने के लिए राज्य सरकार

को उपबंध करने का निर्देश दिया गया है। यह महत्वपूर्ण है (केन्द्रीय गृह सचिव के पत्र दिनांक 10.1.94 व केन्द्रीय गृह-मंत्रालय द्वारा सभी राज्यों को जारी मानवाधिकार मार्गदर्शिका में उल्लेख है) धारा 160(1) सीआरपीसी का उल्लंघन कर स्त्री या अवयस्क पुरूष को गवाही के लिए थाने में हाजिर होने के लिए मजबूर करना मानवाधिकार का उल्लंघन होगा। इसलिए पुलिस-अधिकारियोंको चाहिए कि वे गवाहों के इन अधिकारों का उल्लंघन नही करें।

धारा 161 दंड-प्रक्रिया-संहिता के अनुसार अनुसंधान अधिकारी गवाह से मौखिक परीक्षा कर सकता है। संविधान के अनुच्छेद 20(3) के अनुसार किसी अपराध के लिए अभियुक्त व्यक्ति को स्वयं अपने विरूद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा। इस नियम को आधुनिक विधिशास्त्र के प्रतिष्ठित सिद्धान्त का भी समर्थन प्राप्त है। इसलिए अब यह सिद्धान्त गवाह का मानवाधिकार बन चुका है। पुलिस अधिकारियों को चाहिए कि वे इस मानवाधिकार का सम्मान करें।

धारा 63(1) दंड-प्रक्रिया-संहिता के अनुसार पुलिस अधिकारी भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 24 में वर्णित किसी प्रकार की उत्प्रेरणा, धमकी या वचन गवाह या अभियुक्त को अनुसंधान की प्रक्रिया में नहीं देगा। पुलिस अधिकारियों को चाहिये कि इस प्रावधान का वे पूरी तरह पालन करें।

धारा 171 दंड प्रक्रिया संहिता यह निर्देश देती है कि परिवादी (पीड़ित) या गवाह से जो न्यायालयमें जा रहा है, पुलिस अधिकारी के साथ जाने कीअपेक्षा नहीं की जाएगी और न उसे अनावश्यक रूप से अवरूद्ध किया जाएगा या असुविधा पहुंचाई जाएगी और न उसे अपनी हाजिरी के लिए कोई प्रतिभूति देने की अपेक्षा की जाएगी। इस मुद्दे को भी मानवाधिकार माना जाकर इसका पालन करना चाहिए।

धारा 284 दण्ड-प्रक्रिया-संहिता के कुछ गवाहों को हाजिरी से मुक्ति देकर उन्हें अपने निवास पर ही पहुंचने वाले कमीशन के समक्ष गवाही देने की सुविधा दी गई है। (धारा 100(4) दंड प्रक्रिया-संहिता के अनुसार) तलाशी वारंट की पालना करते हुए पुलिस-अधिकारी द्वारा मौहल्ले के दो या अधिक स्वतंत्र और प्रतिष्ठित निवासियों को बुलाया जाएगा। तलाशी की रिपोर्ट व जब्त की गई वस्तुओं की सूची पर गवाहों के भी हस्ताक्षर कराये जाएंगे।

धारा 175 दण्ड-प्रक्रिया-संहिता यह आदेश देती है कि जांच-अधिकारी उपयुक्त गवाहों एवं अन्य लोगों को, जिन्हें वह मामले के तथ्यों से परिचित मानता है, लिखित आदेश द्वारा समन कर सकता है। वे लोग उसके सभी सवालों के जवाब देने के लिए बाध्य है, सिवाय उन जवाबों के जो खुद को आपराधिक आरोप, शास्ति या समपहरण की आशंका में डालने की प्रवृति रखते है। अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 ने इस क्षेत्र में एक नई धारा जोड़ी है, जिसके द्वारा अधिनियम का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित करने का सरकार का कर्तव्य सुनिश्चित किया गया है। नियमों में गवाह को यात्रा का खर्चा देने का प्रावधान है, लेकिन पुलिस प्रशासन द्वारा गवाह को भुगतान किये जाने की कोई स्थाई प्रक्रिया नहीं लागू की गई है। नागरिक जागरूकता के इस दौर में इस आवश्यकता की पूर्ति किया जाना आवश्यक है।

पुलिस द्वारा मानवाधिकार-उल्लंघन को रोकने हेतु एक मार्गदर्शिका केन्द्रीय गृह मंत्रालय द्वारा जनवरी, 1996 में सभी राज्यों को भेजी गई है। (इसमें पैरा संख्या 13 में गवाहों के अधिकार के रूप में धारा 160(1) दंड-प्रक्रिया-संहिता का हवाला दिया गया है) इस धारा के उल्लंघन को मानवाधिकार के उल्लंघन की श्रेणी में माना गया है। पुलिस के उच्चाधिकारियों को पैरा संख्या 16 के अनुसार इन निर्देशों के पालन करने के लिए उत्तरदायी माना गया है।

पुलिस-अधिकारियों को चाहिए कि गवाहों से बयान यथा सम्भव उनके निवास स्थान पर ही लिये जाए। यदि थाना या अन्यत्र बुलाना हो तो बिना उनका समय बर्बाद किये बिना बयान लिखे जाएं। गवाहों के बैठने की उचित व्यवस्था, की जानी चाहिये। खास तौर पर पुलिस कार्यवाही के दौरान रखे गये गवाहों का सम्मान आहत नहीं होना चाहिए, क्योंकि ऐसा होने से जनता के बीच गलत संदेश जाता है। गवाह से कड़वे और परेशान करने वाले प्रश्न पूछने से बचना चाहिए। गवाह की सुरक्षा की आवश्यकता होने पर तुरंत इसका इंतजाम होना चाहिए। पुलिसकर्मियों का तस्करी, डकैती, चोरी आदि की गुप्त जानकारी प्राप्त करने के लिए मुखबिर तैनात करने पड़ते हैं। ये मुखबिर भी एक तरह से गवाह ही है, इन लोगों की सुरक्षा व गोपनीयता का पुलिसकर्मियों को ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि कई बार अपराधी इनकी जान के दुश्मन बन जाते है।

10.12 अभियुक्त के अधिकार

पुलिस पर मानव अधिकारों की अवहेलना के सबसे अधिक आरोप अभियुक्तों से संबंधित होते है। अभियुक्त को सजा देने का अधिकार न्यायालयों का होता है। पुलिस को किसी घटना से जुड़े व्यक्ति की आपराधिक संलग्नता पर निर्णय लेने का कोई अधिकार नहीं होता है। जो भी व्यक्ति, पुलिस के संपर्क में आता है, उसके साथ दुर्व्यवहार करना व उसे किसी भी प्रकार से दंडित करने का अधिकार पुलिस को नहीं होता हैं यदि कोई पुलिसकर्मी इस प्रकार का व्यवहार करता है तो वह मानव अधिकारों की अवहेलना का दोषी माना जाता है। मनुष्य मात्र एक बुनियादी सम्मान व शिष्टता का अधिकारी है और उसके साथ इस अवधारणा की प्रतिकूलता में व्यवहार करने से मानव अधिकारों की अवहेलना का मार्ग प्रशस्त होता है। प्रत्येक पुलिसकर्मी को मानव अधिकारों के बारे में पूरी जानकारी होनी चाहिए।

10.13 आपराधिक न्याय-व्यवस्था व मानव अधिकार

आपराधिक न्याय व्यवस्था को भी मानव-अधिकारों के प्रहरी एवं संवाहक के रूप में पहचान मिली हुई है। आपराधिक न्याय व्यवस्था के सभी घटक मानव-अधिकारों की रक्षा, सुरक्षा एवं संरक्षण से किसी न किसी रूप से जुडे हुए होते है। आपराधिक न्याय व्यवस्था के महत्वपूर्ण घटक निम्नांकित है:-

(i) मानव-अधिकारों को शक्तिशाली एवं प्रभावी बनाने तथा उनके आविर्भाव एवं क्रियान्वयन को मजबूत बनाने के लिए विधेयकों, कानूनों, नियमों, एवं अधिनियमों का निर्माण किया जाता है। इन प्रावधानों के जरिए मानव अधिकारों को न सिर्फ कानूनी पहचान मिलती है, बल्कि उनकी अवहेलना को रोकने, अपराधियों को दण्डित करने एवं पीड़ित को राहत एवं सहायता प्रदान करने के स्पष्ट प्रावधान भी इन माध्यमों के जरिए अस्तित्व में आ जाते हैं। कानून, नियम एवं अधिनियम इस प्रकार मानव-अधिकारों के न सिर्फ मजबूत स्त्रोत माने जाते है, बल्कि वे उनकी चाकचौबन्द पहरेदारी कर एक प्रभावी संरक्षक के रूप में भी अपनी भूमिका का निर्वाह करते हैं।

(ii) मानव अधिकारों से संबंधित अपराधों एवं अवहेलनाओं के संबंध में कार्यवाही करने का दायित्व मुख्य रूप से पुलिस को दिया जाता है। मानव अधिकारों से संबंधित प्रकरणों का पंजीकरण पुलिस थानों में किया जाता है तथा पुलिस अधिकारी त्वरित, प्रभावी एवं ठोस कार्यवाही अमल में लाकर एक तरफ जहां दोषी को दण्डित करवाने की कार्यवाही को प्रारम्भ करते है, वहीं पीड़ित पक्ष को राहत दिलवाने के कार्य को भी सहयोग प्रदान करते है।

(iii) आपराधिक न्याय-व्यवस्था के अन्तर्गत अपराधियों को दण्ड दिलवाकर पीड़ित पक्ष के मानव अधिकारों की क्षतिपूर्तिकिए जाने की न्यायिक व्यवस्था सभी प्रजातांत्रिक एवं प्रगतिशील समाजों में मौजूद रहती है इस सारी प्रक्रिया में अभियोजना पक्ष मूलतः "ड्यू प्रौसेस ऑफ लॉ" की व्यवस्था को मूर्त रूप प्रदान करते है।

(iv) मानव अधिकारों की अवहेलना के फलस्वरूप पीडित को न्याय दिलवाने का काम अदालतें, न्यायालय एवं न्यायाधीश करते है। इसके अलावा यदि किसी समाज में मानव अधिकारों के बारे में कोई असंतोषजनक स्थिति मौजूद रहती है तो उस बारे में भी न्यायपालिका को आवेदन किया जा सकता है। न्याय के लिए गुहार की जाकर असंतोषजनक एवं अनुपयुक्त मानव-अधिकार स्थितियों के निराकरण के लिए संबंधित इकाई एवं संगठन के लिए मुनासिब अदालती निर्देश भी प्राप्त किए जा सकते है। मानव अधिकारों के संदर्भ में इस प्रकार न्यायपालिका एवं न्यायाधीशों की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाती है। मानव अधिकार जनित स्थितियों की समीक्षा, अवहेलना के प्रकरणों की अन्वीक्षा एवं अपराधियों को दण्डित कर मानव अधिकारों की गरिमा को बनाए रखने का कार्य अदालतें करती है।

(v) मानव अधिकारों से संबंधित अपराधों के निराकरण एवं अपराधियों को दण्डित करने के लिए उन्हें अन्ततोगत्वा जेलों एवं सुधार-ग्रहों में भेजा जाता है। आपराधिक न्याय-व्यवस्था की यह अन्तिम कडी दोषियों को दण्डित करने, संभावित अवहेलनाओं को रोकने एवं पीडितों को राहत प्रदान करने के संदर्भ में सभी समाजों में मौजूद रहकर मानव-अधिकारों को सुरक्षित बनाएं रखनेका अहम कार्य करती है।

10.14 विधि-प्रवर्तन अधिकारियों की आचार संहिता

17 दिसम्बर 1979 को संयुक्त राष्ट्र-महासभा ने विधि प्रवर्तन अधिकारियों हेतु एक आचरण-संहिता का प्रस्ताव तैयार किया है। इस विधि को लागू करने वाले विभिन्न विभागों के अधिकारीगण की शक्ति को मर्यादित करने के लिए आवश्यक समझा गया। (संहिता के अनुच्छेद 1 की टिप्पणी के अनुसार) विधि-प्रवर्तन-अधिकारियों में वे सभी अधिकारी शामिल हैं जो पुलिस शक्तियों, विशेषकर गिरफ्तारी और विरोध करने की शक्ति का प्रयोग करते हैं। संयुक्त राष्ट्र के सदस्य होने के नाते भारत के सभी विधि-प्रवर्तन-विभागों पर यह संहिता लागू होती है। पुलिस कस्टम, सेंट्रल-एक्साइज, नारकोटिक्स ब्यूरो, रेवेन्यू इंटेलीजेंस, कोस्टल गार्ड, आबकारी विभाग व राजस्व विभाग जैसे सभी विभागों के कर्मचारियों पर यह आचरण-संहिता लागू होती है। यह संहिता मानवाधिकारों की रक्षा के लिए एक महत्वपूर्ण कदम के रूप में विश्वभर में स्वीकृत की गई है।

अनुच्छेद-1 :- विधि प्रवर्तन अधिकारीगण सदैव उन पर आरोपित किये गये कर्त्तव्यों का निर्वाह इस प्रकार करें कि समाज की सेवा व व्यक्तियों की विधि विरूद्ध कार्यो से सुरक्षा हो। उनका कार्य, उनके व्यवसाय द्वारा वांछित उच्च स्तरीय उत्तरदायित्व के अनुरूप हो।

(a) विधि-प्रवर्तन-अधिकारियों में सभी नियुक्त और मनोनीत अधिकारी हैं, जो पुलिस-शक्तियों, विशेष रूप से गिरफ्तार और निरुद्ध करने की शक्तियों का प्रयोग करते हैं।

(b) जिन देशों पुलिस शक्तियों का प्रयोग सैनिक अधिकारियों व राज्य-सुरक्षा बलों द्वारा किया जाता है वहाँ विधि प्रवर्तन अधिकारियों में ऐसे अधिकारी भी शामिल होंगे।

(c) समाज की सेवा का अर्थ है विशेष रूप से समाज के ऐसे वर्गो की सहायता जिन्हें व्यक्तिगत, आर्थिक, सामाजिक या अन्य कारणों से सहायता की आवश्यकता है।

(d) इस प्रावधान का विस्तार हिंसक और हानिकारक कार्यो तक ही नहीं है, बल्कि दांडिक कानूनों द्वारा निषेधित कार्यो तक भी है।

अनुच्छेद-2 :- कहता है कि अपने कर्त्तव्यों के निर्वाह में सभी विधि प्रवर्तन अधिकारी मानव गरिमा की रक्षा करेंगे और मानव-अधिकारों को बनाये रखेंगे।

(a) मानवाधिकारों को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों द्वारा पहचाना और रक्षित किया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय उपकरण है - मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा नागरिक और राजनैतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय करार, जातीय भेदभाव के निषेध की संयुक्त राष्ट्र घोषणा, रंगभेद के दमन हेतु अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेन्शन आदि।

(b) इस प्रावधान की राष्ट्रीय टिप्पणियों में अधिकारों की रक्षा हेतु राष्ट्रीय प्रावधान होंगे।

अनुच्छेद-3 :- विधि-प्रवर्तन-अधिकारी शक्ति का प्रयोग केवल अत्यंत आवश्यकता पर और कर्त्तव्य के निर्वहन की मात्रा तक ही करेंगे।

(a) इस प्रावधान का जोर इस तथ्य पर है कि विधि-प्रवर्तन-अधिकारीगण अपवाद स्वरूप ही शक्ति का प्रयोग करेंगे और वह भी अब, जब अपराध की रोकथाम और अपराधी या संदिग्ध अपराधी की गिरफ्तारी के समय अति आवश्यक हो। आवश्यकता से अधिक मात्रा में शक्ति काप्रयोग नहीं करेंगे।

(b) राष्ट्रीय कानून सामान्य रूप से बल के प्रयोग को आनुपातिक रूप से प्रतिबंधित करते है। अनुपात के इस सिद्धान्त का सम्मान इस प्रावधान के अर्थ को समझने में करना चाहिए। किसी भी मामले में शक्ति का प्रयोग गैर-अनुपातिक नहीं होना चाहिए।

(c) आग्नेय अस्त्रों का प्रयोग आत्यंतिक साधन के रूप में मानना चाहिए। आग्नेय अस्त्रों के प्रयोग को टालने की प्रत्येक कोशिश की जानी चाहिये, विशेष रूप से बच्चों के मामले में। सामान्य रूप से, आग्नेय अस्त्रों का प्रयोग तभी होना चाहिये, जब अपराधी द्वारा हथियार बंद विरोध किया जा रहा हो और अन्यों के जीवन को खतरा पैदा कर रहा हो। प्रत्येक दशा में जब आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया गया हो, तो सक्षम अधिकारी को तुरन्त सूचना दी जानी चाहिए।

अनुच्छेद-4 :- विधि-प्रवर्तन-अधिकारियों के पास मौजूद गोपनीय मामले, गोपनीय रहने चाहिए जब तक कि कर्त्तव्य पालन या न्याय की आवश्यकता विपरीत कार्य करने को न बाध्य करें।

विधि-प्रवर्तन-अधिकारियों के पास, उनके कार्य के अनुरूप ही, ऐसी सूचनायें होती है जो अन्य व्यक्तियों के निजी जीवन या हितों से संबंधित हो। इन सूचनाओं के प्रयोग में सावधानी रानी चाहिए। उन्हें सार्वजनिक करने की आवश्यकता तभी होगी, जब कर्त्तव्य पालन या न्याय की आवश्यकता हो। अन्य मामलों में उन्हें सार्वजनिक करना सर्वथा अनुचित है।

अनुच्छेद-5 :- कोई विधि प्रवर्तन अधिकारी यातना या अन्य क्रूर व अमानवीय सजा को न तो कारित करेगा और न सहन करेगा। कोई विधि-प्रवर्तन-अधिकारी ऐसी यातना को क्रूर अमानवीय सजा को न्याय संगत ठहराने के लिए असाधारण स्थितियों जैसे- युद्ध, युद्ध की धमकी, राष्ट्रीय सुरक्षा की धमकी आंतरिक राजनैतिक अस्थिरता या आपात-स्थिति आदि आह्वान नहीं करेगा।

(a) यह निषेध यातना से सुरक्षा की घोषणा से पैदा हुआ है। यह कार्य मानव-गरिमा के प्रति अपराध है।

(b) यातना को इस प्रकार परिभाषित किया गया है "टॉर्चर का अर्थ है ऐसा कार्य जिसमें तीव्र शारीरिक या मानसिक दर्द होता है और जो किसी अधिकारी द्वारा नागरिक को दिया जाता है जिसका उद्देश्य है- स्वीकृति की सूचना प्राप्त करना या उसके द्वारा किये गये या करने का शक हुए कार्य की सजा देना, या उसे या अन्य व्यक्ति को धमकी देना। इसमें विधि सम्मत शास्तियों

से उद्भूत अंतर्निहित या आनुषंगिक पीड़ा शामिल नहीं है, जहाँ तक कि वह कैदियों के साथ व्यवहार के मानक नियमों के अनुरूप है।

अनुच्छेद-6 :- विधि-प्रवर्तन-अधिकारी उनकी अभिरक्षा में मौजूद व्यक्तियों के स्वास्थ्य की पूरी सुरक्षा करेंगे और आवश्यकता पड़ने पर चिकित्सा उपलब्ध करायेंगे।

(a) चिकित्सा सुविधा का आशय है- किसी चिकित्सा-व्यवसायी या पैरामैडिकों की सेवाएँआवश्यकता पड़ने पर उपलब्ध कराना।

(b) अधिकारी यह भी देखेगा कि विधि-प्रवर्तन-क्षेत्र में उपलब्ध डाक्टर द्वारा सिफारिश करने पर बाहरी चिकित्सा-व्यवसायी की सुविधा उपलब्ध करायी जावे।

(c) विधि-प्रवर्तन-अधिकारी हिंसा से पीड़ित लोगों के लिये भी चिकित्सा सुविधा उपलब्ध करायेंगे।

अनुच्छेद-7 :- विधि-प्रवर्तन-अधिकारी भ्रष्टाचार का कोई कार्य नहीं करेंगे। वे ऐसे कार्यो का पूरी शक्ति सेविरोध करेंगे।

(a) भ्रष्टाचार भी अन्य शक्ति-दुरुपयोग की भाँति विधि-प्रवर्तन-अधिकारी के कार्य से असंगत है। जो अधिकारी भ्रष्टाचार करता है-उस पर कानून पूरी तरह से लाग होना चाहिये, क्योंकि सरकार अगर अपने अधिकारियों पर कानून लागू नहीं कर सकती है तो नागरिकों पर भी कानून लागू नहीं कर पायेगी।

(b) हालांकि भ्रष्टाचार की परिभाषा राष्ट्रीय कानून के अधीन होगी। फिर भी कई कार्य व लोप जो भेंट, वायदे या प्राप्ति के कारण किया गया या न किया गया हो, इसमें शामिल होगा।

(c) भ्रष्टाचार के कार्य में भ्रष्टाचार का प्रयत्न भी शामिल माना जायेगा।

अनुच्छेद-8 :- विधि-प्रवर्तन-अधिकारीगण, कानून और इस संहिता का सम्मान करेंगे। वे इसके उल्लंघन का विरोध और रोकथाम पूरी शक्ति से करेंगे। जब अधिकारी को यह विश्वास हो कि उल्लंघन हो गया है या होने वाला है तो वह तुरंत अपने उच्चाधिकारी को रिर्पोट करेगा। आवश्यकता हो तो अन्य उचित अधिकारी को रिर्पोट करेगा जिसमें मूल्यांकन या उपचार की शक्ति है।

(a) जहाँ भी इस कोड को राष्ट्रीय कानून में शामिल किया गया है, वहाँ इसकी पालना की जायेगी, अगर राष्ट्रीय कानूनों में इस कोड से ज्यादा सख्त प्रावधान है तो इन सख्त प्रावधानों की पालना की जायेगी।

(b) यह अनुच्छेद एक तरफ उस एजेंसी को जिस पर लोक सुरक्षा आश्रित है, आंतरिक अनुशासन की आवश्यकता और दूसरी तरफ मूल मानवाधिकारों के उल्लंघन से निपटने की आवश्यकता के बीच संतुलन की माँग करता है। विधि-प्रवर्तन-अधिकारी ऐसे उल्लंघनों की रिर्पोट अपनी कमान के भीतर करेंगे और कमान के बाहर तभी करेंगे जब कोई और उपचारउपलब्ध या कारगर न हो। विधि-प्रवर्तन-अधिकारी द्वारा यह रिर्पोट किये जाने के आधार पर कि इस संहिता का उल्लंघन हो गया है, वे प्रशासनिक या अन्य दण्ड के भागी नहीं होंगे।

(c) मूल्यांकन और उपचार की निहित शक्ति वाले उचित प्राधिकारी या संगठन का अभिप्राय राष्ट्रीय कानून के अधीन विद्यमान किसी भी ऐसे प्राधिकारी या संगठन से है, चाहे वह विधि-प्रवर्तन-एजेंसी के भीतर हो या उससे स्वतंत्र, जिसे इस संहिता के उल्लंघन से पैदा शिकायतों का मूल्यांकन करने की संवैधानिक, प्रथा-गत या अन्य शक्ति प्राप्त है।

(d) कुछ देशों में, हो सकता है कि जन-संचार माध्यम पैरा (ब) में वर्णित कार्यो के समान ही शिकायतों के मूल्यांकन का कार्य करते हो। विधि प्रवर्तन अधिकारी यदि उचित समझे तो वे अंतिम उपाय के तौर पर और अपने देश के कानून व प्रथाओं के अनुसार तथा इस संहिता

के अनुच्छेद 4 के प्रावधानों के अनुसार ऐसे उल्लंघन को जन-संचार-माध्यम के जरिये लोगों के ध्यान में ला सकते हैं।

(e) विधि-प्रवर्तन-अधिकारीगण, जो इस संहिता की पालना करते हैं, जनता व विधि-प्रवर्तन-एजेंसी के द्वारा सहयोग व सम्मान के हकदार है और ऐसे ही व्यक्ति विधि-प्रवर्तन-व्यवसाय के योग्य है।

10.15 सारांश

मानव अधिकारों के संदर्भ मे पुलिस को दोहरी भूमिका का निर्वाह करना होता है। अधिकार प्रत्येक व्यक्ति के आत्म-विकास एवं सम्पूर्ण प्रगति की आवश्यक शर्त है। मानव अधिकारों की सामान्य विशेषताओं में वैयक्तिकया सामूहिक मांग, समाज एवं राज्य की मान्यता, लोकहित के आधार, राज्य का संरक्षण, कल्याणकारी स्वरूप तर्क एवं नैतिकता, समानता की बुनियाद आदि सम्मिलित है। वही इनकी विशिष्ट पहचान में सार्वभौमिकता, अभिवक्ता, अन्योन्याश्रितता, अहस्तान्तरणीयता, पवित्रता, क्रियान्वितता, सकारात्मकता, लोक-कल्याणोन्मुखी, विकासन्मुखी, मानवतावादी एवं प्रगतिशीलता समाहित है।

मानव-अधिकारों की अवहेलना, आरोपों से बचने के लिए जरूरी है, कि पुलिस अपनी कार्यप्रणाली के सभी क्षेत्रों में विवेक, धैर्य एवं संतुलन का प्रयोग करें। पुलिस द्वारा मानव अधिकारों की अवहेलना रोकने के लिए उन्हें चेतनागत प्रशिक्षण दिया जाए तथा सुधारात्मक प्रयास किए जाए। उपरोक्त दोनों प्रयास सफल न होने पर उनके खिलाफ दण्डात्मक कार्यवाही की जाए तथा समग्र कार्यप्रणाली में सुधार लाया जाए। मानवाधिकारों के इस दौर में पीड़ित व्यक्ति, गवाह तथा अभियुक्त के कई अधिकार सुनिश्चित है। आपराधिक न्याय व्यवस्था में भी मानव-अधिकारों के प्रहरी एवं संवाद के रूप में स्थापित है तथा मानवाधिकारों की रक्षा के लिए विधि-प्रवर्तन अधिकारियों हेतु आचार-संहिता विश्वभर में स्वीकृत है।

10.16 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मानव अधिकारों के अर्थ एवं अवधारणा को स्पष्ट करते हुए मानव अधिकारों की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. मानव अधिकारों के संदर्भ में पुलिस भूमिका की समीक्षा कीजिए।
3. मानव अधिकारों के संदर्भ में पुलिस से क्या-क्या अपेक्षाएँ रखी जाती है? पुलिस इनअपेक्षाओं पर खरी क्यों नहीं उतरती है?
4. पुलिस मानव अधिकारों की अवहेलना क्यों करती है? मानव अधिकारों की अवहेलना को कैसे रोका जा सकता है?
5. विधि प्रवर्तन अधिकारियों की आचार संहिता पर एक टिप्पणी लिखिए।
6. अभियुक्त एवं गवाह के अधिकारों की विवेचना कीजिए।

इकाई - 11
पुलिस का विधिसम्मत उपयोग

इकाई की संरचना

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 पुलिस -अवधारणा एवं कर्तव्य

11.3 पुलिस के विधिसम्मत कार्य का अभिप्राय

11.3.1 पुलिस के पारम्परिक कार्य

11.3.2 पुलिस के समसामयिक एवं गैर पारम्परिक कार्य

11.3.2.1 आपदा प्रबन्धन एवं बचाव कार्य

11.3.2.2 वी.आई. सुरक्षा

11.4 पुलिस नियन्त्रण के विविध कारक

11.4.1 सामाजिक नियन्त्रण

11.4.2 शासकीय नियन्त्रण

11.4.3 राजनीतिक नियन्त्रण

11.4.4 संगठनात्मक नियन्त्रण

11.5 पुलिस कार्य-सम्पादन की चुनौतियाँ

11.5.1 भूमिका की अस्पष्टता

11.5.2 संसाधनों की कमी

11.5.3 प्रशिक्षण की अनुपयुक्तता

11.5.4 कानूनी बाधायें

11.6 पुलिस -दुरुपयोग रोकने के उपाय

11.7 सारांश

11.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.9 सन्दर्भ

11.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन का उद्देश्य है कि -

- आप पुलिस की अवधारणा एवं कर्तव्य से परिचित हो सकेंगे।
- पुलिस के विधि-सम्मत कार्यो को समझ सकेंगे।
- पुलिस-नियन्त्रण के विविधत सामाजिक, शासकीय, राजनैतिक एवं संगठनात्मक कारकों को समझ सकेंगे।
- पुलिस कार्य सम्पादन की विविध चुनौतियों जिसमें पुलिस की भूमिका की अस्पष्टता, कानूनी अड़चनें और संसाधनों एवं प्रशिक्षण की कमी इत्यादि शामिल है, से परिचित हो सकेंगे।
- पुलिस के दुरुपयोग को किस प्रकार रोका जा सके? इस पर विचार कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

वर्तमान बदलते परिवेश में हम विभिन्न चुनौतियों और संघर्ष के युग मे प्रवेश कर गए हैं। बदलती परिस्थितियों ने शासन या सरकार और पुलिस पर विशेष दबाव डाला है। हमारे समक्ष न केवल

आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ तेजी से यदली हैं, बल्कि विचारों में भी उतनी तेजी से परिवर्तन हुआ है। तदनुसार राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकारी, अन्यायों और व्यक्ति तथा राज्य के विविध सामाजिक वर्गों एवं समूहों के हितों के बीच सम्बन्ध के साथ ही न्याय की समस्या का प्रश्न भी खड़ा हुआ है। वस्तुतः यह बदलाव बढ़ते हुए मानव अधिकारों और सामाजिक न्याय की नई अवधारणाओं के कारण हुआ है। आम जनता के बीच बढ़ते असन्तोष के कारण सरकारी तन्त्र भी पर्याप्त प्रभावित हुआ है। बहुत से मामलों में असहमति के कारण शासन और जनता के बीच मतभेद उत्पन्न हो गये है। ऐसी परिस्थिति में कानून के प्रति सम्मान और प्रक्रियागत शुचिता कम हुई है तथा पुलिसकर्मियों को जनता की इच्छा का दमन करने वाले उपकरण या माध्यम के तौर पर देखा जाने लगा है। अत: पुलिस की विधि-सम्मत स्थिति एवं उपयोग की स्थापना करने हेतु यह आवश्यक है कि वह किसी भी तरह के पक्षपात करने के सन्देह से दूर रहे, जिसमें सामाजिक, राजनैतिक, साम्प्रदायिक और क्षेत्रीय भावनाएँ प्रमुख रूप से सम्मिलित हैं। विविध सामाजिक वर्ग पुलिस का विविध तरीकों से उपयोग करते हैं एवं अपनी व्यक्तिगत समस्याओं को पुलिस के पास हल करने हेतु ले जाते हैं। ऐसे में पुलिस की कार्यक्षमता के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं है जो जनता का सहयोग पाने में उसकी मदद कर सके। विकासशील प्रजातन्त्र में पुलिस और जनता के बीच पारस्परिक सम्मान और सूझ-बूझ की अत्यन्त ही आवश्यकता है।

आधुनिक समाज में सरकारों के लिए जनता की अपेक्षाओं पर हमेशा खरा उतरना अत्यन्त ही कठिन हो गया है क्योंकि चुनावी सफलताओं के कारण बदली हुई परिस्थितियों में नीति निर्धारण की परिस्थितियाँ भी बदलती रहती हैं। ऐसे में पुलिस के विधि-सम्मत उपयोग अथवा उसके दुरुपयोग की सम्भावनाओं, का अध्ययन अत्यन्त ही समीचीन है।

11.2 पुलिस : अवधारणा एवं कर्तव्य

एक कल्याणकारी राज्य में पुलिस जन वस्तुत: समाज या जनता के ही सदस्य होते हैं जिन्हें जनता की तरफ से लोकहित में नियुक्त किया जाता है और इनका कार्य उन कर्तव्यों पर पूरी तरह से ध्यान देना है जिसकी जिम्मेदारी प्रत्येक नागरिक की होती है। चूँकि पुलिसकर्मी को वेतन लोकनिधि (पब्लिक फण्ड) से दिया जाता है अत: उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि वे लोक सेवक हैं।विविध कानून एवं व्यवस्था की समस्याओं के निवारण में उन्हें इस सिद्धान्त का पालन भी करना चाहिए।

पुलिस का सर्वप्रथम कार्य समाज में कानून और व्यवस्था को बनाए रखना है। उक्त कार्य की महत्ता इस तथ्य से समझी जा सकती है कि पुलिस शब्द को परिभाषित करते हुए ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में बताया गया है कि "पुलिस ऐसा नागरिक बल है जो लोक व्यवस्था (पब्लिक ऑर्डर) को बनाए रखने के लिए जिम्मेदार है।" हमारे संविधान में भी प्रत्येक पुलिसकर्मी की सबसे बड़ी जिम्मेदारियों में प्रमुख है कि वह अपने अधिकार क्षेत्र में प्रत्येक नागरिक के अधिकारों एवं विशेष सुविधाओं का न केवल सम्मान करे बल्कि उनकी रक्षा भी करे। इसके साथ ही प्रत्येक पुलिसकर्मी का यह विशेष दायित्व है कि वह प्रत्येक नागरिक को संविधान प्रदत्त अधिकारों से वंचित होने या किसी दूसरे के द्वारा उनका हनन करने से रोके।

सन् 1861 के पुलिस एक्ट की धारा 23 के अनुसार प्रत्येक पुलिस अधिकारी के निम्नलिखित कर्तव्य हैं-

1. वह किसी सक्षम अधिकारी के द्वारा दिए गए सभी आदेशों और कानूनी वारण्टों को त्वरित रूप से मानेगा और उनकी अनुपालना करायेगा।
2. लोकशान्ति को प्रभावित करने वाले आसूचना का संग्रहण और सम्प्रेषण करेगा।

3. अपराधों और लोकबाधाओं के घटित होने को रोकना।
4. अपराधियों की पहचान करना और उन्हें न्यायिक कार्यवाही के लिए प्रस्तुत करना।
5. उन व्यक्तियों को गिरफ्तार करना जिन्हें गिरफ्तार करने के लिए वह कानूनी रूप से अधिकृत है अथवा जिनकी गिरफ्तारी के समुचित कारण उपलब्ध हैं।

11.3 पुलिस के विधि-सम्मत कार्य का अभिप्राय

हमारे देश में पुलिस की संवैधानिक और कानूनी स्थिति उसे विधि-सम्मत प्रणाली के अनुसार ही कार्य करने की स्वीकृति देती है। चूंकि पुलिस, सरकार के कार्यकारी अंग के रूप में समाज के समक्ष सबसे अधिक मुखर और प्रभावी भूमिका का निर्वहण करती है। अत: उसका प्रमुख विधि-सम्मत कार्य कानून और व्यवस्था की स्थिति को प्रत्येक परिस्थिति में बनाए रखना है। इस प्रकार लोगों के समक्ष पुलिस, सरकार के एक करीबी प्रतिनिधि के तौर पर जानी जाती है। लोकसेवा की महत्ता को रेखांकित करते हुए लॉर्ड मैकाले ने संसद में घोषणा की कि "गवर्नर जनरल के चरित्र की अपेक्षा प्रशासकों (लोकसेवकों) का चरित्र अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि उनके द्वारा प्रशासन चलाया जाता है।" इस प्रकार जब तक पुलिस विधि-सम्मत प्रावधानों की सीमा में रहते हुए अपने दायित्वों का निष्पक्ष प्रशासक के तौर पर निर्वहन नहीं करती तब तक वह राज्य-सत्ता के किसी सम्भावित दुरूपयोग से जनता की रक्षा नहीं कर सकती।

किसी भी तानाशाही देश में कानून लागू करना अपेक्षाकृत सरल है परन्तु प्रजातन्त्र में यह कार्य अत्यन्त ही कठिन और जटिलताओं से भरा है, क्योंकि इसमें सम्पूर्ण मानवीय आचरण का संचरण है, जिसमें वैयक्तिक स्वतन्त्रता और सामुदायिक अथवा सामाजिक सुरक्षा के बीच संवेदनशील सन्तुलन को बनाए रखना आवश्यक है। किसी भी विकासशील प्रजातन्त्र में कानून का दुरुपयोग अथवा उल्लंघन एक अत्यन्त ही खतरनाक प्रवृत्ति है। अत: इन परिस्थितियों में कानून की अनुपालना के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है। यह सच हैं कि - "जहाँ कानून का अन्त है, वहीं निरंकुशता अथवा अत्याचार का प्रारम्भ है।" इस प्रकार प्रजातान्त्रिक जीवन पद्धति के प्रमुख स्तम्भों के रूप में कानून के प्रतिनिधि के तौर पर पुलिस की स्थिति और कार्यपालिका के द्वारा बिना किसीभी प्रकार के हस्तक्षेप के एक स्वतन्त्र न्यायपालिका का अस्तित्त्व आवश्यक है। अत: पुलिस के विधि-सम्मत कार्य के अभिप्राय के अन्तर्गत कानून के शासन को लागू करने के लिए उन सभी प्रक्रियाओं को सम्मिलित किया जा सकता है, जिसमें आम जनता के बीच सुरक्षा की भावना बनाए रखने के लिए विधायिका, न्यायपालिका कार्यपालिका और शासन के उद्देश्यों में सम्पूर्ण एकता और समन्वय विद्यमान हो।

11.3.1 पुलिस के पारम्परिक कार्य

ब्रिटेन में पुलिस की भूमिका को परिभाषित करते हुए 1962 ई0 के रॉयल कमीशन ने अपनी टिप्पणी में कहा कि "हमारे देश (ब्रिटेन) में पुलिस एक ऐसे उपकरण के रूप में है जो कानून के शासन को लागू करता है, वे एक ऐसे माध्यम हैं जिनके द्वारा सभ्य समाज अपनी व्यवस्था बनाए रखता है, ताकि लोग अपने घरों में सुरक्षित रह सकें और अपने कानून-सम्मत व्यवसायों को करने के लिए स्वतन्त्रतापूर्वक जा सकें।

मूलत: उनका कार्य कानून और व्यवस्था की स्थिति को बनाए रखना है। इसके बिना अराजकता फैल जाएगी।" इसी प्रकार 1861 ई0 के पुलिस एक्ट की प्रस्तावना में भी यह कहा गया है कि इसका उद्देश्य ऐसे पुलिस बल को पुनर्गठित करना था जो अपराधों की पहचान और उनकी रोकथाम के लिए एक सक्षम उपकरण के रूप में कार्य कर सके। यह शान्ति बनाए रखने पर अधिक जोर देता है और

पुलिस से यह अपेक्षा करता है कि वह आम रास्तों और स्थानों इत्यादि में शान्ति-व्यवस्था बनाए रखे। सर चार्ल्स रॉवन जो लन्दन मैट्रोपालिटन पुलिस बल के प्रमुख मार्गदर्शक थे, ने अपने प्रारम्भिक सेवाकाल में कहा कि "किसी सक्षम पुलिस का मूल उद्देश्य अपराध की रोकथाम है और यदि अपराध घटित हो जाए तो उसकी पहचान करके अपराधी को दण्ड दिलाना उसका अगला उद्देश्य है। अत: जीवन और सम्पत्ति की सुरक्षा, सामाजिक समरसता और अपराधहीनता मात्र ऐसे तथ्य हैं जो सिद्ध करेंगे कि उन उद्देश्यों को प्राप्त कर लिया गया है, जिनके लिए पुलिस को नियुक्त किया गया था।"इस प्रकार पुलिस को दिए गए पारम्परिक कार्य निम्नलिखित हैं :

(i) जीवन और सम्पत्ति की सुरक्षा।
(ii) शान्ति को बनाए रखना।
(iii) अपराधों की रोकथाम।
(iv) अपराधियों की पहचान और उन्हें कानून के समक्ष प्रस्तुत करना।
(v) सक्षम अधिकारियों के द्वारा बनाए गए सभी कानूनों और नियमों की अनुपालना करवाना।
(vi) नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करना।

यहाँ यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि पुलिस की भूमिका सामाजिक रीति-रिवाजों, प्रभावों, पुलिसकर्मी के स्वविवेक के निर्णय और सम्बन्धित समाज के नगरीकरण अथवा शिक्षा के स्तर पर भी निर्भर करती है। समाज की बहुत सी मान्यताएँ पुलिस की भूमिका के कानूनी ढाँचे में घुल मिल जाती हैं। भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान पुलिस की भूमिका एक प्रकार से नकारात्मक थी क्योंकि वह मुख्यत: प्रतिक्रियावादी थी, परन्तु स्वतन्त्रता के बाद हमारे देश में कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के फलस्वरूप पुलिस कार्य में न केवल कानून की अनुपालना कानून और व्यवस्था बनाए रखना और अपराधों की पहचान और उनकी रोकथाम करना सम्मिलित था, बल्कि समाज के कमजोर वर्गों के हितों की रक्षा करना और उनकी समाज के समर्थ वर्ग के समकक्ष पहुँचने में मदद करना भी शामिल था। इस प्रकार पुलिस की नई सकारात्मक भूमिका में सुधारवादी सामाजिक विधेयकों /कानूनों को सफलतापूर्वक लागू करना प्रमुख रूप से शामिल हो गया। जो कानून मुख्यत: निषेधात्मक और नियन्त्रणकारी थे, वे अधिक से अधिक सुधारात्मक और रक्षात्मक हो गए, जिसमें लोगों की सामाजिक-आर्थिक आकांक्षाओं काप्रतिबिम्ब परिलक्षित होता है। इस प्रकार सामाजिक सुधारवादी कानूनों ने पुलिस की समाज में सकारात्मक भूमिका का अनावरण किया और उसकी भूमिका को पुन: परिभाषित किया।

11.3.2 पुलिस के समसामयिक एवं गैर पारम्परिक कार्य

यद्यपि पुलिस के पारम्परिक कार्य पूर्व की भांति ही आज भी उतने ही महत्वपूर्ण एवं आवश्यक हैं परन्तु यह तथ्य भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि आधुनिक विकासशील समाज में पुलिस की भूमिका उसकी लगातार विविध क्षेत्रों में मांग के कारण अधिक बढ़ गई है। अधिकांश प्रजातान्त्रिक देशों में पुलिस की वर्तमान भूमिका कानून लाग करने वाली एजेन्सी की बजाय एक सेवा प्रदाता एजेन्सी के रूप में अधिक हो गई है। इस सन्दर्भ में समसामयिक कार्यो में निपुणता के साथ-साथ पुलिस की सफलता जनता के साथ उसके रिश्तों की संवेदनशीलता एवं जनता का विश्वास हासिल करने की क्षमता पर भी निर्भर करती है। इस प्रकार बदली हुई सामाजिक परिस्थितियों में कानून व्यवस्था लाग करने वाली पुलिस मशीनरी को सामाजिक समस्याओं के समाधान में भी अपनी सक्रिय और सकारात्मक भूमिका निभानी होगी। पुलिस कार्य की सफलता के लिए समुदाय, या समाज के धार्मिक, सामाजिक-आर्थिक ढांचे और

उनके रीति रिवाजों आदर्शों आदि की जानकारी आवश्यक है। वर्तमान समय में पुलिस की भूमिका मे कम्यूनिटी अथवा समुदाय की सेवा को क्यों शामिल किया गया है? इसका कारण जानना कठिन नहीं है। वस्तुत: पुलिस एक ऐसी एजेन्सी है जो हमेशा नागरिक सहायता के लिए उपलब्ध रहती है। इसके अलावाव्यावहारिक रूप से प्रत्येक घटना की प्रारम्भिक जांच के लिए भी पुलिस की आवश्यकता पड़ती है। शासनतंत्र मे रक्षा सेवाओं के अलावा पुलिस ही एक संगठित, प्रशिक्षित और अनुशासित सरकारी अंग के रूप में ऐसा विभाग है जिसे आपातकालीन परिस्थितियों में शीघ्रता और सरलता के साथ बुलाया जा सकता है और राहत कार्य में सक्रिय किया जा सकता है। पुलिस के गैर पारम्परिक कार्यों में आपदा-प्रबन्धन जिसमें प्राकृतिक और मनुष्य कृत दोनों हैं तथा वी.आई.पी. सुरक्षा के साथ ही अन्य सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित कार्य भी शामिल हैं।

11.3.2.1 आपदा प्रबन्धन एवं बचाव कार्य

किसी भी प्रकार की प्राकृतिक अथवा कृत्रिम आपदा के दौरान उसके प्रबन्धन और बचाव कार्य में पुलिस की भूमिका पर्याप्त महत्वपूर्ण हो गई है। प्राकृतिक आपदा जैसे भूकम्प, बाढ़, तूफान आदि में उचित प्रशिक्षण और उपकरणों की विशेष आवश्यकता होती है। अत: इसके लिए तदनुसार विशेषज्ञतापूर्ण प्रशिक्षण सुविधाएँ, जनशक्ति और विशेष उपकरणों व मशीनों के साथ ही चुस्त एवं दुरुस्त आपदा प्रबन्धन-तन्त्र स्थापित और विकसित करना आवश्यक है। इसी प्रकार मानवकृत आपदाओं जैसे अग्नि, वाहन या रेल दुर्घटना, विस्फोटक एवं तोड़-फोड़ की घटनाओं आदि से निपटने के लिए विशेष प्रशिक्षण, उपकरण एवं जन शक्ति की आवश्यकता है। इन कार्यो के लिए प्राय: प्रशासन के सभी अंगों अथवा विभागों के समन्वित एवं सहयोगी प्रयासों से ही सफलता सम्भव है।

11.3.2.2 वी.आई.पी. या विशिष्ट व्यक्तियों की सुरक्षा

विशिष्ट व्यक्तियों की सुरक्षा भी पुलिस के लिए अत्यन्त ही जटिल और कठिन कार्य है। वर्तमान समय में पुलिस बल के अधिकांश संसाधन और जनशक्ति इस कार्य में लगे हैं। इससे न केवल पुलिस के अपराध नियन्त्रण और कानून व्यवस्था बनाए रखने के मौलिक कार्य प्रभावित हुए हैं बल्कि उसकी प्रशिक्षण प्रक्रिया और कार्य क्षमता पर भी प्रतिकूल असर पड़ा है। इस व्यवस्था की समय-समय पर समीक्षा और पुनर्विचार आवश्यक है। आतंकवाद और सामाजिक असन्तोष के कारण विशिष्ट व्यक्तियों की सुरक्षा एक अत्यन्त ही संवेदनशील और विशेषज्ञतापूर्ण पुलिस कार्य हो गया है। जिसमें बाहरी चुनौतियों के साथ-साथ पुलिसकर्मियों के व्यावसायिकस्तर और व्यक्तिगत आचरण की आन्तरिक स्थिति का महत्वपूर्ण योगदान होता है। ऐसे में अनुभवी और व्यावसायिक पर्यवेक्षण, कमियों और गलतियों से लगातार सीखने की प्रक्रिया तथा पुलिसकर्मियों के सतत प्रशिक्षण कार्यक्रमों द्वारा ही सुरक्षा प्रबन्धन की चुनौतियों से निपटा जा सकता है।

11.4 पुलिस नियन्त्रण के विविध कारक

पुलिस के विधि-सम्मत अथवा अवैध प्रयोग की प्रक्रिया में यह समझ लेना अत्यन्त ही आवश्यक है कि वे कौन से विभिन्न कारक हैं जो प्राय: पुलिस कार्य को नियन्त्रित और प्रभावित करते हैं। समाज की मान्यताओं और मूल्यों का प्रभाव पुलिस पर भी पड़ता है। वर्तमान बदलते सामाजिक परिवेश में जहाँ धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियाँ बदली हैं, वहीं पुलिस कार्य की प्रकृति और उनके स्वरूप में भी पर्याप्त बदलाव आया है। यह एक अत्यन्त ही गम्भीर विषय है कि हिंसा के अपराध लगातार बढ़ रहे हैं, सैकड़ों पुलिसकर्मी अपनी ड्यूवी के दौरान हमले के शिकार हो रहे हैं और अपराधी तत्त्व

उनकी हत्या भी कर देते हैं। सम्बन्धित गवाह न्यायालयों में गवाही देने से कतराते हैं। अभियुक्त प्राय: गिरफ़्तारी से बचने का प्रयास करते हँ। न्यायालयों की प्रवृत्ति भी समाज के अधिकारों के बजाय व्यक्ति के अधिकारों के प्रति अधिक सहानुभूतिपूर्ण है। इन परिस्थितियों में तुरन्त और प्रभावी तथा न्यायपूर्ण दण्ड पाने के डर की भावना लुप्त हो गई है। पुलिस के दैनिक कार्यो में राजनैतिक हस्तक्षेप, समाज-सुधार तथा अन्य मामलों से सम्बन्धित अनेक कानूनों को लागू करने की जिम्मेदारी तथा जनशक्ति और अन्य आवश्यकसंसाधनों, की कमी ने पुलिस की छवि पर अत्यन्त ही प्रतिकूल असर डाला है।

आपराधिक न्याय व्यवस्था में पुलिस की भूमिका स्पष्ट है। पुलिस गवाहों का परीक्षण करके और सम्बन्धित साक्ष्यों का संग्रहण करके न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करती है और न्यायालय साक्ष्यों के गुण-दोष के आधार पर उन विशेष परिस्थितियों में कानून की व्याख्या करके दण्ड की व्यवस्था करता है। इस प्रकार सभी अंग- पुलिस, गवाह, अभियोजक और न्यायिक व्यवस्था मिलकर एक टीम का निर्माण करते हैं। इस टीम के किसी भी सदस्य के द्वारा अपेक्षा के अनुरूप परिणाम न देने से पूरी व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। सामाजिक ढाँचे में वर्तमान बदलावों के कारण सामाजिक सम्बन्धों में भी बदलाव आये हैं। इससे पुलिस की समाज में भूमिका भी प्रभावित हुई है। इन सभी कारकों ने जहाँ एक ओर पुलिस की कार्यक्षमता और उनके कार्य करने की परिस्थितियों को प्रभावित किया है, वहीं पुलिस की मूल अवधारणा भी वर्तमान में बदली है। पुलिस बल सत्ताधारी राजनीतिक दलों और सामाजिक समूहों के द्वारा नियन्त्रित होते है अत: उसके विधि-सम्मत उपयोग अथवा दुरुपयोग की जिम्मेदारी भी इन्ही कारकों पर आती है।

11.4.1 सामाजिक नियन्त्रण

चूँकि प्रत्येक पुलिसकर्मी समाज के बीच से ही आता है अत: सामाजिक आकांक्षाओं के अनुरूप ही हमारा पुलिस बल भी होता है। इसमें विभिन्न सामाजिक संस्थाओं, मान्यताओं, रीति-रिवाजों इत्यादि का परोक्ष रूप से नियन्त्रण प्रत्येक पुलिसकर्मी पर परिलक्षित होता है। यद्यपि सघन पेट्रोलिंग या गश्त के द्वारा समाज में होने वाले अपराधों की आवृत्ति को कम किया जा सकता है। परन्तु समाज के जिन सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक कारकों में आपराधिक वृत्ति का समावेश है उन्हें पुलिस दूर नहीं कर सकती, बल्कि इनका हल सम्पूर्ण समाज और उसकी संस्थाओं के द्वारा ही किया जा सकता है। समाज को जहाँ एक ओर पुलिस से यह अपेक्षा है कि वह अपराध से संघर्ष में सक्षम हो वहीं दूसरी ओर वह पुलिस को एक चतुर शान्ति रक्षक एवं समुदाय या समाज का सेवक समझता है। इस प्रकार समाज के अन्याय कारक पुलिस को नियन्त्रित करने में अपनी प्रभावी भूमिका निभाते हैं। परन्तु सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि जनता के सहयोग के बिना पुलिस अपने कार्य को सफलपूर्वक कभी नहीं कर सकती।

11.4.2 शासकीय नियन्त्रण

पुलिस शासन की सबसे प्रभावी एवं महत्वपूर्ण प्रणाली का अंग है। अत: शासन का उस पर सीधा नियन्त्रण होता है। शासकीय नियमों और उपनियमों से न केवल पुलिस बल को मार्गदर्शन मिलता है, बल्कि वे उन्हें समुचित रूप से नियन्त्रित एवं अनुशासित भी बनायें रखते हैं। प्रजातांत्रिक प्रणाली में शासन करने वाली राजनैतिक पार्टी कई बार अपने राजनैतिक हितों अथवा सत्ता में बने रहने के प्रयासों में पुलिस का उपयोग करती है। इस प्रकार प्रजातांत्रिक समाज में पुलिस को आम नागरिकों के प्रति उत्तरदायी बनाने के लिए उसकी शक्तियों एवं कर्तव्यों पर नये सिरे से विचार करना आवश्यक है।

11.4.3 राजनीतिक नियन्त्रण

पुलिस पर राजनैतिक नियन्त्रण की स्थिति नौकरशाही के द्वारा जनप्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर आधारित है। परन्तु राजनैतिक हस्तक्षेप के द्वारा कई बार पुलिस की कार्यप्रणाली और क्षमता पर प्रतिकूल असर पड़ता है। यद्यपि प्रजातन्त्र में पुलिस का प्रशासकीय उत्तरदायित्व राजनैतिक सत्ता के प्रति स्वीकृत एवं स्थापित है। परन्तु यहाँ यह भी ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि राजनैतिक सत्ता को भी पुलिस के दैनिक कार्यकलापों में हस्तक्षेप से बचना चाहिए। यदि हस्तक्षेप की आवश्यकता भी पड़े तो उसे पुलिस नेतृत्व और स्थापित सिद्धान्त के द्वारा ही कार्यान्वित किया जाए। कई अनुभवी प्रशासकों का मत है कि पुलिस के प्रशासन, निर्देशन और नियन्त्रण को राजनीतिक प्रभावों से दूर कर दिया जाए, जिससे पुलिस प्रत्येक परिस्थिति में व्यावसायिक कारकों के आधार पर कानून का शासन बनाये रखने के लिए निर्णय ले सके। यद्यपि यह तथ्य पूरे राजनीतिक नेतृत्व के लिए लाग नहीं किया जा सकता क्योंकि राजनीति में भी ऐसे ईमानदार और योग्य व्यक्ति हैं जो प्रशासन के मामलों में राजनीति से परे होते हैं और उनमें बहुतों ने महत्वपूर्ण बलिदान दिये है। इसीलिए यदि कोई ईमानदार राजनेता प्रभारी (इंचार्ज) होगा तो वहाँ निश्चय ही पुलिस एक ईमानदार और दक्ष पुलिस बल सिद्ध होगा।

11.4.4 संगठनात्मक नियन्त्रण

पुलिस पर उसके विभाग अथवा संगठन का नियन्त्रण सबसे अधिक प्रभावी होता है। किसी भी प्रकार की प्रतिकूल परिस्थिति के उत्पन्न होने पर चाहे उसका कारण व्यक्तिगत अथवा संस्थागत कमियाँ क्यों न हो, उसे संभालने की जिम्मेदारी सम्बन्धित पुलिसकर्मी और विभागीय अधिकारियों की होती है। संगठनात्मक नियन्त्रण का सीधा सम्बन्ध पुलिस बल के अनुशासन, कार्य संस्कृति, कर्मियों के पारस्परिक सम्बन्ध, पुलिस कर्मियों की भर्ती की गुणवत्ता, उनका प्रारम्भिक प्रशिक्षण, सेवाकालीन पुनश्चर्या प्रशिक्षण और पुलिस कार्योन्मुख दृष्टिकोण एवं अभिरुचि विकास के कार्यक्रम इत्यादि के आयोजन से है। संगठनात्मक नियन्त्रण के द्वारा पुलिस बल में वरिष्ठ और फील्ड अधिकारियों के पर्यवेक्षण (सुपरविजन) के स्तर में सुधार किया जा सकता है। पुलिस के कार्य जैसे- गश्त, अपराध नियन्त्रण एवं अन्वेषण की नई तकनीक एवं उपकरणों के प्रयोग में पुलिस कर्मियों को संलग्न एवं सक्षम बनाते हुए उन्हें अधिक जागरूक एवं जिम्मेदार बनाया जा सकता है। कम्यूनिटी या समुदाय के साथ भागीदारी करके उसकी सामाजिक और मानवीय प्रवृति को और अधिक प्रोत्साहित किया जा सकता है। संगठनात्मक नियन्त्रण की सकारात्मक एवं प्रश्रयशील प्रकृति तथा स्वयं पुलिसकर्मियों का जागरुक एवं कानून के प्रति व्यावसायिक उत्तरदायित्व से भरा आत्मविश्वास पुलिस को सच्चे अर्थों में जनता या समाज का मित्र सिद्ध करेगा और उसे स्वत: ही जनता का सहयोग प्राप्त होगा। ऐसी परिस्थितियों में पुलिस के दुरुपयोग की संभावना निश्चित ही कम होगी एवं उसके विधिसम्मत कार्यो को बल मिलेगा।

11.5 पुलिस कार्य-सम्पादन की चुनौतियाँ

भारत जैसे विशाल बहुभाषाभाषी एवं विविधता भरे समाज में पुलिस्कार्य सम्पादन की चुनौतियाँ भी बहुत हैं। बदलती सामाजिक अपेक्षाओं के साथ ही अपराधियों के कार्य करने के तरीके एवं उनके स्तर में भी लगातार बदलाव होता रहता है। इसलिए पुलिस कार्य में कोई एक निश्चित नीति निर्धारित नहीं की जा सकती है। अलग-अलग मामलों और परिस्थितियों में पुलिस को कानून के दायरे में रहते हुए अलग-अलग कार्यशैली (मोडस ऑपरेण्डी) का प्रयोग करता पड़ता है। ऐसे में पुलिस की शक्तियों और उसके द्वारा की जाने वाली कार्यवाही की क्षमताओं का मूल्यांकन हमें उपलब्ध सेवाओं

और नियन्त्रक तन्त्र के सन्दर्भ में करना होगा। आर्थिक एवं तकनीकी विकास ने जहाँ अपराध और अपराधियों की प्रवृत्ति को बदला है, वहीं समाज या समुदाय के तौर-तरीकों में भी चुनौतीपूर्ण बदलाव हुए हैं, जिसके फलस्वरूप कानून और व्यवस्था, अपराध की पहचान और रोकथाम, उनका अन्वेषण जैसे बाह्य कारकों के साथ ही प्रबन्धन और पर्यवेक्षण की आन्तरिक समस्यायें भी खड़ी हुई हैं। पुलिस कार्य सम्पादन में चुनौती प्रस्तुत करने वाले कतिपय कारणों को इस प्रकार समझा जा सकता है।

11.5.1 भूमिका की अस्पष्टता

आधुनिक समय में पुलिस की कानून व्यवस्था बनाए रखने की पारम्परिक भूमिका के साथ-साथ कम्यूनिटी या समुदाय की सेवा करने की भूमिका अधिक हो गई है। आम जनता के बीच कानून की अनभिज्ञता और सामान्य जागरुकता की कमी के कारण भी उसके मन में पुलिस की भूमिका स्पष्ट नहीं है। उदाहरण के लिए- कई बार सम्पत्ति के विवाद में जो एक अपराध ही नहीं बल्कि सिविल मामला है, लोग पुलिस से हस्तक्षेप की अपेक्षा करते हैं, इसी प्रकार कई असंज्ञेय मामलों में भी पुलिस की कार्यवाही आम जनता की अपेक्षाओं के अनुरूप नहीं हो पाती। ऐसी परिस्थितियों में पुलिस की भूमिका जो जनता और पुलिस दोनों के लिए स्पष्ट हो, निर्धारित करना आवश्यक हो जाता है। पुलिस कार्यो के विविध क्षेत्रों में उनकी विशेषता को देखते हुए कार्य और जिम्मेदारी का निर्धारण न केवल पुलिस की कार्यक्षमता को बढ़ायेगा बल्कि उसके स्वविवेक के निर्णय से होने वाली क्षति की पूर्ति भी करेगा।

11.5.2 संसाधनों की कमी

संसाधनों की कमी पुलिस कार्य सम्पादन की एक मुख्य समस्या है। जनशक्ति की पुलिस बलों में कमी के अलावा वाहन, तकनीकी उपकरण- रेडियो सेट, कम्प्यूटर, आधुनिक प्रयोगशालाएँ आदि की कमी पुलिस की कार्यक्षमता को पर्याप्त प्रभावित करते है। पुलिस थानों को कम्प्यूटर नेटवर्क से जोड़ना, इलेक्ट्रोनिक माध्यमों से प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफ.आई.आर.) दर्ज कराना तथा अपराध और अपराधियों के विवरण और इतिहास को विभिन्न पुलिस केन्द्रों के साथ साझा करना इत्यादि नई अवधारणाओं का उदय अवश्य हुआ है परन्तु पर्याप्त इच्छाशक्ति और धन के अभाव के कारण इन्हें मूर्त रूप दिया जाना अभी शेष है। पर्याप्त पुलिस-वाहनों की उपलब्धता के अभाव में अपराधियों को न्यायालय में समय से प्रस्तुत न कर पाना तथा पुलिस के घटना स्थल पर त्वरित रूप से न पहुँच पाना इत्यादि उदाहरण अभी भी मिल जाते हैं। समाजविरोधी तत्त्वों की रणनीति से तकनीकी स्तर के अनुरूप संघर्ष करने के लिए समुचित हथियार, उपकरण एवं उनका प्रशिक्षण पुलिस को उपलब्ध करवाना हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए।

11.5.3 प्रशिक्षण की अनुपयुक्तता

पुलिस कार्य सम्पादन में पुलिसकर्मियों में उचित प्रशिक्षण का अभाव भी एक महत्वपूर्ण समस्या है। पहले तो प्रशिक्षण सुविधाओं का ही पर्याप्त अभाव है। यदि प्रशिक्षण केन्द्र उपलब्ध भी हैं तो जनशक्ति की कमी एवं उनके विविध ड्यूटियों में लगे रहने के कारण प्रशिक्षण कार्यक्रम बुरी तरह प्रभावित होते हैं। इस सबके अलावा प्रशिक्षण के प्रति अधिकांश पुलिसकर्मियों में उत्साह भी कम है। वर्तमान में पुलिस को कई ऐसे कार्य सौंप दिएगये हैं जिनके लिए वह व्यावसायिक रूप से तैयार नहीं है। आपदा-प्रबन्धन, संवेदनशील अपराधी के अन्वेषण जिसमें साइबर अपराध भी शामिल है इत्यादि कार्य के लिए विशेषज्ञता और विशेष प्रशिक्षण आवश्यक है। पुलिसकर्मियों के बीच जनता के प्रति उत्तरादायित्य, सकारात्मक सोच का विकास, कार्य के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण, आपस मे स्वस्थ एवं व्यावसायिक सम्बन्ध एवं

उचित तालमेल इत्यादि गुणों का विकास लगातार चलने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रमों के द्वारा किया जा सकता है।

11.5.4 कानूनी बाधायें

अनेक प्रकार की कानूनी अड़चनें भी पुलिस जन के कार्य को कठिन बना देती हैं। पुलिस से ऐसे कई कार्यो की प्राय: अपेक्षा की जाती है जिन्हें करने की उसे कानूनी स्वीकृति या अधिकार नहीं है। इसका उदाहरण कई बार उन शिकायतों के मामलों में देखने को मिलता है जिनकी प्रकृति असंज्ञेय (नॉन-कागनीजेबिल) होती है। कानून के अन्तर्गत पुलिस ऐसे मामलों का संज्ञान नहीं ले सकती। आम जनता प्राय: संज्ञेय और असंज्ञेय अपराधों में भेद नहीं कर पाती और उसे पुलिस के ऊपर कार्यवाही न करने का सन्देह हो जाता है। इन परिस्थितियों में कानून की लगातार समीक्षा होनी चाहिए और आवश्यकता के अनुसार पुराने कानूनों को समाप्त करके नये एवं प्रभावी कानून लागू करने चाहिए। आपराधिक न्याय व्यवस्था के द्वारा त्वरित न्याय दिलाने का भी प्रयास करना चाहिए। अपराध रोकने का सबसे प्रभावी तथ्य वह भय है जिसमें अपराधी के पकड़े जाने और उसे सजा मिलने की सम्भावना है। वस्तुत: हमारे सभी आपराधिक कानूनों का प्रमुख उद्देश्य समाज की सुरक्षा करना है। किसी भी कानूनी त्रुटियों के कारण यदि कोई अपराधी छूट जाता है तो वह न केवल और अपराध करता है बल्कि न्यायिक प्रक्रिया और सभ्य समाज का उपहास भी होता है। आधुनिक जीवन में बढ़ते नगरीकरण यन्त्रीकरण, अपराधियों की बढ़ती गतिशीलता और जनसंख्या विस्फोट ने अपराधों की प्रकृति को भी बढ़ाया है। अत: इनके नियन्त्रण के लिए तदनुसार नये कानूनों और उनके समुचित प्रशिक्षण एवं ज्ञान को होना भी अनिवार्य है। तभी पुलिस अपने विधि-सम्मत कार्यो को सफलता पूर्वक सम्पन्न कर सकेगी।

11.6 पुलिस-दुरुपयोग रोकने के उपाय

पुलिस सामाजिक जीवन को स्थिर बनाये रखने की परिस्थितियों के निर्माण में महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व का निर्वहण करती है। कई बार वह सर्वोच्च स्तर पर शासन के द्वारा नीति निर्धारित करने और उसके कार्यान्वयन में भी अपनी भूमिका अदा करती है। अपने प्रशासन के द्वारा राजनैतिक स्थितियो को भी प्रभावित करती है। स्वतन्त्रता के बाद से कई पुलिस सुधारों और आयोगों की रिपोर्ट शासन के समक्ष प्रस्तुत की गई हैं, परन्तु उन्हें अभी तक लागू नहीं किया जा सका है। पुलिस आयोग की पाँचवी रिपोर्ट के इकतालिसवें अध्याय के निष्कर्ष से ज्ञात होता है कि पुलिस और जनता के बीच सम्बन्ध सन्तोषजनक नहीं हैं। पुलिस का पक्षपातपूर्ण रवैया, भ्रष्टाचार, क्रूरता और संज्ञेय अपराधों को दर्ज करने में पुलिस की असफलता, इस दुःखद सिथति के महत्वपूर्ण कारण हैं। कई लोग मानते हैं कि वास्तव में पुलिस उन लोगों को तंग करती है जो उनकी मदद करना चाहते हैं। जनमानस पुलिस की कार्यप्रणाली में परिवर्तन चाहता है।

ऐसा नहीं है कि पुलिस बिल्कुल भ्रष्ट या नाकारा है या इस व्यवस्था को ही समाप्त कर देना चाहिए। पुलिस की नकारात्मक छवि के लिए सत्तारूढ़ दल भी बहुत हद तक जिम्मेदार होता है। जो भी पार्टी सत्ता में आती है उसके राजनैतिक स्वार्थ पुलिस के माध्यम से पूरे किये जाते हैं। लम्बे समय तक सत्ताधारी दल द्वारा पुलिस तन्त्र के मनमाने दुरूपयोग होने से पुलिस बल की दक्षता और निष्पक्षता पर से जनता का भरोसा उठ गया है। कतिपय अनुभवी पुलिस अधिकारियों के अनुसार निम्नलिखित कुछ प्रमुख कारण प्रकाश में आते हैं जिनकी वजह से पुलिस अपना कार्य नैतिक तरीके से नहीं कर पाती है

1. कुछ वर्षो से पुलिसजनों में व्यक्तिवादिता बढ़ी है जिससे टीम भावना व कार्य दोनों समाप्त होने लगे हैं।
2. सरकार बदलने पर एजेण्डा बदल जाता है पुलिस जन उसका अनुपालन करते हैं।
3. पुलिस संसाधनो का एक बड़ा हिस्सा विशिष्ट व्यक्तियों की सुरक्षा में लगाया जाता है।
4. राजनीतिज्ञ अपने वोटरों के लिए पुलिस से कार्य चाहते हैं।
5. अक्सर एफ.आई.आर. भी प्रभावशाली व्यक्तियों की इच्छा पर निर्भर करती है।
6. पुलिस बल के उच्च नेतृत्व के अधिकारी जो रोल मॉडल बन सकते हैं उन्हें मुख्य धारा से अलग कर दिया जाता है अथवा वे राजनीतिक चालों के माध्यम से आगे बढ़ने से रोक दिए जाते हैं।
7. पुलिस जन अधिकारियों के कहने पर किसी को भी जेल भेज सकते हैं, फर्जी बरामदगी कर सकते हैं, सही अभियुक्तों की मदद करके उन्हें बचा भी सकते हैं या किसी अपराधी को फर्जी मुठभेड़ में मार सकते हैं।

उक्त परिस्थितियों ने पुलिस जनों में आत्मसम्मान, बौद्धिक व आर्थिक ईमानदारी का हास किया है और नैतिक पुलिस कार्य से दूर कर दिया है। अत: इन परिस्थितियों और कमियों के सुधार के लिए समाज सरकार और पुलिस के स्तर पर निष्ठापूर्ण प्रयास करने की आवश्यकता है। इसके साथ ही 1960 ई0 में पुलिस महानिरीक्षकों के सम्मेलन में पारित किए गए पुलिस आचरण के सिद्धान्तों को जिन्हें बाद में राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने भी संशोधित किया (भारत सरकार के गृह मंत्रालय द्वारा (पत्र सं. VI-24021/97/84-जीपीए. 1 दिनांक 4-7-85 और 10-7-85 जो सभी राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों के मुख्य सचिवों तथा सी.पी.ओज के प्रमुखों को सम्बोधित है) जारी किया गया, को भी लागू करने की आवश्यकता है, जिसके प्रमुख बिन्दु निम्न प्रकार से हैं:

1. पुलिस भारत के संविधान के प्रति हमेशा वफादार रहेगी और संविधान में प्रदत्त नागरिकों के अधिकारों का सम्मान और रक्षा करेगी।
2. पुलिस सम्यक् तरीके से बनाये गये किसी कानूनों की आवश्यकता अथवा औचित्य पर सवाल नहीं उठायेगी। वह कानून की अनुपालना दृढ़ता और निष्पक्षता, बिना भय और द्वेष के साथ करायेगी।
3. पुलिस अपनी शक्तियों और कार्यप्रणाली की सीमाओं का ध्यान रखेगी और उनका सम्मान करेगी। वह न्याय करने अथवा न्याय करने जैसा दिखाई देने का प्रयास नहीं करेगी, न ही मामलों में निर्णय देकरव्यक्तियों से बदला लेने अथवा अपराधी को दण्डित करने का प्रयास करेगी।
4. कानून की अनुपालना कराने अथवा व्यवस्था बनाये रखने में जहाँ तक हो सके पुलिस को फुसलाने, सलाह देने और चेतावनी देने के तरीकों का प्रयोग करना चाहिए। जब बल प्रयोग करना अनिवार्य हो खोए तो आवश्यक परिस्थितियों में कम से कम बल का प्रयोग करना चाहिए।
5. पुलिस का प्रमुख कर्तव्य है अपराध और अव्यवस्था को रोकना और उसे समझ लेना चाहिए कि उसकी क्षमता का परीक्षण इन दोनों की अनुपस्थिति में है न कि पुलिस कार्यवाही के द्वारा इनको नियन्त्रित करते हुए दिखाई देने में।
6. पुलिस को यह ध्यान में रखना चाहिए कि वे जनता या समाज के ही सदस्य हैं। मात्र इतना ही अन्तर है कि जिन कर्तव्यों को करने लिए सामान्यत: प्रत्येक नागरिक जिम्मेदार है, उन्हें करनेलिए और समाज के हित के लिए तथा उसके द्वारा पुलिस को पूर्णकालिक ध्यान देकर कार्य करने के लिए नियुक्त किया गया है।

7. पुलिस को यह भी समझ लेना चाहिए कि उसकी कार्यक्षमता उतनी ही अच्छी होगी जितना उसे जनता से समय पर सहयोग मिलेगा। यह वस्तुत: पुलिसकर्मी के लोकसम्मत आचरण और कार्य के स्तर तथा जनता के द्वारा आदर और विश्वास के स्वरूप पर निर्भर करेगा।
8. पुलिस को हमेशा जन कल्याण का ध्यान रखना चाहिए और उसे इसके प्रति सहानुभूतिपूर्वक आचरण करना चाहिए। उन्हें हमेशा व्यक्तिगत सेवा और मित्रता देने के लिए तैयार रहना चाहिए और बिना उनकी सामाजिक अथवा आर्थिक स्थिति की चिन्ता किए उन्हें आवश्यक सहायता उपलब्ध कराना चाहिए।
9. पुलिस को हमेशा 'स्वयं से पहले ड्यूटी' को वरीयता देना चाहिए और हमेशा खतरों, झिड़कियों अथवा चिढ़ाये जाने की परिस्थिति में शान्त बने रहना चाहिए और दूसरों की जीवन-रक्षा में स्वयं का बलिदान देने के लिए भी तैयार रहना चाहिए।
10. पुलिस को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वह हमेशा विनम्र एवं सुसभ्य व्यवहार करे। उनके ऊपर भरोसा किया सके और वह निष्पक्ष हो, साथ ही उनमें गरिमा और साहस हो और वे अच्छे आचरण और जनता के विश्वास पाने योग्य हों।
11. उच्चतम दर्जे की सत्यनिष्ठा पुलिस की प्रतिष्ठा का मूलाधार है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए पुलिस को अपना व्यक्तिगत और व्यावसायिक जीवन साफ-सुथरा, संयमपूर्ण और कथनी करनी में सत्य एवं ईमानदार होना चाहिए, ताकि जनता उसे एक आदर्श नागरिक मान सके।
12. पुलिस को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि राज्य के प्रति उसका पूर्ण उपयोग केवल इसमें है कि वह अनुशासन का उच्च स्तर बनाये रखे, कानून के अनुसार निष्ठापूर्वक अपने कर्तव्यों का निर्वहण करे और अपने वरिष्ठ अधिकारियों के वैध निर्देशों की निर्विवाद अनुपालना करे और अपने बल के प्रति पूर्णरूप से वफादार रहे, साथ ही अपने को हमेशा सतत प्रशिक्षित और तैयारी की हालत में रखे।
13. एक प्रजातान्त्रिक और धर्म निरपेक्ष राज्य के सदस्य के रूप में पुलिस को हमेशा व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर भारत के सभी नागरिकों जो धार्मिक, भाषाई, क्षेत्रीय या वर्गीय विविधताओं के हैं, के बीच सामंजस्य और भाईचारे की भावना को बढ़ावा देना चाहिए। इसके साथ ही उसे महिलाओं की गरिमा तथा समाज के उपेक्षित वर्ग के विपरीत प्रयुक्त होने वाले रीति -रिवाजों का दमन करना चाहिए।

उक्त बिन्दुओं के द्वारा एक कर्तव्यनिष्ठ और सजग पुलिसकर्मी को तैयार कर सकते हैं, वहीं जनता के स्तर पर उनके कर्तव्यों का बोध विविध दृष्य-श्रव्य संचार माध्यमों, समाचार पत्रों, सेमिनारों पुलिस और जनता के बीच सम्पर्क सभाओं के माध्यम से करा सकते हैं। समय-समय पर पुलिस-कार्यप्रणाली की जानकारी अथवा प्रशिक्षण जनता को भी पुलिस या राज्य के प्रति जागरुक बना सकते हैं, जिससे पुलिस के दुरूपयोग की सम्भावना अत्यन्त ही क्षीण हो जायेगी, क्योंकि जागरूक जनता ही लोक कल्याणकारी और समर्पित राजनेताओं के रूप में अपना प्रतिनिधि चुन सकती है। इस प्रकार शासन के स्तर पर भी पुलिस के विधिसम्मत उपयोग को प्रभूत अवसर प्राप्त होगा। इसके फलस्वरूप पुलिस जनता की अपेक्षाओं पर संविधान की भावना के अनुरूप खरा उतर सकेगी।

11.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में पुलिस के विधि-सम्मत उपयोग के विषय में चर्चा की गई। सारांशत: पुलिस का विधि-सम्मत और प्रारम्भिक कार्य कानून और व्यवस्था की स्थिति को प्रत्येक परिस्थिति में बनाए रखते हुए समाज में शान्ति स्थापित करना है। अपनी कार्यप्रणाली में समुचित पारदर्शिता के साथ जनता

का सहयोग लेकर अपराधों की रोकथाम करना है। यह तथ्य भी ध्यान में रखने योग्य है कि पुलिसकर्मी जनता या समाज का ही एक प्रतिनिधि होता है, जो जनता के अधिकारों के लिए सतत प्रयासशील रहते हुए राज्य की निरकुंश शक्तियों से और असामाजिक तत्त्वों की आपराधिक प्रवृत्ति से जनता की रक्षा करता है।

पुलिस के विधि-सम्मत कार्य से अभिप्राय के अन्तर्गत कानून के शासन को लागू करने के लिए उन सभी प्रक्रियाओं को सम्मिलित किया जा सकता है जिसमें आम जनता के बीच सुरक्षा की भावना बनाये रखने के लिए विधायिका, न्यायपालिका, कार्यपालिका और शासन के उद्देश्यों में पूर्ण एकता और समन्वय विद्यमान हो।

पुलिस के पारम्परिक कार्यो में अपराध की रोकथाम तथा उचित अन्वेषण करके उसे दण्ड दिलाना प्रमुख है। साथ ही जीवन और सम्पत्ति की सुरक्षा के साथ नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करना आधुनिक परिप्रेक्ष्य में पुलिस के लिए महत्त्वपूर्ण चुनौती है। बदलते विकासशील सामाजिक परिवेश में आपदा प्रबन्धन एवं बचाव कार्य तथा विशिष्ट व्यक्तियों की सुरक्षा जैसे गैर पारम्परिक और नये कार्य पुलिस के लिए नई कठिनाइयाँ एवं चुनौतियाँ उत्पन्न कर रहे हैं, जिनकी समय-समय पर समीक्षा करना आवश्यक है।

यह तथ्य समझना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि पुलिस के विधि-सम्मत उपयोग में पुलिस पर नियन्त्रण करने वाले विविध सामाजिक, शासकीय, राजनैतिक और संगठनात्मक कारकों का अधिक प्रभाव होता है। पुलिस बल प्राय: सत्ताधारी राजनीतिक दलों और सामाजिक समूहों के द्वारा नियन्त्रित होते हैं अत: किसी भी प्रकार के दुरुपयोग की जिम्मेदारी भी उन्हीं पर आती है।

पुलिस कार्य सम्पादन की चुनौतियों में उसकी भूमिका की अस्पष्टता, विविध आवश्यक संसाधनों की कमी, प्रशिक्षण की कमी और कानूनी अड़चनें प्रमुख रूप से शामिल की जा सकती हैं। इसी के साथ ही पुलिस दुरुपयोग रोकने के उपायों में विविध पुलिस सुधारों एवं आयोगों की रिपोर्टो, शासन के द्वारा जारी किये गये पुलिस आचरण सम्बन्धी दिशा-निर्देशों को लागू करने के साथ ही जनता को इस सम्बन्ध में जागरुक बनाना अत्यावश्यक है। इसके फलस्वरूप जन-प्रतिनिधि स्वत: ही जनता की अपेक्षाओं के अनुरूप पुलिस बल के संगठन एवं उसकी कार्यप्रणाली में सहायक सिद्ध होंगे। इस प्रकार आप पुलिस के विधि-सम्मत उपयोग को प्राथमिक स्तर पर समझ कर अपने साथियों एवं सहकर्मियों की राय भी ले सकते हैं। साथ ही सहायक ग्रन्थों का अवलोकन भी कर सकते हैं।

11.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पुलिस की अवधारणा एवं उसके कर्तव्यों को समझाइये।
2. पुलिस के विधि-सम्मत कार्यो के अभिप्राय को स्पष्ट कीजिये।
3. पुलिस कार्य सम्पादन की विविध चुनौतियों पर प्रकाश डालिये।
4. पुलिस नियन्त्रण के विविध कारकों को स्पष्ट कीजिये।
5. पुलिस आचरण से सम्बन्धित बिन्दुओं को स्पष्ट कीजिये।
6. पुलिस दुरुपयोग रोकने में जनता की भूमिका का मूल्यांकन कीजिये।

11.9 सन्दर्भ

1. सिंघवी जी(.सम्पा) .एस. : पुलिस कम्यूनिटी रिलेशन्स)ए कम्पाइलेशन ऑफ प्राइज विनिंग एसेज इन द प्राइममिनिस्टर्स सिल्वर कप ऐसे - य पुलिस सरदार बल्लभभाई पटेल राष्ट्री (कम्पटीशन अकादमी, हैदराबाद1985 -
2. घोष एस.के. : इण्डियन पुलिस एट क्रॉस रोड, ईस्टर्न लॉ हाउस,कलकत्ता 1975 -
3. साहा बी.पी : द पुलिस इन फ्री इण्डिया कोनार्क (इट्स फेसेट्स एंड ड्राबैक्स) पब्लिशर्स प्रा.लि.ए 149-मेन विकास मार्ग, दिल्ली 1989
4. शर्मा आर.के. : पुलिस अरेन्जमेण्टस फॉर मेन्टेनिंग पब्लिक आर्डर, गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया प्रेस, मिण्टो रोड, नई दिल्ली, 1980
5. सुब्रमनियन एस. : वेल्कन टू पुलिस सर्विस एसोसियेशन फॉर एडवान्समेण्ट) ऑफ पुलिस एण्ड सिक्योरिटी साइन्सेज, प्रोफेसर्स कॉलोनी, अपोजिट नेशनल पुलिस अकादमी, शिवमपल्ली, हैदराबाद, 1993

इकाई - 12
सुशासन के संदर्भ में पुलिस

इकाई की संरचना

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 शासन-प्रशासन अवधारणात्मक पहलू

12.2.1 शासन

12.2.2 प्रशासन

12.2.3 सुशासन सुशासन के तत्व

12.4 सुशासनोन्मुखी पुलिस

12.4.1 पुलिस जवाबदेही (Police Accountability)

12.4.2 उत्तरदायी पुलिस (Responsible Police)

12.4.3 संवेदनशील पुलिस (Responsive and Sensitive Police)

12.4.4 पारदर्शी पुलिस (Transparent Police)

12.4.5 सहभागी पुलिस (Participative Police)

12.4.6 प्रभावी पुलिस (Effective Police)

12.4.7 कुशल पुलिस (Efficient Police)

12.4.8 सहमति आधारित पुलिस (Consensus Oriented Police)

12.4.9 विधि आधारित पुलिस (Rule of Law Based Police)

12.4.10 समावेशी पुलिस (Inclusive Police)

12.4.11 सेवान्मुखी पुलिस (Service Oriented Police)

12.4.12 भ्रष्टाचारमुक्त पुलिस (Corruption free Police)

12.5 सारांश

12.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के उद्देश्य निम्नांकित हैं-

- शासन, प्रशासन व सुशासन की अवधारणाओं से अवगत कराना।
- विद्यार्थियों को पुलिस के सुशासनगत संदर्भो से परिचित करवाना।

12.1 प्रस्तावना

समाजशास्त्रियों का यह मानना है कि कठिनाइयों पर विजय पाने के लिए तथा खतरों का सामना करने के लिए मनुष्य ने सामूहिक जीवन अपनाया जिसकी परिणति समाज नामक संस्था की स्थापना में हुई। सामाजिक जीवन एवं पारस्परिक अन्त:क्रियाओं से उत्पन्न झगड़ों, संघर्षों एवं तनावों के निराकरण के लिए राज्य नामक संस्था का जन्म हुआ। राज्य के जन्म के पीछे एक ऐसी व्यवस्था स्थापित करने की इच्छा रही है, जो मनुष्य मात्र की जीवन और संपत्तियां की रक्षा करते हुए उसे शांतिपूर्ण और व्यवस्थित वातावरण प्रदान कर सके। शासन एवं प्रशासन ऐसे महत्वपूर्ण माध्यम है जिनके द्वारा समाज में शांति एवं व्यवस्था की स्थापना राज्य करता है। राज्य के इस लक्ष्य की प्राप्ति के

लिए पुलिस एवं सेना जैसे संगठनों का निर्माण हुआ। इस प्रकार राज्य के अस्तित्व को बनाये रखने तथा शासन एवं प्रशासन को समुचित स्वरूप प्रदान करने के लिए पुलिस संगठन का निर्माण किया जाता है। पुलिस का प्राथमिक दायित्व यह है कि वह समाज में आंतरिक सुरक्षा, शांति और कानून-व्यवस्था को बनाये रखे। पुलिस की इस विशिष्ट भूमिका को समझने से पूर्व यह समीचीन प्रतीत होता है कि शासन एवं प्रशासन की अवधारणाओं को समझा जाये।

12.2 शासन प्रशासन: अवधारणात्मक पहलू

विविध सामाजिक गतिविधियों के नियंत्रण, नियमन, पर्यवेक्षण एवं संचालन के लिए राज्य नामक संस्था का आविर्भाव हुआ। शासन और प्रशासन राज्य के महत्वपूर्ण माध्यम है, जिनके जरिये वह अपनी विविध गतिविधियों एवं कार्य योजनाओं को अंजाम देता है। शासन व प्रशासन के संचालन में पुलिस एक महत्वपूर्ण अभिकरण के रूप में राज्य को सहयोग प्रदान करता है।

12.2.1 सन

शासन एक बहु-आयामी एवं व्यापक अवधारणा है। इस अवधारणा का सीधा संबंध राज्य व सरकार से होता है। शासन का तात्पर्य राज्य से संबंधित नीति-निर्धारण, निर्णयन, नीतियों के क्रियान्वयन, कार्य योजनाओं के निष्पादन तथा सभी प्रकार की गतिविधियों पर नियंत्रण पर्यवेक्षण एवं संचालन से होता है। शासन शब्द के व्यापक निहितार्थ है और प्रक्रियात्मक, गतिविधि संचालन, नीति-निर्धारण एवं नीति-क्रियान्वयन के संदर्भो में शासन का स्वरूप वस्तुत: सरकार से कहीं अधिक व्यापक एवं समग्र होता है। यद्यपि शासकीय गतिविधियों, प्रक्रियाओं, कार्यकलापों एवं व्यवस्था का कार्यक्षेत्र एवं प्रभाव सरकार के माध्यम से प्रकट होता है, तथापि शासकीय व्यवस्था का कार्यक्षेत्र एवं प्रभाव सरकार से बड़ा माना जाता है। राज्य के चार प्रमुख तत्व माने गये है जो क्रमश: भूमि, जनसंख्या, सरकार एवं संप्रभुता के रूप में पहचाने जाते है। शासन प्रकारान्तर में इन सभी तत्वों से संबंधित होता है, जबकि सरकार को राज्य का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है। अत: कहा जा सकता है कि शासन जहां राज्य की मूर्त एवं अमूर्त व्यवस्थाओं से प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से संबंधित होता है, वहीं सरकार एवं प्रशासन को शासन के उप-उत्पाद के रूप में देखा जाता है, जो अपने अस्तित्व के लिए मूल रूप से शासन पर निर्भर होते है।

12.2.2 प्रशासन

मूल रूप से प्रशासन को शासन के उप-उत्पाद के रूप में समझा जा सकता है। शासकीय नीतियों एवं कार्ययोजनाओं को लागू करने के लिए जिस व्यवस्था का निर्माण किया जाता है, उसे प्रशासन कहा जाता है। प्रशासन को अंग्रेजी में Administration कहा जाता है। इस शब्द की उत्पत्ति लैटिन की Minisitiare शब्द से हुई है जिसका तात्पर्य होता है- सेवा करना। यही कारण है कि प्रशासन से जुड़े हुए कर्मियों को लोक सेवक कहा जाता है। आमतौर पर प्रशासन का तात्पर्य विविध गतिविधियों के प्रबन्धन से होता है, जिनके माध्यम से आमजन को सेवाएं एवं सुविधाएं उपलब्ध करवाई जाती है। किसी संगठन में कार्यरत कर्मी जब सामूहिक रूप से किसी नलक्ष्य की प्राप्ति करने में संलग्न होते है तो वे प्रशासनिक गतिविधियों के संचालन से जुड़े हुए होते है। प्रशासन की यह प्रक्रिया, प्रबन्धक वर्ग, नवाचार और जीवन-निर्वाह शैली के रूप में स्वीकार की जाती है। यही कारण है कि प्रशासन को एक आर्थिक साधन, अधिकार और सत्ता की एक प्रणाली के रूप में तथा एक वर्ग के रूप में स्वीकार

किया जाता है। एक प्रक्रिया के रूप में प्रशासन का तात्पर्य मिलजुल कर कार्य करना और करवाने की प्रक्रिया से है। एक वर्ग के रूप में प्रशासन का तात्पर्य व्यक्तियों के उस समूह से होता है जो किसी संस्था व संगठन में प्रबन्धन का कार्य करते है। एक प्रक्रिया के रूप में प्रशासन वह संगठित ज्ञान-समूह है जिसका शिक्षण-प्रशिक्षण किया जा सकता है। इसी प्रकार संगठन और प्रशासन को अधिकार व सत्ता की एक प्रणाली के रूप में समझा जा सकता है जो निर्णय लेने और उनको क्रियान्वित करने की क्षमता रखती है। प्रशासन मूल रूप से वह प्रक्रिया तथा वह व्यवस्था है जो निर्धारित उद्देश्य की प्राप्ति के लिये किसी मानव समूह, जिसे संस्था या संगठन कहा जाता है, के सामूहिक एव व्यक्तिगत प्रयासों से संबंध रखती है। इस अर्थ मे पूर्व निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सामूहिक प्रयासों का नियोजन, संगठन, समन्वय, नियंत्रण एवं अभिप्रेरणा को प्रशासन के रूप में अभिहित किया जा सकता है।

12.2.3 सुशासन

सुशासन का तात्पर्य अच्छे एवं बेहतर शासन से है। जब शासकीय व्यवस्थाएं गुणात्मक बन कर लोकहित के प्रति संवेदनशील एवं सजग होती है, तो यह माना जाता है कि शासन वस्तुत: सुशासन की ओर उन्मुख हो रहा है। सुशासन कोई नई अवधारणा नहीं है। सभी कालों में शासन से जुड़े लोग उपलब्ध एवं प्रचलित गतिविधियों को बेहतर बनाने के प्रयास करते रहे है। भारतीय संदर्भो में सुशासन को सदा से प्रचलन में रहने वाली व्यवस्था के रूप में समझा जा सकता है। वैदिक काल, महाभारत एवं कौटिल्य के अर्थशास्त्र में सुशासन से संबंधित कई प्रसंगों का उल्लेख है। महात्मा गांधी ने भी सुराज एवं स्वराज के माध्यम से सुशासन की अवधारणाओं को स्पष्ट किया। अरस्तु प्लेटों, रूसों, मोंटेस्क्यू तथा जे.एस. मिल जैसे विचारकों ने सुशासन की अवधारणा एवं विचार की समीक्षा एवं मीमांसा की है।

आधुनिक काल में सुशासन का तात्पर्य विकास एवं सेवा-प्रदायगी की बेहतर व्यवस्थाओं के प्रचलन से है, जो समग्र लोकहित एवं जनहित से संचालित होती है। आधुनिक युग में सुशासन की अवधारणा तथा इसका राजकीय तथा प्रशासनिक कार्यप्रणाली के रूप में अवतरण, संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा की सन् 1974 की घोषणा, जिसके अन्तर्गत नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के माध्यम से राज्य की राजनैतिक अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के चार्टर की स्वीकारोक्ति की गई, को माना जाता है। तदनन्तर वर्ष 1989 में विश्व बैंक द्वारा सुशासन की अवधारणा को रेखांकित किया गया तथा वर्ष 1992 में विश्व बैंक के, "शासन एवं विकास" प्रतिवेदन की वजह से सुशासन की अवधारणाओं एवं कार्यप्रणालियो ने सुस्पष्ट स्वरूप ग्रहण कर लिये। आज सभी राष्ट्रों की राजकीय एवं प्रशासनिक व्यवस्थाएं सुशासन के मूलमंत्र से प्रेरित एवं संचालित है। स्थायी एवं निरंतर विकास की अवधारणा, मानवाधिकार, सामाजिक न्याय, महिला सशक्तिकरण, सहभागी लोकतंत्र, सूचना एवं संप्रेषण प्रौद्योगिकी तथा उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण जैसी वैचारिक स्थितियों, कार्यप्रणालियों विचारधाराओं एवं आंदोलनों ने सुशासन की अवधारणा, विचारधारा व कार्यप्रणाली को लोकप्रिय बनाकर आधुनिक समय की अपरिहार्य और आवश्यक शासकीय और प्रशासकीय व्यवस्था के रूप में स्थापित कर दिया है।

सुशासन एक समग्र, व्यापक एवं समावेशी अवधारणा है, जो नीति - निर्धारण, संगठन - कार्यप्रणाली, बुनियादी संस्थाएँ, नागरिक सेवाओं तथा समाज के सभी समूहों एवं वर्गो के लिए प्रासंगिक है। एक कार्यप्रणाली व व्यवस्था के रूप में सुशासन विकास के विभिन्न प्रतिमानों को प्रभावित करता है तथा उनकी दशा को निर्धारित करता है।

पुलिस विभाग चूंकि शासन एवं प्रशासन की एक अहम् इकाई है, अत: सुशासन की अवधारणा, कार्यप्रणाली व तत्व आदि सभी स्तर के, पुलिसकर्मियों एवं पुलिस संगठन की विविध गतिविधियों के लिए जरूरी माने जाते है। सुशासन की बुनियादी अवधारणा को समझने के कुद उसके विभिन्न अवयवों व तत्वों की समीक्षा किया जाना प्रासंगिक प्रतीत होता है।

12.3 सुशासन के तत्व

सुशासन एक बहु-आयामी व्यवस्था है, जिसके अनेक अंग, उपांग एवं तत्व होते है। सुशासन के रूप में पहचाने जाने वाली व्यवस्था के विशिष्ट गुण होते है तथा इसकी कुछ विशेषताएं भी होती है। सुशासन की अवधारणा, विचार, व्यवस्था एवं कार्यप्रणाली को समझने के लिए इन तत्वों व विशेषताओं को समझना जरूरी है। सुशासन की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं व तत्व निम्नांकित है:-

1. जवाबदेह (Accountable)
2. उत्तरदायी (Responsible)
3. संवेदनशील (Responsive and Sensitive)
4. पारदर्शी (Transparent)
5. भागीदारी (Participative)
6. प्रभावी (Effective)
7. कुशल (Efficient)
8. सहमति आधारित (Consensus Orientation)
9. कानून का राज (Rule of Law)
10. समानता (Equity-orientation)
11. समावेशी (Inclusive)
12. स्वतंत्र न्यायपालिका (Independent judiciary)
13. सेवान्मुखी (Service Orientation)
14. लोक कल्याणकारी (Welfare Orientation)
15. भ्रष्टाचारमुक्त (Corruption Free)

12.4 सुशासनोन्मुखी पुलिस

सुशासन के संदर्भ में पुलिस को दोहरे दायित्वों एवं दोहरी भूमिका का निर्वाह करना होता है। एक तरफ जहां सुशासन के प्रमुख तत्वों का पुलिस कार्यप्रणाली में समावेश करने की अपेक्षा जन-मानस पुलिस से करता है, वहीं पुलिस को सुशासन की स्थापना के लिए राज्य, सरकार एवं संबंधित विभागों को, उनके द्वारा इस दिशा में किये जा रहे प्रयासों में सहयोग भी करना होता है।

समसामायिक संदर्भो में पुलिस को अपनी पुरानी कार्यप्रणाली में सुधार लाकर सुशासनोन्मुखी बनने की आवश्यकता हैं इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पुलिस को सुशासन के सभी तत्वों को अपने कार्यकलापों में समावेश करने की आवश्यकता है। सुशासन के निम्नांकित तत्वों को पुलिस को अपनी कार्यप्रणाली एवं भूमिका निर्वाह में सम्मिलित करना चाहिए।

12.4.1 पुलिस जवाबदेही (Police Accountability)

प्रजातांत्रिक समाज में जहां कानून एवं संविधान की सर्वोच्चता होती है, वहाँ शासकीय एवं प्रशासकीय जवाबदेही के संदर्भ एवं प्रसंग भी उन समाजों से भिन्न होते है, जहाँ की व्यवस्थाएं प्रजातांत्रिक

नहीं होती। प्रजातांत्रिक समाजों में शासकीय एवं प्रशासकीय जवाबदेही प्रमुख रूप से संविधान, न्याय, कानून एवं जनता के प्रति होती है। ऐसे में पुलिस-जवाबदेही के स्वरूप भी तदनुरूप ही होने स्वाभाविक है।

पुलिसकर्मियों को तात्कालिक रूप से जहां अपने वरिष्ठ अधिकारियों तथा शासकीय एवं प्रशासकीय व्यवस्थाओं एवं अधिकारियों के प्रति जवाबदेह माना जाता है, वहीं उन्हें बुनियादी तौर पर एवं अन्ततोगत्वा संविधान, न्याय, विधि एवं जनता के प्रति जवाबदेह होना चाहिए। प्रत्येक पुलिसकर्मी को अपने दायित्वों के प्रति निष्पादन के दौरान इस ओर सजग रहना चाहिए कि वह जो भी कार्य सम्पन्न कर रहा है, वह कानून सम्मत, वैध एवं निर्धारित प्रक्रिया और संविधान के अनुरूप हो। यही वजह है कि पुलिसकर्मियों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपने वरिष्ठ अधिकारियों एवं अन्य प्रशासनिक और राजनैतिक अधिकारियों के विधि-सम्मत आदेशों की पालना करेंगे। पुलिसकर्मियों में इस प्रकार की जवाबदेही का भाव एक तरफ जहां अनावश्यक राजनीतिक हस्तक्षेप से पुलिस संगठन को मुक्त करेगा, वहीं गैर कानूनी कामों को पुलिस के माध्यम से करवाये जाने की प्रवृति पर भी अंकुश लगेगा।

कानून, विधि, संविधान एवं जनता के प्रति जवाबदेही का भाव रखने से पुलिसकर्मी गलत कार्यो को करने से बचेंगे तथा उन पर गैर कानूनी काम करने तथा पुलिस के राजनीतिकरण के आरोप भी नहीं लगेंगे। ऐसा होने पर पुलिसकर्मी आपराधिक कार्यो में लिप्त होने के कारण कानूनी कार्यवाही से भी बच सकेंगे। पुलिस के प्रजातंत्रीकरण बेहतर छवि व अच्छे जनसम्पर्कों के लिए जरूरी है कि वे अपने कार्यो एवं दायित्वों के निर्वाह के लिए विधि, न्याय एव संविधान के प्रति अपने को जवाबदेह बनाकर अपने को सुशासन का प्रभावी प्रतिनिधित्व बनायें।

12.4.2 उत्तरदायी पुलिस (Responsible Police)

पुलिस पर आमतौर पर लापरवाही एवं गैर जिम्मेदारी के आरोप लगते रहते है। उत्तरदायित्व एव जिम्मेदारी के साथ अपने प्रदत्त कार्यो का निष्पादन करना सुशासन का एक प्रमुख तत्व है। सुशासन के इस महत्वपूर्ण तत्व का पुलिस भूमिका के निर्वाह में समावेश कर लिये जाने से पुलिस समाज के विभिन्न वर्गो द्वारा होने वाली आलोचना से बच सकती है।

उत्तरदायित्व के गुण का समुचित निर्वाह तभी हो सकता है, जबकि संबंधित कर्मी अपने कार्यो व भूमिका के महत्व को समझे तथा उन कार्यो एवं भूमिका का कुशल निर्वाह कैसे किया जाना है, इसका ज्ञान रखे। अपने कार्यों व दायित्वों के प्रति पूरा ज्ञान, समझ एव सजगता रखने के साथ-साथ उन कार्यो व दायित्वों के निर्वाह के लिए वांछित कौशल, कुशलता और पटुता के विकास, के साथ-साथ अपनी भूमिका के कुशल निर्वाह के लिए सकारात्मक सोच, रूझान एवं अभिवृत्तियों को विकसित कर सकता है। प्रत्येक पुलिसकर्मी को अपने में इस प्रकार का उत्तरदायित्व बोध विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। सुशासन के इस महत्वपूर्ण तत्व का समावेश पुलिसकर्मी अपनी भूमिका के निर्वाह में करने से सुशासन के संदर्भ में अपनी प्रासंगिकता को सार्थक तरीके से स्थापित कर सकेंगे।

12.4.3 संवेदनशील पुलिस (Responsive and Sensitive Police)

संवेदनशीलता एक महत्वपूर्ण मानवीय गुण है। इसी गुण की वजह से मनुष्य दूसरे की पीड़ा को समझ सकता है। संवेदनशीलता सज्जन पुरूष की पहचान होती है। यही कारण है कि गांधीजी ने कहा है कि "वैष्णव जन तो तैने कहिए, जो पीर पराई जाने रे"। संवेदनशीलता प्रकारान्तर में मनुष्य में सहानुभूति, दया एवं करूणा जैसे भावों को जन्म देती है। ये भाव मनुष्य को सेवा की ओर उन्मुख

करते है। सरकारी कर्मचारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे आम नागरिक की तकलीफ को समझेंगे और उसका निराकरण करने की कोशिश करेंगे। राज्य कर्मी यह तभी कर सकते है जब उनमें संवेदनशीलता का गुण हो। संवेदनशीलता की वजह से वे उनके संपर्क में आने वाले नागरिकों के दुख, तकलीफ, परेशानी एवं कठिनाई को समझ सकेंगे और उन्हें दूर करने की कोशिश कर, आम नागरिक के प्रति सेवान्मुखी होंगे। राज्यकर्मियों द्वारा ऐसा करने की अपेक्षा की वजह से ही उनको लोकसेवक कहा जाता है।

पुलिसकर्मी एक महत्वपूर्ण लोकसेवक होता है, क्योंकि पुलिस संगठन का सम्पर्क एवं वास्ता समाज के सभी वर्गो से होता है। यही वजह है कि पुलिस विभाग को सामाजिक दृष्टिकोण से एक सघन अन्तक्रियात्मक संगठन माना जाता है। आम पुलिसकर्मी को राज्य सरकार की सत्ता का प्रतिनिधि माना जाता है। साथ ही वह समाज में सबसे अधिक प्रकट राज्यकर्मियों में से एक होता है। संकट की घड़ी में जब नागरिकों को यह पता नहीं होता कि वे कहां जायें और क्या करें तो पुलिस थाना एवं पुलिसकर्मी उन्हें समस्या के समाधान का माध्यम नजर आते हैं। ऐसे में यह जरूरी है कि पुलिसकर्मी में संवेदनशीलता का गुण हो।

संवेदनशील बनकर पुलिसकर्मी उनके संपर्क में आने वाले नागरिकों की तकलीफों के प्रति जागरूक एवं सतर्क बनेंगे तथा उनका निराकरण करने की कोशिश करेंगे। पुलिस पर असंवेदनशीलता के आरोप आमतौर पर लगते रहते है। आम आदमी यह मानता है कि पुलिस उनकी तकलीफों एवं परेशानियों के प्रति संवेदनशील नहीं रहती। पुलिसकर्मी न तो उनकी तकलीफों व कठिनाइयों को ध्यान से सुनते है और न ही उचित कार्यवाही प्रयोग में लाते है।

संवेदनशीलता के सुशासन तत्व का समावेश पुलिसकर्मी अपनी भूमिका के निर्वाह में करें तो उनकी छवि में गुणात्मक सुधार हो सकता है, उन्हें जन-सहयोग मिल सकता है, जो उन्हें कुशल एवं कारगर तरीके से भूमिका निर्वाह में सक्षम बना सकता है। संवेदनशील बनकर पुलिसकर्मी अपने कार्यकलापों के निष्पादन में अधिक सक्रिय व कारगर बन सकते है। ऐसा होने पर पुलिसजन उन पर लगने वाले निफियता के आरोपों से मुक्त होकर सक्रिय एवं सजग पुलिस की छवि को स्थापित कर सकेंगे।

संवेदनशीलता के गुण से सज्जित होकर पुलिसकर्मी सहानुभूति, करूणा, सहयोग एवं सेवा की भावनाओं से परिपूर्ण होकर, सच्चे अर्थों में अपने आप को लोकसेवक की भूमिका के सफल निर्वाह के लिए समर्थ बना सकेंगे। संवेदनशीलता का यह गुण पुलिस संगठन को प्रजातांत्रिक पुलिस एवं जनमित्र पुलिस के रूप में रूपान्तरित कर सकेगा। स्वाभाविक है कि ऐसा होने पर पुलिस अपनी पुरानी और नकारात्मक औपनिवेशिक छवि से मुक्त होकर, अपनी भूमिका, विविध दायित्वों व कार्यो को कुशलतापूर्वक संपन्न करने में सफल हो सकेगी। सुशासन का अहम अंग बनने के लिए पुलिस में संवेदनशीलता के महत्वपूर्ण सुशासन तत्व का समावेश करना समसामायिक संदर्भो में जरूरी हो गया है। संवेदनशीलता के इस गुण से आम पुलिसकर्मी को सज्जित करने के लिए यह जरूरी है कि पुलिस प्रशिक्षण एवं पुलिस के कार्मिक प्रशासन के समग्र संदर्भो में मनौवैज्ञानिक व मानवीय दृष्टि से सुशासन के महत्वपूर्ण तत्व संवेदनशीलता को समाहित किया जाये।

12.4.4 पारदर्शी पुलिस (TransparentPolice)

पारदर्शिता सुशासन का एक महत्वपूर्ण तत्व है। प्रजातांत्रिक व्यवस्था में यह अपेक्षा की जाती है कि सभी तरह की गतिविधियों एवं कार्यक्रमों में पारदर्शिता बनी रहेगी। प्रशासन में पारदर्शिता का तात्पर्य यह है कि राज्यकार्य एवं राज्यकर्मियों के क्रियाकलापों में अनावश्यक गोपनीयता का उपयोग

नहीं होगा। पारदर्शिता का शाब्दिक अर्थ है- आर-पार तक दिखाई देना, सामने होना, स्पष्ट होना, प्रत्यक्ष एवं जैसा है वैसा दिखाई देना। इन सब स्थितियों का निहितार्थ यह है कि जो कुछ है वह सामने है, स्पष्ट है, जो है वह दिखलाई दे रहा हैतथा कुछ भी छुपाया नहीं गया है।

प्रशासनिक पारदर्शिता के सिद्धान्त के संदर्भ में कुछ विशिष्ट स्थितियों में अपवाद स्वरूप गोपनीयता रखनी होती है। ये अपवाद राज्य हित, राष्ट्र हित, जन हित एवं आंतरिक सुरक्षा जैसे आधारों पर अपनाये जाते है। आम सिद्धान्त यह है कि सामान्य स्थितियों में राज-काज व राज्यकर्मियों के क्रियाकलाप तथा कार्यप्रणालियाँ स्पष्ट एवं पारदर्शी होनी चाहिए। प्रशासन में पारदर्शिता को सुनिश्चित करने के लिए आम नागरिक को सूचना के अधिकार की मान्यता मिली हुई है। पिछले कुछ दशकों में नागरिकों के सूचना के अधिकार ने एक प्रभावी लोक अभियान का स्वरूप ग्रहण कर लिया था। नागरिकों के इस अधिकार को स्वीकार करते हुए सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 पारित किया जा चुका है। इस अधिनियम की वजह से हर नागरिक को यह अधिकार प्राप्त हो गया है कि वह राजकार्य से संबंधित किसी भी सूचना को प्राप्त कर सकता है।

सूचना का अधिकार अधिनियम ने प्रशासन में पारदर्शिता लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया है और अब राज्य कर्मचारी गोपनीयता के आधार पर सूचनाओं एवं तथ्यों का छुपाकर नहीं रख सकते। नागरिकों द्वारा चाहे जाने पर उन्हें वांछित सूचनाएं उपलब्ध करवायी जायेगी। पारदर्शिता के अलावा इस अधिनियम की वजह से राज्य कर्मचारियों की मनमानी पर नियंत्रण लगा है और नागरिकों को बेहतर सुविधाएं मिलने की व्यवस्थाएं बनी है।

नागरिकों के सशक्तिकरण की वजह से उनके आत्म-सम्मान में वृद्धि हुई है तथा कुछ सीमा तक भ्रष्टाचार पर भी अंकुश लगा है। आम राज्यकर्मी की जवाबदेही, उत्तरदायित्व एवं संवेदनशीलता की स्थितियां भी बेहतर बनी है। परिणामस्वरूप सुशासन की स्थितियां पुष्ट एवं मजबूत बनी है।

पुलिस संगठन पर अपारदर्शी बने रहने एवं पारदिर्शता के अभाव के आरोप लगते रहे है। ऐतिहासिक व औपनिवेशिक कारणों से पुलिस की कार्यप्रणाली एवं व्यवहार में निरंकुशता व हठधर्मिता के आरोप भी लगते रहे है। आमतौर पर यह माना जाता है कि पुलिस एक गोपनीयता प्रधान विभाग है तथा इसकी सूचनाएं व कार्यकलाप गोपनीय रहने चाहिए। कुछ सीमा तक यह स्थिति सही हो सकती है, परन्तु गोपनीयता को आधार बनाकर नागरिकों से स्थितियों, यथार्थो एवं तथ्यों को अनावश्यक रूप से छुपाकर रखने को सही नहीं कहा जा सकता।

पुलिस कार्यप्रणाली का एक बुनियादी आधार यह है कि "पुलिस जनता के लिए है और जनता पुलिस के लिए है"। पुलिस मूल रूप से एक नागरिक संगठन है। समाज के सभी वर्गो का पुलिस से सम्पर्क रहता है। वस्तुतः पुलिस संगठन एक सघन सामाजिक अन्तःक्रियात्मक विभाग है। पुलिस एवं समाज के बीच दूरी नहीं रहनी चाहिए। ऐसा होने पर ही पुलिस-जनता संबंध स्वैच्छिक, सघन, मैत्रीपूर्ण व पारस्परिक बने रहेंगे। यह स्थिति पुलिस व जनता दोंनों के हित में है।

लोकतान्त्रिक स्थितियों में यह जरूरी है कि पुलिस अपने एकांतिक एवं गोपनीयता के माहौल से बारह आये और जनता के साथ में खुलेपन का व्यवहार करे। ऐसा होने पर पुलिस कार्यकलापों में पारदर्शिता की स्थितियां बनेंगी। जनता पुलिस की तकलीफों को समझने में सक्षम होगी, वहीं पुलिस भी जनता की पीड़ा का निराकरण करने में पहल करेगी। पुलिस, आमजन को अपने क्रियाकलापों, उपलब्धियों एवं कठिनाइयों से अवगत कराती रहे तथा आम नागरिक को उससे संबंधित सूचना उपलब्ध कराती रहे तो पुलिस व जनता के बीच व्याप्त दूरियों का काफी सीमा तक कम किया जा सकता है। चरित्र सत्यापन, अनुसंधान की तथ्यात्मक स्थिति तथा अन्य सूचनाएं जो सामान्य प्रकृति की है, से

नागरिकों, को अवगत कराते रहना चाहिए। गुमशुदगी और चालान / अंतिम प्रतिवेदन जैसे विषयों के बारे में पारदर्शिता बनाये रखकर, नागरिक जब भी चाहे उन्हें वांछित सूचना उपलब्ध करवानी चाहिए। नागरिकों की आम रूचि से जुडी हुई सूचनाएं और अन्य सामान्य कार्यकलापों से संबंधित तथ्य और आंकड़े सूचनापट्ट पर उपलब्ध रहने चाहिए।

पुलिस पारदर्शिता जैसे विषय प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों के अंग होने चाहिए, जिससे कि आम पुलिसकर्मी में सूचना के अधिकार तथा प्रशासन में पारदर्शिता जैसे विषयों के बारे में जागरूकता बढ़े और वह पारदर्शी पुलिस के लक्ष्य को प्राप्त करने की ओर उन्मुख हो। अनावश्यक गोपनीयता की स्थितियों से मुक्त होकर तथा वांछित पारदर्शिता अपनाकर पुलिस संगठन सहज ही सुशासन के एक महत्वपूर्ण तत्व को आत्मसात करने में सफल हो सकेगा। पुलिस के प्रजातंत्रीकरण पुलिस जन-संबंधों में सुधार तथा सकारात्मक पुलिस छवि की स्थापना में पुलिस-पारदर्शिता अहम भूमिका का निर्वाह कर सकती है।

12.4.5 सहभागी पुलिस (Participative Police)

आधुनिक, प्रजातांत्रिक एवं खुले समाजों की शासकीय एवं प्रशासकीय व्यवस्थाएं, स्वाभाविक तौर पर, अपने स्वरूप में, भागीदारिता का भाव लिये हुए होती है। अपने विभिन्न गतिविधियों और आवश्यकताओं के साथ, प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष तरीकों से, जुड़ी हुई होती है। इसके साथ ही, अपने कार्यक्रमों एवं योजनाओं के क्रियान्वयन में, जहां भी संभव एवं जरूरी होता है, ये व्यवस्थाएं नागरिकों की जन-सहभागिता को भी प्रोत्साहित करती है। भागीदारिता की इस व्यवस्था की वजह से आमजन में यह भाव प्रचलन में रहता है कि सरकार जनता के लिए है तथा जनता को भी सरकार के विविध कार्यक्रमों में वांछनीय सहयोग प्रदान करना चाहिए। जनता एवं सरकार के बीच उपलब्ध यह पारस्परिकता शासन एवं प्रशासन को सुशासन की ओर उन्मुख करती है। भागीदारिता को इस प्रकार सुशासन के एक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में पहचान मिली हुई है।

पुलिस के विभिन्न कार्यकलापों मे भी उपर्युक्त प्रकृति की सहभागी स्थितियां मौजूद रहनी चाहिए। पुलिस कार्यो, दायित्वों एवं भूमिका की प्रकृति व प्रवृति ऐसी होती है कि इनके निर्वाह में पुलिस और जनता का पारस्परिक सहयोग एवं निर्भरता, लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक मानी जाती है। पुलिस-जनता संबंधों के स्वरूप का निर्धारण पुलिस और आम नागरिक के बीच होने वाले व्यवहार पर निर्भर करता है। किसी भी कानून क्रियान्वयन अभिकरण के प्रभाव का मूल्यांकन सिर्फ उसकी कार्यकारी कठोरता के आधार पर नहीं किया जा सकता। उसकी यह प्रभावशीलता काफी हद तक जनसाधारण के स्वैच्छिक सहयोग पर निर्भर करती है। जनता का स्वैच्छिक सहयोग किसी भी संगठन विशेष की व्यावसायिक प्रतिभा तथा कार्यकारी छवि की गुणवत्ता द्वारा निर्धारित होता रहता है। पुलिस-जनता संबंधों का सुविकसित स्वरूप ही वह विश्वसीय उपकरण है जिसके माध्यम से लोकतांत्रिक समाज में पुलिस और जनता के पारस्परिक संबंधों की अन्तःक्रियात्मक सत्यता को समझा जा सकता है। पुलिस-जनसंपर्को के ये संदर्भ पुलिस कार्यकलापों के सहभागी स्वरूपों को प्रकट करते है।

समाज सेवा के लिए समाज द्वारा निर्मित पुलिस संगठन अपने लक्ष्यों की प्राप्ति एवं पूर्ति के लिए जन-सहयोग की बहुत अपेक्षा करता है। पुलिस को वांछित जन-सहयोग मिलेगा अथवा नहीं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि पुलिस-जनता के संबंध किस प्रकार के है? पुलिस विभाग के सभी कार्यो का संपादन जन-सहयोग के बिना संभव नहीं है। वांछित सहयोग नहीं मिलने की स्थिति में पुलिस-जनता संबंधों के अपर्याप्त बने रहने की संभावनाएं बलवती बनी रहती है।

पुलिस और जनता के बीच मैत्रीपूर्ण एवं स्वैच्छिक संबंध प्रजातांत्रिक प्रणाली की मूलभूत आवश्यकता है। यही नहीं, प्रजातांत्रिक प्रणाली की सर्वागीण सफलता के लिए पुलिस-जनता संबंधों को मजबूत स्तम्भ के रूप में स्वीकार किया गया है। इस अवधारणा को समझने की सबसे ज्यादा आवश्यकता पुलिस को है। ऐसा इसलिए है कि पुलिस को ही जनता की समस्याओं से निपटना होता है। जनता की समस्याओं को समझने और उनका तार्किक तरीके से समाधान करने के लिए गहरी संवेदनशीलता की जरूरत होती है।

पुलिस तथा जनता के बीच मधुर संबंध बने रहें, उसके लिए सामुदायिक बोध पहली शर्त है। पुलिस को यह भी स्पष्ट रूप से ज्ञात होना चाहिए कि इस लक्ष्य की प्राप्ति के मार्ग में बहुत कठिनाइयां तथा बाधाएं भी आती है। पुलिस और जनता दोनों को ही पारस्परिक रूप से मधुर संबंध स्थापित करने के लिए ईमानदारी से प्रयत्नकरने होंगे। संबंधों की स्वस्थ स्थापना के लिए तथा तत्संबंधी समस्याओं के निराकरण के लिए मिल-जुलकर प्रयास करने होंगे। इस तरह की कोशिश से पुलिस एवं जनता का पारस्परिक विश्वास बढ़ेगा तथा लक्ष्यों की प्राप्ति का मार्ग सुगम होता चला जायेगा।

ऐसा माना जाता है कि जनता के सहयोग एवं समर्थन के बिना पुलिस कार्यो में सफलता नहीं मिल सकती। जिस तरह शुद्ध भाषायी अभिव्यक्तियों के लिए व्याकरण की आवश्यकता है, उसी तरह स्वस्थ सामाजिक वातावरण को बनाये रखने के लिए पुलिस-जनता के बीच मधुर संबंधों की आवश्यकता होती है। पुलिस और जनता दोनों ही एक दूसरे पर निर्भर रहते है। पुलिस संगठन के निर्माण की कल्पना का आधार समाज की सेवा और उसका समुचित संचालन ही रहा है। सामाजिक सुरक्षा एव शांति स्थापना के लिए, अपराधों की रोकथाम तथा अपराधियों को न्याय प्रक्रिया के अनुसार दोषी सिद्ध कर दण्ड दिलवाने का कार्य भी पुलिस को करना होता है।

कानून व्यवस्था के सुचारू रूप से संचालन और सामाजिक परिवेश की ठीक तरह सुरक्षा एंव संरक्षा के लिए नागरिकों को पुलिस की आवश्यकता पड़ती है तो दूसरी ओर प्रभावी कर्त्तव्यपालन एवं विभिन्न कार्यो के समुचित संपादन एवं क्रियान्वयन के लिए पुलिस को भी नागरिकों के सहयोग की जरूरत रहती है। पुलिस की सभी समस्याओं का समाधान तभी संभव है, जब उसे जनता का समर्थन सही रूप में मिले। पुलिस को हर पल एवं कदम-कदम पर नागरिकों के सहयोग की आवश्यकता होती है। अपराधों की रोकथाम हो या अनुसंधान का कार्य या सूचनाएं एकत्र करने का कार्य हो जन-सहयोग की निरंतर एवं तात्कालिक जरूरत हमेशा बनी रहती है। पुलिस जनसपर्कों के विविध स्वरूप, बुनियादी तौर पर एवं प्रकारान्तर में, पुलिस कार्यप्रणाली में सन्निहित सहभागिता को प्रकट करते है। सहभागिता के सभी स्वरूपों को सहज, स्वैच्छिक, पारस्परिक एवं मैत्रीपूर्ण बनाया जाकर पुलिस भूमिका निष्पादन को सुशासनोन्मुखी बनाया जा सकता है।

12.4.6 प्रभावी पुलिस (Effective Police)

किसी भी संगठन की सार्थकता इस बात पर निर्भर करती है कि वह कितना प्रभावी है। संगठन का यह प्रभाव उसके कार्यकलापों की वजह से घटित होने वाले असर के आधार पर आंका जाता है। यदि कोई संगठन अपना प्रभाव एवं असर बनाकर नहीं रख सकता है तो कालान्तर में उसका अस्तित्व अर्थहीन व निरर्थक हो जाता है। ऐसा संगठन समाज व सरकार के लिए बोझ स्वरूप होता है और सुशासन के संदर्भो में उसे निरर्थक, असरहीन एवं बेकार माना जाता है।

समाज के लिए अपरिहार्य पुलिस जैसे संगठन को प्रभावी व असरदार होने की अत्यधिक आवश्यकता होती है। यदि पुलिस प्रभावी और असरदार नहीं है तो समाज मे अव्यवस्था, अराजकता

व आपराधिकता की स्थितियां पनप जायेंगी, जिनकी वजह से समाज में बिखराव व विखण्डन की शुरूआत हो जायेगी। सुशासन के मूल लक्ष्य पर आधारित किसी भी शासकीय एवं प्रशासकीय व्यवस्था के लिए ऐसा होना दुर्भाग्यपूर्ण है। अत: जरूरी है कि शासन व प्रशासन को सुशासनोम्मुखी बनाने के लिए पुलिस अपने सभी संदर्भो में प्रभावी बनी रहे।

12.4.7 कुशल पुलिस (Efficient Police)

किसी भी पुलिस संगठन का सार्थक प्रभाव एंव कारगर असर समाज में तभी होगा, जब वह कुशल, दक्ष व काबिल होगा। पुलिस कुशलता को मापने के कई आधार होते है। पुलिस को शारीरिक दृष्टि से दक्ष एवं मजबूत होना चाहिए, क्योंकि पुलिसकार्यो की प्रकृति जटिल व कष्टसाध्य होती है। पुलिसकर्मी को रात-दिन अपने दायित्वों के निर्वाह के लिए सजग, चौकस एवं तैयार रहना होता है। उसे अवकाश के दिनों में भी काम करना होता है तथा त्यौहारों के दौरान जब आम आदमी उत्सव मना रहा होता है, उसे अपने परिवार से दूर रहकर, कर्त्तव्य निर्वहन करना होता है, जिससे कि आम नागरिक बिना किसी भय, बाधा व रोक-टोक के उत्सव व त्यौहार मना सके। इसके अलावा पुलिसकर्मियों को असामाजिक, हिंसक और उग्र तत्वों से भी निपटना होता है। कानून-व्यवस्था की स्थापना व अपराध प्रबन्धन के विविध कार्यो के संपादन में उसे अथक परिश्रम करना होता है। ये सब चुस्त-दुरूस्त, स्वस्थ व मजबूत हो। इस प्रकार पुलिस कुशलता को आँकने का पहला आधार शारीरिक कुशलता को माना जाता है।

शारीरिक कुशलता के साथ-साथ पुलिसकर्मी को मानसिक तौर पर भी जागरूक, सजग एवं सतर्क होना चाहिए। अपने व्यावसायिक जीवन में जिन घटनाओं व स्थितियों से उसे निपटना होता है, उनके बारे में सोचने-समझने और उनकी सही समीक्षा कर उचित निर्णय लेकर कार्य करने की क्षमता होने पर ही पुलिसकर्मी मानसिक तौर पर कुशल माने जाते है। इसी प्रकार पुलिसकर्मियों में व्यावसायिक कुशलता का भी समावेश होना चाहिए। अपने व्यवसाय से जुड़ी स्थितियों, घटनाओं, अपराधों, कानून-व्यवस्था व विविध स्थितियों के कानूनी पक्षों का समुचित ज्ञान पुलिसकर्मी को होना चाहिए तथा व्यावसायिक स्थितियों से निपटने की पटुता व कुशलता भी उनमें होनी चाहिए। इनके साथ ही अपने कार्यो, दायित्वों व भूमिका निर्वाहन के सभी पक्षों एवं पहलुओं के प्रति उसका रूझान व अभिवृति सकारात्मक व उपयुक्त होनी चाहिए। शारीरिक मानसिक एवं व्यावसायिक कुशलता के विविध मानदण्डों का अपनी कार्यप्रणाली में समावेश कर प्रत्येक पुलिसकर्मी सुशासन की स्थापना में अपनी अहम भूमिका का निर्वाह कर सकता है।

12.4.8 सहमति आधारित पुलिस (Consensus Oriented Police)

प्रजातंत्र को मूल रूप से सहमति आधारित व्यवस्था माना गया है। जनता की जनता के लिए तथा जनता द्वारा संचालित यह व्यवस्था जन-सामान्य की स्वीकृति एवं सहमति पर अस्तित्व को बनाए रख सकती है। प्रजातांत्रिक व्यवस्था में कार्यरत सभी संगठनों को भी इसी प्रकार की जन-स्वीकृति एवं जन-सहमति की आवश्यकता होती है। पुलिस संगठन भी इस सामान्य सिद्धान्त के अन्तर्गत ही समाज में कार्य करता है।

पुलिस बिना जनता के सहयोग एवं सद्भाव के अपने कार्य एवं दायित्वों का सफलतापूर्वक निर्वाह नहीं कर सकती। प्रजातांत्रिक परिवेश में, पुलिस समाज से अलग-थलग रहकर तथा अधिनायकवादी रवैया अपनाकर कार्य नहीं कर सकती है। उसे जन समर्थन, जन-सहमति और जन-अनुमोदन अपने

कार्य एवं व्यवहार पर प्राप्त करना ही होता है। समाज के सभी वर्गो से सहयोग एवं समन्वय स्थापित कर पुलिस वांछित जन-समर्थन, जन-सहयोग एवं जन-अनुमोदन प्राप्त कर अपने कार्यकारी स्वरूप को जन-सहमति आधारित बनाकर, सुशासन के संदर्भो में अपनी वांछनीय प्रजातांत्रिक छवि को स्थापित कर सकती है।

12.4.9 विधि आधारित पुलिस (Rule of Law Based Police)

प्रजातांत्रिक एवं प्रगतिशील राजनीतिक व्यवस्थाएं निर्धारित विधि के अनुरूप अपनी सभी शासकीय एवं प्रशासकीय गतिविधियों को संचालित करती है। कानून पर आधारित शासन व्यवस्था को संकुचित, संकीर्ण और निहित स्वार्थों पर आधारित राजनीतिक दबाव प्रभावित नहीं कर सकते है। विधि के शासन का निहितार्थ यह है कि कानून की दृष्टि में देश के सब नागरिक समान है। देश में विद्यमान नियमों के अंतर्गत सभी नागरिकों को बिना जाति, लिंग, वर्ण, धर्म आदि के भेदभाव के कानूनी संरक्षण मिलना चाहिए।

कानून के राज में पुलिस को विधिक सिद्धान्तों, मान्यताओं, संस्थाओं तथा प्रक्रियाओं के अन्तर्गत अपने विविध कार्यो एवं दायित्वों का निर्वाह करना होता है। मानवीय मूल्यों का पालन कर, पुलिस प्रत्येक व्यक्ति को मान-सम्मान का जीवन जीने तथा निरंकुश राज-सत्ता के शिकंजों से मुक्त रह सकने की स्थितियों का समर्थन करती है। कानून का राज कुछ मानवीय मूल्यों को पहले से ही स्वीकार करके चलता है। अगर पुलिस इन मानवीय मूल्यों को स्वीकार नहीं करती है तथा अपने व्यवहार में उन्हें प्रदर्शित नहीं करती है तो किसी भी वैधानिक प्रणाली का कोई उपयोग नहीं है। कानून के राज की उपयोगिता तब ही दिखाई देगी जब पुलिस मानव मूल्यों एवं विधिक प्रावधानों का अपनी व्यावसायिक परम्पराओं में प्रकट करते हुए अपने कार्य एवं व्यवहार में सुशासन की विधिक अपेक्षाओं तथा मानदण्डों को अपनाये।

12.4.10 समावेशी पुलिस (Inclusive Police)

पुलिस के कार्यो, दायित्वों, एवं भूमिका में निरन्तर विस्तार होता रहा है। एक समय था जब, पुलिस गश्त, पेट्रोलिंग, चौकीदारी तथा अपराधियों की धरपकड़ करने तक सीमित थी। उनके कार्यो में धीरे-धीरे विस्तार होता गया और उसे कानून-व्यवस्था, शांति-स्थापना, आंतरिक सुरक्षा और अपराध प्रबन्धन के विविध पक्षों की देख-रेख का दायित्वसौंपा गया।

आजादी के बाद प्रजातांत्रिक परिवेश और भारतीय संविधान की अपेक्षाओं ने पुलिस की भूमिका को और अधिक विस्तार प्रदान कर दिया है। अब उसे अपनी पारंपरिक भूमिका के अलावा जन-विवादों के निपटारे के लिए मित्र, सहयोगी एवं मध्यस्थ बनकर जनता के बीच सौहार्द स्थापित करना होता है। पुलिस को आज सामाजिक कार्यकर्ता के साथ ही जन-वकील और सामाजिक चिकित्सक की भूमिका का निर्वाह करने की अपेक्षा भी की जाती है।

सामाजिक परिवर्तन के सक्रिय एवं सकारात्मक संवाहक की भूमिका निभाकर, सामाजिक अधिनियमों के क्रियान्वयन के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन को गति देनी होती है। इसके अलावा विकास, लोक-कल्याण एवं राष्ट्र निर्माण के विविध कार्यक्रमों के संपादन में भी सहयोग एवं सहायता करनी होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि पुलिस कार्यो, दायित्वों एवं भूमिका की प्रकृति पर्याप्त रूप से व्यापक बनकर निरंतर समावेशी स्वरूप बनाये रखे, इसकी अपेक्षा की जाने लगी है।

सुशासन का स्वरूप भी मूल रूप से समावेशी प्रकृति का होता है, जिसकी वजह से यह अपेक्षा की जाती है कि वो हर तरह का एवं सभी प्रकार के कार्य सम्पन्न करे। इसी क्रम में पुलिस भी अपनी भूमिका, कर्त्तव्यों और कार्यो को व्यापक व समावेशी बनाकर सुशासनोन्मुखी बन सकती है।

12.4.11 सेवान्मुखी पुलिस (Service Oriented Police)

एक समय था, जब पुलिस को नियंत्रण, नियमन, भय, आतंक एवं दण्ड का प्रतीक माना जाता था। परन्तु, प्रजातांत्रिक समाज में पुलिस मात्र भय, दण्ड तथा नियामक कामों को करने तक ही सीमित नहीं रह सकती है। ऐसे समाज में पुलिस का काम केवल दण्डात्मक नियमों का कड़ाई से पालन कराना या ऐसे कानूनों को लागू करना मात्र ही नहीं होता है। प्रजातांत्रिक अपेक्षाओं के कारण पुलिस अब एक जन-सेवा एवं विशेषज्ञतापूर्ण व्यवसाय का रूप ग्रहण करती जा रही है। इस विचार के चलते अब पुलिस विकास के कार्यक्रमों में भागीदारी एवं सुधारात्मक प्रक्रियाओं को स्वीकार करने लगी है।

समसामायिक संदर्भो में अब पुलिस से यह अपेक्षा की जाने लगी है कि वह जन-मित्र बन कर अपने स्वरूप को नागरिक पुलिस के रूप में रूपान्तरित करे। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पुलिस को जन-सामान्य के दिल में जगह बनानी होगी। जनता के प्रति मित्र भाव, उनकी तकलीफों के प्रति संवेदनशीलता का रूख और उनकी तकलीफों के निराकरण में तत्परता की वजह से ही पुलिस अपने वांछित नये स्वरूप को प्राप्त कर सकती है। जन-सेवा का भाव पुलिस की कार्यप्रणाली का अंग बने, इसकी कोशिश निरंतर होना जरूरी है। सेवा, सद्भाव, सहयोग एवं सहानुभूति जैसे गुणों का समावेश पुलिस कार्यो के निष्पादन किये जाने की अत्यधिक आवश्यकता है। यही कारण है कि पुलिस बल की सर्वोच्च अवधारणा अब यह बन रही है कि उसे एक सेवाएजेंसी के रूप में परिवर्तित कर दिया जाए।

पुलिस को सेवा संगठन के रूप में अब सम्मान प्राप्त करना है और अपनी इस नई जिम्मेदारी को निभाना है। अत: पुलिस-कर्मियों की सोच और उनकी अवधारणा को पूर्ण रूप से नया रूप देना होगा। कल्याणकारी तथा प्रजातांत्रिक राज्य की अवधारणा की वजह से पुलिस-कार्यो को नये आयाम प्रदान किये जा रहे है। परिणामों की गुणवत्ता, निष्पादन और काम करने के तौर-तरीकों में नई प्रणालियां शुरू की जाना प्रस्तावित है। यही कारण है कि अब पुलिस के प्रभाव और कार्यक्षेत्र को बढ़ा दिया गया है।

पुलिस के कार्यो में "आम आदमी की मदद" की भावना को मिला देने से पुलिस का कार्य समाज सेवा का सीधा माध्यम बनें, इसकी अपेक्षा होने लगी है। जन-सामान्य के प्रति सेवा-भाव, सहयोग एवं सहायता करने की प्रवृत्ति सुशासन का एक आवश्यक गुण है। पुलिस अपने कार्यो और दायित्वों के निर्वाह में जन-सेवा के भाव का समावेश कर सुशासन के गुण को अपने कार्यकारी एवं व्यावसायिक परिवेश में सन्निहित कर सकती है।

12.4.12 भ्रष्टाचारमुक्त पुलिस (Corruption free Police)

ईमानदारी एवं पारदर्शिता सुशासन के महत्वपूर्ण तत्व माने गये है। सार्वजनिक जीवन को दूषित कर, भ्रष्टाचार शासन एवं प्रशासन में कुशासन की स्थितियां पैदा करता है। एक विपथगामी व्यवहार के रूप में भ्रष्टाचार का संबंध कानूनी नैतिक और सामाजिक वर्जनाओं से होता है। इस सामाजिक मूल्यों के उल्लंघन तथा नैतिक आचरण की अवहेलना के रूप में भी समझा जा सकता है। एक भ्रष्ट सरकारी कर्मचारी अपने सरकारी काम को व्यापार का रूप प्रदान कर देता है, जिसकी आय के माध्यम से वह अधिक से अधिक फायदा व लाभ कमाना चाहता है।

किसी भी समाज के स्वीकृत कानूनी, नैतिक, सामाजिक और आर्थिक मूल्यों एवं धारणाओं की प्रतिकूलता में किया गया आचरण भ्रष्टाचार कहलाता है। आर्थिक दशा को सुधारने की अंधी दौड़, राजनीतिक मूल्यों में गिरावट, कानून, नैतिक एवं सामाजिक मानदण्डों की जड़ता से उत्पन्न विकृतियां भ्रष्टाचार को जन्म देती है। भ्रष्टाचार सत्तासीन लोगों को ही नहीं, बल्कि आम नागरिकों को भी नैतिक रूप से पतित कर देता है। जनता व राज्य कर्मचारियों की नैतिकता, कार्यकुशलता एवं सामाजिक बोध को भी भ्रष्टाचार क्षत-विक्षत कर देता है। भ्रष्टाचार से उत्पन्न अक्षमता और नैतिक पतन मिलकर संपूर्ण राष्ट्र की प्रगति को अवरूद्ध कर देते है तथा उसकी प्रतिष्ठा पर भी प्रश्नचिह्न लगाते है। मानवीय मूल्यों, ईमानदारी, निष्ठा, सार्वजनिक सदाचार जैसी स्थितियों को भ्रष्टाचार की वजह से क्षरण होता है और समाज में पतन व नैतिक गिरावट की स्थितियां उत्पन्न होकर चहुंओर कुशासन की प्रवृत्तियाँ फैलती है।

पुलिस सुशासन की स्थितियों से इसलिये वंचित है कि उस पर भ्रष्टाचार के आरोप लगते रहते है। पुलिस की आलोचना के प्रमुख चार आधार है: अकुशलता, थर्ड डिग्री का प्रयोग, भ्रष्टाचार और पक्षपात। इन सभी आरोपों की जड़ में भ्रष्टाचार की भूमिका को माना जा सकता है। रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार एवं नाजायज लाभ कमाने की प्रवृत्तियों की वजह से पुलिसकर्मी अपने कार्यो एवं दायित्वों का निर्वाह कुशलतापूर्वक नहीं कर पाते। वे जैसे-तैसे निहित स्वार्थों की पूर्ति करने की ओर ध्यान देते है। ऐसा करने की वजह से वे पक्षपाती व पूर्वाग्रहों से ग्रस्त होकर कार्य करने की ओर उन्मुख होते है।

पुलिस को प्रदत्त अधिकार व शक्तियां भी उन्हें निरंकुश बना देती है। पुलिसकर्मियों को व्यापक विवेकाधिकार भी मिले हुए होते है। इनका प्रयोग भी वे अपने निहित स्वार्थों की पूर्तिएवं पद के दुरूपयोग के लिए भी कर सकते है। इस प्रकार पुलिस में भ्रष्टाचार व्याप्त होने व उसके फैलने की व्यापक संभावनाएं रहती है।

12.5 सारांश

विविध सामाजिक गतिविधियों के नियंत्रण, नियमन, पर्यवेक्षण एवं संचालन के लिए राज्य नामक संस्था का आविर्भाव हुआ। शासन एवं प्रशासन राज्य के महत्वपूर्ण माध्यम है। शासन की मूर्त एवं अमूर्त व्यवस्थाओं से प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से संबंधित होता है, वही प्रशासन, शासन का उप-उत्पाद माना जाता है।

जब गुणात्मक शासकीय व्यवस्थाएँ लोकहित के प्रति संवेदनशील व सजग होती है तो सुशासन की स्थिति मानी जाती है।

पुलिस संगठन शासन एवं प्रशासन की अहम इकाई है। अत: सुशासन की अवधारणा में पुलिस विभाग की प्रमुख भूमिका होती है। सुशासन स्थापित करने हेतु पुलिस को अपनी कार्यप्रणाली में जवाबदेही, जिम्मेदारी, संवेदनशीलता, पारदर्शिता, भागीदारी, कुशलता, प्रभाविता, सहमति आधारिता कानून-राज, समानता, समावेशी, सेवान्मुखी, स्वतंत्र न्यायपालिका, लोक-कल्याणकारी तथा भ्रष्टाचार मुक्त जैसी विशेषताओं का समावेश करने की आवश्यकता है।

12.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. शासन, प्रशासन व सुशासन अवधारणाओं पर एक सारगर्भित टिप्पणी लिखिए।
2. सुशासन के संदर्भ में पुलिस दिमाग की क्या भूमिका हो सकती है?
3. सुशासन के तत्वों पर आधारित पुलिस की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

इकाई - 13
पुलिस - पारदर्शिता

इकाई संरचना

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 पारदर्शिता का अर्थ
13.3 पारदर्शी अनुसंधान
13.4 सूचना का अधिकार
13.5 पारदर्शिता की तकनीकें
13.6 सीआईपीए-एक प्रयोग
13.7 सारांश
13.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
13.9 संदर्भ

13.0 उद्देश्य

इस अन्तर्गत पुलिस-पारदर्शिता से सम्बन्धित निम्न बिन्दुओं पर चर्चा की गई है-

- पारदर्शिता का महत्व
- सूचना का अधिकार (आरटीआई)
- कॉमन इंटीग्रेटेड पुलिस एप्लीकेशन (सीआईपीए)
- ई-गवर्नेस
- सूचना प्रौद्योगिकी (आईटी)
- कम्प्यूटर एडेड डिस्पैच (सीएडी)
- लोक सूचना अधिकारी (पीआईओ)

13.1 प्रस्तावना

पारदर्शिता एक जिम्मेदार सरकार के लिए महत्वपूर्ण स्वयं सिद्ध प्रमाण है। एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में उस प्रशासनिक नियमों की स्थापना की जरूरत है, जो जनता की मांग और जरूरतों के प्रति पारदर्शी हो। जनता की परेशानियों पर ध्यान देने की प्रभावी प्रतिक्रिया और व्यवस्था को प्रभावशाली बनाने के लिए किए गए ध्यान योग्य प्रयत्न भारतीय प्रशासन की एक अलग विशेषता बन रही है। जनता की संतुष्टि के लिए पारदर्शी पुलिस प्रशासन महत्वपूर्ण है। पुलिस प्रशासन की ओर से सूचनाओं को छुपाया नहीं जाएगा। किसी भी अन्वेषण, पूछताछ,सत्यापन या पुलिस के विचाराधीन किसी भी मामले के प्रगति संबंधित सूचना हो सकती है। सरकार के कार्य के बारे में विश्वसनीय, संदर्भित और समय पर जनता को सूचना उपलब्ध कराई जाएगी। इस प्रकार जनता की आशाओं को पूरा करने के लिए पहले की गुफा व्यवस्थाओं में जल्द से जल्द बदलाव करना अतिआवश्यक है। इस तरह पुलिस की ओर से पारदर्शिता के साथ सकारात्मक रवैया रखना बहुत जरूरी है।

13.2 पारदर्शिता का अर्थ

पारदर्शिता वह स्पष्ट स्थिति है, जिसे सहजता से समझा जा सकता है और जिसके बारे में कहीं कोई शंका न हो। पारदर्शिता में स्पष्टता एवं खुलापन शामिल होता है और पारदर्शिता का अभाव पुलिस की एक बड़ी समस्या का हिस्सा बनता है। भ्रष्टाचार के उद्देश्य से सूचना नहीं देना, पारदर्शिता प्रजातंत्र के चरित्र को दर्शाता है और सिर्फ एक सांकेतिक होने की अपेक्षा यह अधिक वास्तविक हो गया है। नागरिकों ने जन सेवा पर सवाल उठाना और उनका स्पष्टीकरण मांगना शुरू कर दिया है। अपराध को निष्पक्ष होकर दर्ज नहीं करने, जनता के साथ मित्रवतन होने की पुलिस की वर्षों पुरानी समस्या को सुशासन की व्यवस्थाओं द्वारा सुलझा लिया गया है।

एन. वि ल सीवीसी चीफ (1999) ने सुझाव दिया कि फ्रीडम ऑफ इंफॉर्मेशन एक्ट द्वारा ऑफिशियल सिक्रेट एक्ट की पूरक व्यवस्था करनी चाहिए, खास तौर पर तकनीकी क्रांति का प्रयोग कर, जो सरकार को सभी सूचनाओं को ऑनलाइन करने में सक्षम बनाएगा।

1990 के आखिर में भारत सरकार ने प्रतिक्रियाशीलता पारदर्शिता और सभी स्तर पर जनता के साथ मित्रवत प्रशासन को सुनिश्चित करने के लिए भयंकर रूप से चिंतित हुई तब से व्यवस्था को पारदर्शी बनाने और न्याय सुनिश्चित करने के लिए सरकार द्वारा खुले स्तर पर कई प्रयास किए गए हैं। इन प्रयासों में आरटीआई, आईटी, ई-गवर्नेंस आदि शामिल हैं, जो पारदर्शिता को सुनिश्चित करते हैं और बदले में पारदर्शिता निध्यक्ष निर्णय लेने और सभी के साथ समानता का व्यवहार करने में मदद करती है।

13.3 पारदर्शी अनुसंधान

अनुसंधान को तेज करने और भ्रष्टाचार के अवसर को कम करने के विचार से समय-समय पर अनुसंधानकर्ता अधिकारियों को अपराध स्थल पर शीघ्रता से जाने और यदि संभव हो तो अनुसंधान वहीं पूरा करने और मामले के शीघ्र निष्पादन के लिए केस डायरी को 48 घंटे में अग्रसरित करने के लिए निर्देश दिए जाते हैं। अपराध का अंतरिम निष्कर्ष, कानून की उपयोगी धाराएं और आरोपितों की संख्या भी केस डायरी में शामिल की जाएगी। इस नई प्रक्रिया ने अनुसंधान के दौरान कदाचार की आशंका को कम किया है, विचारधीनता को कम किया है और पारदर्शिता को सुनिश्चित किया है।

13.4 सूचना का अधिकार

भारत सरकार ने दृढ़ संकल्प लिया है कि बड़े और अधिक प्रभावी तरीके से सूचना तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए फ्रीडम ऑफ इफॉर्मेशन एक्ट 2002 को अधिक प्रगतिशील, सहभागितापूर्ण और अर्थपूर्ण बनाना जरूरी है। परिणामस्वरूप आर.टी.आई. एक्ट 2005 बना।

भारतीय संविधान ने एक जनतांत्रिक गणराज्य की स्थापना की है। प्रजातंत्र को एक जानकार नागरिकऔर सूचना की पारदर्शिता की जरूरत है, जो इसके संचालन, भ्रष्टाचार पर लगाम लगाने और सरकार तथा उसके सहायकों को शासन के लिए उत्तरदायी ठहराने के लिए अत्यधिक जरूरी है।

सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 नागरिकों को सूचना मांगने के लिए अधिकृत करता है और बदले में जन अधिकारियों को बेहतर प्रशासन और उत्तरदायित्व निभाने के लिए सूचना का प्रसार करने के लिए बाध्य करता है।

सरकार, जो गोपनीयता बनाए रखती है, जनता का विश्वास खो देती है, जबकि इसकी औचित्यता और विश्वसनीयता, सूचना तक पूरी तरह पहुंच को लेकर खुलापन, एक लोकशाही राज्य

की पहली आवश्यकता है। राज्य का दायित्व न सिर्फ पारदर्शिता से संबंधित जनता के अधिकारों का सम्मान करना है, बल्कि उन साधनों की उपलब्धता भी सुनिश्चित करना है, जिससे उचित सूचना प्राप्त करने का अधिकार अर्थपूर्ण, दक्षतापूर्वक और प्रभावकारी तरीके से उपयोग में लिया जा सके।

नागरिकों का सूचना का अधिकार सिर्फ आधिकारिक सूचना प्राप्त करने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसे उस बात की भी जरूरत है कि जो अधिकार का उपयोग करते हैं, उन्हें उनके उस तरीके के लिए जवाबदेह बनाया जाए, जिस तरीके से वे जनता के प्रति अपने दायित्वों का निर्वहन करते हैं।

सरकार जो अपने छुपे हुए उद्देश्यों का अनुसरण करते हैं या गोपनीय तरीके से कार्य करते हैं, लोगों का विश्वास खो बैठते हैं और यही वजह है कि इसकी अपनी अलग औचित्यता या विश्वसनीयता है। खुलापन और सूचनाओं तक पूरी तरह पहुंच किसी भी लोकशाही राज्य के दो स्तंभ हैं।

सहभागी भूमिका का निर्वहन करने के लिए जनता को समर्थ बनाने का तात्पर्य है कि शासन में सहभागी भूमिका निभाने के लिए जनता के पास आवश्यक सूचना होना चाहिए ताकि उपलब्ध विकल्पों में से अवगत चयन कर सकें। अत: पारदर्शिता सरकार के प्रतिनिधि स्वरूप का सार है।

ऑफिशियल सिक्रेट एक्ट 1923, जिसे औपनिवेशिक शासन के समय बनाया गया था, की वजह से जनता खुद के मामलों से संबंधित सूचना प्राप्त नहीं कर सकती थी, लेकिन सूचना के अधिकार अधिनियम के निर्णय ने जनता द्वारा छानबीन करने की भी राह खोल दी, जो भ्रष्टाचार और मनमानी तरीके से अपनी ताकत का प्रयोग करने के विरुद्ध एक बेहतर कवच है।

नागरिकों के लिए आर.टी.आई. एक हथियार बन गया है, जो सरकारी बाबूओं को उनके प्रश्नों एवं समस्याओं का प्रति उत्तर देने के लिए उनके पीछे पड़ जाता है। एक प्रकार से इसने सरकार में पारदर्शिता के एक तत्व का संचार किया है, जो पूर्व में पूरी तरह से अकल्पनीय रहा होगा।

पुलिस विभाग में आरटीआई का अभ्यास

जहाँ तक पुलिस विभाग का सवाल है, तो पुलिस के पारदर्शी होने के संबंध में नियमावली में संतोषजनक प्रावधान हैं। ऑफिसर्स ट्रेनिंग स्कूल जैसे प्रशिक्षण केंद्रों पर आरटीआई एक्ट पढ़ाया जा रहा है।

जिलों के अतिरिक्त पुलिस अधीक्षकों को सूचना देने के लिए लोक सूचना अधिकारी (पीआईओ) के रूप में नामित किया गया है। भ्रष्टाचार से लड़ने के लिए अभी भी एक सख्त आरटीआई की जरूरत है।

डीजीपी राजस्थान जयपुर दिनांक 6.9.06 के प्रचलित आदेश संख्या 72006 देखें, तो प्रत्येक पुलिस स्टेशन के ड्यूटी ऑफिसर के लिए यह अनिवार्य है कि जनता द्वारा मांगी गई सूचनाओं को वे उपलब्ध करवाएं।

1. शिकायतें, सत्यापन, अपराध से जुड़े मामलों को रिकॉर्ड में दर्ज करना आवश्यक है, ताकि लोगों को अपने मामले की नवीनतम प्रगति के बारे में पता चल सके। इसके लिए यह जरूरी है कि केस डायरी को क्राइम रजिस्टर में श्रेणीबद्ध करते समय उसमें यह भी लिखा जाना चाहिए कि उस खास दिन को कितने गवाहों से पूछताछ की गई, किसी खास मामले में कितने गवाह छोड़ दिए गए हैं, फाइल संक्षिप्त में है या नहीं या चालान के स्तर पर है। ठीक इसी तरह शिकायत रजिस्टर या सत्यापन रजिस्टर में मामले की प्रोग्रेस को जरूर से अपडेट रखना चाहिए।
2. स्टेशन हाउस ऑफिसर उपस्थिति लेने के बाद प्रत्येक दिन लंबित मामलों और पूछताछ पर नवीनतम प्रगति की जानकारी लेगा।

3. प्रत्येक पुलिस स्टेशन पर एक सूचना रजिस्टर होगा। यह रजिस्टर ड्यूटी ऑफिसर के पास रहेगा। जनता की अधिकाधिक संतुष्टि और पारदर्शिता के लिए सभी पुलिस स्टेशनों मेंइंफॉर्मेशन डेस्क स्थापित किए गए हैं, जो शिकायतकर्ताओं तथा अन्य को सूचनाएं देंगे।
4. ड्यूटी ऑफिसर्स को ऐसे स्थान पर बिठाया जाएगा, जहां आने वाले व्यक्ति को वह आसानी से दिखाई दे सके। उसे अनुसंधान की प्रगति, पूछताछ और सत्यापन का रिकॉर्ड रखना होगा और इन सूचनाओं को संबंधित व्यक्ति के साथ शेयर करना होगा, जब वे पुलिस स्टेशन पर आते हैं।
5. ड्यूटी ऑफिसर रूम पर 'इंफॉर्मेशन ऑफिसर' लिखा हुआ बोर्ड रखा जाएगा। सभी वरिष्ठ पुलिस अधिकारियों को निर्देश दिया गया है कि पुलिस स्टेशन के निरीक्षण के दौरान उल्लेखित उपरोक्त बिंदुओं का अनुपालन सुनिश्चित करें।

13.5 पारदर्शिता की तकनीकें

ई-गवर्नेंस प्रशासनिक सुधारों की प्रक्रिया से जुड़ा एक प्रभावकारी उपकरण है, खास तौर पर पारदर्शिता सुनिश्चित करने लिए। यह सुधार प्रक्रिया को उत्प्रेरित कर सकता है, बंधे खर्चे को कम कर सकता है और सरकारी एजेंसियों की विश्वसनीयता को बढ़ा सकता है। यह एक महान शक्ति दाता है, जो हमें मौलिक तरीके से विचार करने की अनुमति देता है कि लोग कैसे काम करते हैं और किस तरह हम उनकी बेहतर तरीके से सेवा कर सकते है। एक सुरक्षित और स्वस्थ वातावरण में ई-गवर्नेंस सरकारी प्रक्रियाओं को सहज बना देता है। आम जनता के लिए इसने पुलिस सेवा को उन्नत बनाया है। जनता के कार्यस्थल, घर और साइबर कैफे तक पुलिस सेवा प्रदान करने के लिए समन्वित पहुंच की संकल्पना है।

सरकार की पवित्रता को मजबूत करने और भ्रष्टाचार को कम करने के लिए राजस्थान सरकार शीघ्र ही ट्रांसपरेंसी एक्ट तैयार करेगी। इस एक्ट का प्रवर्तन सरकार को भ्रष्टाचार से मुक्त, पारदर्शी, दक्ष और उत्तरदायी बनाएगा। राज्य सरकार ने मंत्रियों और अधिकारियों की संपत्तियों को पहले ही ऑनलाइन अपलोड कर दिया है। 14 नवंबर 2011 से प्रभाव में आए एक स्पेशल एक्ट के जरिए राजस्थान सरकार ने जनता को सेवा प्रदान की गारंटी दी है।

ई-मित्र राजस्थान सरकार की एक महत्वाकांक्षी ई-गवर्नेंस पहल है, जिसे नागरिकों को अधिकाधिक मित्रवत सेवाएं प्रदान करने के उद्देश्य से राज्य के सभी जिलों में लागू कर दिया गया है।

पहले से प्रचलित एचएफ, वीएचएफ और यूएफएच सिस्टम से अलग उभरती हुई तकनीक जैसे वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग, रेडियो ट्रांकिंग सर्विस, इलेक्ट्रॉनिक मेल, इंटरनेट और ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम का प्रयोग करते हुए कंप्यूटर एडेड डिसपैच सिस्टम, पुलिस के लिए अत्यधिक सहायक है और अपराध को कम करने और कानून और व्यवस्था को बनाए रखने के लिए दो तरफा सूचनाओं की गति में सुधार लाती है।

आम जनता की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए डायनेमिक डाटाबेस चालित इंटरेक्टिव वेबसाइट को शामिल करने के लिए वेब गवर्नेंस की संकल्पना को विस्तृत कर दिया गया है। प्राइवेट विंडो (इंटरानेट) को पब्लिक विंडो (इंटरनेट) के साथ समन्वय करने के लिए और सूचना प्रौद्योगिकी के विभिन्न उपकरणों का भी इस्तेमाल कर उन्हें एक मंच पर लाने के लिए वेब गवर्नेंस साइट को डिजाइन किया जा सकता है ताकि एक माउस क्लिक के साथ ही नागरिक वेब सुविधाओं का उपयोग कर सके और सूचनाएं प्राप्त कर सके। सॉफ्टवेयर पुलिस वेयरहाउस से तत्काल सूचना प्रदान करता है और पूछताछ और इंटरेक्शन

काउंटर द्वारा तत्काल सेवा उपलब्ध कराई जाती है। इस तरह यह पुलिस और नागरिकों के बीच दो-तरफा संचार स्थापित करता है।

तकनीकी सेवाएँ

1. ऑनलाइन कंपलेंट रजिस्टर
2. पहले के पुराने कंपलेंट रजिस्टर का कोई अतिरिक्त जांच
3. खोया और पाया
4. खोए व्यक्ति
5. बिना शिनाख्त के शव
6. किराएदार का सत्यापन
7. सेवा सत्यापन और पासपोर्ट सत्यापन की स्थिति
8. हथियारों के लाइसेंस और इसके नवीनीकरण के आवेदन
9. जुर्माना और चालान को जमा करना
10. विदेशियों का पंजीकरण
11. सलाह अनुभाग और कानूनी सहायता
12. सुरक्षा की मांग करना
13. पुलिस अधिकारियों को सीधे ई-मेल भेजना

यह दक्षता ला सकती है, देरी और लालफीताशाही को समाप्त कर सकती है और पारदर्शिता को बढ़ा सकती है। फिर भी वर्तमान ढांचा को नया स्वरूप देने और ई-गवनेंस को लागू करने और आवश्यक बदलाव लाने की प्रक्रिया में सुधार को सुनिश्चित करने के लिए ऊपरी नेतृत्व द्वारा एक मजबूत राजनीतिक संकल्पना और साहस की जरूरत है।

इंफॉर्मेशन कम्यूनिकेशन टेक्नोलॉजी (आईसीटी) का उद्देश्य अच्छे प्रशासन को तीन मूल तरीके से आगे बढ़ाना है (अ.) पारदर्शिता, सूचना और उत्तरदायित्व को बढ़ाकर, (ब.) सही निर्णय करने और जनभागीदारी को सहज बनाकर, और (स.) ई-गवर्नेस की दक्षता को इंफॉर्मेशन सिस्टम की दृढ़ता के स्तर, बढ़ी हुई पारदर्शिता और सरकारी कामकाज में जिम्मेदारी और शासकीय धर्म तंत्रात्मक ढांचे को समाप्त करने संबंधी सेवाओं की व्यवस्था से समझा जा सकता है। ई-गवनेंस सरकार को अधिक परस्पर क्रियाशील और सहभागी बनाने का एक अवसर है। यह सरकार के संचालन में दक्षता, अल्पव्ययता, प्रभावशीलता और समानता के साथ-साथ उत्तरदायित्व और पारदर्शिता भी लाती है।

सूचना प्रौद्योगिकी के बढ़ते आयाम :-

सूचना के प्रसारण और पुलिस को पारदर्शी बनाने में सूचना प्रौद्योगिकी की महान भूमिका रही है। सुरक्षित और समर्थ वातावरण में यह सरकार की प्रक्रिया को सहज बना देता है और इसके साथ ही आम जनता के लिए पुलिस की सेवाओं को उन्नत भी करता है।

वर्तमान में अपराध अधिक तेजी से हो रहा है और उनकी विकृत स्थिति सुरक्षा के लिए बड़ा खतरा खड़ा कर देती है। प्राय: कहा जाता है कि अपराध और विकास साथ-साथ चलते हैं, इसलिए आगे बढ़ने की प्रक्रिया अपराध करने के लिए अधिक सामर्थ्य प्रदान करती है। तकनीकी उन्नति से भी अपराध उत्पन्न होता है। इस प्रकार साइबर अपराध के युग में गुणात्मक श्रेष्ठ और कानून को अमल में लाने के लिए उपयुक्त प्रक्रिया की आवश्यकता है।

कंप्यूटर का निहितार्थ :-

पारंपरिक तौर पर संग्रहित सबूत मौखिक या डॉक्यूमेंट्री उपलब्ध न हो सके और यदि उपलब्ध भी हो, तो अखंडनीय परिणाम प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिक और अन्य प्रमाणिक सबूतों के साथ खास

पैमाने पर मिलान करने की जरूरत होती है। गुमनाम, सुरागों की कमी, संभावनाओं का विस्तार और समय का गमन जैसे कई कारकों से अन्वेषण और पता लगाना जटिल काम होगा। इन कानूनी और व्यवसायिक मजबूरियों से इंटरनेट व इसके जैसी अन्य सुविधाओं की सहायता से निजात पाया जा सकता है। आने वाले वर्षो में कंप्यूटर आवाज की पहचान करेगा, बोलेगा और चेहरों को पहचानेगा और बड़ी ही बुद्धिमानी से बातचीत भी करेगा। डिजिटल टेक्नोलॉजी, नैनो टेक्नोलॉजी और सुपर कम्प्यूटर न सिर्फ अपराधों को रोकेंगे, बल्कि सभी प्रकार के अपराधों के बारे में भविष्यवाणी करने के साथ ही उन्हें रोकेंगे भी।

राजस्थान सरकार के सूचना निदेशालय ने अवर्गीकृत सूचनाओं को जनता के सामने लाने के लिए वर्ष 1999 में इंटरनेट टेक्नोलॉजी पर आधारित राजनिधि नाम से एक डाटावेयर हाउस विकसित किया है। अनेक विभागों से संबंधित सूचनाओं तक जनता की पहुंच के लिए सूचना बूथ शुरू किए गए हैं। सरकारी एजेंसियों के साथ संवाद के लिए इकाइयों को उसके अनुरूप बनाने के लिए इलेक्ट्रॉनिक मेल सुविधाओं पर विचार किया जा रहा है। हाल ही इंटरनेट पर संवादात्मक वेबसाइट के जरिए किए गए प्रयास प्रशंसनीय है और यदि इसे उचित तरह से विकसित किया गया, तो कार्य में व्यापक स्तर पर पारदर्शिता लाने में मदद कर सकता है।

लोक प्रशासन में पारदर्शिता तथा उत्तरदायित्व की रक्षा के लिए पिछले एक दशक में भारत सरकार ने ठोस कदम उठाए हैं और कुछ त्वरित प्रगति की है। रिकॉर्ड रखने के लिए नागरिकों के मध्य अपने अस्तित्व के प्रति जागरूकता पैदा करना, क्रियात्मक और सूचना का सहभाजन और परिपालन, निगरानी, समन्वय और सूचनाओं का सहभाजन और इसके परिचालन के अनुभवों की तैयारियां और प्रबंधन।

कंप्यूटर एडेड डिसपैच (सीएडी) प्लान अभी तक भी सफल नहीं हो सका है। गर्मी के कारण उपकरणों के काम नहीं करने से कोटा शहर में सर्वे पूरा नहीं हुआ, जिससे राजस्थान में जीआईएस और जीपीएस काम नहीं करते हैं।

नित प्रतिदिन के ऑफिस के काम में कंप्यूटर के बढ़ते महत्व को ध्यान में रखकर राजस्थान सरकार ने राजस्थान नॉलेज कॉरपारेशन लिमिटेड (आर.के.सी.एल) की ओर से राजस्थान स्टेट सर्टिफिकेट कोर्स (आर.एस.सी.आई.टी.) के नाम से एक ट्रेनिंग कोर्स प्रस्तुत किया है। जो कर्मचारी इस तीन माह के सर्टिफिकेट कोर्स को ज्वाइन करेंगे और इस कोर्स को सफलतापूर्वक पास करेंगे, तो उन्हें 575 रुपए की राशि दी जाएगी।

13.6 कॉमन इंटीग्रेटेड पुलिस एप्लीकेशन (सी.आई.पी.ए) - एक प्रयोग

द कॉमन इंटीग्रेटेड पुलिस एप्लीकेशन (सीआईपीए) प्रोजेक्ट एक प्रयास है, एक आईटी युक्त राज्य के क्रमिक विकास को आधार देने के लिए एक मूलभूत सुविधा बनाने और प्रक्रिया तैयार करने के लिए। यह अपराध के अनुसंधान और एक नियोजित तरीके से अपराधियों का पता लगाने के लिए पुलिस स्टेशन और ऊपर के स्तर पर काम करता है। सीआईपीए सॉफ्टवेयर लाइनैक्स ऑपरेटिंग सिस्टम पर काम करता है। सभी पुलिस स्टेशन कंप्यूटरीकृत हो गए हैं और सीआईपीए सॉफ्टवेयर सफलतापूर्वक काम कर रहा है। एफआईआर; क्राइम डिटेल फॉर्म, अरेस्ट / कोर्ट फॉर्म, प्रॉपर्टी सर्च एंड सीजर फॉर्म, फाइनल रिपोर्ट, कोर्ट डिसपोजल फॉर्म, अपील का नतीजा यह सभी इस परफॉर्मा में उपलब्ध हैं।

पुलिस स्टेशन के सीआर. पीसी पर आधारित कार्यो जैसे एफआईआर का पंजीकरण, अपराध का अन्वेषण, मामलों का अभियोजन आदि को पकड़ता है। पुलिस के अन्य प्रमुख कार्य यानी की अपराध

को रोकना, कानून और व्यवस्था का रख-रखाव और यातायात आदि से संबंधित सूचनाओं को पकड़ना और रिकॉर्ड का रख-रखाव करना।

सीआईपीए का प्रमुख कार्य हैं-

- मामलों का निरीक्षण और अपराध नियंत्रण।
- नियमावली में कमी और अनावश्यक (अतिरिक्त) रिकॉर्ड कीपिंग।
- अनुसंधानकर्ता, देखभाल करने वाले और वरिष्ठ अधिकारियों को सूचना एवं रिकॉर्ड्स की उपलब्धता।
- पुलिस स्टेशनों, जिलों और राज्यों के मध्य सूचना का सहभाजन।
- पुलिस के क्रियाकलाप में पारदर्शिता और जनता को बेहतर तरीके से प्रतिक्रिया देना।
- एक निश्चित अवधि में ऊपर के स्तर पर सूचना उपलब्ध करवाना।
- पुलिस स्टेशन, जिला क्षेत्र, अधिकार क्षेत्र, अधिकारियों के नाम और फोन नंबर, प्रशासनिक व्यवस्था, अपराध और यातायात सलाहकार, लोक सूचना आदि के संबंध में पब्लिक को आम सूचना प्रदान करना।
- शिकायतों का ऑनलाइन रजिस्ट्रेशन।
- पुलिस स्टेशन में दर्ज मामलों की स्थिति संबंध में सूचना प्रदान करना।
- आवेदन, अर्जी या निवेदन उदाहरण के लिए हथियार के लाइसेंस, किसी समारोह का आयोजन करना आदि से संबंधित सूचना प्रदान करना। स्वीकृति के दस्तावेजों जैसे एफआईआर,पोस्टमार्टम रिपोर्ट आदि की प्रति प्रदान करना।
- यातायात अपराधों से संबंधित जुर्माना जमा करना।
- चुराई गई, बरामद और कब्जे में ली गई संपत्ति का समन्वय।
- खोए, गिरफ़्तार किए गए, बिना पहचान के व्यक्ति और शवों का समन्वय।
- नौकरी, घरेलू सहायता, पासपोर्ट आदि के लिए लोगों का सत्यापन।

सीआईपीए प्रोजेक्ट के तहत हार्डवेयर जैसे कि कंप्यूटर्स, यूपीएस, प्रिंटर्स आदि राज्यों के पुलिस स्टेशनों को प्रदान किए जा रहे हैं, ताकि उसके कारण अपराध के पंजीकरण और अनुसंधान एवं अपराध और अपराधियों के रिकॉर्ड्स के रख रखाव से संबंधित पुलिस स्टेशन में होने वाली निम्न गतिविधियों के कार्य प्रगति को स्वचालित बनाया जा सके।

- मामले के निष्पादन होने तक अभियोजन और सुनवाई के दौरान प्रगति का रिकॉर्ड, जैसे
- न्यायालय में सुनवाई, मुद्दा और समनवारंट का क्रियान्वयन, न्यायालय में मामले का निष्पादन, अपील यदि कोई हो।
- क्षैतिज (Horizantal) और लंबवत (Perpendicular) दोनों ही तरह के विस्तार के लिए विचार करना।
- सीआईपीए का क्षैतिज विस्तार पुलिस स्टेशनों के अन्य मुख्य क्रियाकलापों से संबंधित वर्तमान पुलिस स्टेशन सॉफ्टवेयर में अतिरिक्त क्रियाशीलता को शामिल करने का प्रावधान प्रस्तुत करता है।
- कानून एवं व्यवस्था का रख रखाव, यातायात प्रबंधन और पुलिस स्टेशन प्रबंधन से जुड़ीघटनाओं और क्रियाकलापों से संबंधित सूचना एवं रिकॉर्ड्स।
- राज्य और राष्ट्र के स्तर पर चाही गई सांख्यिकीय सूचना और रिकॉर्ड।
- पब्लिक सर्विस डिलीवरी।

- अपराधों का पता लगाने और गुमशुदा व्यक्तियों के मिलान के लिए फिंगर प्रिंट्स और अन्य बायोमैट्रिक्स को लेना और फिंगर प्रिंट ब्यूरो पर डाटाबेस से खोज करना एवं मिलान करना।
- सीआईपीए इंप्लीमेंटेशन कमेटी

प्रत्येक संबंधित जिला में जिला स्तर पर सीआईपीए इप्लीमेंटेशन कमेटीयाँ बनाई गई है, जिसमें निम्न को रखा गया है। जिला के पुलिस अधीक्षक, चेयरमैन, डीसीआरबी मेंबर डिस्ट्रिक इंफॉर्मेटिक्स ऑफिसर से एक अधिकारी, एनआईसी सदस्य, जिला पुलिस के तीन या चार अधिकारी सदस्य के रूप में। प्रोजेक्ट के लिए संचालन और कार्य के लिए कोटा शहर में अब तक 98 पुलिस पदाधिकारी प्रशिक्षित हो चुके हैं।

सारणी 13.1

सीआईपीए के तहत केस कारजिस्ट्रेशन

जिले का नाम	2008				2007				2006			
	सीआईपीए में शामिल				सीआईपीए में शामिल				सीआईपीए में शामिल			
	दर्ज मामले	Reg.	Ins.	Pro.	दर्जमामले	Reg.	Ins.	Pro.	दर्जमामले	Reg.	Ins.	Pro.
अलवर	4183	4183	4112	313	9646	9646	9554	1833	8831	8881	8852	1313
भीलवाडा	2501	2501	1852	1299	5834	5834	5795	5626	5558	5558	5554	5534
जयपुर ग्रामीण	1563	4350	3444	895	9674	9674	8620	3931	8727	8727	7905	5066
अजमेर	3048	3048	2277	522	7595	7595	5221	2147	7318	7318	5624	2302
जोधपुर शहर	1563	1563	1194	113	4436	4436	3116	611	4574	4574	4505	1345
जोधपुर ग्रामीण	1106	1106	7645	32	3096	3096	3050	1441	3091	3091	3087	1778
कोटा शहर	1884	1884	1312	84	4734	4734	2326	782	5230	5230	4216	1446
कोटा ग्रामीण	1045	1045	818	130	2469	2469	1545	68	2779	2779	2696	962
उदयपुर	3272	3272	2642	464	8082	8082	6120	5892	7369	7369	7327	7311
बीकानेर	5414	5414	1102	144	5040	5040	3773	781	4656	4656	4266	990
श्रीगंगानगर	3039	3039	2668	220	7685	7685	7560	1861	7322	7322	7311	2615
जयपुर शहर पूर्व	2395	2395	1011	47	7315	7315	2973	431	6239	6239	2641	452
जयपुर शहर उत्तर	2076	2076	1647	309	5414	5414	4659	2437	5348	5348	5181	3381
जयपुर शहर दक्षिण	2553	2553	1442	18	5879	5879	2781	722	5411	5411	2831	926
भरतपुर	2831	2831	1106	909	8158	8158	501	410	7430	7430	1831	1610

संबंधित वृत्त अधिकारी अपने क्षेत्र के सहायक पीआईओ होते हैं। वृत्त अधिकारी पुलिस स्टेशन से सूचनाप्राप्त करते हैं। पुलिस अधीक्षक (एसपी) अपील करने वाला अधिकारी होता है। यदि चाही गई सूचना तीस दिनों के भीतर उपलब्ध नहीं करवायी जाती है, तो आवेदक जिला के एसपी के समक्ष अपील कर सकता है।

सूचना बूथ, डाटावेयर हाउसेज और इंटरनेट के जरिए जनता कोई भी सूचना प्राप्त कर सकती है। प्रत्येक पुलिस स्टेशन के स्वागत कक्ष में एक सूचना अधिकारी रजिस्टर के साथ मौजूद रहता है। मामलों की नवीनतम प्रगति उपलब्ध करवाई जा रही है और पुलिस की वेबसाइट्स के जरिए किसी भी मामले से संबंधित सूचना ली जा सकती है।

13.7 सारांश

राज्य के मामलों के लिए लोक संवीक्षा और सूचना तक पहुंच, वर्तमान में लोकशाही के विकास पर वाद-विवाद के मुख्य चरण हैं। लोक प्रशासन की सफलता अंततः नागरिकों द्वारा ही की जाएगी। ये नागरिक ही हैं, जो सरकार से अधिक पारदर्शिता और उत्तरदायित्व की मांग करने के साथ ही उन नीतियों को रूपरेखा देने में लोक सहभागिता पर जोर दे रहे हैं, जो उनके जीवन को प्रभावित करती है। यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि हमारा पुलिस बल प्रतिक्रियाशील, संवेदनशील, ध्यान रखने वाला और मानव मूल्यों को समझती है। जनता की नवीनतम आवश्यकताओं और जरूरतों को पूरा करने के लिए पुलिस के कार्य करने की फिलॉसफी और अपने कार्य को प्रदर्शित करने के अंदाज में मूल रूप से बदलाव करना होगा। बदलते हुए सामाजिक वातावरण की मांगों का साथ देने एवं गतिशीलता सुनिश्चित करने के लिए सभी सामाजिक संगठनों में सुधार एक आधुनिक प्रक्रिया है। पारदर्शी होने के लिए पुलिस को आधुनिक तकनीक और वैज्ञानिक उपकरणों को काम में लाना होगा।

13.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सूचना के अधिकार अधिनियम ने नागरिकों को किस प्रकार सशक्त किया है?
2. यदि आवश्यक सूचनाएं उपलब्ध नहीं हैं, तो उन्हें हासिल करने के क्या प्रावधान है?
3. किस तरह से सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग पुलिस को अधिक सक्षम बनाने में सहायक होसकता है?
4. सीआईपीए के प्रमुख क्रियाओं का वर्णन करें।

13.9 संदर्भ

1. वि ल, एन. के हमारी नागरिकता के पारदर्शी सरकार, एक जरूरत, इंडियन हैबिटेट सेंटर, नई दिल्ली में 2 मार्च 2000 को एक भाषण दिया था।
2. जैन आर. बी ओपनिंग गवर्नमेंट फॉर पब्लिक स्क्रूटिनी ए क्रिटीक ऑफ रिसेंट एफर्ट्स टु मेक गवर्नेस इन इंडिया मोर ट्रांसपेरेंट एंड अकाउंटेबले, आईजेपीए, जुलाई-सितंबर 2006
3. चड्ढा सपना, राइट टुइंफॉर्मेशन रिजाइम इन इंडिया, आईजेपीए, वॉल्यूम एल, एलआईआईएनओ 1 जनवरी-मार्च 2006
4. वर्मा जे. एस., रूल ऑफ लॉ, द बेडरॉक ऑफ डेमोक्रेसी, पारदर्शिता पर लेक्चर और पब्लिक गवर्नेस में अकाउंटेबिलिटी आई सी सेंटर फॉर गवर्नेस, अप्रेल 2005 और आई एंड बी मंत्रालय के सचिव बनाम क्रिकेट एसोसिएशन, एआईआर 1995, सेक्शन 1236
5. गुप्ता एम. पी, प्रभात कुमार और भट्टाचार्य जे., गवर्नमेंट ऑन लाइन- अपॉर्चुनिटीज एंड चैलेंजेस नई दिल्ली, टाटा मैकग्रा हिल पब्लिशिंग 2004, पेज 197
6. जयशंकर के. और चॉकालिगम के. जीआईएस, ए नॉवेल टूल फॉर इंडियन पुलिसिंग, आईजेपीए, जुलाई-सितंबर 2001

इकाई-14
पुलिस-उत्तरदायित्व

इकाई संरचना

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 उत्तरदायित्व का अर्थ

14.3 उत्तरदायित्व के आधारभूत पक्ष

14.4 उत्तरदायित्व को बढ़ाने की दिशा में प्रयास

- 14.4.1 निगरानी में पुलिस
- 14.4.2 राजस्थान पुलिस की प्राथमिकताएँ
- 14.4.3 अपराध नियंत्रण की नई योजना
- 14.4.4 सोराबजी कमेटी की सिफारिशें
- 14.4.5 भ्रष्टाचार पर लगाम
- 14.4.6 पुलिस हेल्पलाइन
- 14.4.7 पुलिस पर जन साधारण का नियंत्रण
- 14.4.8 वैश्विक स्थिति सूचना प्रणाली (जी.पी.एस.) एवं भौगोलिक सूचना प्रणाली (जी.आई.एस.)

14.5 सारांश

14.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.7 संदर्भ

14.0 उद्देश्य

उत्तरदायित्व, दक्षता, निष्पक्षता, प्रत्युत्तरदायिता एवं पारदर्शिता सुशासन के कुछ सिद्धांत हैं जो पुलिस के कार्यो के समानार्थी होने चाहिए।

- उत्तरदायित्व का अर्थ
- पुलिस के उत्तरदायित्व की अपरिहार्यता
- उत्तरदायित्व को बढ़ाने की दिशा में कदम
- राजस्थान पुलिस की प्राथमिकताएँ
- उत्तरदायित्व के विभिन्न पक्ष
- भौगोलिक सूचना प्रणाली (जी.आई.एस.)
- वैश्विक स्थिति सूचक प्रणाली (जी.पी.एस.)

14.1 प्रस्तावना

भारत जैसे कल्याणकारी राज्य में पुलिस को प्रदत्त वृहद् शक्तियों का उपयोग इस तरह होना चाहिए जिससे लोकतंत्र सामान्य जन के लिए वास्तविक बन सके। सच्ची लोकतांत्रिक पुलिस लोगों की अवहेलना नहीं करती, वह सामाजिक जीवन के किसी भी स्तर के व्यक्ति की आसान पहुँच में होती है। आधुनिक समय में सुशासन आंदोलन की मुख्य आवश्यकताओं में उत्तरदायित्व एक प्रमुख आवश्यकता है। सामान्य रूप से लोगों का स्वैच्छिक एवं सक्रिय सहयोग प्राप्त करने के लिए पुलिस

को प्रत्युत्तरदायी होना चाहिए। उत्तरदायित्व प्राथमिक रूप से प्रभावी कार्य एवं परिणाम से संबंधित है। आधुनिक समाज में लोक सेवकों का उत्तरदायित्व एक अभिन्न अवधारणा है।

व्यावसायिक मानकों के निर्देशन में एवं प्रशासनिक वातावरण में जिम्मेदारी की भावना का विकास होता है। पुलिस का उत्तरदायित्व विभिन्न एजेंसियों जैसे कानून कार्यान्वयन, संसद, जन संगठनों एवं मीडिया के प्रति होता है। पुलिस को इन बहु आयामी उत्तरदायित्वों के मध्य संतुलन बनाए रखना होता है।

14.2 उत्तरदायित्व का अर्थ

उत्तरदायित्व का अर्थ है व्यक्तियों एवं संगठनों को अधिकतम संभव वस्तुनिष्ठ रूप से अपने कार्यो के लिए जिम्मेदार ठहराना। उत्तरदायित्व को मंशा, कार्य, मानक एवं कार्यो के परिणामों की व्याख्या करने एवं सामाजिक ढाँचे में निकटस्थ लोगों को लोक सेवा उपलब्ध कराने के अधिकार की आवश्यकता होती है। पुलिस उन लोगों जिनके वह सम्पर्क में रहती हैं, के प्रति निकटस्थ रूप से उत्तरदायी होती है। इनमें प्रमुख है न्यायपालिका, कार्यपालिका, विधायिका और मीडिया।

किसी भी बड़े शहर, वास्तव में किसी भी स्थिति में, पुलिस के कार्यो का सार अपराध अथवा कानून एवं व्यवस्था से संबंधित किसी उभरती हुई स्थिति में पुलिस के प्रत्युत्तर की गति गुणवत्ता में निहित होती है। यह गुणवत्ता पर्याप्त जनशक्ति, उपकरण, प्रशिक्षण, संचार की गति, गतिशीलता जैसे कई घटकों का कार्य है।

जोनाथन जी.एस. कोपेल ने उत्तरदायित्व का पाँच खण्डों में वर्गीकरण प्रस्तावित किया है। उनके अनुसार (1) पारदर्शिता, (2) जिम्मेदारी, (3) नियंत्रण की योग्यता, (4) विश्वसनीयता एवं (5) प्रत्युत्तरदायिता उत्तरदायित्व के पाँच उल्लेखनीय पक्ष हैं। यदि कोई संगठन लोगों की आवश्यकताओं को पूरा कर पाता है तो वह प्रत्युत्तरदायी है। मांग संबंधी उपागम नागरिक अथवा संघटक प्राथमिकताओं को देखते हैं जबकि आवश्यकता संबंधी उपागम संगठन द्वारा अपेक्षित जन नीति संबंधी लक्ष्यों के मूल्यांकन पर आधारित होता है। इस प्रकार कोई संगठन तभी प्रत्युत्तरदायी कहलाएगा जब वह लोगों की वास्तविक अपेक्षाओं को पूरा कर सकता हो। पुलिस उत्तरदायित्व पुलिस द्वारा किए गए कार्यो का स्पष्टीकरण है। यह इस बात को सुनिश्चित करने की सांस्थानिक युक्ति है कि पुलिस सभी के लिए संतोषप्रद रूप से कार्य कर रही है। वास्तव में उत्तरदायित्व ग्राहक केन्द्रित मूल्य है जो लोगों को उनके मूल्यों एवं मांगों के अनुरूप सेवाएँ उपलब्ध कराने से संबंधित है।

लोगों की पुलिस से वास्तविक एवं कानूनी अपेक्षाएँ इस प्रकार हैं:

1. प्राथमिक रूप से पुलिस से यह अपेक्षा की जाती है कि वह लोगों की शिकायतें दर्ज करें और उन्हें सुनें।
2. पुलिस को त्वरित राहत देने का प्रयास करना चाहिए। किसी आवेदन पर त्वरित एवं उचित प्रत्युत्तर एवं सामाजिक अद्यतन सूचना वे तत्व हैं जो प्रत्युत्तरदायिता प्रदान करते हैं।
3. लोग पुलिस से अपेक्षा करते हैं कि वह मानवाधिकारों का उल्लंघन रोके।
4. लोग अपेक्षा करते हैं कि पुलिस अपना कार्य निष्पक्षता पूर्वक प्रभावी एवं संवेदनशील रूप से करें। पुलिस को लोगों के प्रति उत्तरदायी बनाने के लिए विभाग द्वारा एवं पुलिस मुख्यालय द्वारा समय-समय पर विभिन्न तरीके अपनाएँ जा रहे हैं एवं कई कदम उठाए जा रहे हैं।

14.3 उत्तरदायित्व के आधारभूत पक्ष

पुलिस आचार संहिता, नागरिक अधिकार पत्र तथा भारतीय संविधान में वे सभी आधारभूत विशेषताएँ स्पष्ट रूप से वर्णित हैं जिनका पालन करना पुलिस के लिए अपरिहार्य है।

(अ) पुलिस आचार संहिता

इस संहिता में यह बात स्पष्ट रूप से वर्णित है कि लोगों के साथ नम्र व्यवहार किया जाना चाहिए तथा उनकी बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए। पुलिस को निष्पक्ष, सुसभ्य एवं निर्भर करने योग्य होना चाहिए। पुलिस जन-कल्याण हेतु कार्य करेगी। पुलिस को निर्देश होंगे कि वह गरीबों की मदद करे। पुलिस एक संवैधानिक शक्ति है। अत: संविधान के अंतर्गत नागरिकों के अधिकारों की रक्षा की जानी चाहिए। सभी परिस्थितियों में पुलिस को निष्ठा एवं ईमानदारी का पालन करना चाहिए।

(ब) नागरिक अधिकार पत्र

यह प्रत्युत्तरदायी एवं नागरिकों के साथ मैत्रीपूर्ण शासन का मानक है। यह लोक सेवा के स्तर को नागरिकों की अपेक्षाओं के परिप्रेक्ष्य में अधिक स्पष्ट और दृश्य बनाता है।

राजस्थान सरकार ने अपने प्रशासनिक सुधारों एवं समन्वयन विभाग के माध्यम से 16 नवंबर 2009 को एक पत्र जारी किया। यह पत्र नागरिकों एवं बच्चों के विशिष्ट अधिकारों, सूचना के अधिकार, कष्टों के निवारण एवं आपराधिक प्रकरण दर्ज करते समय अन्य अधिकारों के बारे में है।

नागरिक अधिकार पत्र पुलिस अधिकारियों पर भी समान रूप से लाग हैं। इसके अनुसार नागरिकों की पहुँच उन सेवाओं तक होनी चाहिए, जिनके वे अधिकारी हैं। अत: पुलिसकर्मियों को आक्रामक व्यवहार करना बंद कर देना चाहिए एवं आगे आकर सामान्य जन की सहायता एवं सेवा करनी चाहिए। उन्हें बिना देरी किए संवेदनशीलता एवं ईमानदारी के साथ सामान्य लोगों की समस्याओं का समाधान करना चाहिए।

(स) भारतीय संविधान

पुलिस एक संवैधानिक व्यवस्था है। अत: पुलिस प्रशासन का यह दायित्व है कि वह लोगों के लिए कार्य करें। संविधान का लक्ष्य है कि सभी शासकीय एजेंसियों को मूलभूत अधिकारों की सुरक्षा एवं उन्नति के लिए कार्य करना चाहिए। संविधान पुलिस सेवा को हर संदर्भ में नागरिकों के प्रति उत्तरदायी बनाता है।

लोकतंत्र में लोग सर्वोच्च हैं। अत: सभी शासकीय सेवकों को लोगों की सेवा करनी चाहिए। विशेषत: पुलिस विभाग में मानवता की सेवा करने की ढेर सारी शक्ति निहित है। यह समाज में श्वेत रक्त कणिकाओं के रूप में कार्य करती है। पुलिसकर्मियों को यह बात समझनी चाहिए कि वे शासन एवं जनता दोनों के प्रति जवाबदेह हैं। प्रभावी उत्तरदायित्व लोगों को सूचित करने एवं निर्णय करने की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। लोगों के अनुसार उत्तरदायित्व अपनी भूमिका को समझने, नागरिकों की सुरक्षा करने एवं उनके अधिकारों की रक्षा में निहित हैं। किसी भी समाज में पुलिस की प्रमुख भूमिका कानून एवं व्यवस्था बनाए रखना एवं अपराधमुक्त समाज देना है।

आजकल पुलिस के लिए जनता का विश्वास जीतना अपरिहार्य है। लोग अनुभव करते हैं कि पुलिस को उनके प्रति संवेदनशील होना चाहिए एवं उनकी समस्याओं पर ध्यान देकर उन्हें हल करना चाहिए।

विभिन्न एजेंसियों जैसे कानून, कार्यान्वयन, संसद, जन संगठनों एवं मीडिया के प्रति पुलिस का उत्तरदायित्व है। यह बहु आयामी उत्तरदायित्व पुलिसकर्मियों के लिए समस्याएँ उत्पन्न करता है।

पुलिसकर्मियों को अपने आचरण के लिए उत्तरदायी होना चाहिए। पुलिस के अनुचित व्यवहार एवं संसाधनों के कुप्रबंधन के लिए उसे उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए एवं उससे प्रश्न किए जाने चाहिए।

सारिणी 14.1

पुलिस उत्तरदायित्व		
समस्याएँ	कारण	समाधान
– अनुचित अभिवृत्ति	– कार्य भार	– उचित प्रशिक्षण (सेवा के दौरान)
– कठोर एवं लंबी प्रक्रिया	– गलत रिपोर्टिंग एवं राजनीतिक दबाव	– शिविर उपागम का उपयोग
– शिकायत दर्ज न होना	– व्यावसायिकता एवं योग्यता का अभाव	– जिम्मेदार हठ
– गरीब एवं अमीर में भेदभाव	– कार्य की निराशाजनक दशाएँ	– उचित एवं सामयिक प्रत्युतर
– भ्रष्टाचार	– तदनुभूति का अभाव	– निपटारे में देरी

14.4 उत्तरदायित्व को बढ़ाने की दिशा में प्रयास

जनता के मन में पुलिस के प्रति सम्मान बढ़ाने तथा पुलिस का जनता के प्रति उत्तरदायित्व बढ़ाने लिए कई व्यावहारिक तरीके सुझाये जा रहे हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

14.4.1 निगरानी में पुलिस

नये पुलिस एक्ट का सर्वाधिक क्रांतिकारी प्रावधान लोक उत्तरदायित्व आयोग (पी.ए.सी.) का गठन है लोक उत्तरदायित्व आयोग वर्दीधारी कर्मियों के विरूद्ध जन शिकायतों से निपटेगा। वह गंभीर दुराचरण, पुलिसअधिकारी के किसी कार्य अथवा गलती की वजह से किसी व्यक्ति की पुलिस हिरासत में मृत्यु, चोट एवं बिना किसी कानूनी प्रावधान के किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने के आरोपों की जाँच करेगा।

राजस्थान राज्य विधानसभा ने 21 सितम्बर 2007 को नए पुलिस एक्ट को मंजूरी दी। इसमें चार जिलाउत्तरदायित्व समितियाँ हैं। सरकार चार लोगों को मनोनीत करती है। इसका अध्यक्ष अतिरिक्त पुलिसमहानिदेशक होता है एवं अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक सदस्य सचिव होते हैं।

पुलिस शिकायतों के नागरिक पुनरीक्षण के पक्ष में मजबूत तर्क हैं। शिकायतकर्ता अपने कष्ट बताने अधिक सहज एवं स्वतंत्र अनुभव करते हैं तथा नागरिक परिप्रेक्ष्य निष्पक्षता एवं वस्तुनिष्ठता को बढ़ाता है।

14.4.2 राजस्थान पुलिस की प्राथमिकताएँ

प्रतिवर्ष पुलिस महानिदेशक द्वारा पुलिस के कार्यो की प्राथमिकताएँ तय की जाती हैं। यह स्पष्टत: पुलिसके लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति सरोकार को इंगित करता है।

राजस्थान पुलिस की प्राथमिकताएँ: वर्ष 2007

पुलिस कांस्टेबलों को सशक्त बनाना एवं प्रेरित करना।

केस ऑफिसर योजना के तहत प्रकरणों का शीघ्र निपटारा करना तथा कट्टर एवं आदतन अपराधियों के विरूद्ध कठोर कार्यवाही करना।

पुलिसकर्मियों को अधिक संवेदनशील एवं विनम्र बनाना।

राजस्थान पुलिस की प्राथमिकताएँ: वर्ष 2008

पुलिस बल का व्यावसायिक रूप से विकास करना ताकि वे समर्पित, विनम्र, कर्तव्य के प्रति संवेदनशीलबन सकें तथा आचार संहिता का पालन सुनिश्चित करना।

बीट प्रणाली को सशक्त बनाना तथा बीट अधिकारियों को प्रोत्साहित करना। सामुदायिक भागीदारी को प्रोत्साहित करना तथा सी.एल.जी. को अधिक प्रभावी बनाना।

महिलाओं, बच्चों एवं आर्थिक रूप से वंचित व्यक्तियों पर विशेष ध्यान देना।

राजस्थान पुलिस की प्राथमिकताएँ: वर्ष 2009

पुलिस बल को और अधिक प्रभावी, जनता के प्रति मैत्रीपूर्ण तथा प्रत्युतरदायी बनाना।

विशेषकर वरिष्ठ नागरिकों, बच्चों एवं कमजोर वर्गो की प्रभावी सुनवाई करना।

अपराधों का मुफ्त पंजीकरण करना।

सन् 2005 के सूचना के अधिकार के अंतर्गत त्वरित कार्यवाही करना।

स्टेडिंग वारंटियों एवं घोषित अपराधियों को गिरफ्तार करना।

वाहन चोरी एवं चैन खींचने की घटनाओं को नियंत्रित करना।

राजस्थान पुलिस की प्राथमिकताएँ: वर्ष 2010

संवेदनशील एवं जवाबदेह पुलिस।

संगठित अपराधों के विरूद्ध प्रभावी कानूनी कार्यवाही।

संपत्ति संबंधी अपराधों की रोकथाम।

यातायात नियमों का उचित प्रबंधन एवं क्रियान्वयन।

राजस्थान पुलिस की उपर्युक्त प्राथमिकताएँ स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि पुलिस जनता के प्रति सरोकार रखती है एवं वह पुलिस एवं जनता दोनों के मध्य की मनोवैज्ञानिक दूरी को कम करने की दिशा में प्रयासरत है। कोटा पुलिस भी उपर्युक्त प्राथमिकताओं के अनुसार कार्य कर रही हैं। यातायात पुलिस को और अधिक कर्मचारी मिले हैं। पुलिसकर्मियों का प्रशिक्षण साल भर चलता रहता है जिससे वे अधिक संवेदनशील एवं जनता के प्रति मैत्रीपूर्ण बन सकें।

14.4.3 अपराध नियंत्रण की नई योजना

सितंबर 2008 में वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा यह निर्णय लिया गया कि पुलिस थानों को प्रभावी अपराध प्रबंधन के आधार पर राशि मिलेगी। आर्थिक आवंटन मात्र प्रभावी अपराध प्रबंधन एवं कर्तव्यशीलता के आधार पर किया जाएगा। यह कार्यरत कर्मियों की दक्षता बढ़ाने का एक प्रभावी कदम है। संगठित रूप से पुलिस का कार्य करने के लिए विशेष कार्य दल बनाए गए हैं।

14.4.4 सोराबजी कमेटी की मुख्य सिफारिशें

कमेटी ने 2006 के पुलिस एक्ट का प्रारूप तैयार किया। इसकी सिफारिशों को स्वीकार कर राजस्थान पुलिस ने पुलिस को और अधिक उत्तरदायी बनाने का कार्य किया है। सोराबजी कमेटी ने पुलिस के विरूद्ध जन शिकायतों की जाँच करने एवं अपराध अनुसंधान के लिए प्रत्येक पुलिस थाने में समर्पित कर्मियों को चिन्हित करने के लिए उत्तरदायित्व आयोग के गठन की सिफारिश की। कुशलतापूर्वक पुलिस का कार्य करने एवं पुलिस सेवा के कार्यो का मूल्यांकन करने के लिए कार्य प्रतीकों की पहचान करने के लिए उचित नीति निर्देश बनाने के लिए राज्य पुलिस बोर्ड की स्थापना की गई। पुलिस द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं करने, गैरकानूनी रूप से गिरफ्तार करने, रोक कर रखने, तलाशी लेने या जब्ती करने जैसी सामान्य गलतियों के लिए आपराधिक दंड का प्रावधान किया गया

है। पुलिसकर्मियों के स्थानांतरण संबंधी कार्यो के लिए तथा पुलिस अधिकारियों की शिकायतों की जाँच के लिए स्थापना कमेटियों का गठन किया गया। विभिन्न राज्यों द्वारा इन सिफारिशों को लागू किया गया ताकि सन् 2020 तक देश की पुलिस दक्षतापूर्वक अपना कार्य करने के योग्य हो सके।

14.4.5 भ्रष्टाचार पर लगाम

केन्द्रीय सतर्कता आयोग ने नए आदेश जारी किए जिसमें सभी सरकारी कार्यालयों के नोटिस बोर्ड पर लिखी जाने वाली भाषा का प्रारूप दिया गया है। यह इस प्रकार है-

"रिश्वत न दें। यदि इस कार्यालय में कोई रिश्वत मांगता है अथवा आपके पास इस कार्यालय में भ्रष्टाचार से संबंधित कोई जानकारी है अथवा आप इस कार्यालय में भ्रष्टाचार के शिकार हुए हैं तो आप निम्न में से किसी के पास अपनी शिकायत दर्ज करा सकते हैं:

1. विभागाध्यक्ष
2. मुख्य सतर्कता अधिकारी
3. भ्रष्टाचार निरोधक ब्यूरो

भ्रष्टाचार को रोकने के लिए समस्त पुलिस थानों के स्वागत कक्ष में यह नोटिस लगा हुआ है। यदि किसी व्यक्ति को रिश्वत देने के लिए कहा जाता है तो वह शहर पुलिस अधीक्षक, महानिरीक्षक (सतर्कता) एवं भ्रष्टाचार निरोधक ब्यूरो के अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक से इस बारे में शिकायत कर सकता है।

14.4.6 पुलिस हेल्पलाइन

पुलिस प्रशासन ने कई जिलों में अपराध पुलिस हेल्पलाइन प्रारंभ की है। यह सुविधा पुलिस अधीक्षक कार्यालय में चौबीसों घंटे उपलब्धहै। यहाँ एक टोल फ्री नंबर है जिस पर नागरिकों द्वारा सूचना दी जाती है। सूचना देने वाले का नाम गुप्त रखा जाता है। इस प्रकार से प्राप्त सूचना की आगे चलकर पुष्टि की जाती है।

14.4.7 पुलिस पर जनसाधारण का नियंत्रण

वर्तमान पुलिस प्रणाली में सुधार लाने एवं जनता का पुलिस पर विश्वास सुनिश्चित करने की दृष्टि से राजस्थान पुलिस ने अमेरिकी शोध एजेंसी मैसाचुसेट्स प्रौद्यौगिकी संस्थान (एम.आई.टी.) से सहायता मांगी है ताकि पुलिस की कार्यप्रणाली में सुधार लाया जा सके एवं लोगों के मन में पुलिस कार्यप्रणाली के प्रति विश्वास स्थापित किया जा सके।

एम.आई.टी. की गरीबी कार्यवाही प्रयोगशाला ने राजस्थान के 10 जिलों में परियोजनाएँ प्रारंभ की हैं। इस परियोजना के अंतर्गत निश्चित न्यूनतम समयावधि, कर्तव्य का चक्रीकरण एवं पुलिसकर्मियों के लिए साप्ताहिक अवकाश जैसे प्रावधान हैं।

एम.आई.टी. द्वारा चयनित राजस्थान के जिले

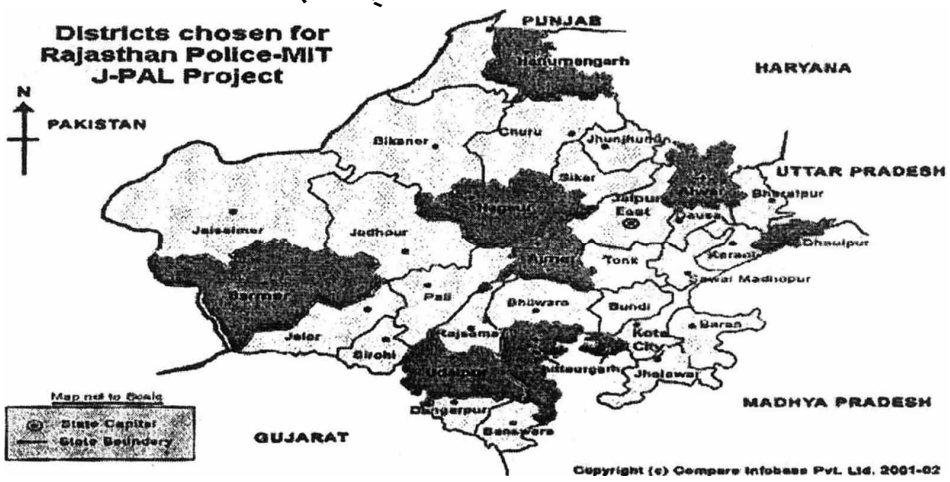

अब तक सम्पूर्ण देश में सरकार पुलिस थानों में दर्ज अपराधों को ही अपराध-दर मापने के लिए उपयोग में लाती है। उसके पास अपराध-दर एवं पीड़ित के संतोष को मापने का कोई प्रभावी तरीका नहीं है। इस वर्तमान प्रणाली से सही-सही आंकड़े नहीं मिल पाते, बल्कि यह तथ्य सरकार, नीति निर्माताओं एवं पुलिस के पक्ष में जाता है। इससे वे उन अपराधों को छिपा पाते हैं जिनकी रोकथाम एवं जाँच की उनसे अपेक्षा की जाती है। एम.आई टी. को उस प्रणाली के रूप में देखा गया जो अपराधों का वास्तविक मापन करती हैं। यह पुलिस की दक्षता को बढ़ाने, पुलिस के प्रति जनता के दृष्टिकोण को सुधारने तथा वस्तुनिष्ठ सूचना इक्ट्ठी करने के लिए कठोरतापूर्वक मूल्यांकित प्रथम पुलिस सुधार है।

एम.आई.टी. की प्रमुख विशेषताएँ:

1. **समुदाय प्रेक्षक :** इस परियोजना के अंतर्गत स्थानीय लोग पुलिस थाने आकर पुलिस की कार्यप्रणाली, पीड़ितों से पुलिस का व्यवहार एवं उनकी शिकायतों पर पुलिस की प्रतिक्रिया देखते हैं। सामान्य जनता का कोई एक सदस्य प्रतिदिन 3-4 घंटे पुलिस की कार्य पद्धति एवं गतिविधियों पर नजर रखने के लिए नियुक्त किया जाता है। यह अपेक्षा की जाती है कि समुदाय प्रेक्षकों की उपस्थिति पुलिसकर्मियों को अधिक विनम्र एवं उत्तरदायी बनाएंगी। इन प्रेक्षकों को पुलिस के सामने आने वाली समस्याओं की जानकारी प्राप्त करने का अवसर भी मिलेगा।
2. **कार्य का चक्रीकरण :** पुलिस थानों में तैनात पुलिसकर्मियों को सभी प्रकार का कार्य दिया जाएगा।
3. **स्थानांतरण का निषेध :** एक वर्ष तक पुलिसकर्मियों का स्थानांतरण नहीं होगा।
4. **प्रशिक्षण :** चयनित कर्मियों को संचार, जनसम्पर्क, मध्यस्थता, तनाव से मुक्ति एवं व्यक्तिगत विकास का त्रिदिवसीय प्रशिक्षण दिया जाएगा। पचास प्रतिशत कर्मी इस प्रकार का प्रशिक्षण प्राप्त करेंगे।

जनमत का सामान्य निष्कर्ष :

अधिकतर लोगों ने कभी पुलिस से बात तक नहीं की।

पढ़े-लिखे लोग पुलिस से अपेक्षाकृत रूप से अधिक बात करने की प्रवृत्ति रखते हैं।

आवश्यकता न होने पर भी पुलिस कठोरतापूर्वक कानून का पालन कराती है।

पुलिसकर्मियों में और अधिक संगठनिक एवं कार्यात्मक दक्षता की आवश्यकता है।

यदि पुलिस आवश्यकताओं का पर्याप्त प्रबंधन कर पाती है तो जनता भी सुसंगठित होगी।

14.4.8 वैश्विक स्थिति सूचक प्रणाली (जी.पी.एस.) एवं भौगोलिक सूचना प्रणाली (जी.आई.एस.)

वैश्विक स्थिति सूचक प्रणाली किसी भी गतिशील वस्तु पर नजर रख सकती है। पुलिस के संदर्भ में यह गश्ती वाहन है। यह किसी आपात बुलावे की स्थिति में पुलिस प्रत्युत्तर को अधिक त्वरित करने में सहायक है।

भौगोलिक सूचना प्रणाली प्रक्रियाओं एवं कम्प्यूटर हार्डवेयर तथा सॉफ्टवेयर का समुच्चय है जो किसी भौगोलिक घटक से संबंधित आंकड़ों के वर्गीकरण, भंडारण, पुनर्प्राप्तिकरण, संश्लेषण एवं प्रदर्शन से संबंधित है। डेस्कटॉप जी.आई.एस. एक अत्यंत शक्तिशाली कम्प्यूटर मैपिंग प्रणाली है एवं यह स्थिति के अनुसार किसी भी प्रकार की सूचना के प्रबंधन का साधन भी है। पुलिस के कार्य में निर्णय हमेशा बाध्यकारी स्थितियों में लिए जाते हैं अथवा वे भूगोल के कुछ तथ्यों द्वारा निर्देशित होते हैं। सीमाएँ, बीट तथा घटनास्थल-ये सभी भूगोल से संबंधित हैं।

सभी गश्ती वाहनों में जी.आई.एस. और जी.पी.एस. लगाया जा सकता है। यह प्रणाली स्वयं ही आपात फोन करने वाले की स्थिति एवं पता बता सकती है। हर आपात फोन करने वाले तक पहुँचने में लगने वाला समय अंकित हो जाता है एवं अधिकारी देरी के कारणों का विश्लेषण कर सकते हैं।

राज्य पुलिस को हाईटेक बनाने के लिए पुलिस मुख्यालय ने वैश्विक स्थिति सूचक प्रणाली का उपयोग करने की योजना बनाई है। जयपुर, कोटा एवं जोधपुर पुलिस के लिए सॉफ्टवेयर लगाया जाना है। कम्प्यूटर एडेड डिस्पेच सिस्टम (CAD) जिसकी कीमत लगभग 35 लाख रुपए है, हर जिले में लगाया जाना है। यह अभी तक सॉफ्टवेयर की कमी, मौसम की बदमिजाजी एवं घरों के अपूर्ण सर्वेक्षण के कारण संभव नहीं हो पाया है।

14.5 सारांश

'उत्तरदायित्व' का अपरिहार्य अर्थ है किसी व्यक्ति द्वारा किए गए कार्यों की सम्पूर्ण जिम्मेदारी व्यक्ति की स्वयं की होगी। इसका उद्देश्य है कि सरकार द्वारा चलाए जा रहे कार्यक्रमों के अधिकतम प्रभाव एवं परिणाम प्राप्त हो सकें। पुलिस साधन-सम्पन्न, लचीली एवं प्रत्युतरदायी हो सकती है किन्तु विभाग के कर्मियों को निर्णय एवं नीति निर्धारण की प्रक्रिया में सम्मिलित करने के लिए प्रोत्साहन एवं किसी उचित विधि की स्थापना की आवश्यकता है। अपराध पता लगाने के क्षेत्र में हुए प्रौद्यौगिकीय एवं वैज्ञानिक विकास की सहायता से पुलिस अपराधियों को पकड़ सकती है एवं अपनी योग्यता एवं परिष्कार के स्तर को ऊँचा उठाकर जनता को संतुष्ट कर सकती है।

14.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारतीय लोकतंत्र का कौन सा आधारभूत पक्ष पुलिस को जनता के प्रति उत्तरदायी बनाता है?
2. पुलिस द्वारा जनता के प्रति उत्तरदायित्व को बढ़ाने के लिए कौन-कौन से व्यावहारिक उपाय अपनाए गए हैं?
3. पुलिस सुधार के लिए एम.आई.टी. किस प्रकार का कदम हैं?
4. पुलिस को अधिक व्यावसायिक- मनाने में जी.आई.एस. और जी.पी.एस. किस प्रकार सहायता करते हैं?

14.7 संदर्भ

- करकरे हेमंत, इम्प्रूविंग पुलिस रिस्पांस थ्रू जी.आई.एस., जी.पी.एस. सिस्टम, ऑल इंडिया पुलिस साईस कांग्रेस, 2008
- सैम्युअल पाल, स्ट्रेंथनिंग ऑफ पब्लिक अकाउंटेबिलिटी-न्यू एप्रोचेज एण्ड मैकेनिज्म पब्लिक अफेयर्स सेंटर, बैंगलोर, 1995
- सारोलिया डा. शंकर, सारोलिया गौरव, पर्सपेक्टिव्ज ऑन इंडियन पुलिस, सोसाइटी फॉरडेवलपमेंट ऑफ पब्लिक इश्यूज, जयपुर, पृ. 50,2005
- केन्द्रीय सतर्कता आयोग का आदेश (पृ. 7, एन.आर. 1472 /1503), 2009
- जोसेफ जी. जबरा, ओ.पी द्विवेदी (संपा.), पब्लिक सर्विस अकाउंटेबिलिटी: ए न्यू कम्पेरेटिव पर्सपेक्टिव, कुमारियन वेस्ट हार्टफोर्ड, यू.एस.ए., 1989
- सैम्युअल पाल, स्ट्रेंथनिंग पब्लिक सर्विस अकाउंटेबिलिटी: ए कंसेप्चुअल फ्रेमवर्क, डिस्कशन पेपर क्र. 136, वर्ल्ड बैंक, वाशिंगटन डी.सी., 1991

इकाई 15
निर्णयन एवं विवेकाधिकार : पुलिस सैंदर्भ

इकाई संरचना

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 निर्णयन तन्त्र

- 15.2.1 अर्थ एवं अवधारणाएँ
- 15.2.2 अपरिहार्यता
  - 15.2.2.1 व्यक्ति स्तर
  - 15.2.2.2 संगठन स्तर
- 15.2.3 पुलिस संदर्भ

15.3 निर्णयन: आधार एवं प्रक्रिया

- 15.3.1 हर्बर्ट साइमन एवं निर्णयन
  - 15.3.1.1 निर्णयन, निर्णय, औचित्य एवं विवेकशीलता
- 15.3.2 निर्णयन प्रक्रिया के चरण
  - 15.3.2.1 अन्वेषण क्रिया
  - 15.3.2.2 डिजाइन किया
  - 15.3.2.3 चयन क्रिया
- 15.3.3 निर्णयों के प्रकार
  - 15.3.3.1 कार्य क्रमिक निर्णय
  - 15.3.3.2 अकार्य क्रमिक निर्णय

15.4 निर्णयन एवं विवेकशीलता

- 15.4.1 अन्योन्याश्रितता
- 15.4.2 सीमाएँ

15.5 निर्णयन मॉडल

- 15.5.1 आर्थिक मॉडल
- 15.5.2 सामाजिक मॉडल
- 15.5.3 संतुष्टिदायक मॉडल/प्रशासनिक मॉडल

15.6 पुलिस संदर्भो में निर्णयन एवं विवेकशीलता

- 15.6.1 पुलिस विवेकाधिकार : क्यों व कितना?
  - 15.6.1.1 पुलिस कार्यो की प्रकृति
  - 15.6.1.2 तत्काल निर्णय
  - 15.6.1.3 कानूनी प्रावधान
  - 15.6.1.4 पूर्वानुमान का अभाव
- 15.6.2 पुलिस विवेकाधिकार के क्षेत्र
  - 15.6.2.1 अपराध प्रबन्धन
  - 15.6.2.2 व्यवस्था स्थापना
  - 15.6.2.3 सुरक्षा प्रबन्धन

15.6.3 सीमा व सम्भावना
15.6.4 सुधार के संदर्भ
15.6.4.1 सामाजिक अंकेक्षण एवं समीक्षा
15.6.4.2 कानूनी प्रावधानों का पुनर्मूल्यांकन
15.6.4.3 आन्तरिक नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण
15.6.4.4 न्यायिक समीक्षा
15.6.4.5 अन्य उपाय
15.7 सारांश
15.8 अभ्यासार्थ प्रश्न
15.9 सन्दर्भ

15.0 उद्देश्य

इस अध्याय के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है:-

निर्णयन के अर्थ, अवधारणा, अपरिहार्यता एवं पुलिस संदर्भ से विद्यार्थियों को अवगत करवाना

निर्णयन के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक पक्षों एवं प्रक्रियाओं को हर्बर्ट साइमन के विचारों के संदर्भमें समझाना

निर्णयन एवं विवेकशीलता के पारस्परिक स्वरूपों एवं अन्योन्याश्रितता की समीक्षा करना

निर्णयन के विविध मॉडलों की विवेचना करना

पुलिस संदर्भो में निर्णयन एवं विवेकशीलता का विस्तार से विश्लेषण करना

15.1 प्रस्तावना

निर्णयन मानव जीवन में सतत् चलने वाली एक व्यवस्था है। मानव जीवन एवं संगठनों के सार्थक संचालन के लिये जरूरी है कि जो मुद्दे एवं विषय प्रकट होते है, उनके सम्बन्ध में समुचित निर्णय लिये जाकर मानव जीवन एवं संगठनों को सजीव रखा जाये और उन्हें सार्थक एवं सही तरीके से संचालित किया जाये। निर्णय लेने की प्रक्रिया समुचित, सांगोपांग, व्यवस्थित एवं वैधानिक आधारों पर संचालित की जानी चाहिए। निर्णयन की प्रक्रिया में विवेकाधिकार की अहम भूमिका होती है। विवेक का सही उपयोग कैसे किया जाय? निर्णयों को सार्थक एवं सही कैसे बनाया जाए?। ये कुछ ऐसे महत्वपूर्ण पक्ष हो जिनको समझना विद्यार्थियों के लिये जरूरी है। निर्णयन एवं विवेक के इन्हीं मुद्दों के सभी पक्षों एवं पहलुओं को समझना एवं उनकी समीक्षा करना इस अध्याय में प्रस्तावित है।

15.2 निर्णयन तन्त्र

15.2.1 अर्थ एवं अवधारणा

मोटे तौर पर निर्णयन का तात्पर्य है निश्चित करना या तय करना। किसी भी विषय के बारे में एक स्थिति को निश्चित एवं तय करने का तात्पर्य यह है कि किसी मुद्दे को तय किये जाने के लिये कुछ विकल्प उपलब्ध है। उपलब्ध विकल्पों में से उत्तम का चयन कर, उसके अनुरूप प्रस्तुत विषय, मुद्दे या स्थिति के निपटारे के अन्तिम विचार व उपाय को निर्णय कहा जाता है। इस प्रकार निर्णय उपलब्ध समस्या, बिन्दु या मुद्दे को अन्तिम बिन्दु तक ले जाने या उसके निपटारे के लिये उपलब्ध विकल्पों पर विचार कर अन्तिम या उपयुक्त का चयन कर, उसके आधार पर उस बिन्दु मुद्दे या समस्या को विवेकशील स्थिति तक पहुंचा कर असमंजस व संघर्ष की स्थिति को खत्म कराने की कोशिश निर्णय

कहलाती है। निर्णय की एक प्रक्रिया होती है जिसे निर्णयन या डिसीजन मेकिंग कहा जाता है। निर्णयन के क्षेत्र में हर्बर्ट साइमन के विचारों एवं योगदान को महत्वपूर्ण समझा जाता है। अत: यहां पर निर्णय एवं निर्णयन के अर्थ एवं अवधारणा को समझने के लिये हर्बर्ट साइमन के विचारों को प्रस्तुत किया जा रहा है।

हर्बर्ट ए.साइमन ने अपने लेखन कार्य में निर्णयन को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया है। साइमन संगठन को प्रणाली मानते है, जिसमें व्यक्ति 'निर्णयन तंत्र' के रूप में कार्य करते है। उनके विचार में संगठन अपने आप में एक निर्णयन संरचना है। यही नहीं, हर्बर्ट एसाइमन के अनुसार निर्णयन न केवल प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण भाग है, अपितु उनकी दृष्टि में यह प्रबन्ध का पर्यायवाची है। प्रबन्ध को निर्णयन का पर्यायवाची मानते समय उनका आशय विभिन्न विकल्पों' में से किसी विकल्प के अन्तिम चयन से नहीं है, वरन् निर्णय की सम्पूर्ण प्रक्रिया से है जिसमें निर्णयन का क्रियान्वयन भी सम्मिलित है।

15.2.2 अपरिहार्यता

निर्णय एवं निर्णयन को व्यक्ति, समाज, संगठन एवं समूह जीवन के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार किया जाता है। व्यक्ति एवं संगठन स्तर पर इस अपरिहार्यता को समझना जरूरी है।

5.2.2.1 व्यक्ति स्तर

निर्णय की स्थितियाँ व्यक्ति के समक्ष नित्य एवं निरन्तर उत्पन्न होती रहती है। वह अपने दैनिक जीवन की विविध गतिविधियों के संचालन के लिये कुछ-कुछ निर्णय कमोंबेश सतत रूप से लेता ही रहता है। स्वयं, घर, परिवार एवं अपने दोस्तों के बारे में विभिन्न स्थितियों के उत्पन्न होने एवं उनसे निपटने के लिए वह निर्णय लेता ही रहता है। इस प्रकार व्यक्ति के लिये एवं व्यक्तिगत जीवन के लिये निर्णय एवं निर्णयन की स्थितियों को अपरिहार्य कहा जा सकता हे। हर्बर्ट ए.साइमन के अनुसार संगठनों की स्थापना लक्ष्यों की प्राप्ति के लियेंकी जाती है। ये लक्ष्य संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के सहयोग के द्वारा प्राप्त किये जाते है। अतएव संगठन में व्यक्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। यदि व्यक्ति में साहस, योग्यता तथा विवेक-शक्ति है तो वह किसी संगठन में कार्य कर सकता है।

15.2.2.2 संगठन स्तर

गठन एवं सामूहिक जीवन को विविध, विभिन्न एवं अनेक प्रकार की प्रक्रियाओं एवं अन्त: क्रियाओं के जाल के रूप में समझा जा सकता है। संगठन एवं सामूहिक जीवन के स्तर पर निर्णय एवं निर्णयन के बिना संगठनों का संचालन एवं उनका अस्तित्व सम्भव नहीं हो सकता है। हर्बर्ट साइमन के अनुसार तो संगठन निर्णयन प्रक्रियाओं का एक जटिल जाल है। संगठन मे निर्णय एवं निर्णयन की अपरिहार्यता को हर्बर्ट साइमन के विचारों से सिद्ध किया जा सकता है। हर्बर्ट साइमन के अनुसार संगठन से तात्पर्य "व्यक्तियों के समूह में सम्प्रेषणों व अन्य सम्बन्धों की जटिल संरचना है। यह संरचना समूह के प्रत्येक सदस्य को सूचना, मान्यतायें, लक्ष्य व अभिवृत्तियां उपलब्ध कराती है जो उनके निर्णयों के लिये आवश्यक होती है। समाजशास्त्री संगठन के इस प्रारूप को 'भूमिका प्रणाली (Role System) कहते है। एक अन्य स्थान पर हर्बर्ट लिखते है कि "संगठन निर्णयन प्रक्रियाओं का एक जटिल जाल है" (It is a complex network of decisional processes)। संगठन व्यक्तियों के व्यवहार के द्वारा ही अपने लक्ष्यों को प्राप्त करता है। अत: निर्णय की समस्त प्रक्रियाओं का उद्देश्य व्यक्तियों

के व्यवहार को प्रभावित करना होता है। इसे स्पष्ट करते हुए हर्बर्ट साइमन लिखते है कि" संगठन की संरचना निर्णयन कार्यो के वितरण एवं आवंटन में निहित होती है, जबकि संगठन का शरीर किया विज्ञान उन प्रक्रियाओं में निहित होता है जिसके द्वारा संगठन इसके सदस्यों के निर्णयों को प्रभावित करता है"। इस प्रकार संगठन को जानने की श्रेष्ठ विधि निर्णयों की प्रक्रिया, प्रकृति एवं अधिकार सत्ता का विश्लेषण करना है।

15.2.3 पुलिस संदर्भ

पुलिस व्यापक रूप से सघन अन्तःक्रियात्मक एवं सार्वजनिक संगठन हैं। व्यक्ति, समाज व देश के विविध मुद्दों के निराकरण में इस संगठन की भूमिका को महत्वपूर्ण माना जाता है। यह एक गतिशील एवं सतत् जन सम्पर्क वाला संगठन है। पुलिस के कार्यो की प्रकृति ऐसी है कि व्यक्ति, समाज एवं संगठनों को व्यक्तिगत या सामूहिक समस्याओं के समाधान के लिये पुलिस से सम्पर्क कर उनका सहयोग लेना होता है। पुलिस के समक्ष आने वाले सभी मुद्दे विवादास्पद, जटिल, संवेदनशील एवं संघर्षोन्मुखी होते है। इन सभी मुद्दों को निपटाने के लिए पुलिस को अनेक प्रकार के निर्णय लेने होते है। निर्णय एवं निर्णयन इस प्रकार पुलिस जीवन एवं पुलिस संगठन का एक अहम एवं अनिवार्य हिस्सा है। पुलिस कार्यो की प्रकृति इतनी व्यापक एवं विचित्र है कि पुलिस कर्मियों को अपने कार्यो, कर्त्तव्यों एवं दायित्वों के निर्वाह के लिए समुचित एवं विवेकपूर्ण निर्णय लेने की आवश्यकता सदैव महसूस होती है। पुलिस के समक्ष पेश होने वाले मसलों एवं मुद्दों को निपटाने के लिए पुलिस का समग्र, समावेशी एवं संतुलित विकल्पों का ज्ञान होकर, उपलब्ध विकल्पों में बेहतर विकल्प को अपना कर प्रस्तुत किये जाने वाली समस्याओं एवं मुद्दों का निपटारा करना होता है। अत: पुलिस को निर्णय एवं निर्णयन की अवधारणा, प्रक्रिया एवं प्रकार के बारे में गहरा ज्ञान और पटुता होनी जरूरी है। अत: निर्णय, निर्णयन एवं विवेकाधिकार जैसे विषयों के सभी पक्षों एवं पहलुओं को विशेषकर हर्बर्ट साइमन के विचारों के आधार पर यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

15.3 निर्णयन : आधार एवं प्रक्रिया

15.3.1 हर्बर्ट साइमन एवं निर्णयन

हर्बर्ट साइमन ने औपचारिक संगठन एवं प्रशासन के क्षेत्र में कई मौलिक विचार एवं दृष्टिकोण प्रस्तुत किये गये है। उन्होने प्रतिष्ठित लेखकों जैसे उर्विक एवं गुलिक द्वारा प्रतिपादित प्रशासन के सिद्धान्तों की कमियोंको प्रकट किया है। उन्होंने इनमें निहित विरोध को स्पष्ट करते हुये इन्हें कल्पित बातें, नारे तथा घरेलू कहावतें बताया है हर्बर्ट साइमन प्रबन्ध विचारधारा के सामाजिक प्रणाली स्कूल से संबंधित है। उन्होंने संगठनात्मक समस्याओं का सामाजिक एवं मनौवैज्ञानिक संदर्भ में गहन विश्लेषण किया है। उन्होंने प्रशासनिक संगठन के बारे में एक नया दृष्टिकोण रखते हुए उन दशाओं का वर्णन किया है जिनमें प्रशासन के प्रतियोगी सिद्धान्तों को लागू किया जा सकता है। हर्बर्ट साइमन संगठन को निर्णय लेने वाली संरचना मानते है तथा उन्होंने लक्ष्य संगठन के स्थान पर प्रक्रिया संगठन पर अधिक बल दिया है। Administrative Behaviour हर्बर्ट साइमन की एक महत्वपूर्ण कृति है। उन्होंने इस पुस्तक में संगठन विचारधारा व निर्णयन विचारधारा को विस्तृत रूप से समझाया है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि प्रभावी निर्णयन तथा आधुनिक सूचना टेक्नोलोजी के प्रभावी प्रयोग के लिए संगठन की संरचना कैसे निर्मित की जानी चाहिये ताकि व्यावहारिक संगठनात्मक समस्याओं को हल किया जा सके। क्रिस आर्गीरिस ने लिखा है कि "यह पुस्तक औपचारिक संगठन एवं प्रशासन के सामाजिक

विज्ञान की ओर हर्बर्ट साइमन का एक महत्वपूर्ण योगदान है। मैंने सरकारी व्यावसायिक निजी व सेवा संगठनों में एक प्रबन्धक की भांति जो अनुभव किया है, यह उसे ही सम्प्रेषित करती है। यह संगठन व प्रशासन के सम्बन्ध में सही परख रखती है।" हर्बर्ट साइमन की विचारधारा एवं योगदान की निम्न शीर्षकों में प्रस्तुत किया जा सकता है-

15.3.1.1 निर्णय औचित्य एवं विवेकशीलता

हर्बर्ट साइमन का सबसे महत्वपूर्ण योगदान निर्णयन के क्षेत्र में रहा है। साइमन निर्णयन को प्रबन्ध का न केवल एक महत्वपूर्ण भाग मानते है, वरन इसे प्रबन्ध का पर्यायवाची भी समझते है। वे निर्णयन विचारक के रूप में व्यापक रूप से जाने जाते है। उनका मत है कि निर्णय लेने का कार्य सामान्य नीति निर्माण के कार्य तक ही सीमित नहीं है, वरन यह क्रियान्वयन की भांति संगठन के प्रत्येक हिस्से व स्तर पर व्याप्त होता है। वास्तव में, निर्णय लेना क्रियान्वयन से जुड़ा होता है। प्रबन्ध को निर्णयन का पर्यायवाची मानते समय उनका आशय विभिन्न विकल्पों में से किसी विकल्प के अन्तिम चयन से नहीं वरन निर्णय की सम्पूर्ण प्रक्रिया से है।

हर्बर्ट साइमन का निर्णयन एवं प्रशासन के क्षेत्र में अनुपम योगदान रहा है। उन्होंने संगठनों में मानवीय व्यवहार के संज्ञानात्मक पहलुओं का वैज्ञानिक विश्लेषण किया है। हर्बर्ट साइमन ने प्रशासनिक एवं सामाजिक समूहों में अन्तवैयतिक प्रभावों, अन्तक्रियाशील प्रक्रियाओं, मानवीय विवेकशीलता की प्रकृति, निर्णयन मे विवेकशील एवं अविवेकशील तत्वों की परस्पर क्रियाशीलता, प्रलोभनों व योगदानों की अभिप्रेरणात्मक विचारधारा आदि का तर्कयुक्त विश्लेषण किया है। प्रशासन के परम्परागत सिद्धान्तों की अव्यावहारिकता को भी उन्होने स्पष्ट किया है। आज के परिवर्तनशील सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक वातावरण में मानवीय संगठनात्मक समस्याओं के समाधान में हर्बर्ट साइमन के विचार अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो रहे है।

15.3.2 निर्णयन प्रक्रिया के चरण

हर्बर्ट साइमन निर्णय एवं निर्णयन को एक प्रक्रिया मानते है जिसके अनेक चरण होते है तथा अपने अन्तिम छोर तक पहुँचने के लिए निर्णय के विविध चरणों से गुजरना होता है। इस प्रक्रिया के प्रमुख चरण तीन होते है।

15.3.2.1 अन्वेषण क्रिया

निर्णयन के इस प्रारम्भिक चरण में यह पता किया जाता है कि कब और कहां निर्णय की आवश्यकता होती है। साथ ही, इसमें निर्णय की उपयुक्त दशाओं के लिए बाह्य एवं आन्तरिक वातावरण की खोज की जाती है। इसमें संगठन की आन्तरिक नीतियों, प्रबन्धीय व्यवहार एवं चिन्तन, संगठनात्मक लक्ष्यों, मूल्यों व दर्शन के साथ-साथ बाह्य सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक मूल्यों, सामाजिक प्रारूपों, अभिवृतियों आदि का विस्तृत अध्ययन किया जाता है।

15.3.2.2 डिजाइन क्रिया

इस चरण में विभिन्न संभावित क्रियाविधियों का विकास एवं विश्लेषण किया जाता है। कार्य के विभिन्न विकल्पों की खोज की जाती है।

15.3.2.3 चयन क्रिया

निर्णयन प्रक्रिया के तीसरे व अन्तिम चरण में समस्त उपलब्ध क्रिया-विधियों में से श्रेष्ठ क्रियाविधि का चयन किया जाता है। यह चयन विभिन्न विकल्पों की पारस्परिक तुलना एवं विश्लेषण के आधार पर किया जाता है।

15.3.3 निर्णयों के प्रकार

मानव जीवन में व्यक्तियों द्वारा व्यक्तिगत एवं सामूहिक संदर्भो में अनेक प्रकार के निर्णय लिये जाते है जिन्हें मोटे तौर पर हर्बर्ट साइमन ने दो वर्गो में विभाजित किया है।

15.3.3.1 कार्य क्रमिक निर्णय

कार्यक्रमिक निर्णय वे होते है जो नैतिक एवं पुनरावृति प्रकृति के होते हैं। इस प्रकार के निर्णयों को लेने के लिए संगठन में एक निश्चित कार्य पद्धति का निर्धारण कर दिया जाता है। इस प्रकार के निर्णयों में कारण एवं प्रभाव संबंध निश्चित होते हैं। इनके लिए निश्चित नीतियों, नियमों एवं प्रणालियों का विकास किया जाता है।

15.3.3.2 अकार्यक्रमिक निर्णय

साइमन के अनुसार ये निर्णय अनुपम, अनोखे, असंचरित व आकस्मिक प्रकृति के होते है। ऐसे निर्णयों को लेने के लिए कोई एक निश्चित विधि निर्धारित नहीं होती है, क्योंकि इनसे संबंधित समस्या कभी-कभी उत्पन्न होती है, जिसका पूर्वानुमान नहीं लगाया गया होता है। ऐसे निर्णयों में समस्या के समाधान हेतु उसके कारणों का अध्ययन एवं विश्लेषण करना होता है। ऐसी समस्या में कारण एवं प्रभाव का संबंध निश्चित नहीं होता है। ऐसे निर्णयों में अत्यधिक सृजनात्मकता, धैर्य, पहल एवं विश्लेषण योग्यता की आवश्यकता होती है।

15.4 निर्णयन एवं विवेकशीलता

हरबर्ट ए. साइमन के अनुसार किसी संगठन में लिये जाने वाले निर्णय तर्क-संगत एवं औचित्यपूर्ण होते हैं। उनके अनुसार कोई भी निर्णय तभी औचित्यपूर्ण माना जाता है जबकि उसमें उसके लक्ष्यों की पूर्ति के लिए उपयुक्त साधनों का चयन किया जाता है। किन्तु किसी भी प्रशासनिक निर्णय का सही होना एक सापेक्षिक बात है यह तभी सही होता है जबकि वह अपने निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति के लिए उपयुक्त साधनों का चयन करे। अतएव एक विवेकशील प्रशासन को निर्णयन के लिए उपयुक्त साधनों का चयन करना चाहिए।

15.4.1 अन्योन्याश्रितता

निर्णयन एवं विवेकशीलता एक दूसरे से अंतरंग रूप से जुड़े हुए यथार्थ है। इनके एक दूसरे पर गहरी निर्भरता के कारण ही इनकी अन्योन्याश्रितता को सिद्ध किया जा सकता है। निर्णय जिन स्थितियों एवं मुद्दों पर लिये जाते है वे आम तौर पर लचीले, गतिशील एवं परिवर्तनधर्मी होते है। अत: इनके बारे में कोई निश्चित सूत्र निर्धारित नहीं किये जा सकते। स्थितियों के अनुरूप संगत निर्णय लिये जाने की अपेक्षा सदा रहती है और इस अपेक्षा की पूर्ति तब ही हो पाती है जब निर्णय लेने वाला अधिकारी उपलब्ध विकल्पों की समीक्षा कर अपने विवेक का उपयोग कर सबसे सही, संतोषजनक एवं सुसंगत विकल्प को चुन कर स्थितिनुसार उत्तम निर्णय लेकर प्रासंगिक मुद्दे का निपटारा करे। इस प्रकार यह एक प्रमाणिक तथ्य और सत्य है कि बिना विवेक के निर्णय नहीं लिये जा सकते तथा निर्णयों के सही

होने के लिए विवेकशील होना जरूरी होता है। चूंकि किसी स्थिति के लिये निर्णय लेने के लिए विकल्पों की उपस्थिति एवं उपलब्धि रहती है, तो उपलब्ध विकल्पों में से बेहतर, श्रेष्ठ और संतुष्टीदायक विकल्प का चयन करना होता है। इस चयन के लिए जिस व्यवस्था की आवश्यकता होती है वह विवेक ही होता है। अत: कहा जा सकता है कि विवेक के बिना सही निर्णय का जन्म नहीं हो सकता और निर्णयन बिना विवेक के आधे-अधूरे, असंतुलित एवं असंगत हो सकते है। सही निर्णय लेने की स्थिति विवेक के प्रयोग की आवश्यकता को जन्म देती है और विवेक निर्णयों को वस्तुनिष्ठ, सारगर्भित और संतुलित बनाते है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विवेक और निर्णय की स्थितियों का चोली दामन का साथ होता है और वे अपरिहार्य रूप से एक दूसरे के साथ जुड़े होने की वजह से नैसर्गिक तथा स्वाभाविक तौर पर एक दूसरे से अंतरंग रूप से सम्बन्धित होने के कारण अन्योन्याश्रित होते है और एक दूसरे को पूर्णता प्रदान करते है।

15.4.2 सीमाएँ

हर्बर्ट साइमन ने मानव विवेकशीलता की सीमाओं को स्वीकारा है। अत: संगठन में लिये जाने वाले निर्णयों का मानवीय विवेकशीलताओ से ग्रसित होना स्वाभाविक है। हर्बर्ट साइमन का मत है कि व्यक्ति निर्णय लेने में पूर्णत: विवेकपूर्ण नहीं हो सकता है। अतएव उन्होने ऐसी सभी विचारधाराओं की आलोचना की है जोकि पूर्णत: विवेकशीलता पर आधारित है। हर्बर्ट साइमन के अनुसार व्यक्ति केवल मर्यादित विवेकशील है। विवेकशीलता की अपनी सीमाएं है। इन सीमाओं में प्रशासक की निष्पादन करने की योग्यता सम्बन्धी सीमा तथा सही निर्णय लेने की योग्यता की सीमा सम्मिलित है। विवेकशीलता की ये सीमाएं निर्णय की प्रकृति का निर्धारण करती है। इन सीमाओं के अन्तर्गत प्रशासक लक्ष्यमूलक विवेकशीलता का चयन करेगा। किन्तु इससे व्यवहार का निर्धारण नहीं हो सकता है, क्योंकि व्यवहार पूर्णत: लोचपूर्ण योग्यताओं, लक्ष्यों, एवं इप्तन की अनुकूलता से युक्त होता है। इसके कारण प्रशासक यद्यपि समस्याओं के अनुकूलतम समाधानों की खोज करते है, किन्तु वे अच्छे समाधानों से ही सन्तुष्ट हो जाते है। निर्णयन के क्षेत्र में हर्बर्ट साइमन के इन विचारों को सन्तोषजनक दृष्टिकोण के नाम से जाना जाता है। व्यक्ति केवल मर्यादित विवेकशीलता के आधार पर ही कार्य करता है। हर्बर्ट साइमन के शब्दों में "प्रशासनिक अवधारणा विशिष्ट रूप से अभिष्टि एवं मर्यादित विवेकशीलता का सिद्धान्त है। पूर्ण विवेक, विशेष रूप से प्रबन्धन के क्षेत्र में, कठिनता से ही प्राप्त होता है। प्रथम कोई भी अतीत के लिए निर्णय नहीं ले सकता। निर्णय भविष्य में ही लागू होते है और भविष्य सदैव ही अनिश्चितता के लिए होता है। दूसरे, लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जितने भी विकल्प चुने जा सकते है उनको पहचानना कठिन होता है। यह बात विशेष रूप से उस समय सच उतरती है जब निर्णय लेने की क्रिया में ऐसी बातों को करना पड़ता है जो पहले कभी नहीं की जा चुकी हो। फिर बहुत सी दशाओ में सभी विकल्पों का उपलब्ध नवीनतम तकनीकियों, यहां तक कि कम्प्यूटर सुविधाओं द्वारा भी, विश्लेषण नहीं किया जा सकता।

प्रबन्धक को सीमित विवेक से कार्य करना चाहिए। इसको चारदीवारी वाला विवेक भी कहते है। व्यवहार में पूर्ण विवेक के लिए अत्यधिक सीमाएं लगाई हुई है। इस कारण यह आश्चर्य की बात नहीं होगी कि प्रकधक कभी-कभी जोखिम की नापसन्दगी व बगैर जोखिम के कार्य करने के सिद्धान्त को श्रेष्ठ हल निकालने के लिए, अनदेखा कर दे। साइमन ने इसे Satisficing शब्द से संबोधित किया है। इसका अर्थ है दी हुई परिस्थितियों में एक ऐसा मार्ग अपनाना जो सन्तोषजनक अथवा पर्याप्त रूप में उचित हो। यद्यपि यह सच है कि बहुत से प्रबन्धकीय निर्णय जहां तक हो सके जोखिम से बचकर

चलने की नीति से प्रेरक होते है, फिर भी यह विश्वास किया जाता है कि बहुत से प्रबन्धक विवेक की सीमाओं में रहकर तथा अनिश्चितता से सम्बन्धित जोखिम की प्रकृति एवं आकार को ध्यान में रखते हुए श्रेष्ठ निर्णय लेने का प्रयास करते हैं।

हरबर्ट साइमन का यह मत है कि व्यक्ति निर्णय लेने में पूर्ण रूप से विवेकपूर्ण नहीं हो सकता हैं। अत: उन्होंने उन सभी विचारधाराओं की आलोचना की है जो पूर्ण विवेकशीलता की मान्यता पर आधारित है। साइमन के अनुसार व्यक्ति केवल मर्यादित विवेकशीलता के आधार पर ही कार्य करता है। उनके शब्दों में "प्रशासनिक विचारधारा का मुख्य संबंध मानवीय सामाजिक व्यवहार के विवेकपूर्ण एवं गैर-विवेकपूर्ण पहलुओं के मध्य सीमारेखा से है। उन्होंने विवेकशीलता अर्थात् निर्णय की औचित्यता की निम्न सीमाओं का वर्णन किया है :-

(i) ज्ञान की अपूर्णता :- विवेकशीलता का तात्पर्य प्रत्येक विकल्प के निश्चित परिणामों का पूर्ण ज्ञान प्राप्तकरना होता है। किन्तु वास्तव में व्यक्ति को अपने कार्यो के परिणामों का केवल अल्प ज्ञान ही हो पाता है तथाभावी परिस्थितियों के बारे में उसकी अन्तर्दृष्टि सीमित ही बनी रहती है। इस प्रकार ज्ञान के अभाव में समस्याको पूर्ण रूप से परिभाषित करना तथा उसका विश्लेषण करना संभव नहीं होता है।

(ii) पूर्वानुमान मे कठिनाई :- विकल्पों के परिणामों का संबंध भविष्य से है। कल्पना एवं पूर्वानुमान केआधार पर ही भावी दशाओं के मूल्यों को आंका जाता है। किन्तु मूल्यों का पूर्ण रूप से पूर्वानुमान कर पाना संभव नहीं होता है। मूल्यांकन की परिशुद्धता एवं संगतता व्यक्ति की क्षमता एवं अनुभव पर निर्भर करती है।

(iii) व्यवहार विकल्पों की सीमा :- विवेकशीलता समस्त संभव वैकल्पिक व्यवहारों में से चुनाव करने पर जोर देती है। किन्तु वास्तव में यह संभव नहीं होता है कि व्यक्ति उन समस्त व्यवहार विकल्पों या व्यवहार प्रारूपों की खोज कर ले जो संभव हो सकते है। प्रत्येक व्यक्ति की जैविक एवं मनौवैज्ञानिक सीमायें होती है जिसकेकारण उसके अवलोकन, परिदृष्टि व मनोविश्लेषण में अनेक बाधाएं आ जाती है। फलस्वरूप मस्तिष्क में केवलकुछ ही विकल्प विकसित हो पाते है।

15.5 निर्णयन मॉडल

विद्वानों द्वारा चयन-औचित्य व्यवहार के कई मॉडल प्रतिपादित किये गये है। प्रबन्ध में इनका प्रयोग निर्णय के क्षेत्र में किया जाता है। ये मॉडल सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक रूप से इस बात को स्पष्ट करते है कि प्रबन्धकों द्वारा निर्णय कैसे लिये जाते है। विशिष्ट रूप से ये प्रबन्धकों के निर्णयन में उनकी विवेकशीलता की सीमा का निर्धारण करते है। ये मॉडल एक छोर पर पूर्णत: विवेकशीलता तथा दूसरे छोर पर पूर्णत: अविवेकशीलता को दर्शाते है। सातत्य क्रम के ये दो छोर है जो अतियों को प्रदर्शित करते है। इनके मध्य साइमन का मॉडल आता है। ये मॉडल प्रबन्धकीय निर्णय व्यवहार की प्रकृति को स्पष्ट करते है।

15.5.1 आर्थिक मॉडल

यह मॉडल प्रतिष्ठित अर्थशास्त्र के 'साहसी' की विचारधारा पर आधारित है जो कि पूर्ण विवेकशीलता की मान्यता पर आधारित है। यह व्यक्ति को आर्थिक व्यक्ति के रूप में देखता है जो कि सर्वशरूप से विवेकशील होता है तथा उसका निर्णय एवं व्यवहार तर्कसंगत एवं औचित्यपूर्ण होता है। निर्णयन के सम्बन्ध में उसकी निम्न मान्यताएं होती है-

(i) साधनों व लक्ष्यों के अर्थ में निर्णय पूर्ण रूप से औचित्यपूर्ण होगा।

(ii) विकल्पों में से चयन करने के लिए प्राथमिकताओं की प्रणाली का निर्धारण किया जाता है।

(iii) (iii)वह समस्त संभावित विकल्पों के परिणामों के प्रति जागरूक रहता है।

(iv) श्रेष्ठ विकल्प के निर्धारण के लिए तकनीकों, विधियों अथवा साधनों की कोई सीमा नहीं होती है।

(v) संभाव्यता विधियों का प्रयोग उनके लिए कोई कठिन अथवा रहस्यमय कार्य नहीं होता।

(vi) वह विकल्पों के परिणामों का अपनी मूल्य प्रणाली के संदर्भ में मूल्यांकन करता है

(vii) वह उस विकल्प का चुनाव करता है जो उसके लक्ष्यों की अधिकतम पूर्ति करता है।

यह मॉडल व्यवसाय में अधिकतम लाभ एवं संगठनात्मक लक्ष्यों पर ध्यान देता है। यह बाजार व्यवहारएवं कीमतों के सम्बन्ध में सही जानकारी प्रस्तुत करता है। पिछले दशकों में हुई प्रतिस्पर्धा में वृद्धि एवं निर्णयों की अनिश्चितता के कारण इस मॉडल की उपयोगिता बढ़ी है।

15.5.2 सामाजिक मॉडल

मनोवैज्ञानिकों ने आर्थिक मॉडल के बिल्कुल विपरीत सामाजिक मॉडल का प्रतिपादन किया है। सिगमन्ड फ्रायड का विचार था कि "व्यक्ति भावनाओं, आवेगों व सहज वृत्तियों के समूह है तथा इनका व्यवहार अचेतन इच्छाओं से संचालित होता है।"अत: इस मॉडल के अनुसार व्यक्तियों के प्रबन्धकीय निर्णय मात्र विवेक, तर्क अथवा बुद्धि से प्रभावित न होकर मानवीय भावनाओं व इच्छाओं से भी प्रेरित होते है। प्रबन्धक पूर्ण रूप से विवेकशील न होकर सामाजिक दबावों व प्रभावों के अन्तर्गत भी प्रबन्धकीय निर्णय लेते है जो अविवेकपूर्ण होते है। यह मॉडल मानवीय अविवेकता पर आधारित है तथा इसके अनुसार प्रबन्धकीय निर्णय एवं व्यवहार पर वैयक्तिक भावनाओं, लक्ष्यों, सामाजिक आवश्यकताओं दबावों, प्रमापों व समूह गत्यात्मकता का गहन प्रभाव पड़ता है। इसके अनुसार प्रबन्धकीय व्यवहार अविवेकपूर्ण व असंगत हो सकता है। यह मॉडल प्रबन्ध के क्षेत्र में बढ़ती हुई मानवीय संवेदनशीलता, सामाजिक जागरूकता व अनौपचारिक सम्बन्धों के कारण एक यथार्थवादी दृष्टि प्रस्तुत करता है।

15.5.3 सैटिसफाइजिंग मॉडल

हर्बर्ट साइमन ने आर्थिक मॉडल के विपरीत एक अधिक व्यावहारिक मॉडल प्रस्तुत किया है, जिसे वे प्रशासनिक व्यक्ति के नाम से पुकारते है। आर्थिक व्यक्ति के विपरीत, साइमन का प्रशासनिक व्यक्ति अपने निर्णयों एवं व्यवहार में विवेकपूर्ण रहकर अधिकतम लाभ का प्रयत्न करता है, किन्तु कुछ दशाओं में वह अपने अच्छे निर्णयों से ही संतुष्ट हो जाता है, क्योंकि वह श्रेष्ठ विकल्प का चयन नहीं कर पाता है। साइमन ने प्रशासनिक व्यक्ति के निर्णयन व्यवहार के सम्बन्ध में निम्न मान्यताओं का उल्लेख किया है-

(i) प्रशासनिक व्यक्ति विभिन्न विकल्पों में से सन्तोषजनक अथवा पर्याप्त रूप से अच्छे विकल्प के चयन से संतुष्ट हो जाता है। उसका मापदण्ड संतुष्टिदायक होता है, जैसे पर्याप्त लाभ, अच्छी कीमत, बाजार भाग आदि।

(ii) प्रशासनिक व्यक्ति विकल्पों के चयन में सम्पूर्ण जगत अथवा स्थिति का सरल चित्र सामने रखता है तथा वह अधिक संगत एवं महत्वपूर्ण घटकों पर ही विचार करता है, समस्त घटकों पर नहीं।

(iii) इस मॉडल में प्रबन्धक का जोर उच्चतम की अपेक्षा संतुष्टि पर होता है, अत: वह समस्त संभावित विकल्पों का निर्धारण किये बिना ही किसी संतुष्टिदायक विकल्प को चुन लेता है।

(iv) प्रशासनिक व्यक्ति बाह्म जगत को ज्यादा अर्थपूर्ण नहीं मानता हैं। वह अपनी समस्या के समाधान के लिए वास्तविक जगत को शून्य अथवा असंगत मानता है। अत: वह केवल सामान्य ज्ञान, व्यवसाय के दांव-पेज के द्वारा अथवा अपने स्वभाव के अनुरूप ही निर्णय ले लेता है। इन तकनीकों में उसे अधिक विचार व विवेक की आवश्यकता होती है।

15.6 पुलिस में निर्णयन एव विवेकशीलता

विवेकशीलता शक्ति के स्व विवेक पर आधारित होती है। विवेक मानव मस्तिष्क एवं अस्तित्व का एक विशिष्ट गुण है। विवेक मानव मात्र को ईश्वर प्रदत्त वह गुण व विशेषता है, जो उसे अच्छे-बुरे हानि-लाभ, गलत-सही जैसे विकल्पों की समीक्षा करने की शक्ति प्रदान करता है। अन्ततोगत्वा विवेक एक वैधानिक, न्यायिक और व्यवस्थित व्यवस्था है, जो मानव की बुद्धि, ज्ञान व विश्लेषण क्षमता पर आधारित होती है। प्रशासनिक संदर्भो में विवेक अधिकारियों को प्रदत्त वह शक्ति, क्षमता व अधिकार है जो उन्हें उपलब्ध अनेक विकल्पों में से एक का चयन कर स्थितियों के समाधान करने की अधिकारिता प्रदान करता है। अधिकारियों को प्रदत्त इस विवेकाधिकार का प्रयोग संतुलित, सही व उपयुक्त तरीके करने की अपेक्षा रखी जाती है, जिससे विधि, न्याय एवं प्रशासनिक अपेक्षाओं के अनुरूप विवेक का प्रयोग हो सके। पूर्वाग्रहों, दुराग्रहों, पक्षपात, निहित स्वार्थ, निजी स्वार्थ एवं व्यक्तिनिष्ठ आधारों पर कार्य करने की प्रणाली स्वस्थ विवेक के उपयोग की स्थितियों को दूषित बनाती है। ऐसे में विवेकाधिकार का प्रयोग एवं क्रियान्वयन दूषित होने से निर्णय प्रक्रिया भी दोषपूर्ण, त्रुटिपूर्ण एवं प्रदूषित हो जाती है। इस प्रकार विवेक उपयुक्त एवं सही तरीके में उपलब्ध विकल्पों में सें अपनी बुद्धि, परिस्थितियों की प्रकृति एवं चयन किये गये विकल्पों के आधार पर निर्णय लेने की पृष्ठभूमि तैयार करता है।

15.6.1 पुलिस विवेकाधिकार : क्यों व कितना?

प्रत्येक समाज में पुलिस को प्रमुख कानून-क्रियान्वयन अभिकरण के रूप में मान्यता प्राप्त होती है। पुलिस कार्यो की प्रकृति, उनकी व्यापकता, पुलिस कर्त्तव्यों एवं दायित्वों के विस्तार एवं उनकी महत्वपूर्ण भूमिका के क्रम में यह स्वाभाविक है कि उन्हें अपने कार्यो, कर्त्तव्यों, दायित्वों एवं भूमिका के निर्वाह के लिये विवेकाधिकार प्रदान किये जाए। यही वजह है कि विश्व के सभी पुलिस संगठनों में कार्यरत कर्मियों एवं अधिकारियों को विवेकाधिकार से सज्जित किया जाता है। पुलिस अधिकारियों एवं कर्मचारियों को विवेकाधिकार प्रदान करने में अनेक आधार है, जिनमें से कुछ का वर्णन यहाँ किया जा रहा है-

15.6.1.1 पुलिस कार्यो की प्रकृति

पुलिस कार्यो की प्रकृति ऐसी है कि उन्हें अनायास, अचानक, जटिल एवं यकायक घटित कई प्रकार की स्थितियों से निपटना होता है अत: उन्हें विवेकाधिकार से सज्जित किया जाना चाहिए।

15.6.1.2 तत्काल निर्णय

पुलिस से सम्बन्धित घटनाओं की प्रकृति यह अपेक्षा करती है कि उनके निपटारे के लिए तत्काल निर्णय लिये जाए, विशेष कर कानून-व्यवस्था एवं हिंसक घटनाओं से निपटने के लिए तत्काल निर्णय लेने की महती आवश्यकता है। ऐसे में उन्हें स्वविवेक के आधार पर निर्णय करने के अधिकार प्रदान किये जाते है।

15.6.1.3 कानूनी प्रावधान

अपराधिक एवं कानून व्यवस्था की स्थितियां अस्पष्ट, त्वरित बदलाव वाली एवं विस्फोटक प्रकृति की होती है। यही कारण है कि पुलिस अधिकारियों को उनसे निपटने के लिए विवेकाधिकार दिये गये है। कानून में पुलिस अधिकारियों को प्रदत्त अधिकारों एवं शक्तियों के प्रयोग के लिए MAY शब्द का प्रयोग किया गया है, जो इस बात का सूचक है कि वे अपने विवेक के अनुसार दर्शाए गए तरीके से कार्य कर भी कर सकते है और नहीं भी। यह स्थिति विवेक के उपयोग की सूचक है। MAY शब्द के प्रतिकूल MUST शब्द का प्रयोग होता है वहाँ विवेक का प्रयोग नहीं किया जाकर निर्धारित प्रक्रिया के अनुरूप कार्य करने की अपेक्षा रखी जाती है। दण्ड प्रक्रिया संहिता एवं अन्य अधिनियमों में अधिकांश स्थानों पर पुलिस कार्य क्रियान्वयन के संदर्भ मे MAY शब्द का प्रयोग किया गया है, जो इस बात का सूचक है कि पुलिस को व्यापक, पर्याप्त एवं उपयुक्त विवेकाधिकार प्रदान किये गए है।

15.6.1.4 पूर्वानुमान का अभाव

पुलिस के समक्ष प्राय: ऐसे प्रकरण आते है जो सर्वथा अपनी प्रकार के होते है। उन जैसे प्रकरण पूर्व में उपलब्ध नहीं होने से उनके समाधान का पूर्वानुमान नहीं किया जा सकता। यदि पूर्व में प्रकरण घटित भी हुए है तो प्रत्येक प्रकरण एक विशिष्टता लिये होता है। अत: उनके समाधान के लिए विशिष्ट तरीके से विकल्प खोजने होते है। यही कारण है कि पुलिस को विवेकाधिकार से सज्जित किया जाता है।

15.6.2 पुलिस विवेकाधिकार के क्षेत्र

पुलिस कार्य क्षेत्राधिकार से जुड़ी सभी गतिविधियों के संचालन के लिए विवेक के उपयोग की आवश्यकता एवं अपेक्षा होती है। विवेक का उपयोग अपराध प्रबंधन, व्यवस्था स्थापना, सुरक्षा प्रबन्धन, नियामक कार्य एवं अन्य पुलिस कार्य क्षेत्रों में निरन्तर होता रहता है। पुलिस विवेकाधिकार के महत्वपूर्ण क्षेत्र निम्नांकित है-

15.6.2.1 अपराध निरोधक प्रबन्धन

अपराध प्रबन्धन के निम्न क्षेत्र में पुलिस को विवेकाधिकार के प्रयोग के लिए अधिकृत किया गया है।

(i) अपराध पंजीकरण के लिये यह निर्णय करने के लिये कि घटना / अपराध से संज्ञेय या असंज्ञेय है
(ii) घटना की रिपोर्ट के अनुसार अपराध धाराएं लगाने के लिए
(iii) साक्ष्य संग्रह के लिये
(iv) गवाहों, अपराधियों संदिग्ध, परिवादियों आदि से पूछताछ करने के लिए
(v) गिरफ्तारी एवं रिमाण्ड के लिए कानून ने पुलिस को व्यापक विवेकाधिकार प्रदान किए है।
(vi) अपराधी के हथकड़ी लगाने एवं लोक-अप में रखने के लिए
(vii) शहादत की समीक्षा कर प्रकरण बंद करने या अदालत में भेजने के लिए

15.6.2.2 व्यवस्था की स्थापना

कानून व्यवस्था की स्थापना के लिए निम्न संदर्भो में पुलिस को विवेकाधिकार प्राप्त हैं

(i) रोकथाम एवं मौके पर गिरफ्तारी के लिए

(ii) प्रदर्शनकारियों को किस सीमा तक प्रदर्शन की अनुमति दी जानी है

(iii) भीड़ नियन्त्रण एवं भीड़ को तितर-बितर करने और बल प्रयोग की सीमा व स्थिति

(iv) प्रदर्शन पश्चात विविध कार्यो के क्रियान्वयन के लिए

15.6.2.3 सुरक्षा का प्रबन्धन

सुरक्षा प्रबन्धन के निम्न क्षेत्रों में पुलिस विवेकाधिकार का प्रयोग करती है-

(i) अपराधियों, संदिग्धों, असामाजिक तत्वों पर निगरानी

(ii) आसूचना का संग्रह

(iii) अतिविशिष्ट व्यक्तियों की सुरक्षा

15.6.3 सीमा एवं सम्भावना

विवेकाधिकार प्रदान करना, विशेषकर पुलिस संदर्भो में अपरिहार्य हो जाता है। परन्तु विडम्बना यह है कि पुलिस विवेकाधिकार के कारण पुलिस संगठन को आलोचना का भागी भी बनना पडता है। ये आलोचना आम तौर पर तीन आधारों पर भी जाती है। पुलिस विवेकाधिकार के संदर्भ में आमतौर पर यह कहा जाता है कि पुलिस को आवश्यकता से अधिक विवेकाधिकार दिये हुए है। पुलिस के सिपाही एवं थानाधिकारी जिस स्तर और स्टेटस के कर्मी है उसे देखते हुए उन्हें प्रदत्त विवेकाधिकार का स्वरूप बहुत व्यापक हैं। दूसरा आलोचना का आधार यह है कि पुलिस अपने विवेकाधिकार का दुरूपयोग करती है एवं तीसरा आलोचना का आधार यह है कि पुलिस निष्क्रिय रहती है और अपने विवेकाधिकार का प्रयोग या तो करती नहीं है और यदि करती है तो वह दुराग्रहों, पूर्वाग्रहों एवं निहित स्वार्थों से ग्रसित होता है।

15.6.4 सुधार का सन्दर्भ

पुलिस कार्यो की प्रकृति, दायित्वों के स्वरूप एवं पुलिस भूमिका की व्यापकता तथा महत्व को देखते हुए यह जरूरी है कि पुलिस को विवेकाधिकार से सज्जित किया जाए। पुलिस को कितने, कैसे एवं किस सीमा तक विवेकाधिकार दिये जाने है, यह विधायनी प्रक्रिया का अंग है, अत: इस सम्बन्ध में टिप्पणी किया जाना उचित नहीं है। परन्तु, यह सही है कि पुलिस को प्रदत्त विवेकाधिकारों के प्रयोग एवं क्रियान्वयन को सही एवं स्वस्थ बनाया जाना चाहिए और उसे सही और स्वस्थ बनाया भी जा सकता है। इस सम्बन्ध में निम्नांकित कार्य योजना लागू की जा सकती है।

15.6.4.1 सामाजिक अंकेक्षण एवं समीक्षा

पुलिस विवेकाधिकार के प्रकरणों की स्वस्थ एवं संतुलित समीक्षा समाज के प्रबुद्ध वर्ग द्वारा की जाकर, पुलिस विवेकाधिकार के प्रयोग को सार्वजनिक हित के अनुरूप और उपयुक्त बनाया जा सकता है।

15.6.4.2 कानूनी प्रावधानों का पूनर्मूल्याकन

पुलिस को प्रदत्त विवेकाधिकार के प्रावधानों की विधायनी समीक्षा की जाकर विवेकाधिकार प्रसंगों एवं प्रावधानों को संतुलित एवं सीमित किया जा सकता हैं

15.6.4.3 आन्तरिक नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण

पुलिस विवेकाधिकार के प्रयोग को उपयुक्त एवं सार्थक बनाने के लिए पुलिस विभाग के स्तर पर निरन्तर आन्तरिक समीक्षा होती रहनी चाहिए। इस समीक्षा में पुलिस नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण की महती भूमिका हो सकती है। वैसे पुलिस घटनोपरान्त अपने कार्यो की समीक्षा आम तौर पर करती है। परन्तु, आवश्यकता इस बात की है कि इस समीक्षा तथा उसके निष्कर्षो को स्थायित्व व निरन्तरता प्रदान की जायें। इसके लिये हम इस प्रकार की समीक्षा का प्रचार-प्रसार विभाग के सभी स्तरों पर किया जाना चाहिए। इसके अलावा एक नियमित प्रक्रिया के रूप में विवेकाधिकार के प्रयोग की स्थितियों पर नियन्त्रण बनाया जाकर, सार्थक पर्यवेक्षी विधाओं के माध्यम से विवेकाधिकार के प्रयोग को सही, सार्थक एवं सोगोपांग बनाया जा सकता हैं।

15.6.4.4 न्यायिक समीक्षा

पुलिस कार्यो की समीक्षा न्यायालय प्राय: करते ही रहते है एवं उनको गुणवत्तापूर्ण बनाने के लिए टिप्पणियाँ व मार्ग दर्शन भी प्रदान करते है। पुलिस विभाग में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि ये टिप्पणियाँ स्थाई मार्गदर्शन के रूप में प्रसारित की जा सके ताकि वे भविष्य में पुलिस विवेकाधिकार की स्थितियों को स्वस्थ बना सके।

15.6.4.5 अन्य उपाय

उपर्युक्त उपायों के अलावा पुलिस का उपयुक्त, प्रगतिशील व आधुनिक कार्मिक प्रबन्धन, प्रशिक्षण, मानव संसाधन विकास, पुलिस मूल्य, नैतिकता एवं सामायिक शैक्षणिक एवं बौद्धिक गतिविधियां भी पुलिस विवेकाधिकार को संतुलन प्रदान कर पुलिस निर्णयन प्रक्रियाओं एवं व्यवस्थाओं को कारगर दिशा प्रदान कर सकते है।

15.7 सारांश

निर्णयन का तात्पर्य निश्चित करना या तय करना है। किसी विषय से सम्बन्धित उपलब्ध विकल्पों में से उत्तम का चयन कर, उसके अनुरूप प्रस्तुत विषय के निपटारे के अंतिम विचार व उपाय को निर्णय कहा जाता है।

निर्णयन प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण भाग है। यह व्यक्ति, समाज, संगठन एवं समूह जीवन के लिए अपरिहार्य है।

व्यक्ति समाज व देश के विविध मुद्दों के निराकरण में पुलिस संगठन की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अत: निर्णयन पुलिस व्यवसाय का अहम एवं अनिवार्य हिस्सा है।

पुलिस कार्यो को निर्वाह के लिए उन्हें विवेकाधिकार प्रदान किए गए हैं तथा इनका महत्वपूर्ण क्षेत्रों जैसे - अपराध प्रबन्धन, व्यवस्था स्थापना, सुरक्षा प्रबन्धन आदि में उपयोग किया जाता है। पुलिस संदर्भो में विवेकाधिकारों की सीमाएँ व सम्भावनाएँ विवादित रही है। पुलिस को प्रदत्त विवेकाधिकारों के प्रयोग एवं क्रियान्वयन को सही एवं स्वस्थ बनाने के लिए विभिन्न कार्य जैसे - सामाजिक अंकेक्षण एवं समीक्षा, कानूनी प्रावधानों का पुर्नमूल्यांकन, आंतरिक नियंत्रण एवं पर्यवेक्षण, न्यायिक समीक्षा आदि लागू की जा सकती है।

निर्णयन प्रक्रिया के तीन प्रमुख चरण होते हैं - अन्वेषण क्रिया, डिजाइन क्रिया, चयन क्रिया। निर्णय के दो प्रमुख प्रकार होते हैं - कार्यक्रमिक निर्णय एवं अकार्यक्रमिक निर्णय।

निर्णयन एवं विवेकशीलता अन्योन्याश्रित है। निर्णयों के सही होने के लिए विवेकशील होना जरूरी है। परन्तु विवेकशीलता की अपनी सीमाएँ है।

15.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. निर्णयन एवं निर्णय की अवधारणाओं को समझाते हुए उनकी उपयोगिता एवं अपरिहार्यता पर प्रकाश डालिए।
2. निर्णयन के आधार एवं प्रक्रिया तथा प्रकारों पर हर्बर्ट साइमन के विचारों की समीक्षा कीजिए।
3. निर्णयन एवं विवेकशीलता की पारस्परिकता एवं अन्योन्याश्रित पर एक समीक्षात्मकटिप्पणी लिखिए।
4. निर्णय मॉडलों पर प्रकाश डालते हुए बतलाइए कि इनमें से आप पुलिस के संदर्भो में कौन से मॉडल को अधिक उपयुक्त मानते है एवं क्यों?
5. पुलिस विवेकाधिकार के विविध प्रावधानों, पक्षों एवं पहलुओं को सविस्तार समझाइए।

15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. पी.डी शर्मा, "पुलिस, पोलिटी एण्ड पीपुल इन इंडिया", उप्पल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
2. शंकर सुरोलिया "आइडियाज एण्ड ईश्यूज इन पुलिस एडमिनिस्ट्रेशन", गौरव पब्लिशर्स, जयपुर
3. जेम्स विल्शन, "वेराइटिज ऑव पुलिस बिहेवियर", हार्वर्ड यूनिवर्ससिटी प्रेस, लंदन

इकाई - 16
मीडिया एवं पुलिस

इकाई संरचना

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 मीडिया एवं पुलिस के सरोकार
16.3 मीडिया एवं अपराध समाचार के स्त्रोत
16.4 मीडिया पुलिस संबंध
16.4.1 मीडिया, पुलिस एवं आचार संहिता
16.4.2 क्राइम शो
16.4.3 पुलिस-मीडिया संवाद
16.5 अपराध समाचार और कानून
16.6 साइबर क्राइम, पुलिस और मीडिया
16.7 अपराध समाचार, विचार और मीडिया
16.8 सारांश
16.9 अभ्यासार्थ प्रश्न
16.10 संदर्भ

16.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- मीडिया के सरोकारों के बारे में जान सकेंगे।
- मीडिया एवं पुलिस के मध्य संबंधों से अवगत हो सकेंगे।
- आपराधिक मामले और कानून संबंधी जानकारियाँ प्राप्त कर सकेंगे।
- साइबर क्राइम, पुलिस और मीडिया के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रेस की आजादी, आचार संहिता और पुलिस-मीडिया संबंधों से रू-ब-रू होसकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

मीडिया और पुलिस दोनों ही अपने लिये नहीं समाज के लिये कार्य करते हैं। मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ कहा जाता है। इसलिये कि वह लोकतंत्र की जड़ों को सींचकर सदा उसे हरा रखता है। आम जन को सूचनाओं, विचारों से जागरूक करता है और उनकी आवाज का बहुत से स्तरों पर प्रतिनिधित्व करता है।ऐसे ही पुलिस की भूमिका भी आम जन को सुरक्षा प्रदान करने के साथ ही भयमुक्त समाज का निर्माण करना है। कानून एवं शांति व्यवस्था के साधारण में भी पुलिस की भूमिका महत्ती होती है। ऐसे में यह जरूरी है पुलिस-मीडिया संबंधों का आधार सूचनाओं, समाचारों तक ही नहीं हो बल्कि उससे भी आगे समाज के प्रति अपने नैतिक दायित्वों का निर्वहन में हो। पुलिस अपराधियों को पकड़ने, अपराध नियंत्रण और कानून एवं शांति व्यवस्था कायम रखने के लिये कार्य करती है तो मीडिया लोगों को सतर्क एवं जागरूक बनाये रखने के लिये सूचनाओं-विचारों का संप्रेषण करता है।

प्रतिदिन के समाचार माध्यमों का अवलोकन करें तो यह पाएंगे कि उनमें बहुत सारा पुलिस से संबंधित ही होगा। बढ़ती आबादी, बेरोजगारी और सामाजिक विसंगतियों के -चलते समाज में अपराध

तेजी से बढ़े हैं। इसी के साथ अपराध समाचारों के प्रकाशन और प्रसारण में भी तेजी से वृद्धि हुई है। मीडिया की भूमिका भी अब पहले से कई गुना हो गयी है। एक समय था जब समाचार पत्र ही मीडिया के संवाहक हुआ करते थे। दिनभर की खबरें दूसरे दिन ही अखबार के द्वारा या फिर शाम को लोगों तक पहुंचती थी। रेडियो के आने के बाद खबरों की पहुंच बढ़ी है परन्तु इधर प्रिंट मीडिया के साथ 24 घंटों के प्रसारण के अंतर्गत इलेक्ट्रोनिक मीडिया ने खबरों के प्रसारण में एक प्रकार से क्रांति ही कर दी है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी से उपजे वेब मीडिया के बाद तो पल-पल की खबरें हर आम और खास के लिये उपलब्ध होने लगी है। कह सकते हैं, मीडिया की भूमिका जीवन के हर क्षेत्र में तक आ रही है, स्वाभाविक ही है कि अपराध और अपराधी से संबंधित समाचारों की भी एक प्रकार से बाढ़ आ रही है। निःसंदेह बढ़ते अपराधों के साथ पुलिस की भूमिका भी अब पहले से कई गुना हो गयी है। समाचार माध्यमों को खबरों की चिन्ता है तो पुलिस को अपराध नियंत्रण की। मीडिया-पुलिस बेहतर संबंधों से बहुत से स्तरों पर समाज में अपराध नियंत्रण के साथ ही अपराध समाचारों से अनेक बार फैलने वाली सनसनी, दहशत और जल्दबाजी में तथ्यों से हटकर प्रकाशित-प्रसारित होने वाले समाचारों पर नियंत्रण हो सकता है। इस संबन्ध में यह कहा जा सकता है कि मीडिया-पुलिस संबंधों की बेहतरी आज के समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है। इस इकाई में मीडिया-पुलिस सरोकारों पर इसी दृष्टि से प्रकाश डाला गया है।

16.2 मीडिया एवं पुलिस के सरोकार

भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक राष्ट्र है। लोकतंत्र का अर्थ ही है जनता का तंत्र। लोकतंत्र की जड़ों को सींचने का महत्त्वपूर्ण कार्य करता है मीडिया। इसलिये सूचना के तमाम माध्यम लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ कहे जाते हैं। न्यायपालिका, कार्यपालिका, विधायिका के बाद का चौथा स्तम्भ मीडिया ही है। मीडिया माने सबको खबर ले और सबको खबर दे।

अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम मीडिया है। कह सकते हैं लोकतंत्र की यही वह ताकत है जिससे व्यक्ति सूचना संपन्न होता है। अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होता है। अब जबकि सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के इस तकनीकी दौर में जीवन के तमाम क्षेत्रों में मीडिया की बढ़त हो रही है, कहा जा सकता है कि मीडिया का कार्य लोगों को सूचना संपन्न करना ही नहीं रह गया है बल्कि समय और समाज को दृष्टिगत रखते हुए मीडिया की भूमिका नागरिकों को उनके कर्त्तव्य और अधिकारों का बोध कराना भी बन चुका है। मानव जीवन और मानवता के सभी पहलुओं को प्रभावित करते मीडिया की एक खबर पूरे विश्व में उथल-पुथल मचा सकती है। ऐसे में स्वतः ही मीडिया के महत्व को समझा जा सकता है।

ऐसा माना जाता है कि पत्रकारिता यदि प्रेस का प्राण तत्व है तो पत्रकार उसका वाहक है। मीडिया की शक्ति इन्हीं दोनों की शक्ति होती है। दोनों के ही सरोकार आम जन को जागरूक करना, अवसर-विशेष के लिये तैयार करना होता है। इसलिये मीडिया की भूमिका कोरे समाचार ही प्रदान करने तक सीमित नहीं है बल्कि उसके विश्लेषण और व्याख्या के हिसाब से जनमत तैयार करना भी होता है। इस दृष्टिकोण से मीडिया के आम जन से गहरे सरोकार हैं।

इसी प्रकार पुलिस के भी आम जन से गहरे सरोकार हैं। मीडिया जहां लोगों को शिक्षित और जागरूक करने, सूचना संपन्न समाज के निर्माण का कार्य करता है वहीं पुलिस आम जन को सुरक्षा प्रदान करने के साथ ही उसके साथ होने वाले किसी भी प्रकार के अन्याय को रोके जाने के लिये कार्य करती है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के तेजी से हुए विस्तार से पुलिस की भूमिका पहले से कई गुना बढ़ गयी है। सूचना और संचार तकनीक ने अपराधी को पकड़वाने में तो मदद की ही है, अपराध

के बारे में भी त्वरित सूचना संप्रेषण के कार्य को भी आसान किया है। ऐसे में पुलिस से जन अपेक्षाएं भी पहले से कई गुना बढ़ गयी है, जाहिर सी बात है पुलिस की जवाबदेही भी बढ़ गयी है।

इसी परिप्रेक्ष्य में पुलिस शब्द के सरोकार समझते हुए पुलिस की कार्यप्रणाली को जानें। पुलिस दरअसल अंग्रेजी शब्द है। इसका आशय उस सुरक्षा बल से है जिसका उपयोग किसी भी देश की आन्तरिक नागरिक सुरक्षा के लिये ठीक वैसे ही किया जाता है जिस प्रकार से किसी देश की बाहरी सुरक्षा के लिये सेना का उपयोग किया जाता है। कह सकते हैं कि पुलिस आंतरिक सुरक्षा की हमारी सेना है। देश की कानून एंव शांति व्यवस्था पुलिस ही संभालती है। पुलिस अपराधियों को पकड़ने का कार्य ही नही करती बल्कि आपराधिक गतिविधियों को रोकने, अपराधियों द्वारा किये जाने वाले अपराधों की खोजबीन करने, उनकी तलाश करने और अपराध साबित करने के लिये अपराधी के खिलाफ पर्याप्त साक्ष्य जुटाने का कार्य भी करते है। अपराध साबित होने के बाद पुलिस अपराधी को अदालत को सौंपती है। इस दृष्टि से कहें तो न्याय व्यवस्था की महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में पुलिस कार्य करती है। इसी प्रकार नागरिक सुरक्षा के बंदोबस्त करने, महत्वपूर्ण व्यक्तियों को विशेष सुरक्षा प्रदान करने, यातायात संबंधी व्यवस्था का कार्य भी पुलिस ही करती है। विशेष अवसरों पर पुलिस द्वारा कानून एवं शांति व्यवस्था संधारण का कार्य भी जहां किया जाता है वहीं विद्रोह एवं उपद्रवी तत्वों के दमन के निमित्त भी पुलिस को विभिन्न अवसरों पर अपनी महत्ती भूमिका निभानी होती है। मुख्यत: पुलिस के प्रमुख कार्य इस प्रकार से हैं-

- अपराध नियंत्रण।
- यातायात नियंत्रण।
- महत्वपूर्ण व्यक्तियों की सुरक्षा।
- अवसर विशेष पर कानून एवं शांति व्यवस्था का संधारण।
- नागरिकों की सुरक्षा करते हुए उन्हें भयमुक्त वातावरण प्रदान करना॥

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पुलिस के सरोकार सीधे आम जन से हैं। अपराध नियंत्रण के साथ ही आम जन के लिये इस प्रकार का वातावरण निर्मित करना पुलिस का दायित्व है कि वह भयमुक्त हो जीवन जी सके।

इस दृष्टिकोण से देखें तो सहज यह कहा जा सकता है कि पुलिस और मीडिया के सरोकार सीधे तौर पर जनता से जुड़े हुए हैं। दोनों ही जनता के लिये कार्य करते हैं। जनता के भले के लिये अपने दायित्वों का निर्वहन करते है। ऐसे में मीडिया-पुलिस सरोकारों को समझते हुए उनके संबंधों पर गहराई से विचार किये जाने की आवश्यकता है।

16.3 मीडिया एव अपराध समाचार के स्त्रोत

प्रतिदिन समाचार पत्र-पत्रिकाओं और दूसरे प्रसारण माध्यमों में दूसरे समाचारों के साथ ही अपराध समाचार भी बहुतायत से प्रकाशित होते हैं। अनेक बार तो देर रात्रि तक की अपराध घटना भी समाचार माध्यमों में आयी हुई होती है। मीडिया में अपराध समाचारों के विभिन्न स्त्रोत हैं। इन स्त्रोतों को जानने से पहलेअपराध समाचारों के बारे में समझना जरूरी है। अपराध समाचार वे समाचार हैं जो किसी अपराध से संबंधित होते हैं। अपराधी द्वारा अपराध करने की घटना अपराध समाचार है और उसके उपरांत पुलिस द्वारा अपराधी को गिरफ्तार करने की कार्यवाही भी अपराध समाचारों की श्रेणी में ही आती है। मुख्यतया इनमें डकैती, हत्या, लूटपाट, चोरी, अपहरण, झगड़ा, दंगे, आगजनी, यौन-अपराध, बलात्कार, वेश्यावृति, रिश्वतखोरी, गबन, कर-चोरियाँ मिलावट के साथ ही इधर सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के विकास के साथ बहुत बड़ा हिस्सा साइबर क्राइम का भी है। सामाजिक बुराइयों

से सम्बद्ध समाचारों में सती-प्रथा, नर-बलि, दहेज-प्रथा, नारी-उत्पीड़न आदि भी अपराध समाचारों के अंतर्गत ही आते हैं। मीडिया में आये दिन इस तरह के समाचार छाये रहते हैं।

हालांकि अपराध समाचारों के विभिन्न स्त्रोत हैं परन्तु फिर भी यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि अपराध समाचार-संकलन एवं लेखन तलवार की धार से कम नही है। एक भी गलत या अनुचित शब्द या वाक्य शहर की कानून एवं शांति की व्यवस्था को भंग कर सकता हैं। अपराध समाचार के स्त्रोत व्यापक हैं, फिर भी प्रमुख स्त्रोत ये है-

- पुलिस स्टेशन
- चिकित्सालय
- अदालतें
- गुप्तचर संगठन
- भ्रष्टाचार विरोधी पुलिस
- बिक्रीकर, आयकर एवं कस्टम विभाग
- रेलवे स्टेशन
- हवाई अड्डा
- अग्नि-शमन विभाग
- बाढ़ नियंत्रण कक्ष
- पुलिस जनसम्पर्क अधिकारी

इन स्त्रोतों से जानकारी प्राप्त करने के साथ ही अपराध संवाददाता संबंधित मीडिया के लिये उन्हें अपने हिसाब से तैयार कर पाठकों, दर्शकों के लिये तैयार करता है। कई बार इन स्त्रोतों के अलावा भी दूसरे स्त्रोतों से अपराध समाचार हासिल किये जाते हैं, यह अपराध समाचार संवाददाता पर निर्भर करता है कि वह कैसे अपने स्वयं के स्त्रोत विकसित करता है। मीडिया में अपराध समाचार जब आता है तो उसमें अपराध से संबंधित तमाम तथ्यों के साथ ही पुलिस की भूमिका और समाचार से संबंधित विचार भी बहुतेरी बार प्रकाशित-प्रसारित होते हैं। कई बार अपराध समाचारों के स्त्रोत बताये नहीं जाते हैं। ऐसे में समाचारों में 'सूत्रों के अनुसार', 'विश्वसनीय स्त्रोत से' आदि शब्दों का प्रयोग करते हुए समाचार प्रकाशित या प्रसारित किया जाता है।

16.4 मीडिया पुलिस संबंध

पुलिस जो कुछ कार्य करती है, उसकी सूचना व्यापक जन तक मीडिया के जरिये ही पहुंचती है। ऐसे में मीडिया और पुलिस के अन्योन्याश्रित संबंध है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता है। इसी संबंध में मीडिया और पुलिस में विश्वास और सौहार्द कायम रहना भी जरूरी है। सवाल यह है कि मीडिया-पुलिस संबंधों का आधार क्या हो? इस संबंध मे यह कहना जरूरी है कि मीडिया-पुलिस संबंधों का बड़ा आधार विश्वास ही है।अनेक बार मीडिया के लिये खबर देना जरूरी होता है तो कई बार पुलिस के लिये खबर से संबंधित कुछ तथ्यों को व्यापक जन हित में रोकते हुए खोजबीन को आगे बढ़ाना जरूरी होता है। ऐसे में मीडिया के साथ संबंध यदि अच्छे हैं तो इसमें वह पुलिस की मदद ही करती है। कई बार यह भी होता है कि कोई समाचार तथ्यों से परे जाकर सनसनीखेज फैलाने भर के लिये लिखा और प्रकाशित-प्रसारित किया जाता है। ऐसे में पुलिस के साथ-साथ आम जन को भी परेशानी होती है। मीडिया को आचार संहिता के साथ अपनी भूमिका निर्वहन करना जरूरी है तो पुलिस को भी अपनी मर्यादा को ध्यान में रखते हुए आचरण करना होता है। एक समय था जब टीवी चैनलों पर क्राइम शो की एक तरह से बाढ़ आ गयी थी। इसमें अपराध समाचारों को जिस तरह से प्रस्तुत किया जाता

था उसको लेकर संसद तक में आवाजें उठी थी। ऐसा भी नहीं है कि मीडिया ही सभी मामले में दोषी है, बहुत से स्तरों पर पुलिस की भूमिका भी समाचार देने में कोताही करने और असल तथ्यों को छुपाने की होती है। ऐसे में जरूरी यह है कि दोनों ही स्तरों पर यदि संयम और विवेक से काम लेते हुए अपने दायित्वों का निर्वहन किया जाये तो मीडिया-पुलिस संबंधों में विश्वास कायम किया जा सकता है।

16.4.1 मीडिया, पुलिस एवं आचार संहिता

मीडिया, पुलिस एवं आचार संहिता की बात जब की जाती है तो नैतिकता का मुद्दा प्रधान होता है। प्रिंट, इलेक्ट्रोनिक और अब वेब मीडिया के पत्रकारों के लिये आचार संहिता की बहस वर्षों से की जा रही है परन्तु आचार संहिता क्या हो? कैसी हो? क्यों हो? इस पर कोई एक राय अभी तक नहीं बन पायी है। भले ही मीडिया के लिये एक आचार संहिता निर्धारित है, इधर इलेक्ट्रोनिक मीडिया के लिये भी द न्यूज ब्राडकास्ट एसोसिएशन (एनबीए) के साथ ही बहुत से और स्तरों पर आचार संहिता की बात की जाती है परन्तु पत्रकारों को अपनी आचार संहिता स्वयं बनानी होगी। समाज में जो कुछ घट रहा है, उसकी सूचना देना पत्रकारिता का कर्त्तव्य है परन्तु मूल बात यह है कि वह बिना किसी लाग लपेट के दी जाये। यथावत दी जाये और तथ्यपरक दी जाए। अपराध समाचारों के मामले में सूचनाओं का प्रसार तो होता है परन्तु बहुधा देखने में यह भी आता है कि सूचनाएं बेहद बढ़ाचढ़ाकर मसाले मे लपेटकर देने का प्रयास किया जाता है। कुछ इस तरह से कि अपराध बौना हो जाता है या उसकी प्रस्तुति इतनी बड़ी हो जाती है कि उससे भय का माहौल बन जाता हे। खासतौर से इलेक्ट्रोनिक मीडिया में यह बात अधिक है। यह सही हे कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हमें हमारे संविधान ने प्रदान की है परन्तु इतना ही सच यह भी है कि समाचार लिखें जाएँ परन्तु वे समाज में भय का वातावरण बनाने या सनसनी फैलाने के उद्देश्य से न दिये जायें।

पत्रकारिता कर्म का प्रधान उद्देश्य सूचना प्रदान करना ही होता है परन्तु इतना ही सच यह भी है कि सूचनाएँ सभी पक्षों को ध्यान में रखकर संतुलित रूप में प्रदान की जाये। इसी से पत्रकारिता की विश्वसनीयता कायम रहती है। मीडिया की आचार संहिता यही है कि अपराध समाचारों को तथ्यों के साथ बगैर किसी लाग लपेट के प्रस्तुत किया जाये। यह भी कि कहीं किसी समाचार में कोई तथ्य सार्वजनिक हित के लिये छुपाने की जरूरत हो तो उसमें समझदारी से काम लेते हुए सीधेसीधे नहीं लिखते हुए प्रतीकात्मक या संकेतात्मक रूप में लिखा जा सकता है। कई बार शातिर बदमाश, अपराधी मीडिया के जरिये सावधान हो जाते हैं। पुलिस समाचार तो बताती है परन्तु अपराधियों की सतर्कता को ध्यान में रखते हुए कुछेक पहलू बताना नहीं चाहती। ऐसे में मीडिया को पुलिस पर दबाव बनाने की बजाय वास्तविकता को समझते हुए व्यापक जन हित में ऐसे समाचारों के उन तथ्यों से बचना चाहिए जिनसे अपराधी सतर्क हो जाये। इसके साथ ही बलात्कार प्रकरणों में महिला की पहचान छुपाना आवश्यक है।

हमारे समाज की बड़ी विडम्बना अभी भी यही है कि किसी महिला के साथ कोई अपराध होता है तो अपराधी की बजाय महिला को ही शक की नजर से अधिक देखा जाता है। ऐसे में महिला अपराधों के साथ तो इस बात को खासतौर से ध्यान में रखा जाना चाहिए कि जहाँ आवश्यक हो उनकी पहचान छुपायी जाए।

महिलाओं को अश्लील फोन कॉल आज आम अपराध हो गया है। बहुत से मामलों में तो महिलाएँ इस बारे में बताते हुए भी डरती है कि उसे ही गलत माना जायेगा। इस तरह के कॉल करने वाले बहुत से मामलों में तो पुलिस तक इसीलिये शिकायत तक नहीं दर्ज करायी जाती है कि मामले मे बदनामी लड़की की ही होगी। पुलिस में मामला जायेगा तो अखबारबाजी होगी और इससे सब बचना चाहते हैं।

मीडिया और पुलिस दोनों को ही चाहिए कि इस तरह के मामलों में समाचार देते समय महिला के बदनामी के पक्ष को विशेष रूप से ध्यान में रखा जाए और उसका नाम, पहचान नहीं बतलाई जाये। बहुत से मामलों में तो पुलिस में एफआईआर ही इसीलिये दर्ज नहीं की जाती है कि उससे वह मामला मीडिया में चला जायेगा और उसमें बदनामी होगी। ऐसे में इस पहलू पर भी गंभीरता से विचार किये जाने की जरूरत है। मीडिया और पुलिस दोनों को इसमें अपनी भूमिका पक्षकार के हित को ध्यान में रखते हुए निभानी चाहिए।

कई बार यह भी होता है कि अपराधी पुलिस कस्टडी में होता है। पुलिस उससे पूछताछ कर रही होती है। मीडिया की इस बात के लिये चिन्तित रहता है कि पूछताछ से संबंधित कोई भी समाचार छूट नहीं जाये और पुलिस की चिंता इस बात को लेकर होती है कि पूछताछ की जानकारी यदि अपराधी से संबंधित उसके दूसरे साथियों को न पता चले। ऐसे ही अनेक बार न्यायिक प्रक्रिया के चलते बहुत सारी सूचनाएँ बताने के लिये नहीं होती है। यहीं मीडिया की महत्ती भूमिका होती है। मीडिया इसमें पुलिस की मदद कर सकती है, समाचारों के लिये अनावश्यक दबाव नहीं बनाकर।

यह सही है कि लोकतांत्रिक समाज में स्वतंत्र मीडिया के जरिये सूचनाओं का मुक्त प्रवाह लोगों को सशक्त बनाता है। अपराध समाचारों के साथ भी यही है। अपराध समाचार यदि लोगों के समक्ष आएंगे नहीं तो लोग यह जान नहीं पाएंगे कि उनके आस-पास क्या घटित हो रहा है। वे सतर्क नहीं हो पाएंगे। उन्हें बहुत से स्तरों पर गुमराह भी किया जा सकता है।

इसीलिये हमारे संविधान की धारा 19(1) (ए) 'अभिव्यक्ति' की आजादी की गारंटी देती है। सर्वोच्च न्यायालय ने इंडियन एक्सप्रेस बनाम भारत संघ के प्रकरण में अपने फैसले में कहा कि प्रेस की आजादी भी उसी अभिव्यक्ति की आजादी की ही व्यापक गारंटी में शामिल है। इसलिये कि इस देश में 'प्रेस' की आजादी के लिये पृथक दलीलों की जरूरत ही नहीं है परन्तु प्रेस की आजादी का अर्थ प्रेस की असीमित स्वतंत्रता नहीं है। संविधान की धारा 19(2) भारत की सुरक्षा, सार्वभौमिकता, अखंडता, विदेशों से मैत्रीपूर्ण संबंधों, सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता, नैतिकता, न्यायालयों के सम्मान की रक्षा आदि के लिये 'प्रेस' पर तर्क संगत प्रतिबंधों का प्रावधान भी करती है।

प्रेस की आजादी संविधान की इस धारा के अंतर्गत असीमित नहीं है। इसके तहत प्रेस के व्यवहार की न्यायालयीन समीक्षा की जा सकती है। इसीलिये प्रेस से यह अपेक्षा भी की जाती है कि वह अपने कार्य-व्यवहार में शालीनता और संयम बरतने के दायित्व से बंधा हुआ है। प्रेस के अधिकारों के साथ उसके कुछ कर्त्तव्य भी हैं। प्रेस ऐसी सामग्री का मुद्रण, प्रकाशन और प्रसारण नहीं करे जो आपत्तिजनक हो। जिससे विभिन्न कानूनों का उल्लंघन हो। उदाहरणार्थ -

- राजद्रोह (भारतीय दंड संहिता की धारा 124 ए)
- जातिगत घृणा फैलाना (भारतीय दंड संहिता की धारा 153 ए)
- अश्लीलता (भारतीय दंड संहिता की धारा 292)
- धार्मिक भावनाओं पर आघात पहुंचाना (भारतीय दंड संहिता धारा 295 ए)
- मानहानि (भारतीय दंड संहिता धारा 499)
- सार्वजनिक उत्पात अर्थात् विद्रोह भड़काना और राज्य या सार्वजनिक शांति या किसी भी अन्य समुदाय वर्ग के खिलाफ अपराध करना। (धारा 505)
- न्यायालय की मानहानि (न्याय की मानहानि अधिनियम 1971)
- नुकसानदेह विज्ञापन (ड्रग्स एंड मैजिक रेमेडिज आब्जेक्शनेबेल एडवर्टाइजमेंट्स एक्ट 1954)

- सरकारी गोपनीयता का प्रकाशन (भारतीय सरकारी गोपनीयता अधिनियम 1923)
- हानिकारक प्रकाशन (युवा व्यक्ति नुकसानदेह प्रकाशन अधिनियम 1923)

और भी ऐसे विषय हैं जिन पर मीडिया को सयंम रखते हुए समाचारों का प्रकाशनप्रसारण करना होता है परन्तु मूल बात यह भी है कि मीडिया आचार संहिता की पालना इन नियमों के अन्तर्गत करे या फिर स्वयं के विवेक से करें। बहुधा मीडिया समाज के हित में ही कार्य करता है इसलिये उसकी भूमिका व्यापक जन हित में ही होती है परन्तु कई बार असयमित भाषा, तथ्यों उपेक्षा कर जब समाचार प्रकाशित-प्रसारित होते हैं तब मीडिया को स्वयं के अंकुश पर सोचने की जरूरत होती है।

महात्मा गाँधी ने कहा था, 'जिस प्रकार निरंकुश पानी का प्रवाह गांव के गांव डूबो देता है और फसल को नष्ट कर देता है उसी प्रकार निरंकुश कलम का प्रवाह भी नाश की सृष्टि करता है।' सवाल यह है कि निरंकुश कलम को कैसे रोका जाये। इस संबंध में महात्मा गाँधी के ही शब्दों में, 'यदि अंकुश बाहर से आता है तो वह निरंकुशता से अधिक विषैला सिद्ध होता है। अंकुश अंदर का ही लाभदायक हो सकता है।' अर्थ यह है कि पत्रकार और पत्रकारिता में स्वयं की ईमानदारी और स्वयं इस संबंध में पुलिस के लिये भी जरूरी यह है कि वह जनता के भले के लिये, उनकी सुरक्षा के लिये कार्य करे। मीडिया को सूचना देते हुए संयम से काम लें और अपनी जवाबदेही स्वयं निर्धारित करते हुए भूमिका का निर्वहन करें तो बहुत सी समस्याओं का समाधान स्वत: हो जायेगा।

मीडिया की ही तरह पुलिस की भी आचार संहिता जरूरी है। प्राय: यह देखा गया है कि किसी अपराध घटना के समाचार में उसकी जांच करने वाले, उसका पता लगाने वाले, उस घटना के लिये निर्देश देने वालों के इतने अधिक नाम दिये जाते है कि घटना गौण हो जाती है, व्यक्ति प्रधान हो जाता है। ऐसे ही अनेक बार किसी बड़ी अपराध घटना के अंतर्गत कई बार पुलिस की बयानबाजी भी जोर-शोर से होती है। खासतौर से अपराधियों को पकड़ने के लिये कहा जाता है, 'अपराधियों को चौबीस घंटे के अंदर-अंदर ढूंढ लिया जायेगा।' 'अपराधी कहीं भी हो, उन्हें छोड़ा नहीं जायेगा, 'अपराधी को पाताल से लाकर भी हम ढूंढ निकालेंगे' आदि-आदि। ऐसे में जब अपराध घटना घटित होती है तब तो ऐसे जुमले सुर्खियां बन जाते हैं परन्तु जब लम्बे समय तक अपराध का खुलासा नहीं होता है तो फिर ऐसे जुमले पुलिस की छवि को नुकसान भी पहुंचाते हैं। ऐसे में जरूरी यही है कि पुलिस अपराध घटना के संबंध में संतुलित जवाब दे। अपराध नियंत्रण के लिये अपनी प्रतिबद्धता जताये परन्तु बढ़ चढ़कर दावे नहीं करे। इसके साथ ही पुलिस की बड़ी आचार संहिता यह भी होनी चाहिए कि वह स्वयं के प्रचार से बचे। बहुधा होता उलटा है। अपराध समाचारों के साथ ही पुलिस के अधिकारी अपने नाम का भी जोर-शोर से प्रचार करने में रत रहते हैं। शायद वह यह भूल जाते हैं कि अपराध कहीं होता है, उसको रोकना उसका नियंत्रण और जनता को सुरक्षा प्रदान करना उनका कर्त्तव्य है न कि अहसान। ठीक वैसे ही जैसे आम व्यक्ति अपनी नौकरी करता है पुलिस की भी यह नौकरी ही है कि वह समाज में अपराध नियंत्रण, अपराधी को पकड़ने के लिये कार्य करे। ऐसे में इसके लिये हर बार प्रशंसा प्राप्त करने, अपने नाम से उसे प्रचारित करने से उसे बचना चाहिए। जिस प्रकार मीडिया से आचार संहिता की अपेक्षा रखी जाती है उसी प्रकार पुलिस को भी अपनी एक आचार संहिता रखनी चाहिए। इस आचार संहिता के अंतर्गत स्वयं के प्रचार से मुक्त रहते हुए समय पर संतुलित तथ्य सहित सूचना मीडिया को दी जानी चाहिए। साथ ही ऐसा कोई प्रयास भी नहीं करना चाहिएजिससे कि किसी घटना विशेष में निहित स्वार्थ के कारण उसके तथ्य छुपाएँ जाएँ। प्राथमिकी दर्ज करने से लेकर आपराधिक प्रकरण की छान-बीन से संबंधित तमाम तथ्यों को मीडिया को बताते समय पूर्ण ईमानदारी यदि बरती जाती है तो मीडिया की भूमिका भी सकारात्मक रहती है। मीडिया-पुलिस संबंधों का बड़ा आधार विश्वास है। यह विश्वास

दोनों ही स्तर पर यदि कायम रहता है और इसमें ईमानदारी रहती है तो उसकी परिणति सदा अच्छी ही होती है।

हाल की एक घटना की याद आ रही है। अभी बहुत समय नहीं हुआ, जयपुर पुलिस आयुक्तालय ने शराब पीकर वाहन चलाने वालों के खिलाफ अभियान चलाया था। पुलिस आयुक्त के निर्देश पर शराब पीकर वाहन चलाने वालों को पकड़कर उन्हें न्यायालय में पेश किया गया। न्यायालय ने शराब पीकर वाहन चलाने को संगीन अपराध मानते हुए पहली बार जुर्माने के साथ-साथ आरोपियों को 6-6 माह के कारावास की सजा भी सुनायी। इससे पहले शराब पीकर वाहन चलाने वालों को जुर्माना करके छोड़ दिया जाता था, इस लिहाज से यह बड़ी घटना थी। मीडिया के जरिये इस समाचार को व्यापक पाठक वर्ग तक पहुंचना इसलिये जरूरी माना गया कि इससे शराब पीकर वाहन चलाने वाले दूसरे लोगों को सबक मिले और वे शराब पीकर वाहन चलाने से बाज आए। समाचार जब तैयार किया गया तो उसमें आरोपियों के नाम नहीं दिये गये। मीडिया से इस संबंध में पूछताछ हुई तो बताया गया कि इसके पीछे कानूनी कारण रहा है। मीडिया के मित्रों ने इस बात को समझा और यह समाचार जब व्यापक स्तर पर प्रकाशित हुआ तो इसका एक संदेश भी गया। मीडिया-पुलिस के संबंधों का यही बड़ा आधार होना चाहिए जिसमें जन सरोकार प्रमुख हो।

16.4.2 क्राइम शो

समाचार चैनलों की बीच जब टीआरपी बढ़ाने की होड़ मची हुई थी तभी बहुत से चैनलों द्वारा अपराधों से संबंधित विशेष कार्यक्रमों का प्रसारण भी प्रारंभ हुआ। वर्ष 2003 के दौरान बहुत से चैनलों द्वारा अपराधों पर आधारित विशेष शो प्रारंभ हुए। मसलन जी न्यूज ने पहली बार 'क्राइम फाइल', 'क्राइम रिपोर्टर', स्टार न्यूज ने 'रेड अलर्ट', 'सनसनी' एन.डी.टी.वी. इण्डिया ने 'एफ.आई.आर., 'डायल 100' 'आज तक' ने 'जुर्म' 'वरदात' 'हत्यारा कौन', सहारा समय ने 'हैलो कंट्रोल रूम', 'इंडिया टीवी ने 'फरार कौन', 'हथकड़ी' और भी बहुत से चैनलों ने इसी तरह के और भी बहुत से नाम से अपने विशेष क्राइम शो का प्रसारण प्रारंभ किया। बाकायदा इसके लिये जोर-शोर से हर चैनल ने अपने तरह से प्रचार भी किया। पूरी तरह से अपराध केन्द्रित इन कार्यक्रमों की प्रस्तुति का ढंग, अपराध से संबंधित पहलुओं की गहराई में जाकर पड़ताल करने और अपराधदुनिया से आम जन को रू-ब-रू कराने से संबंधित इन कार्यक्रमों ने थोड़े समय में ही लोकप्रियता प्राप्त कर ली। अपराध से संबंधित इन टीवी कार्यक्रमों की टीआरपी रेट भी तेजी से बढ़ने लगी। इसे देखते हुए ही दूसरे चैनलों द्वारा भी नये-नये क्राइम शोज प्रारंभ कर दिये गये।

अपराध समाचारों की प्रस्तुति के अंतर्गत टीवी चैनलों ने वास्तविक घटना के साथ ही उसमें मसाला डालते हुए विशेष संवाद, कैमरे की करामात के साथ ही प्रस्तुति करने के खास तरीकों से टीवी दर्शकों को लुभाने का प्रयास किया। अपराधों के नाट्य रूपानतरण के तहत इन क्राइम शोज की खास बात यह भी है कि इनमें आपराधिक घटनाओं के साथ ही आपराधिक चरित्रों को फिर से गढ़ा गया। सनसनीखेज औ रोंगेटे खड़े कर देने वाले अंदाज में। किसी हॉरर फिल्म की तर्ज पर हुई इनकी प्रस्तुति से अपराध समाचारों का जो टीवी रूपान्तरण हुआ उसमें आपराधिक घटनाओं और उसमें निहित सोच की बजाय लोगों को अधिक से अधिक अपने चैनल से जोड़ने की मंशा थी। ऐसे में इस तरह के क्राइम शो का सामाजिक स्तर पर विरोध भी हुआ।

वास्तव में टीवी चैनलों द्वारा प्रस्तुत क्राइम शो मीडिया और पुलिस से संबंधित ऐसा मुद्दा है जिसके बहुत से सामाजिक आयाम हैं। उदाहरण के लिए यह सही है कि इस तरह के अपराध कार्यक्रमों के अंतर्गत बहुत से स्तर पर अपराध के खौफनाक मंजर को आम जन के समक्ष रखा जाता है। अपराध

की उस दुनिया से आम जन को रु-ब-रू कराया जाता है जिसके बारे में हम सोच ही नहीं सकते परन्तु इतना ही सच यह भी है कि इस तरह के अपराध कार्यक्रमों से अपराध करने के नये-नये तरीकों के बारे में भी जानकारियों का बड़े स्तर पर खुलासा हुआ। बाद में बहुत से ऐसे अपराध भी मीडिया के सामने आये जिनमें अपराध करने के किसी पुराने तरीके की हुबहु नकल करते हुए दूसरे अपराध किये गये। यानी अपराधियों ने इस तरह के चैनलों को अपने लिए एक प्रकार से गाईड के रूप में भी प्रयोग किया। दूसरा नकारात्मक पहलू इस तरह के अपराध कार्यक्रमों का यह भी हुआ कि समाज में दहशत और खौफ का माहौल भी फैला। जितना अपराध हुआ, उससे कई गुना बढ़ाकर उसका खौफ जब दृश्य रूपान्तरण में आम जन में भय का माहौल भी बना।

पुलिस-मीडिया संबंधों के तहत इन अपराध कार्यक्रमों की वकालात करते हुए इन्हें प्रस्तुत करने वालों का तर्क यह भी रहा है कि इन कार्यक्रमों से आम जन में जागरूकता आयी। अपराधों के बारे में सूचनाएं मिलने से संबंधित अपराध के बारे सतर्क होने से अपराध कम हुए यह भी तर्क दिया गया कि इस तरह के अपराध कार्यक्रमों से बहुत से अपराधों का खुलासा हुआ और अपराधियों की धरपकड़ भी हुई।

फिर भी, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि क्राइम शोज की शुरुआत से अपराध समाचारों की प्रस्तुति का एक नया ढंग टीवी चैनलों के जरिये आम लोगों के सामने आया। बहुत से स्तरों पर इन शोज का उद्देश्य लोकप्रियता प्राप्त करना और टीआरपी रेट बढ़ाना ही रहा है परन्तु मीडिया कवरेज के हिसाब से देखें तो सहज यह कहा जा सकता है कि अपराध कार्यक्रमों से बहुत से आपराधिक प्रकरण तो खुले परन्तु उन्हें प्रस्तुत करने के पीछे की सोच में अपराध के समाजशास्त्र, अपराध की पृष्ठभूमि की बजाय उन्हें एक सनसनीखेज घटना के रूप में प्रस्तुत करना ही मूल उद्देश्य रहा। यही कारण भी रहा कि समाज पर इन कार्यक्रमों के नकारात्मक प्रभाव को देखते हुए और व्यापक स्तर पर हुई इनकी आलोचना को ध्यान में रखते हुए कुछ चैनलों ने अपने अपराध के ऐसे कार्यक्रमों को बंद करने की भी घोषणा की। हालांकि अभी भी बहुत से चैनल इस तरह के शोज का प्रसारण करते हैं परन्तु एक दर्शक वर्ग तक ही इनका आकर्षण रह गया है।

भले ही इस तरह के कार्यक्रमों को मीडिया की दृष्टि से देखा जाये, चूंकि इलेक्ट्रोनिक मीडिया में इन्हें न्यूज की तरह ही प्रस्तुत किया जाता रहा है। पुलिस की भूमिका से ही यह सब संबद्ध रहे हैं परन्तु रोचक, सनसनीखेज के साथ टीआरपी बढ़ाने के उद्देश्य के चलते यह भी कहा जा सकता है कि पत्रकारिता के संदर्भ में इनकी खास कोई भूमिका नहीं मानी जा सकती। इसी आधार पर मीडया-पुलिस संबंधों के विश्लेषण के लिहाज से इन कार्यक्रमों की खास कोई उपादेयता भी नहीं मानी जा सकती है। यद्यपि अपराध समाचारों के एक निराले ढंग के रूप में इन्हें जरूर याद किया जाता है और आगे भी याद किया जाता रहेगा।

16.4.3 पुलिस-मीडिया संवाद

सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के इस दौर में यह जरूरी है कि सूचना तंत्र और मीडिया के साथ के संबंधों को अधिक पारदर्शी और मजबूत बनाया जाये। इधर पिछले कुछ समय के दौरान बढ़ती आबादी के साथ ही अपराधों का ग्राफ भी बढ़ा है। स्वाभाविक ही है कि मीडिया में भी अपराध समाचार ही प्रमुखता से प्रचारित-प्रसारित किये जाते हैं। ऐसे में पुलिस की भूमिका केवल अपराध नियंत्रण तक ही सीमित नहीं रह गयी है। पुलिस की बड़ी भूमिका अपराधों को रोके जाने के साथ ही आपराधिक घटना की संतुलित सूचना का प्रसार भी है। मीडिया को पुलिस से यह अपेक्षा रहती है कि आपराधिक घटना के बारे में पुलिस द्वारा सूचना त्वरित दी जाये। इसमें कोई हर्ज नहीं है। पुलिस द्वारा मीडिया को त्वरित

आपराधिक सूचना दी जा सकती है, इस संबंध में यह जरूर ध्यान रखने की बात है कि सूचना सही और संतुलित हो। पुलिस के बयान की जरूरत है तो उसमें किसी तरह का विलम्ब नहीं हो ताकि मीडिया में सूचना के संबंध में कोई भ्रामक स्थिति नहीं बने।

बहुधा यह देखा जाता है कि पुलिस सूचना तो दे देती है परन्तु 'अपराध की गुत्थी को त्वरित सुलझानें' और 'अपराधी को पाताल से भी ढूंढ ले आनें' जैसे दावे भी कर दिये जाते हैं। तात्कालिक रूप में तो पुलिस के प्रति इससे लोगों का विश्वास जमता है परन्तु इस तरह के दावे जन अपेक्षाओं को तीव्रतम कर देने वाले भी होते हैं। निर्धारित समय के दावे में अपराधी पकड़े नहीं जाने या फिर अपराध की गुत्थी कुछ समय बाद नहीं सुलझे जाने की स्थिति में इस तरह के दावों में लेने के देने भी पड़ जाते हैं। अनेक बार मीडिया तब उन दावों को ही समाचार बनाते हुए पुलिस की बदनामी करता है। ऐसे में जरूरी यही है कि पुलिस अपराध की सूचना तो मीडिया को त्वरित दें परन्तु साथ ही इस बात का भी ध्यान रखे कि सूचना के साथ किसी तरह के बढ़ा-चढ़ा कर दावे नहीं किये जाये। पुलिस का कार्य है-खोजबीन करना। अपराधी को ढूंढ निकालना और अपराध की गुत्थी सुलझाना सो बयान देते समय भी इसी तरह की संतुलित प्रतिक्रिया दी जानी चाहिये। इस बात को सदा याद रखा जाना चाहिये कि जन विश्वास का बड़ा आधार सच्चाई और ईमानदार प्रयास होता है। इसी पर अधिक जोर रहना चाहिये। ध्यान यह भी रखा जाना चाहिये कि हम जो भी बोलें उसका कोई संदर्भ, उसका कोई उद्देश्य और उसका कोई आधार होना चाहिये। केवल बयान देने के लिये ही बयान नहीं दिया जाना चाहिये। यह बात इसलिये कि जुबान से निकला हुआ तीर कभी वापस नहीं होता है। यह भी सही नहीं है कि आपराधिक घटना के बारे में मीडिया के पूछे जाने पर कोई जानकारी ही नहीं दी जाये क्योंकि कई बार सूचना नहीं दिये जाने से भी गलतफहमियां और भ्रम की स्थितियां बन जाती है। इसीलिये मीडिया-पुलिस संवाद सभी स्तरों पर जरूरी है। मीडिया-पुलिस के सीधे और सतत संवाद से कानून-व्यवस्था को कायम रखे जाने में भी सभी स्तरों पर मदद मिलती है। समाज का हित भी इसी में निहित है कि पुलिस और मीडिया के आपसी रिश्ते सकारात्मक और सोहार्दपूर्वक रहें।

मीडिया का भी यह दायित्व है कि समाचारों को वह व्यापक समाज हित में प्रकाशित-प्रसारित करे। बहुत बार यह होता है कि अपराध की कोई सूचना या समाचार सनसनी फैलाने वाली होती है। ऐसे में मीडिया को यह ध्यान रखे जाने की जरूरत है उसका प्रकाशन-प्रसारण इस तरह से किया जाये कि समाज में उत्तेजना और पागलपन नहीं फैले। इस तरह के समाचारों को प्रकाशित और प्रदर्शित करने से पहले उसकी लोगों में होने वाली प्रतिक्रिया पर भी विचार किया जाये। कई बार आधे-अधूरे समाचार या फिर कोई ऐसे समाचार जिनसे सामाजिक सोहार्द्र बिगड़ने वाला होता है और बेवजह तनाव फैलने की आशंका होती है, उनसे मीडिया को बचना चाहिये। यह सही है कि सूचनाओं को रोका नहीं जा सकता। रोका जाना भी नहीं चाहिये परन्तु सूचना को व्यापक सामाजिक हित के अनुरूप तो किया ही जा सकता है। मीडिया को इसी बारे में विचार किये जाने की जरूरत है। स्वस्थ पत्रकारिता का बड़ा उद्देश्य यही होता है कि देश और समाज हित में खबरों के प्रकाशन-प्रसारण में पत्रकारिता की मर्यादा का भी ध्यान रखा जाये। सनसनीखेज, लुभावनी, चटपटी खबरों से तात्कालिक तो पाठकों को, दर्शकों को प्रभावित किया जा सकता है परन्तु दीर्घकाल तक उनकी उम्र नहीं होती है। बल्कि कहें कि स्वयं मीडिया की छवि भी इससे खराब ही होती है। यह बात भी ध्यान रखे जाने की है कि किसी दुर्भावना से पत्रकारिता नहीं की जाये। दुर्भावना या पूर्वाग्रह से बचना पुलिस-मीडिया संवाद की सबसे बड़ी आवश्यकता है। यह बात मीडिया के लिये जितनी लाग होती है उतनी ही पुलिस के लिये भी लागू होती है।

16.5 अपराध समाचार और कानून

अपराध समाचारों का बड़ा आधार उससे संबंध कानून हैं। अलग-अलग अपराधों के लिये अलग-अलग दंड निर्धारित है। अपराध जब होता है तो उसके संबंध मे पुलिस सबसे पहले उस अपराध की गंभीरता को देखते हुए भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत निर्धारित कानून के तहत उसे अपने यहां दर्ज करती है। ऐसे में तमाम प्रकार के अपराधों के समाचारों को लिखने वाला यदि उससे संबंधित कानून की थोड़ी-बहुत भी जानकारी रखता है तो उसे अपराध समाचार लिखे जाने और अपराध की प्रवृति को समझे जाने में खासा मदद मिलती है।

प्राय अपराध समाचारों के स्त्रोत अपराध संबंधित धारा के बारे में ही जानकारी देते हैं। ऐसे में कानूनकी धाराओं की जानकारी से ही अपराध के बारे में जानकारी मिलती है। वैसे भी अपराध समाचारों का लेखन चुनौतीपूर्ण होता है उसे लिखे जाने या प्रसारित किये जाने में थोड़ी सी भी असावधानी बड़े नुकसान की संवाहक हो सकती है। ऐसे में जरूरी यह है कि अपराध समाचार से संबंधित कानून की मीडिया को जानकारी हो।

भारतीय दंड संहिता ब्रिटिश काल में देश में सन् 1862 में लागू हुई थी। इसके बाद समय-समय पर उसमें संशोधन भी होते रहे है। आजादी के बाद भारतीय दंड संहिता में विशेष रूप से देश की स्थितियों-परिस्थितियों के हिसाब से परिवर्तन हुए पाकिस्तान और बांग्लादेश ने भी भारतीय दंड संहिता को ही लागू किया। लगभग इसी रूप में यह विधान तत्कालीन अन्य ब्रिटिश उपनिवेशों बर्मा, श्रीलंका, मलेशिया, सिंगापुर, ब्रुनेई आदि में भी लागू की गयी थी।

वर्तमान में भारतीय दंड संहिता (Indian Penal Code,IPC) भारत के अंदर (जम्मू एवं कश्मीर को छोड़कर) भारत के किसी भी नागरिक द्वारा किये गये कुछ अपराधों की परिभाषा एवं दंड का प्रावधान करती है। जम्मू एंव कश्मीर में इसे रणबीर दंड संहिता (RPC) के नाम से जाना जाता है। गौरतलब है कि यह संहिता भारतीय सेना पर लागू नहीं होती है। जो भी अपराध होते हैं, उन सभी को उनकी प्रवृति के हिसाब से भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत निर्धारित करते हुए दंड का प्रावधान किया गया है। पुलिस भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत ही किसी व्यक्ति के अपराध को दर्ज कर गिरफ्तार करती है और बाद में उसे कोर्ट में प्रमाणित करती है।

किसी भी तरह की मारपीट, हत्या, मानसिक आघात के मामले फौजदारी मुकदमें के अंतर्गत दर्ज होते हैं। फौजदारी या दांडिक अवमानना से तात्पर्य ऐसे प्रकाशन से है, जो न्याय प्रकाशन में बाधा पहुँचाता हो या उसकी बाधा पहुँचाने की प्रवृति हो जिससे न्यायालय की गरिमा और प्रतिष्ठा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो। न्यायालय की अवमानना का दोषी पाए जाने पर छः माह की कैद या दो हजार रूपए जुर्माना अथवा दोनों सजाएँ दी जा सकती हैं। यदि दंडित व्यक्ति न्यायालय से क्षमायाचना करता है तो उसे क्षमादान अथवा दंड में कुछ छूट दी जा सकती है।

16.6 साइबर क्राइम, पुलिस और मीडिया

वर्तमान समय सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का है। इन्टरनेट ने सुदूर देशों की दूरियों को कम कर दिया है और तमाम विश्व अब एक छोटे से गांव में तब्दील हो गया है, ऐसा माना जा रहा है। ग्लोबल विलेज की अवधारणा यही है। यह सच है कि हर समय और काल में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के आविष्कारों का उद्देश्य समाज की उन्नति ही रहा है परन्तु इतना ही सच यह भी है कि प्रौद्योगिकी का आधार उसका उपयोग है। कब और किस तरह से वह समाज के लिये हितकर या अहितकर हो जाती है, यह कहना अत्यन्त कठिन है। मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ कहा जाता है परन्तु इधर इन्टरनेट

ने जनतंत्र के चौथे स्तम्भ के साथ खड़े रहने की दावेदारी पेश कर एक नयी अवधारणा को जन्म दिया है। समाचार माध्यमों का बड़ा आधार चूंकि आज इन्टरनेट ही है, ऐसे में इसके इस दावे को गलत भी नहीं कहा जा सकता। परन्तु विचार करने की बात यह भी है कि समाचार माध्यमों के संदर्भ में क्या सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के अंतर्गत इन्टरनेट, मोबाईल एमएमएस, मैसेज, ट्वीटर, ब्लॉग माने तमाम सोशल मीडिया आदर्शोन्मुख समाज के निर्माण और प्रजातंत्र का सही अर्थ में पोषक है!

इसाक असिमोव के संपादन में प्रकाशित पुस्तक 'लिविंग इन द यूचर' में इयान ग्राहम एक जगह लिखते हैं, 'कम्प्यूटर, संचार प्रणाली और कृत्रिम बुद्धिमता बेशक इतने लाभप्रद हैं कि कुछ सालों पहले तक उनकी कल्पना तक नहीं की जा सकती थी। किन्तु किसी भी दूसरे उपकरण की तरह व्यक्ति को नुकसान पहुंचाने के लिये उनका भी गलत उपयोग हो सकता है। इसलिये यह हमारे हित में है कि प्रौद्योगिकीय प्रगति के साथ-साथ व्यक्ति की निजता तथा स्वतंत्रता की सुरक्षा के उपाय भी किए जाएं...। संक्षेप में प्रौद्योगिकी हमारी सेवक होनी चाहिए, स्वामी नहीं।

उनके इस लिखे के परिप्रेक्ष्य में ही कहें तो, सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के विकास के साथ ही इधर समाज में साईबर क्राइम भी तेजी से बढ़ रहे हैं। साईबर क्राइम यानी इन्टरनेट पर धमकी भरे ई-मेल, एस.एम.एस., हैकिंग, अश्लील एस.एम.एस., सोसल साईट पर अश्लील फोटो लोड करना, ई-शॉपिंग फेस बुक, ट्वीटर जैसी साईट्स पर अवांछित टिप्पणियां, अश्लील संदेश आदि डालना आदि। इस तरह के साइबर अपराधों के मामले में गौर करने की बात यह है कि हमारा देश विश्व का पाँचवां बड़ा देश बन गया है। यानी जिन पांच बड़े देशों में साईबर अपराध अधिक होते हैं, उनमें हिन्दुस्तान भी एक है।

देश में वर्ष 1995 के प्रारंभ होने के बाद से ही इन्टरनेट का प्रसार तेजी से बढ़ा है। इसके साथ ही इन्टरनेट से संबंधित अपराधों का ग्राफ भी बढ़ा है। अश्लील विषय-वस्तु के जरिये किसी की छवि को खराब करना, फेसबुक, ट्वीटर आदि पर अश्लील चित्र, सामग्री डालना, आपत्तिजनक सामग्री अपलोड करना और अश्लील फिल्मों का प्रदर्शन। इसके अलावा इन्टरनेट से आर्थिक ई-अपराध भी पिछले कुछ समय के दौरान तेजी से बढ़े हैं। यानीकिसी के पासवर्ड हैक करके उसके बैंक खाते के रूपये अपने यहां स्थानान्तरित करना। लुभावने प्रलोभन में फंसाकर आईडी आदि प्राप्त कर ठगी करना आदि। अमेरिका में तो 'हेवन्स गेट' जैसे स्वयंभू धार्मिक समूहों की कई वेबसाईटें अपने उन्मादपूर्ण विचारों से आत्महत्याओं के लिए लोगों को प्रेरित करने जैसा कार्य कर रही है। सानडिएगो में 1997 में इस वेबसाईट पर 'हेवन्स गेट' पंथ के प्रमुख मार्शल एपलवाइट के आदेश पर अमेरिका के 39 बुद्धिजीवियों ने अपनी देह का त्याग कर दिया था। अश्लील वेबसाईटों का हाल तो यह है कि बच्चे इसके सर्वाधिक शिकार हो अपराधों की अंधी खाई में धकेले जा रहे हैं। साइबर डिफेमेशन के चलते आत्महत्याओं के मामलों के साथ ही हिंसा और दूसरे अपराध के मामले भी सामने आ रहे हैं। एक मोटे अनुमान के अनुसार तीस फीसदी बच्चे साईबर अपराध के शिकार होते हैं।

इसके अलावा साईबर क्राइम का प्रमुख पहलू है-कॉपीराईट के उल्लंघन का। इन्टरनेट ने इसे बहुत आसान कर दिया है। तमाम तरह की फिल्मों, गीतों, सामग्री की कॉपी इन्टरनेट से आम बात है। यही नहीं कम्प्यूटर के मूल सॉफटवेयरों की प्राइवेसी निकाल उसे कम दामों में पहुंचाने के अपराध भी बढ़ रहे हैं।

साईबर क्राइम के संबंध विडम्बना अभी भी यह है कि इसके बारे में लोगों में जागरूकता नहीं है। बहुत से स्तरों पर तो अभी तक यह भी पता नहीं है कि पुलिस की उसमें मदद की भूमिका किस तरह से है। भारतीय संदर्भ में साईबर क्राइम को बेहद गंभीरता से लिया गया है। देश की संसद ने साईबर

अपराधों की रोकथाम के लिये सूचना प्रौद्योगिकी विधेयक 2000 को 17 मई को अपनी स्वीकृति दे दी थी। राष्ट्रपति की स्वीकृति के बाद आज यह देश में कानून के रूप में लागू है। कुल 15 खंडों वाले इस कानून में साईबर अपराधों को रोके जाने के लिये भी बहुत से प्रावधान उल्लेखित हैं। मीडिया में चूंकि साईबर अपराधों की जागरूकता के बारे में अभी बहुत अधिक वातावरण बना नहीं है, इसके साथ ही पुलिस की भूमिका के बारे में भी प्रभावी प्रचार नहीं हुआ है, इसलिये इस संबंध में व्यापक स्तर पर वातावरण निर्मित किये जाने की आवश्यकता है।

यह विचारणीय है कि वर्ष 2000 में आए आईटी एक्ट में साइबर क्राइम की विवेचना का अधिकार पुलिस में डिप्टी एस.पी. को दिया गया था परन्तु आईटी एक्ट के वर्ष 2008 में आए संशोधन में पुलिस निरीक्षक को भी तफ्तीश के लिये अधिकृत किया गया है। यानी कहीं कोई साईबर अपराध होता है तो संबंधित क्षेत्र की पुलिस के निरीक्षक को भी यह अधिकार है कि वह इस संबंध मे मामला दर्ज कर जांच प्रारंभ करे। सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम की धारा 79 सर्विस प्रोवाइडर की जिम्मेदारी तय करती है। इसके अंतर्गत किसी साईट में आपत्तिजनक सामग्री यदि कहने के बाद भी नहीं हटायी जाती है उसे तीन साल तक की सजा हो सकती है। अधिनियम में नया जो संशोधन किया गया है वह इसलिये भी महत्वपूर्ण है कि उसमें मोबाइल तथा व्यक्तिगत डिजिटल असिस्टेंस को कम्युनिकेशन का साधन माना गया है। इसके अंतर्गत मोबाईल फोन के जरिये होने वाले अपराधों को भी साइबर क्राइम माना गया है।

16.7 अपराध समाचार, विचार और मीडिया

बढ़ती जनसंख्या के साथ बेतहाशा फैलती बेरोजगारी और बहुत सी सामाजिक परिस्थितियों, विसंगतियां, विडम्बनाओं के कारण अपराधों में बढ़ोतरी तो स्वाभाविक रूप से हुई है परन्तु अपराध समाचारों में इस अनुपात में केवल सूचनाओं का ही विस्तार हुआ है। अपराध से संबंधित सूचनाएं ही समाचार पत्रों, इलेक्ट्रोनिक मीडिया और वेब मीडिया की सुर्खियांहोती है।

प्रश्न यह है कि क्या सूचनाओं का समाचार कहा जाये? अपराध समाचारों में कथ्य या विचार कहां हैं, इस पर भी तो विचार किया जाना चाहिये। विचार संपन्न समाचार ही पाठकों के लिये अधिक उपयोगी है। कई बार समाचार भ्रमित करते हैं, उदासीन करते हैं और जो कुछ हो रहा है उसके प्रति एक निराश्रय भाव भी पैदा करते हैं। अखबारों में, टीवी चैनलों में जिस तरह से अपराधों को बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया जाता है उससे आम व्यक्ति व्यवस्था के प्रति पलायन की सोचता है। वह चाहकर भी कुछ करने के लिये अपने को तैयार नहीं कर पाता है जबकि विचार व्यक्ति को जगाते हैं। समाचारों में कथ्य और विचार होंगे तो व्यक्ति उसमें अपनी जिम्मेदारी भी अनुभूत करेगा। और विचार निर्माण पूरी एक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के तहत व्यक्ति जागरूक होता है, जो कुछ हो रहा है और जो कुछ हो चुका होता है, उसमें अपनी भूमिका वह तलाशता है। समाचारों में विचार सतर्क जागरूकता के लिये बेहद जरूरी है।

जब यह कहा जाता है कि अपराध तेजी से बढ़ रहे हैं, अब कहीं कोई सुरक्षित नहीं है तो यह एक जानकारी भर नहीं है, इससे संबद्ध विचार भी आने चाहिए। अपराध क्यों बढ़े हैं? आम आदमी की इसमें कहां भूमिका हैं। हम क्या ऐसा करें कि अपराधों को रोका जा सके। निश्चित ही इसमे पत्रकारीय दायित्व बहुत बड़ा है। केवल अपराध को पाठकों और दर्शकों के समक्ष लाना ही पत्रकारीय दायित्व नहीं है, पत्रकारिता का दायित्व यह भी है कि स्वयं वह अपराध समाचारों को देने के प्रति किस उद्देश्य से कार्य कर रहा है। समाचार देना ही उसकी जिम्मेदारी नहीं है बल्कि उस समाचार के साथ कुछ ऐसा

कथ्य, सोच देना भी उसका दायित्व है जिससे समाज जागरूक हों और जो हो रहा है, वह गलत है तो उसके लिये अपने दायित्व को समझते हुए सुधार के लिये कोई प्रयास करे।

यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि पत्रकार स्वयं कितना पढ़ता है? प्रबुद्ध पत्रकारों जोर सदा ही इस बात पर रहता है कि उनका अध्ययन विस्तृत और निरंतर हो। इसलिये कि इससे वह देश और दुनिया में जो घट रहा है, उसके संदर्भ में स्वयं जो लिख रहा है उसकी वस्तुपरक समीक्षा कर सके। अपराध समाचारों के लिये तो यह बेहद जरूरी भी है। कहीं कोई अपराध घटित होता है, उसकी सूचना देना तो खैर पत्रकारिता का धर्म है ही परन्तु यदि पत्रकार स्वयं जागरूक है और पढ़ता है तो वह उस पराध के सूक्ष्म पहलुओं को विचार के साथ पाठकों, दर्शकों के समक्ष रख सकता है। ऐसे में कई बार अपराध समाचार लिखे जाने के साथ ही अपने इस कर्म में अप्रत्यक्ष पत्रकार पुलिस कीमदद भी कर देता है। पुलिस की क्यों कहें ऐसे में वह जनता के प्रति लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ की भूमिका का भी निर्वहन कर रहा होता है।

मीडियाकर्मियों को चाहिये कि वे समाज के हित को देखते हुए किसी भी ऐसे समाचार को जो समाज में उत्तेजना या सनसनी पैदा करे, उसे प्रकाशित या प्रदर्शित करने से बचें। ऐसा करके ही वह देश को कमजोर होने से बचा सकते हैं। कहें इसी से मीडिया पत्रकारिता की वांछित स्वतंत्रता, अपनी निष्पक्षता और मर्यादा को बरकरार रख सकता है। यहां ध्यान रखने की बात यह भी है कि किसी अपराध समाचार से सनसनी फैलाने चटपटी बनाकर उसे तथ्यरहित करने वाली खबरों की उस ज्यादा नहीं होती। पुलिस विभाग के साथ-साथ जरूरी यह भी है कि मीडिया संस्थानों में कार्यरत पत्रकार व संपादक आपराधिक मामलों से जुड़े कानूनों की न्याय संगत आधार पर सटीक जानकारी रखे ताकि जो समाचार प्रकाशित हो वें सही तथ्यों के साथ प्रकाशित और प्रसारित किये जा सकें।

मैकलुहान ने कभी कहा था, 'मीडिया इज द मैसेज'। समाचार किसी प्रकार का संदेश नहीं है। मीडिया उसे किस तरह से प्रस्तुत करता है, वह संदेश है। अपराध समाचार, विचार एवं मीडिया के संदर्भ में इस कथन की गंभीरता में भी जाने की आज सर्वाधिक जरूरत है।

16.8 सारांश

मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ कहा जाता है। इसलिये कि यही वह स्तम्भ है जो लोकतंत्र की जड़ों को सींचकर उसे सदा हरा रखता है। माने आम व्यक्ति को सूचना संपन्न करने के साथ ही उसे अपने अधिकारों और दायित्वों के प्रति जागरूक करने का कार्य मीडिया ही करता है। इसी प्रकार पुलिस की भूमिका भी समाज में बेहद महत्वपूर्ण है। पुलिस वह सुरक्षा बल है जिसका उपयोग किसी भी देश की आन्तरिक नागरिक सुरक्षा के लिये ठीक वैसे ही किया जाता है जिस प्रकार से किसी देश की बाहरी सुरक्षा के लिये सेना का उपयोग किया जाता है। कह सकते हैं कि पुलिस आंतरिक सुरक्षा की हमारी सेना है। देश की कानून एंव शांति व्यवस्था पुलिस ही संभालती है। पुलिस अपराधियों को पकड़ने का कार्य ही नहीं करती बल्कि आपराधिक गतिविधियों को रोकने, अपराधियों द्वारा किये जाने वाले अपराधों की खोजबीन करने, उनकी तलाश करने और अपराध साबित करने के लिये अपराधी के खिलाफ पर्याप्त साक्ष्य जुटाने का कार्य भी करती है। अपराध साबित होने के बाद पुलिस अपराधी को अदालत को सौंपती है। इस दृष्टि से कहें तो न्याय व्यवस्था की महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में पुलिस कार्य करती है। इसी प्रकार नागरिक सुरक्षा के बंदोबस्त करने, महत्वपूर्ण व्यक्तियों को विशेष सुरक्षा प्रदान करने, यातायात संबंधी व्यवस्था का कार्य भी पुलिस ही करती है। विशेष अवसरों पर पुलिस द्वारा कानून

एवं शांति व्यवस्था संधारण का कार्य भी जहां किया जाता है वहीं विद्रोह एवं उपद्रवी तत्वों के दमन के निमित्त भी पुलिस की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है।

व्यापक वर्ग तक अपराध समाचार मीडिया के जरिये ही पहुंचते हैं। पुलिस को अपने द्वारा अपराध नियंत्रण के लिये और अपराधी को पकड़ने या फिर किसी भी प्रकार की कार्यवाही करने संबंधित जानकारी पहुंचाने, भयमुक्त वातावरण का विश्वास दिलाने के लिये मीडिया की जरूरत होती है तो अपराध समाचारों और पुलिस कार्यवाही संबंधी समाचारों के लिये मीडिया को पुलिस की आवश्यकता होती है। ऐसे में मीडिया एवं पुलिस के अन्योन्याश्रित संबंध हैं। पुलिस और मीडिया के संबंध यदि सौहाद्रपूर्ण, परस्पर विश्वास के हों तो बहुत सी समस्याओं का समाधान स्वतः ही हो सकता है। इस दृष्टि से मीडिया और पुलिस को अपने सरोकारों को ध्यान में रखते हुए कार्य करना जरूरी है। जरूरी यह भी है कि मीडिया और पुलिस अपनी अपनी मर्यादाओं में कार्य करें। मीडिया यह सोचे कि वह खबर को सूचना और विचार संपन्न समाज निर्माण के लिये प्रस्तुति करे और पुलिस यह सोचे कि अपराध समाचारों के जरिये आम जन जागरूक हों और पुलिस के प्रति उनमें विश्वास पैदा हो। इधर देश में क्राइम शो का जो दौर चला उससे सनसनीखेज अपराध समाचारों का असंतुलित प्रवाह भी दर्शकों को झेलना पड़ा। संसद तक उसकी गंज उठी तो इधर सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के तेजी से हुए विस्तार ने समाज में साईबर अपराधों को भी तेजी से बढ़ाया है। साइबर अपराध कौन से हैं और कैसे इनसे निजात पायी जा सकती है पुलिस की इसमें क्या भूमिका रहती है-इसी संदर्भ में इस इकाई में विस्तार से अलग से बताया गया है तो समाचार में विचार के द्वारा स्वस्थ समाज के निर्माण की पैरवी भी की गयी है। पुलिस और मीडिया से संबंधित और भी बहुत से मुद्दे हैं जिनकेबारे में इस इकाई में बताया गया है।

वर्तमान में, मीडिया पुलिस के सतत् संवाद से बहुत सी समस्याओं का समाधान स्वतः हो सकता है। संवाद वैसे भी बहुत सी परेशानियों को कम कर देता है। इसलिये संवाद सभी स्तरों पर जरूरी है, फिर मीडिया और पुलिस संवाद तो परस्पर विश्वास की महत्वपूर्ण कड़ी है। इसी संदर्भ में इस इकाई में पर्याप्त प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

16.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मीडिया और पुलिस के सरोकारों पर प्रकाश डालिये।
2. अपराध समाचारों के विभिन्न स्त्रोत कौन-कौन से हैं?
3. मीडिया की आचार संहिता पर एक संक्षिप्त निबंध लिखिए।
4. मीडिया-पुलिस संवाद वर्तमान समय में क्यों आवश्यक है?
5. साईबर क्राईम से क्या अभिप्राय हैं? साईबर अपराध कैसे घटाये जा सकते हैं?

16.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सूचना, संप्रेषण और समाज - डी. बी.एस. निगम, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल
2. सूचना प्रौद्योगिकी और समाचार पत्र - रवीन्द्र शुक्ला, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली
3. मीडिया इन्साइक्लोपीडिया - प्रो. रमेश जैन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर
4. प्रेस इन इण्डिया - किरण ठाकुर, सकाल पेपर ट्रस्ट, पुणे
5. लिविंग इन द यूचर - इसान असिमोव, मल्टीमीडिया पब्लिकेशन लि., यू.के.
6. लॉ ऑफ द प्रेस - आचार्य डॉ. दुर्गा दास बसु, प्रिंटिस हॉल ऑफ इण्डिया, न्यू दिल्ली
7. साइबर स्पेस और मीडिया - सुधीश पचौरी, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली
8. पत्र-पत्रिकाएं
9. पुलिस और मीडिया से संबंधित इन्टरनेट से डाउनलोड सामग्री।

इकाई - 17
गैर सरकारी संगठन एवं पुलिस

इकाई की संरचना

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 गैर सरकारी संगठन - अर्थ एवं विशेषताएँ

17.3 गैर सरकारी मानवाधिकार संगठन - कार्य एवं भूमिका

17.3.1 गैर सरकारी संगठनों की पुलिस व्यवस्था में सक्रिय भूमिका

17.3.2 गैर सरकारी संगठनों की सहायता से बेहतर पुलिस व्यवस्था के क्षेत्र

17.3.3 गैर सरकारी संगठनों के लाभ एवं हानियाँ

17.4 पुलिस एवं गैर सरकारी मानवाधिकार संगठनों के सहयोग का औचित्य

17.4.1 गैर सरकारी मानवाधिकार संगठनों की सहभागिता से पुलिस को लाभ

17.4.2 पुलिस सहभागिता से गैर सरकारी संगठनों को लाभ

17.4.3 पुलिस सहभागिता से गैर सरकारी संगठनों की हानियाँ

17.4.4 गैर सरकारी मानवाधिकार संगठनों की सहभागिता से पुलिस को हानियाँ

17.4.5 पुलिस सहभागिता हेतु गैर सरकारी संगठनों के चयन मापदण्ड

17.5 पुलिस तथा गैर सरकारी संगठनों के मध्य प्रभावी सहयोग

17.6 गैर सरकारी संगठन एवं पुलिस की मानवाधिकार सम्बन्धी समस्याएं एवं चुनौतियाँ

17.7 गैर सरकारी मानववाधिकार संगठनों की प्रभावी कार्यशीलता की आवश्यक शर्त

17.8 अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय मानवाधिकार गैर सरकारी संगठन एवं पुलिस व्यवस्था

17.9 पुलिस एवं गैर सरकारी संगठन - भारतीय अनुभव

17.10 सारांश

17.11 शब्दावली

17.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

17.13 संदर्भ ग्रन्थ

17.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य निम्न बिन्दुओं पर चर्चा करते हुए गैर सरकारी संगठनों एवं पुलिस व्यवस्था के अर्न्तसम्बन्धों से विद्यार्थी का अवगत करना है।

- विभिन्न गैर सरकारी संगठन तथा उनकी विशेषताओं के विषय में
- गैर सरकारी मानवाधिकार संगठनों के उत्तरदायित्व तथा लक्षण
- पुलिस एवं गैर सरकारी मानवाधिकार संगठनों के सानिध्य एवं सहयोग का औचित्य
- पुलिस तथा गैर सरकारी संगठनों के सम्बन्ध
- पुलिस सुधार हेतु गैर सरकारी संगठनों के कार्य
- गैर सरकारी संगठनों द्वारा किये गये पुलिस सुधार तथा पुलिस व्यवस्था पर प्रभाव
- गैर सरकारी संगठन मानवाधिकारों के रक्षक और प्रहरी के रूप में
- पुलिस व्यवस्था से सम्बन्ध होने के कारण गैर सरकारी संगठन के लाभ एवं हानि

- गैर सरकारी संगठन की पुलिस व्यवस्था तथा मानवाधिकारों की प्रभावशाली सक्रियता की आवश्यक शर्त
- कुछ राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार एवं पुलिस व्यवस्था
- गैर सरकारी संगठन एवं पुलिस व्यवस्था का भारतीय संदर्भ

17.1 प्रस्तावना

पुलिस बल का उद्देश्य समाज का अपराध से बचाव करना, कानून और शान्ति व्यवस्था कायम रखना, जनता के जानमाल की रक्षा करना और अपराधियों के विरूद्ध कार्यवाही कर उन्हें दंडित करना है। यह पुलिस का संवैधानिक दायित्व है कि वह नागरिकों के मानवाधिकारों का सम्मान करे।

कभी-कभी पुलिस व्यवस्था तथा मानवाधिकारों के बीच विरोधाभास की स्थिति उभरती है जब पुलिस कानून और व्यवस्था के नाम पर स्वयं कानून का अतिक्रमण करती है। इस स्थिति में, पुलिस उन मूल्यों की उपेक्षा करती है जिनकी उसे अनुपालना करनी चाहिए। जैसे समाज में शांति व्यवस्था एवं स्थायित्व। कानून के रक्षकों द्वारा कानून तोड़ना घोर अनुशासनहीनता है। यह लोकतंत्र की जड़ो को खोखला करती है तथा विधि के शासन को चुनौती देती है। अपराध की रिपोर्ट दर्ज नहीं करना, अपराध की जाँच पड़ताल न करना, गैर-कानूनी गिरफ्तारी करना, हिरासत में यातना देना, र्दुव्यवहार करना गैर कानूनी हत्याये करना, झूठे आरोप गढ़ना गैर कानूनी तरीके से लोगों को हिरासत में लेना, महिलाओं और बच्चों के साथ र्दुव्यवहार, इत्यादि मानवाधिकारों के उल्लंघन के कुछ उदाहरण है जो पुलिस और पब्लिक के सम्बन्धों में कटुता पैदा करते हैं।

यह आम धारणा है कि जो दरिद्र हैं, जिनकी शासन तक पहुँच नहीं हैं, उन्हें लम्बे समय तक हिरासत में रखा जाता है और परेशान किया जाता है। इस मद पर गैर सरकारी संगठन पुलिस के कार्यो में हस्तक्षेप करके अपनी सार्थकता साबित करते हैं। गैर सरकारी संगठन का प्रमुख कार्य मानवाधिकारों की चेतना का प्रसार करना और उनका बचाव करना है। आधुनिक लोककल्याणकारी राज्य का तकाजा है कि पुलिसबल मानवाधिकारों का चैंपियन साबित हो। यह बहुत कठिन कार्य है। पुलिस को दोहरी चुनौती भी है। पहली तो यह है कि वह मानवाधिकारों की केन्द्रीय भूमिका को स्वीकार करें और दूसरी यह कि इस भूमिका में पुलिस की प्रभावी छवि धूमिल न हो। पुलिस और गैर सरकारी संगठन की संधि सम्मान, पारदर्शिता, तथा उत्तरदायित्व पर आधारित होना चाहिए। पुलिस और गैर सरकारी संगठन के सम्बन्ध तभी सकारात्मक हो सकते है जब मानवाधिकारों का सन्तोषजनक संरक्षण हो।

17.2 गैर सरकारी संगठन - अर्थ एवं विशेषताएँ

गैर सरकारी संगठन नागरिकों द्वारा संगठित संस्था है जो स्वतंत्र रूप से कार्य करती है। यह शब्द मूल रूप से संयुक्त राष्ट्र संघ से आया। गैर सरकारी संगठन उन संस्थाओं के लिए प्रयुक्त होता है जो गैर-सरकारी होती और बिना किसी मुनाफा कमाने की आकांक्षा से कार्य करती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर 40,000 गैर सरकारी संगठन कार्य कर रहें हैं। भारत वर्ष में 2009 में 3.3 मिलियन गैर सरकारी संगठन कार्यरत थे।

गैर सरकारी संगठन शब्द का उल्लेख 1945 में हुआ जब संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई UNO ने गैर-सरकारी ऐजेन्सियों संस्थाओं, संगठनों के लिए इसका उल्लेख किया। यह गैर-सरकारी संगठनों के लिए सामान्य शब्द हैं। गैर सरकारी संगठन में नागरिकों का समूह किसी उद्देश्य के लिए कार्य करता है। परन्तु उनका उद्देश्य पैसा कमाना या गैर-कानूनी गतिविधियों में लिप्त होना नहीं है।

गैर सरकारी संगठन एक एक्ट द्वारा विधिवत रजिस्टर्ड होते है जिसके अनुसार नागरिकों के समूह विशेषको कोरपोरेट स्तर प्रदान किया जाता है। इसमें व्यक्तिगत दायित्व सामूहिक हो जाता है। इसका अपना प्रशासनिक ढाँचा होता है और विधिवत बनायी गयी कार्यकारी कमेटी होती है। इसके सुनिश्चित उद्देश्य और लक्ष्य होते है। यह स्वयं सदस्यों द्वारा लोकतांत्रिक तरीके से बिना किसी बाह्य नियंत्रण के संचालित होता है। इसमें मानव विकास के प्रति प्रतिबद्धता होती है। यह लोगों की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के निराकरण की कोशिश करते है।

17.3 गैर सरकारी मानवाधिकार संगठन - कार्य एवं भूमिका

गैर सरकारी मानवाधिकार संगठन की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं है। गैर सरकारी मानवाधिकार संगठन जहाँमानवाधिकारों का हनन होता है वहाँ व्यक्तियों के हित में संघर्ष करता है। ये गैर सरकारी संगठन स्थानीय क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के हो सकते हैं और क्षेत्रानुसार ही उनके कार्य का क्षेत्र होता है।

लम्बे समय तक, गैर सरकारी संगठनों ने पुलिस को मानवाधिकार का अतिक्रमी माना। परिणामस्वरूप पुलिस और गैर सरकारी संगठनों के सम्बन्धों मं कटुता बनी रही ओर दोनों एक दूसरे के विरोधी रहे। कालान्तर में सोच में यह बदलाव आया कि पुलिस मानवाधिकारों की उल्लंघनकर्ता ही नहीं बल्कि रक्षक भी है। गैर सरकारी संगठन और पुलिस के परस्पर, सहयोग से पुलिस तंत्र ओर मानवाधिकारों की अनुपालना में उदारता का वर्तमान में प्रकट हुआ। वर्तमान में अपनी शक्तियों का प्रयोग करते पुलिस मानवाधिकारों को सम्मान की दृष्टि से देखती हैं। मानवाधिकारों की प्रमुख भूमिका जनता को राज्य के द्वारा सत्ता के दुरूपयोग से बचाना है। कानूनी रूप से पुलिस अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय मानवाधिकारों का लिहाज लाजिमी तौर पर करती है।

कुछ गैर सरकारी संगठनों ने कुछ विशेष मानवाधिकारों की समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित किया हैं जिनमें शरणार्थी समस्या, राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों की समस्या, देश के बाहर से आये लोगों की समस्या, निशक्तजनों आदि की समस्यायें है। कुछ गैर सरकारी संगठन सार्वभौमिक सदस्यता वाले संगठन है जैसे एमनेसटी इंटरनेशनल जबकि अन्य कुछ सदस्यों के समूह तक सीमित हैं। कुछ गैर सरकारी संगठन मानवाधिकार शिक्षा और चेतना प्रसार के लिए ध्यान आकृष्ट करते हैं। गैर सरकारी संगठन पूरे विश्व में मानवाधिकारों के हनन के विरूद्ध संघर्ष में अहम भूमिका अदा कर रहे हैं। इनमें इन्टरनेशनल कमीशन ऑफ ज्यूरिस्ट्स एवं एमनेस्टी इन्टरनेशनल प्रमुख हैं। इन्होंने दैहिक यातना और बाल अधिकारों के मददों पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किये हैं। कई गैर सरकारी संगठनों ने समाज की ऐसी सेवा की है जो अन्य संस्थायें कभी नहीं कर सकती। इन गैर सरकारी संगठनों ने अनेक सूचना, रिकॉर्डिंग तथा प्रशिक्षण पाठयक्रम चलाये है। गैर सरकारी संगठनों में बहुत प्रभावी एजेन्सियाँ हो गयी हैं- पुलिस के साथ मिलकर, गैर सरकारी संगठनों ने पुलिस के उत्तदायित्व को रेखांकित किया हैं। इसका अभिप्राय यह है कि -

1. पुलिस कानून सम्मत कार्यवाही करेगी, वह किसी शक्तिशाली जन प्रतिनिधि अथवा पार्टी के दबाव में कार्य नहीं करेगी।
2. पुलिस राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ रहेगी और पक्षपातपूर्ण कार्यवाही नहीं करेगी।
3. पुलिस निरंकुश तरीके से कार्य नहीं करेगी।
4. पुलिस कार्यवाही में पारदर्शिता होगी और वह जनता के प्रति उत्तरदायी होगी।
5. पुलिस मानव जीवन की गरिमा तथा मूलभूत मानवाधिकारों का सम्मान करेगी।

17.3.1 गैर सरकारी संगठनों की सक्रिय पुलिस व्यवस्था में भूमिका

पुलिस सक्रियता का एक अर्थ है अपराधों का पता लगाना ओर रोकथाम कराना और दूसरा अर्थ है अपराधियों की पहचान कर उनके विरूद्ध कार्यवाही करना। पुलिस को मानवाधिकारों की अनुपालना भी करनी होती हैं क्योंकि गंभीर स्थिति में भी व्यक्ति को जीवन का अधिकार है। पुलिस को शांति व्यवस्था भी कायम रखनी होती है कि सब अपने अधिकारों का उपभोग कर सकें। आपराधिक जाँच पड़ताल में पुलिस ध्यान रखे कि आरोपी की प्रोपर्टी और देह की क्षति न पहुँचे। जो लोग जनतांत्रिक विरोध करते है उनके अभिव्यक्ति के अधिकार और इकट्ठा होने के अधिकार की भी पुलिस को रक्षा करनी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति या समूह किसीको धमकी देता है तो उसका बचाव करना भी पुलिस का दायित्व हैं।

गैर सरकारी संगठनों में जो मानवाधिकार की रक्षा हेतु कार्य करते है, उस सक्रिय पुलिस व्यवस्था में सहयोग कर सकते हैं, जो लोकतांत्रिक हो।

पुलिस व्यवस्था में इन गैर सरकारी संगठनों का सक्रिय योगदान चार प्रकार का होता है -

1. **समाज की सहभागिता से गश्त और निगरानी कर अपराधों की रोकथाम -** इससे समाज अपनी सुरक्षा करता है।

2. **समाज को कानूनों की जानकारी देना -** गैर सरकारी संगठनों में समाज के लिए विविध विधिक जानकारी उपलब्ध कराने के कारण हितकारी साबित होते हैं। वे पुलिस की कार्यप्रणाली से भी अवगत कराते है।

3. **सुधारात्मक नीति द्वारा अपराधों के कारणों को कम करना-** आज की विखंडित सामाजिक स्थिति में जिसमें आबादी का विस्फोट है, अवसरों की असमानता है, अपर्याप्त आर्थिक वृद्धि है, अनियोजित औद्योगीकरण है और बढ़ता हुआ शहरी करण है, दरिद्रता, अशिक्षा है, पुलिस और आम आदमी में टकराव की स्थिति बनती है। इस प्रकार की समस्याओं का निराकरण गैर सरकारी संगठनों द्वारा समाजोन्मुखी कार्यक्रमों के माध्यम से सटीक रूप से किया जाता है। गैर सरकारी संगठनों इस प्रकार उत्प्रेरक तथा कारगर सामाजिक सहभागिता से सक्रिय पुलिस व्यवस्था में योगदान दे सकते है।

4. गैर सरकारी संगठनों द्वारा सामाजिक सहभागिता के माध्यम से अपराधियों ओर अपचारियों की पहचान हो सकती है ओर उसका सुधार भी। मौहल्ले के स्तर पर बनी कमेटियों के जरिये अनतरर्जातीय भाषायी साम्प्रदायिक, अन्तरनस्तीय हिंसक विवाह बखूबी निपटाये जा सकते हैं। गैर सरकारी संगठनों में बाल अपचारियों अनाथ बच्चों तथा लावारिस घूमते बेघर बच्चों को सुधारा जा सकता है। नशाबंदी का कार्य तथा मादक द्रव्यों से छुटकारा, शराब खोरी से मुक्ति के कार्यक्रम भी गैर सरकारी संगठनों द्वारा प्रशंसनीय ढंग से पूरे देश में संचालित हो रहे हैं।

17.3.2 गैर सरकारी संगठनों की सहायता से बेहतर पुलिस व्यवस्था के क्षेत्र

पुलिस की ज्यादतियों की शिकायतों की पड़ताल के लिए गैर सरकारी संगठनों ही श्रेष्ठ स्वतंत्र मंच उपलब्ध करवाते है। गैर सरकारी संगठनों की उपस्थिति पुलिस को अनुशासित रखती है। इसके कारण पुलिस न मनमानी गिरफ्तारियाँ कर सकती हैं, न निरंकुश ढंग से किसी को भी हिरासत में ले सकती है और न यातना दे सकती है। इससे पुलिस के गैर-कानूनी रवैये पर नियंत्रण हो जाता हैं। यदि गैर सरकारी संगठनों और पुलिस में तालमेल बना रहता है तो अपराधी भी दंडित होता है और समाज में पुलिस की छवि भी धूमिल नहीं होती।

इस प्रकार के सोच की अपनी दुर्बलता ये हो सकती है। उचित कानूनी कार्यवाही अपनी जगह है। व्यवहार में यह देखा जाता है कि गैर-कानूनी कार्यवाही करके पुलिस वाले स्वयं अपराधियों की श्रेणी

में आ जाते हैं। फिर भी कुछ ऐसे क्षेत्र है जिनमें पुलिस को गैर सरकारी संगठनों की सख्त जरूरत है। पिछले कुछ दशकों में जो अपराधिक क्षेत्र बढ़ा है वह हैं सामूहिक हिंसा। इससे अभिप्राय हिन्दू और मुसलमानों दलितों ओर सवर्णों के बीच संघर्ष का होना है। ये समाज को विखंडित करने वाली खतरनाक गतिविधियाँ हैं। ये समाज को तोड़ने वाली शक्तियाँ हैं। गैर सरकारी संगठनों तथा सरकार की सहभागिता से ऐसे कार्यक्रम संचालित किये जा सकते हैं जिनसे परस्पर सद्भाव और सौहार्द कायम हो। पीस कमेटीज तथा मौहल्ला कमेटीज जो कि कई राज्यों में सक्रिय हैं; पुलिस, गैर सरकारी संगठनों और सरकार के साझा प्रयत्नों से लोकप्रिय बनाये जा सकते है और इनके द्वारा जातीय संघर्ष तथा साम्प्रदायिकता का खतरा काफी कुछ टाला जा सकता है।

बाल अपराधियों का सुधार :- यह दूसरा क्षेत्र हैं जिसमें गैर सरकारी संगठन बहुत प्रभावी हो सकते हैं। बाल अपराधियों का सुधार बहुत जरूरी हैं क्योंकि देश में अपराधों की दर बढ़ रही हैं। बाल अपराधियों के साथ अन्य अपराधियों की तरह व्यवहार नहीं हो सकता। उन्हें समाज कल्याण बोर्ड के द्वारा बाल-सुरक्षा गृहों में रखना चाहिए। इस कार्य में गैर सरकारी संगठनों का महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है। समाजसेवी संस्थाओं द्वारा अनाथ और बाल अपराधियों को सुधारकर समाज में पुनर्स्थापित किया जा सकता हैं।

इन अपराधियों के सटीक पुनर्स्थापन के लिए गैर सरकारी संगठनों में व्यावसायिक कोर्स / प्रशिक्षण उपलब्ध करा सकते हैं। शराबियों और मादक द्रव्यों के व्यसन से बुरी आदतों वाले लोगों का सामाजिक पुनर्स्थापन कार्य भी प्राथमिकता के आधार पर गैर सरकारी संगठनों कर सकते हैं। भिक्षावृत्ति समाप्त कर भिखारियों के पुनर्स्थापन का कार्य भी गैर सरकारी संगठनों में कर सकते है। भिखारी और खानाबदोश सभ्य समाज के लिए कलंक हैं। आजकल दहेज हत्यायें बड़ी संख्या में हो रही हैं तथा दहेज के मामलों में महिलाओं को ससुराल में यातनायें दी जाती हैं। पुलिस शिकायत प्राप्त होने पर कार्यवाही करती है। यह भी गैर सरकारी संगठनों का कार्य है कि वे दहेज विरोधी सोच का अलख जगायें, महिला कल्याण का बीड़ा उठायें और आवश्यकता पड़ने पर पुलिस को सूचित करें। यदि स्थानीय पुलिस कार्यवाही नहीं करे तो उच्च पुलिस अधिकारियों से हस्तक्षेप हेतु सम्पर्क किया जा सकता है।

यौन अपराध और पीड़ित महिलाओं का सामाजिक पुनर्स्थापन भी ऐसा क्षेत्र है जिसमें गैर सरकारी संगठनों की सक्रियता वांछनीय है। गैर सरकारी संगठनों में महिलाओं में यौन अपराधों के बारे में सचेत कर सकते हैं। महिला कल्याण गृहों के जरिये वेश्यावृत्ति में फंसी हुई महिलाओं को सभ्य समाज में पुनर्स्थापित किया जा सकता है। समाज कल्याण गृहों ओर नारी निकेतनों में व्याप्त भ्रष्टाचार नियंत्रित किया जाना चाहिए। इसमें पुलिस की उदासीनता भी जनता के ध्यान में लाई जानी चाहिए।

17.3.3 गैर सरकारी संगठनों के लाभ एवं हानियां

लाभ -

1. गैर सरकारी संगठन समाज में प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाने के कारण नये प्रयोग कर सकते है और जोखिम भी उठा सकते है।
2. ये स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल अपने को ढालकर और सटीक परियोजनायें संचालित कर सकते हैं।
3. आम आदमी से जुड़ाव के कारण ये जरूरतमन्दों की सहायता कर सकते हैं।
4. ये सभी स्तरों पर संवाद कर सकते है। ये पड़ोस से लेकर शीर्षस्थ सरकारी अधिकारियों तक संवाद कर सकते हैं।
5. ये विशेषज्ञों और कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तियों को उदार शर्तों पर अपने यहाँ सेवार्थ रख सकते है।

हानियाँ -

1. पुराने ढर्रे की रीति-नीति नवीन परियोजनाओं में बाधक हैं।
2. गैर सरकारी संगठनों के संसाधन समस्या या क्षेत्र विशेष में कार्य करने के लिए सीमित होते है।
3. सीमित संसाधनों के कारण, अपनी परियोजनाओं को संचालित करने के लिए इन्हें बाह्य आर्थिक सहायता पर निर्भर रहना पड़ता है।
4. क्षेत्रीय जमावड़े के कारण गैर सरकारी संगठन विशेष को अन्य ऐजेन्सियों से अपेक्षित सहयोग नहीं मिलता और प्रतिस्पर्द्धा की भावना अंकुरित हो जाती है।
5. स्थानीय विकास के मॉडल और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के व्यापक मॉडल में अन्तर आता है।
6. बाह्य आर्थिक सहायता पर निर्भरता की वजह से कार्य धीमा पड़ता जाता है क्योंकि सरकारी अंकुश नहीं होता।

17.4 पुलिस और मानवाधिकार गैर सरकारी संगठनों के सहयोग का औचित्य

पुलिस और मानवाधिकार गैर सरकारी संगठनों की सहभागिता को लेकर कई प्रश्न खड़े होते है। आम धारणा यह है कि पुलिस मुख्य रूप से मानवाधिकारों का अतिक्रमण करती है। अत: पुलिस ओर गैर सरकारी संगठनों के परस्पर सहयोग की क्या उपादेयता है? एक तरफ तो पुलिस को अपराध नियंत्रण करना हैं और आपराधिक वारदातों की जाँच पडताल करनी है। यह करते हुए पुलिस किस प्रकार मानवाधिकारों को ससम्मान संरक्षण कर सकती है। गैर सरकारी संगठनों के सहयोग से क्या कुछ सार्थक परिणाम हो सकते हैं। पुलिस व्यवस्था और मानवाधिकार संरक्षण में स्पष्टत: विरोधाभास प्रतीत होता है। दोनों के बीच दुरभि संधि विवादास्पद है। लोकतांत्रिक पुलिसतंत्र के तीन प्रमुख सिद्धान्त है

1. सामाजिक उपबन्ध
2. जनमत
3. और अधिकारों का संतुलन

इन सिद्धान्तों के मद्देनजर पुलिस और गैर सरकारी संगठनों का परस्पर सहयोग मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए सार्थक हो सकता है। पुलिस प्रबन्धन के द्वारा प्रभावी ढंग से मानवाधिकारों को संरक्षण प्रदान किया जा सकता है। एक आचार संहिता के आधार पर पुलिस अधिकारों तथा गैर सरकारी संगठन कार्यकर्ता परस्पर सहभागिता का निर्वाह कर सकते है और सफल पार्टनरशिप सुनिश्चित की जा सकती है। पुलिस और गैर सरकारी संगठनों के बीच की समीकरण के आधार है

1. सम्मान
2. पारदर्शिता
3. समेकित गतिविधि
4. निष्पक्षता
5. उत्तरदायित्व की भावना

17.4.1 गैर सरकार मानवाधिकार संगठनों की सहभागिता से पुलिस को लाभ

पुलिस जिस तरह कार्यवाही करती है उसे पब्लिक कानूनी और गैर-कानूनी गतिविधि के रूप में देखती है। यदि पुलिस स्थिति में सन्तुलन बनाये रखते हुए मानवाधिकारों का संरक्षण करती है तो

उसकी विश्वसनीयता बढ़ती है। आरोपों की कई ऐसी संवेदनशील स्थितियाँ होती है, जैसे अपराध की तफ्तीश, गिरफ्तारी, बल प्रयोग, हिरासत में लिया जाना, पूछताछ, निगरानी, मुखबिर का उपयोग जिसमें मानवाधिकारों को चुनौती मिलती है और पुलिस की विश्वसनीयता पर संदेह होता है। यह साबित करना वास्तव में कठिन है कि मानवाधिकारों की दुहाई देने से पुलिस कार्य में सुधार और निखार आता है। यह व्याख्या करना भी मुश्किल है मानवाधिकार संरक्षण की नीति अपनाने से अपराधों में कमी आती है। स्टेट तो सभी के अधिकारों के संरक्षण के पक्ष में है इसलिए सारा दारोमदार पुलिस के कार्य पर है न कि उसकी शक्तियों में। पुलिस जनमत की सहमति से ही अपने कार्य को अंजाम दे सकती है। पुलिस कार्यवाही में पारदर्शिता अपेक्षित है और पुलिस की छवि समाज सेवी संस्था के रूप में वांछनीय है।

लोकतांत्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत पुलिस जनता अथवा गैर सरकारी संगठनों को दरकिनार नहीं कर सकती। प्रजातंत्र में पुलिस कार्यवाही का सीधा सा मतलब है जनता की सहमति से पुलिस तंत्र का कार्य करना। अर्थात् पुलिस को व्यक्ति विशेष को सुरक्षा प्रदान करनी है। यह पुलिस को जनता की सहमति से तय करना है। इसलिए पुलिस को परम्परागत रवैये को त्यागना होगा। अब पुलिस को पारदर्शी तथा जनमत को स्वीकार्य निर्णय लेने होंगे।

मुख्यरूप से विशेष सलाह के लिए उसे गैर सरकारी संगठनों पर निर्भर रहना होगा। इससे पुलिस को स्थिति के विश्लेषण और आकलन का लाभ मिलेगा और व्यवस्था सम्बन्धी नीति में बदलाव भी करना पड़ेगा। गैर सरकारी संगठन अपने मानवाधिकार विशेषज्ञों की मदद से पुलिस को उपकृत कर सकते हैं। चूंकि गैर सरकारी संगठनों की स्थानीय जानकारी होती है, घरेलू हिंसा, नस्लीय हिंसा की स्थिति में, वे पुलिस के मददगार हो सकते हैं। पुलिस को गैर सरकारी मानवाधिकार संगठनों की सहभागिता की इसलिए भी जरूरत है कि वे निष्पक्ष हो सकते है। उनकी मदद से पुलिस अल्पसंख्यक नस्लीय नेतृत्व से सम्पर्क साध सकती है। इनकी मदद से पुलिस पिछड़ो दरिद्रों, बेघर, मादक द्रव्यों के व्यवसनियों, यौन अपचारियोंतथा घरेलू हिंसा के पीड़ितों तक पहुँच बना सकती है। ये लोग जो पुलिस के रवैये से कतराते हैं, गैर सरकारी संगठनों से निरन्तर निसंकोच सम्पर्क साध सकतेहैं। उन्हें पुलिस की सहायता एवं संरक्षण की आवश्यकता हो सकती है। गैर सरकारी मानवाधिकार संगठनों से सम्पर्क जनता में पुलिस की विश्वसनीयता बढ़ाता है और पुलिस को मानवाधिकारों के प्रति संवेदनशील बनाता है। इस प्रकार गैर सरकारी संगठन पुलिस सेवा को उत्तरदायी बना सकते हैं। ये पुलिस के विरूद्ध आरोपों की जाँच-पड़ताल कर सकते हैं। यह प्रक्रिया गोपनीय होती है और अक्सर स्वतंत्र नहीं होती। आम आदमी से गैर सरकारी संगठनों के माध्यम से निरन्तर सम्पर्क पुलिस को मानवाधिकारों के निर्वाह में सहायक हो सकता है। गैर सरकारी संगठनों से सहभागिता पुलिस के लिए नवीन अवसर संसाधन, जुटा सकती है। यह एक सकारात्मक पक्ष है। पुलिस को जनता में अपनी विश्वसनीयता स्थापित करने के लिए गैर सरकारी संगठनों के विशेषज्ञों से विमर्श करना चाहिए जो पुलिस सम्बन्धी मामलात में दखल रखते हो।

17.4.2 पुलिस की सहभागिता से गैर सरकारी संगठनों को लाभ

समाज में कानून और व्यवस्था बिगड़ने पर शान्ति कायम करती हैं, अपराधों का नियंत्रण करती है और कानून के जरिये जरूरतमन्दों की मदद करती है। पुलिस समाज में चूंकि शान्ति व्यवस्था कायम करती है। अत: वह मानवाधिकारों का संरक्षण करती है। यदि समाज में अराजकता हो तो मानवाधिकारों की स्थिति शोचनीय हो जाती है। पुलिस गैर-कानूनी हत्याओं को रोकती है और

मानवाधिकारों का संरक्षण करती है जब वह यातना और हत्या के मामलात में कानूनी कार्यवाही करती है।

यदि गैर सरकारी संगठन पुलिस के रोजमर्रा के कार्यो में आने वाली दिक्कतों से परिचित नहीं हैं तो वह सरकार द्वारा निर्णीत प्रस्तावों और कार्यक्रमों को निष्ठापूर्वक निष्पादन नहीं कर सकते। पुलिस के व्यवहारिक पक्ष की सटीक जानकारी होना गैर सरकारी संगठनों के लिए जरूरी है। मानवाधिकारों गैर संगठनों के लिए अहम् मुद्दा यह है कि क्या वे अपनी स्वतंत्रता, विश्वसनीयता, निष्पक्षता और कानूनी औचित्य को भूल कर पुलिस के साथ सहभागिता निभा सकते हैं। पुलिस के लिए गैर सरकारी संगठन से सम्पर्क रखना उसके जनता से सम्बन्ध का मात्र अभिनय या बहाना हो सकता है। हो सकता है दिखने में मानवाधिकार संरक्षण पुलिस के निष्ठावान प्रतिबद्धता न हो।

यह भी संभव है कि गैर सरकारी संगठनों के लिए पुलिस की मानवाधिकार संरक्षण की रीति कदम मिलाकर चलना संभव न हो। संभव है पुलिस और गैर सरकारी संगठनों के बीच में नोंकझोंक हो जाये और विरोधी स्वर सुनाई पड़े। ऐसा भी हो सकता है जब गैर सरकारी संगठन पुलिस की कटु आलोचना भी करता रहे और सहभागिता का ढोल भी पीटता रहे। हर देश में राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश अलग-अलग होने के कारण, पुलिस और गैर सरकारी मानवाधिकार संगठनों की पार्टनरशिप सीधी और सपाट नहीं हो सकती। फिर भी मानवाधिकार संरक्षण का दम भरने वाली पुलिस के सानिध्य का अवसर गैर सरकारी मानवाधिकार संगठन नहीं चूकते। ऐसा नहीं करना उनके अस्तित्व को चुनौती हैं। मानवाधिकार संरक्षण का प्रयास अब पुलिस की अहम भूमिका होती जा रही है। गैर सरकारी संगठन अपनी सद्भावना, सौहार्द और प्रत्यक्ष सहभागिता से पुलिस पर प्रभाव डालते है। पुलिस और गैर सरकारी मानवाधिकार संगठनों के बीच हक संधि अब सकारात्मक वास्तविकता बनती जा रही है और उसकी आलोचना भी सकारात्मक होती जा रही है। गैर सरकारी संगठन को पुलिस की सहभागिता से काफी कुछ सीखना भी है। उन्हें पुलिस की कार्यशैली पर ज्यादा व्यापक समझ प्राप्त करनी होगी और व्यावहारिकता की कसौटी पर भी खरा उतरना आवश्यक माना जायेगा।

17.4.3 पुलिस सहभागिता से गैर सरकारी संगठनों को हानियाँ

विमर्श का एक मुद्दा यह है भी है कि पुलिस द्वारा कुछ गैर सरकारी संगठनों को संसाधन या उपयोगी प्रशिक्षण आदि मुहैया कराने के लिए भुगतान दिया जाता है। कुछ गैर सरकारी संगठन पुलिस से भुगतान राशि प्राप्त करते है तो उनकी तथाकथित स्वतंत्रता और विश्वसनीयता को बट्टा लगता है। इस खतरे की सम्भावना है कि अप्रत्यक्ष रूप से गैर सरकारी संगठन पुलिस का स्थानीय स्तर पर राजनीतिकरण कर दें। इसका अभिप्राय यह है कि पुलिस गैर सरकारी संगठनों की मुट्ठी में बन्द हो जाये और अपनी निष्पक्षता खो बैठे। कुछ पुलिस अधिकारी इस बात से असहमत भी हो सकते हैं कि जो गैर सरकारी संगठन पुलिस की खुले आम आलोचना करते हैं, पुलिस उनके साथ है। एक संभावना यह उभरती है कि पुलिस उन गैर सरकारी संगठनों से ही सम्पर्क साधे जो कटु आलोचना नहीं करते हो और पुलिस के पक्ष में हों।

17.4.4 गैर सरकारी मानवाधिकार संगठनों की सहभागिता से पुलिस को हानियाँ

कभी-कभी गैर सरकारी मानवाधिकार संगठन पुलिस की आलोचना करते हैं और एक दूसरे के विरोध में खड़े हो जाते हैं। वैसे सहभागिता का अभिप्राय एक दूसरे की आलोचना न करना ही नहीं है। सहयोग और सहभागिता में आलोचना के लिए स्थान है। सुधार तभी होगा जब दोनों एक दूसरे की स्वस्थ आलोचना करेंगे। यह सक्रिय सहभागिता कही जा सकती है। कुछ गैर सरकारी संगठन विशेष

सामाजिक कुरीति / अनियमितता को दुरूस्त करने में प्रयासरत है और वे पुलिस से विरोध नहीं पालते। कुछ गैर सरकारी संगठनों का काम मात्र कटु आलोचना करना और विरोध करना ही है और उनकी भूमिका भी संदिग्ध होती है। वास्तव में गैर सरकारी संगठनों और पुलिस में प्रतिस्पर्धात्मक रवैया होना चाहिए। उनका दृष्टिकोण सकारात्मक और सुधारात्मक होना चाहिए। मीडिया आजकल तत्काल पुलिस अथवा गैर सरकारी संगठनों की छवि की भव्यता का उन्नयन कर सकते है और धूमिलीकरण भी। मीडिया का कार्य हर मुद्दे का सार्वजनीकरण करना बन गया है। मीडिया का कार्य रहस्य से पर्दा उठाना है यह सकारात्मक हो या नकारात्मक। इससे उसका कोई वास्ता नहीं है। मीडिया पुलिस को बदनाम कर सकता है।

17.4.5 पुलिस सहभागिता हेतु गैर सरकारी संगठनों के चयन मापदण्ड

पुलिस के सामने यह एक बड़ी दिक्कत है कि विभिन्न कार्यरत गैर सरकारी संगठनों में से किसी से सहभागिता हो। इसके मापदण्ड पुलिस ही तय करें। ये मापदण्ड निम्नांकित है

- स्थायित्वता का पाया जाना
- वे गैर सरकारी संगठन जो विधान सभा क्षेत्र में प्रमाणिक रूप से स्थापित हो।
- जो पुलिस को सहायता प्रदान कर सके।
- जिनमें सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना हो

गैर सरकारी संगठन विधिवत् रजिस्टर्ड हो और स्थायी हो तथा मुनाफा कमाने की आकांक्षा से प्रेरित न हो। इसके सुनिश्चित उद्देश्य हो। यह विश्वसनीय और लक्ष्यों के प्रति सचेत हो। यह दूरगामी प्रगति का पक्षधर हो। वह अपने एजेण्डा पर निर्बाध रूप से कार्य कर रहा हो तथा उसकी कार्य निष्ठा संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों इंटरनेशनल बिल ऑफ राइट्स तथा यूरोपियन कन्वेन्शन ओफ हयूमन राइट्स के अनुकूल हो। कुल मिलाकर वह विश्वसनीय संस्था हो। गैर सरकारी संगठन उस समाज के प्रति उत्तरदायी हो जिसके संरक्षण के लिए वह कृतसंकल्प है। वह अपनी गतिविधियों की वार्षिक रिपोर्ट प्रकाशित करें और हिसाब-किताब की ओडिट करवाये। वह नियमित रूप से अपनी गतिविधियों की समीक्षा करें और अपनी दुर्बलताओं / गलतियों को स्वीकारे। गैर सरकारी संगठन को चाहिए कि वह पुलिस बल को महत्व प्रदान करें जिससे वह मानवाधिकार संरक्षण का दृढ़ संकल्प ले सके।

17.5 पुलिस तथा गैर सरकारी संगठनों के मध्य प्रभावी सहयोग

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो गया है कि पुलिस तथा गैर सरकारी संगठन परस्पर सहभागिता का निर्वाह कर सकते है भले ही समय-समय पर एक दूसरे की आलोचना, शिकायत आदि हो सकती है परन्तु रवैया कुल मिलाकर व्यवहार में सकारात्मक रहे। पुलिस और गैर सरकारी संगठनों की सहभागिता राष्ट्रीय, क्षेत्रीय तथा स्थानीय स्तर की हो सकती है। सहभागिता का स्तर दोनों तरफ के उच्च प्रबन्धन अधिकारियों द्वारा मान्य होना चाहिए। इसमें व्यक्तिगत सम्बन्धों का कोई महत्व नहीं है।

प्रभावी सम्प्रेषण का तरीका - गैर सरकारी और पुलिस के बीच सकारात्मक सहभागिता के लिए विरोध मुक्त सान्ध्यि का तरीका अपनाया जाना ही उचित है। विमर्श के मुद्दे एजेण्डा में परस्पर सहमति से सम्मिलित किये जाना अपेक्षित है। इन पर सार्थक संवाद होना चाहिए। विमर्श के पश्चात् निर्णयों की जानकारी दोनों पक्षों को होनी चाहिए। पारदर्शिता इस कार्यवाही की शर्त होनी चाहिए। दोनों ही पक्ष पारदर्शिता के साथ अपने लक्ष्यों की ओर प्रगति का आकलन करें। यह नियमितरूप से किया जाना चाहिए। इससे गैर सरकारी संगठन और पुलिस कातालमेल तनाव मुक्त और सहज बना रहता है। अनर्गल आलोचना जो दोनों की स्वतंत्रता तथा विश्वसनीयता को आघात पहुँचाती हो कम से कम होनी चाहिए

यदि दोनों की सहभागिता के दौर में लक्ष्य की ओर प्रगति नहीं होती है तो सहभागिता का उपबन्ध ही समाप्त किया जा सकता है।

संसाधनों की सुविधाजनक उपलब्धता सहयोग और सहभागिता के लिए दोनों पक्षों को जरूरत है। यदि पर्याप्त संसाधन उपलब्ध नहीं हो तो कार्य में प्रगति बाधित होती है। इससे तो अच्छा है पुलिस और गैर सरकारी संगठन सहभागिता की बात ही न करें। ऐसी सहभागिता से जनता में गलत संदेश जायेगा। पुलिस द्वारा गैर सरकारी संगठनों को जो भुगतान प्रशिक्षण, ओडिट, या विशेषज्ञों से सम्पर्क के मदों पर दिया जाता है। यदि यह कार्य पारदर्शिता, खुलेरूप में, जवाबदेही के साथ किया जाता है तो गैर सरकारी संगठनों की विश्वसनीयता पर आँच नहीं आयेगी।

17.6 गैर सरकारी संगठन एवं पुलिस की मानवाधिकार सम्बन्धी समस्यायें एवं चुनौतियों

जब पुलिस मानवाधिकारों का उल्लंघन नहीं करती और मानवाधिकार हनन के विरूद्ध प्रभावी कार्यवाही करती है तो गैर सरकारी संगठनों और पुलिस के सम्बन्ध मधुर रहते है। समस्या तब खड़ी होती है जब पुलिस मानवाधिकारों का उल्लंघन करती है और दोषियों को दंडित नहीं करती। यदि पुलिस मानवाधिकार का अतिक्रमण करती है तो उसे इसके लिए जवाबदेह होना पड़ेगा। पुलिस के खिलाफ गैर सरकारी संगठनों को भी संघर्ष में उतरना पड़ेगा। इस स्थिति में गैर सरकारी संगठन और पुलिस की परस्पर सहभागिता बेमेल हो जायेगी। यदि गैर सरकारी संगठन दब कर पुलिस के साथ कार्य करता है तो जाहिर है कि वह पुलिस के अत्याचारों के विरूद्ध बोलने में असमर्थ है। गैर सरकारी संगठन और पुलिस में परस्पर सौहार्द्र और सहभागिता एक दूसरे पर निर्भर करते है। कुल मिलाकर बात यह है कि पुलिस की कार्यवाही पारदर्शी और साफ सुथरी हो। रोब और आतंक से कार्य करने वाली पुलिस गैर सरकारी संगठनों के लिए बाधक होती है।

पुलिस मानवाधिकारों का उल्लंघन भी कर सकती है और उचित संरक्षण भी। पुलिस की मानवाधिकार संरक्षण की शक्ति को ही गैर सरकारी संगठन द्वारा सक्रिय किया जाना है। आम आदमी और जनप्रतिनिधि भी भलीभांति पुलिस के कार्यो के प्रति अनजान है। गैर सरकारी संगठनों की पुलिस से सहभागिता से यह धारणा कि पुलिस की कार्यशैली में सुधार नहीं हो सकता कमजोर पड़ जायेगी। गैर सरकारी संगठनों के सामने यह चुनौती है कि वे पुलिस में सुधार के विरूद्ध निहित स्वार्थों का भंडाफोड़ करें।

17.7 गैर सरकारी मानवाधिकार संगठनों की प्रभावी कार्यशीलता की आवश्यक शर्तें

गैर सरकारी संगठन सफल नहीं हो सकते यदि वे पुलिस, जनता और सरकार द्वारा स्वीकार्य नहीं हो। विश्वसनीयता ही इसकी कसौटी है। गैर सरकारी संगठनों के द्वारा सूचनायें जुटाई जाती है। आवश्यकता इस बात की है कि गैर सरकारी संगठनों के पास इस कार्य के लिए प्रशिक्षित स्टाफ हो। उदाहरणार्थ एमनेस्टी इन्टरनेशनल के पास 300 विशेषज्ञ है। इतने ही यू.एन. कमीशन ऑफ जुरिस्टस के पास हैं। विश्वसनीयता और प्रामाणिकता एक दूसरे से सम्बन्धित हैं स्वतंत्रता दूसरी शर्त है। गैर सरकारी संगठन की पुलिसतंत्र में पहुँच होनी चाहिए। प्रतिनिधित्व गैर सरकारी संगठनों के प्रभावी कार्य करने की तीसरी शर्त है।

गैर सरकारी संगठन अपने क्षेत्र की जनता का अपने लक्ष्य के मुताबिक प्रतिनिधित्व करें -

1. उनमें इतनी सामर्थ्य हो कि वह दुर्गम स्थानों में भी पिछड़ो तक पहुँच सकें।

2. वे नवीन प्रयोग कर सके जो पुलिस द्वारा संभव न हो।
3. दरिद्र और प्रभाव ग्रस्तलोगों से उनका गहरा सम्पर्क हो।
4. गैर सरकारी संगठनों के पास कई हुनर हो।

17.8 अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर के गैर सरकारी मानवाधिकार संगठन एवं पुलिस व्यवस्था

कुछ अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर के ऐसे मानवाधिकार गैर सरकारी संगठन हैं जिन्होंने पिछले कुछ वर्षो में बहुत प्रतिष्ठा हासिल की है। उनमें से कुछ का वर्णन संक्षेप में नीचे किया जा रहा है।

एमनेस्टी इन्टरनेशनल (एमनेस्टी /A1) :-

एमनेस्टी इंटरनेशनल एक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का गैर सरकारी संगठन है जिसका मिशन मानवाधिकार हनन के अपकृत्यों को सक्रियता से रोकना और अध्ययन करना है तथा जहाँ-जहाँ भी मानवाधिकार का उल्लंघन हुआ हो, वहाँ-वहाँ न्याय की गुहार करना है। एमनेस्टी इंटरनेशनल की स्थापना जुलाई 1961 में श्रम-विधिवेत्ता पीटर बेनेन्सन ने लंदन में की। एमनेस्टी इन्टरनेशनल के उद्देश्यों में मुख्य मद हिंसा से सम्बन्धित वाक्यांश में निहित हैं। उनके अनुसार बन्दियों की दो श्रेणियाँ हैं - अन्तरात्मा के कैदी तथा अन्य कैदी जिनके लिए यह संस्था सक्रिय है। यदि कोई व्यक्ति हिंसा करने के कारण सजा भुगत रहा है, तो एमनेस्टी इन्टरनेशनल उसमें दखल नहीं देती। एमनेस्टी इंटरनेशनल प्रमुख रूप से उन पर ध्यान केन्द्रित करती है, जिन्हें किसी सरकार का समर्थन हासिल न हो अर्थात् नोन स्टेट एक्टर्स।

हयूमन राइटस वॉच :-

एक अन्तर्राष्ट्रीय गैर सरकारी संगठन हैं जो मानवाधिकारों का पक्ष लेता हैं तथा अध्ययन करता है। इसका मुख्यालय न्यूयार्क में है। इसकी स्थापना एक प्राइवेट अमेरिकन गैर सरकारी संगठन के रूप में 1978 में हुई।

हेलसिंकी वॉच

इसका मुख्य कार्य हेलसिंकी समझौते के मुताबिक पूर्व सोवियतरूस द्वारा मानवाधिकारों क संरक्षण की अनुपालना को व्यवस्थित करना था।

इन्टरनेशनल हयूमन राइट्स असोसियेशन (IHRA) :-

यह गैर सरकारी संगठन दलितों, पिछड़े, प्रभावग्रस्त लोगों की सेवा कर रहा है। इसका सपना है ऐसे निर्भय, समाज की स्थापना हो जो अहिंसा और ईमानदारी पर आधारित हो। जो शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व को जाति, धर्म, लिंगभेद से हट कर आश्वस्त करता हो। यह मानवाधिकारों के संरक्षण का प्रबल समर्थक हैं।

ब्रेकथ्रू : -

एक ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय गैर सरकारी संगठन हैं जो पोप कल्चर के जरिये मानवाधिकारों के उन्नयन में संलग्न है। ब्रेकथ्रू का मिशन व्यक्ति और समाज को मानवाधिकार संरक्षण के लिए समर्थ बनाना है। इस कार्य के लिए हृदय परिवर्तन और सोच में बदलाव लाने के लिए मल्टी-मीडिया की सहायता ली जा सकती है। यह मानवीय जीवन में गरिमा, लिंगाधारित समानता, सामाजिक न्याय का समर्थक हैं और इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए समाज को संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और भारत में सक्रिय और जागरूक करना है। इसके लिए विज्ञापन, संगीत, विडियो, कन्सर्ट्स तथा फिल्मों को माध्यम बनाया

जाता है। अमेरिका में ब्रेकथ्रू विदेशों से आकर बसे लोगों के मानवाधिकार, नस्लीय न्याय आदि के क्षेत्र में भी सेवारत है। भारत में इसका कार्य महिला अधिकार, महिला शिक्षा, घरेलू हिंसा की समाप्ति तथा HIV/AIDSके संदर्भ में चल रहा हैं।

कनफेडरेशन ऑफ हयूमन राइट्स ऑर्गनाइजेशन (CHRO):- एक गैर सरकारी संगठन है जिसका मुख्यालय केरल में है। यह केरल में नहीं सम्पूर्ण भारत में मानवाधिकार हनन पर निगाह रखता है। इसकी स्थापना 1997 में हुई। कन्फेडरेशन ऑफ हयूमन राइट्स ऑर्गनाइजेशन परम्परागत रूप से शोषित, प्रताड़ित, दलित और अभाव ग्रस्त आदिवासियों, अल्पसंख्य को, पिछड़ी जातियों, महिलाओं, बच्चों और राज्य में पीड़ितों की खबर लेती है। इसने इन पर व्यापक अध्ययन और शोध किया है और अन्य मानवाधिकार संगठनों की मदद से जानकारी प्रकाशित की है। इसकी हयूमन राइट्स वॉच से भी सहभागिता रही है। द हयूमन राईट्स डोक्यूमेन्टेशन सेन्टर का मुख्यालय दिल्ली में है। यह भी मानवाधिकार संरक्षण का पक्षधर गैर सरकारी संगठन है। इसके समान ही साउथ एशिया हयूमन राइट्स डोक्यूमेन्टेशन सेन्टर है जो, हयूमन राइट्स फीचर्स पत्रिका प्रकाशित करता है।

विजिल इंडिया मूवमेन्ट (विजिल इंडिया) :-

यह गैर सरकारी संगठन है जिसका मुख्यालय बंगलौर में हैं। यह भारत में मानवाधिकार संरक्षण का समर्थक है। 1977 में स्थापित, यह गैर सरकारी संगठन दलितों, आदिवासियों, बच्चों और महिलाओं की सेवार्थ समर्पित है। इसकी स्थापना डी.एम.ए. टोमस ने की जिसने ही एक्यूमेनिकल क्रिश्चियन सेन्टर की बंगलौर में 1963 में तथा असोसियेशन ऑफ क्रिश्चियन इन्स्टीटयूट फॉर सोशल कन्सर्न इन एशिया की भी स्थापना की। 1998 में ब्रिटिल इंडिया ने इन्स्टीटयूट ऑफ हयूमन राइट्स भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश एम.एन. वेकंटचलैया के साथ प्रारंभ किया। वेकट चलैया नेशनल हयूमन राट्स कमीशन के चेयरमेन भी थे। यह संस्था मानवाधिकार के कार्यकर्त्ताओं को प्रशिक्षण प्रदान करती है और इसकी बुनियादी शिक्षा उपलब्ध कराती है।

मानव अधिकार संग्राम समिति (MASS) आसाम में क्षेत्रीय गैर सरकारी संगठन है। यह 1991 में पराग कुमार द्वारा आसाम के कुछ बुद्धिजीवियों तथा पत्रकारों के साथ मिलकर स्थापित किया गया। इसके वर्तमान चेयरमेन अजीत कुमार अन है और इसका मुख्यालय बामुनिमोइउम, गुवाहाटी में है। यह गैर सरकारी संगठन मानवाधिकारों के संरक्षण एवं उन्नयन के लिए व्यापक स्तर पर सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में सक्रिय है। इसने जनता में मानवाधिकार चेतना का अलख जगाया है। इसने आसाम में, सेना, अर्धसैनिक बलों द्वारा तथा राज्य पुलिस द्वारा तथा कथित मानवाधिकार हनन को चुनौती दी है। कॉमनवेल्थ हयूमन राइट्स इनिशियेटिव (CHRI) 1987 में स्थापित हुआ इसका लक्ष्य यह है कि तमाम कॉमनवेल्थ देशों में व्यावहारिक रूप से मानवाधिकारों की अनुपालना हो। यही एकमात्र अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का गैर सरकारी संगठन है जो दक्षिणी देशों में कार्यरत है और इसका मुख्यालय भारत में है। इसने 1998 में एक पुलिस कार्यक्रम की शुरूआत की। इस कार्यक्रम के दो मुख्य तत्व हैं -

1. पुलिस के वातावरण को मद्देनजर, सुधार के लिए राष्ट्रीय स्तर पर योजनायें प्रारंभ की जायें।
2. राज्य स्तर पर पुलिस को मानवाधिकार के सम्बन्ध में प्रशिक्षण दिया जाये। इसके अलावा स्थानीय जनता का सशक्तिकरण हो और सक्रियता बढ़ाई जाये।

17.9 पुलिस एवं गैर सरकारी संगठन भारतीय अनुभव

गैर सरकारी संगठनों और पुलिस दोनों ही एक दूसरे को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। गैर सरकारी संगठनों को पुलिस अपने कार्य में अनावश्यक बाधा समझती है और उनके साथ सहभागिता

का निर्वाह करना उसे अप्रिय लगता है। पुलिस को अभी विकसित होना और परिपक्वता हासिल करना बाकी है जिससे वह गैर सरकारी संगठनों के सानिध्य में सक्रियता से व्यवस्थित हो सके। अधिकांश गैर सरकारी संगठन भी पुलिस की सहभागिता के प्रति सावधान रहते हैं। यह आम धारणा है कि पुलिस अधिकारी बहुत अहंकारी होते है तथा स्वयं सेवी सामाजिक ऐजेन्सियों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। अब दोनों ही पक्षों के रवैये में बदलाव दृष्टिगोचर हो रहा है पुलिस और गैर सरकारी संगठन एक दूसरे को सकारात्मक तरीके से स्वीकार कर रहे हैं। इस संदर्भ में कुछ अनुभव निम्नांकित हैं -प्रतिनिधि दिल्ली पुलिस की साझा सोसाइटी हैं और विकास की संस्था है जो समाज कल्याण और अपराध पीड़ितों के पुर्नस्थापना के लिए सेवारत है। यह अपनी तरह की देश की ऐसी प्रथम ऐजेन्सी है जो सम्पूर्ण निष्ठापूर्वक विकृति, दुर्घटना, हत्या, आत्महत्या, तथा घरेलू हिंसा के पीड़ितों की सहायता करती है। यह इन पीड़ितों को उचित सलाह, मेडीकल सहायता, विधिक परामर्श, तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण भी देती हैं क्योंकि इससे उनके सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और आर्थिक पुनर्स्थापन में मदद मिलती है।

गृहमंत्रालय ने UNAIDS की सहभागिता से चार क्षेत्रीय सम्मेलन आयोजित किये। इसका उद्देश्य गैर सरकारी संगठनों की सहगता से पुलिस के नोडल अधिकारियों की देखरेख में सभी राज्यों में HIV की कार्यक्रम का नीति निर्धारण करना था। गृहमंत्रालय के प्रयत्न से यह एक अवसर था जब पुलिस, चिकित्सा विभाग, AIDSनियंत्रण समिति के प्रतिनिधि एक साथ मिलकर HIVनिवारण हेतु सक्रियता से HIV निवारण ऐजेन्सियों / गैर सरकारी संगठनों के साथ सार्थक भूमिका निभाये तथा देह व्यापार, मादक द्रव्यों दुरूपयोग और यौनविकृतियों पर निगाह रखें। इस प्रकार कई समाज आधारित संगठनों ने पुलिस के सहयोग के महत्व को समझा है। इससे समाज के साथ कार्य करने को पुलिस प्रेरित हुई है। राजस्थान में कुसुम जैन जो ग्रामभारती समिति (GBS) - राजस्थान में एक गैर सरकारी संगठन से जुड़ी हैं - वेश्यावृत्ति में फंसी महिलाओं के HIV नियंत्रण के लिए सेवारत हैं। शुरू-शुरू में जब इस गैर सरकारी संगठन के कार्यकर्ताओं ने बदनाम बस्ती में कार्यशुरू किया तो उनके पीछे कुत्ते दौड़ाये गये। यह समझा गया कि ये लोग इनका देह-व्यापार का धंधा चौपट करने आये है। पुलिस की मदद ली गयी और समझाइश के बाद अब GBS के कार्यकर्ताओं ने विश्वसनीयता अर्जित कर ली है। कुसुम जैन कहती है कि पुलिस से भी उनका सौहार्दपूर्ण व्यवहार है।

वेश्यावृत्ति रोकने के लिए गैर सरकारी संगठनों और पुलिस ने मिलकर रांची के पालामु ततेहर क्षेत्रों में जोखिम उठा कर युवतियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम शुरू किया। सेन्ट्रल रिजर्व पुलिस फोर्स (CRPF), एक्शन अगेन्स्ट ट्राफिकिंग एड सेक्सुअल एक्सप्लाइटेशन ऑफ बिल्ड्रन (ATSEC) तथा भारतीय किसान संघ (BKS) ने 30 युवतियों के लिए तीन महीनें का प्रशिक्षण कार्य चलाया। ये युवतियाँ उन गाँवों से थी जो वेश्यावृत्ति के लिए बदनाम थे। इनमें से कुछ युवतियाँ वेश्यावृत्ति में फंस चुकी थी और कई के परिजन उसमें लिप्त थे। इस प्रशिक्षण में इन युवतियों ने अपने शारीरिक बचाव और आत्मरक्षा की तरकीबें सीखी। इस ट्रेनिग की समाप्ति पर CRPFडायरेक्टर जनरल ने यह घोषणा की कि प्रशिक्षण प्राप्त युवतियों को नौकरियों में भर्ती में प्राथमिकता दी जायेगी।

इस प्रकार के कार्यक्रम वेश्यावृत्ति रोकने में सहायक हैं। वेश्यावृत्ति में उन युवतियों का फंसना आसान हो जाता हैं क्योंकि जिनके पास किसी नौकरी या अन्य व्यवसाय की योग्यता नहीं है। यदि युवतियों को व्यवसायोन्मुखी प्रशिक्षण दिया जाये और प्राथमिकता के आधार पर नौकरियों में भर्ती किया जाये तो वेश्यावृत्ति पर काबू पाया जा सकता है।

राजस्थान सरकार ने गैर सरकारी संगठनों के माध्यम से महिलओं के विरूद्ध अच्याचारों की रोकथाम के लिए सुरक्षा केन्द्र महिलाथानों में 2010-11 में शुरू किये। इस तरह के केन्द्र विशाखा के

नाम से उदयपुर और बीकानेर जिलों में संचालित हैं। प्रतिष्ठित गैर सरकारी संगठन इन केन्द्रों से जुड़ना चाहेगे। ये केन्द्र जिले के पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट की देखरेख में चलते हैं। इसकी तिमाही रिपोर्ट जिला पुलिस एस.पी. को भेजी जाती है।

केन्द्र की गतिविधियाँ निम्नांकित हैं :-

1. प्राप्त शिकायतों का आंकलन तथा निर्देशन
2. घरेलू मामलों में परिजनों से संवाद
3. पीड़िता को शरण
4. पीड़िता को सुरक्षा
5. पीड़िता को संरक्षण
6. एफ. आई. आर. दर्ज करवाना
7. आर्थिक सहायता इत्यादि।

17.10 सारांश

गैर सरकारी संगठनों मानवाधिकारों के उन्नयन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे केवल पुलिस की गतिविधियों के सजग प्रहरी ही नहीं बल्कि वे एक श्रेष्ठ पुलिस सिस्टम विकसित करने में मदद होते है। दोनों की गतिविधियों में पारदर्शिता बढ़ते जाने से, पुलिस और गैर सरकारी संगठन एक दूसरे को सकारात्मक रूप से स्वीकार कर रहे हैं। गैर सरकारी संगठन भी निष्ठापूर्वक पुलिस की मदद कर रहे हैं और प्रशंसनीय सेवायें उपलब्ध करा रहे हैं। सहभागिता से काम करने से गैर सरकारी संगठन से सम्बन्धित अतिशयोक्तियाँ, सतही टिप्पणियां, भ्रामक धारणायें समाप्त हो जाती हैं। मानवाधिकार संरक्षण का काम बड़ा है जिसे अंजाम देने का बीड़ा गैर सरकारी संगठनों ने उठाया है। इसमें पुलिस की समाज के प्रति जवाबदेही और उत्तरदायित्व भी कम नहीं हैं : इसे नजर अन्दाज नहीं किया जा सकता।

17.11 शब्दावली

विधिक व्यक्तित्व	-	कानून का पक्षधर निर्वेयेक्तिक व्यक्तित्व
लीगल परसनेलिटी	-	विधिक दृष्टि से सुसंस)कृत नागरिक(
प्रोएक्टिव .	-	सक्रिय और उत्साहित
जुवनाइल डिलींक्वींसी	-	बाल अपचारिता /बालकों और किशोरों में अपराधिक व्यवहार एवं प्रवृत्ति
बाचडोग	-	अन्याय और अत्याचो विरूद्ध प्रहरी
आरबिटरेरी	-	निरंकुश स्वेच्छाचारिता
रेप्लीकेबिलिटी	-	नवीन प्रयोग सा अध्ययन करने की योग्यता जिसे पुनप्रस्तुत किया जा सके।
इन्क्लूसिविटी	-	सबको लिंग भेद, जाति, वर्ग, नस्ल, विकलांगता से परे समान रूप से सम्मिलित करने की नीति
रिहेबिलिटेशन	-	अपराधी को सुधार कर समाज में पुनर्स्थापन
अकाउन्टेबिलिटी	-	जवाब देही, उत्तरदायित्व
एक्स्ट्रा ज्यूडीशियल	-	सामान्य न्यायिक प्रक्रिया के अतिरिक्त कार्यवाही
ट्रान्सजेन्डर	-	हिजड़े, किन्नर

17.12 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. गैर सरकारी संगठन बेहतर सर्विस डिलीवरी देने में किस प्रकार पुलिस के मददगार हो सकते है?
2. सक्रिय पुलिस व्यवस्था में गैर सरकारी संगठनों की भूमिका समझाइये।
3. पुलिस के साथ गैर सरकारी संगठनों की सहभागिता क्यों आवश्यक है?
4. गैर सरकारी मानवाधिकार संगठनों की पुलिस से सहभागिता क्यों उचित है जबकि पुलिस ही अधिकतर मानवाधिकार हनन की दोषी होती है?
5. पुलिस के साथ सहभागिता से गैर सरकारी संगठनों को क्या-क्या खतरे हैं?
6. गैर सरकारी संगठनों के साथ कार्य करने में पुलिस को क्या हानि हो सकती है?
7. गैर सरकारी संगठनों तथा पुलिस मिलकर किस प्रकार प्रभावी ढंग से कार्य कर सकते हैं?
8. वे कौनसे क्षेत्र हैं जिनमें गैर सरकारी संगठनों तथा पुलिस सहभागिता से अच्छे कार्य किये जा सकते है?
9. क्या आप मानते हैं कि गैर सरकारी संगठन अपने मिशन में प्रभावी साबित हुए है?

17.13 संदर्भ ग्रन्थ

वेडेकुमचेरी,- जेम्स - हयूमन राइट्स एण्ड द पुलिस इन इंडिया)APH पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली -199(6

सिंह, एम.पी . - पुलिस प्रोब्लम्स एंड डिलेमाज इन इंडिया मित्तल पाब्लेकेशन्स),दिल्ली - 1989(

सिंह, नगेन्द्र - हू युम्न राइट्स एंड द फ्यूचर ऑफ मेनकाइंड बेनिट)भ बुक्स,दिल्ली -1981(

होलोवे रिचर्ड - एन.जी.ओकरप्शन फाइटर्स रिसोर्स बुक .

डंगवाल, परमेश - आई डेयर किरण :बेदी - संगम बुक दिल्ली) अ बायोग्राफी :2001(

बेण्डेल, जेम - डिबेटिंग गैर सरकारी संगठन अकाउन्टेबिलिटी गैर सरकारी संगठन), 2006 (पब्लिश्ड बाई यूनादूटेड नेशन्स

सिंह, दीपा - हयूमन राइट्स एंड पुलिस प्रोडिकामेन्ट द ब्राइट)लॉ हाउस, दिल्ली 2002)

बेडेकुमचेरी, जेम्स - हयूमन राइट्स फेन्डली पुलिसए मिथ और रियेलिटी :(APH पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली -2000)

बेदी, किरण - इंडियन पुलिस एनस्टर्लिंग पब्लिशर्स) .सी.आई., दिल्ली -2008(

इकाई- 18

पुलिस हिरासत में हिंसा एवं शारीरिक यातना विरोधी अधिनियम

इकाई संरचना

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 पुलिस अधिकरियों के लिए आचार संहिता

18.3 पुलिस हिंसा के आयाम

18.4 यातना की परिभाषा

18.5 हिरासत में यातना/हिंसा

18.6 हिरासत यातना में मृत्यु: तथाकथित आत्महत्या

18.7 हिरासत यातना में मृत्यु: तथाकथित मेडिकल जटिलतायें

18.8 हिरासत में महिलाओं को यातना

18.9 हिरासत में बालकों को प्रताड़ना

18.10 रिश्वत न देने पर यातना

18.11 दंड के जोखिम का न होना

18.12 यातना के विरूद्ध विधिक हस्तक्षेप

18.13 हिरासत में यातना के विरूद्ध समाधान

18.13.1 विधिक प्रणाली

18.13.1.1 संवैधानिक सुरक्षात्मक उपाय

18.13.1.2 भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872

18.13.1.3 क्रिमिनल प्रोसीजर कोड 1973

18.13.1.4 भारतीय दंड संहिता, 1860

18.13.2 पूर्ववर्ती न्यायिक फैसले

18.13.2.1 अन्य प्रामाणिक स्रोत

18.14 आपराधिक संज्ञान की सीमा

18.15 अभियोजन की अनुमति

18.16 हिरासत में हिंसा और क्षतिपूर्ति का अधिकार

18.17 सारांश

18.18 अभ्यासार्थ प्रश्न

18.19 संदर्भ

18.0 उद्देश्य

इस इकाई के उद्देश्य निम्नांकित हैं-

- पुलिस अधिकारियों के लिए विशेष आचार संहिता से अवगत कराना।
- यातना की परिभाषा एवं हिरासत में यातना के कारणों का अध्ययन करना।
- हिरासत में यातना के विरूद्ध उपाय एवं आपराधिक संज्ञान की सीमा के बारे में जानकारी देना।
- हिरासत में हिंसा के विरूद्ध क्षतिपूर्ति के अधिकार की जानकारी देना।

18.1 प्रस्तावना

विधि के नियमों से शामिल लोकतंत्रात्मक देश में हिरासत में हिंसा एक हकीकत है। प्रजातांत्रिक देश में, संविधान द्वारा प्रदत्त नागरिक अधिकारों की रक्षा करने में पुलिस की महत्वपूर्ण भूमिका है। अक्सर यह आरोप लगाया जाता है कि पुलिस अधिकारी अपनी शक्तियों का अतिक्रमण करते हैं और तफ्तीश के दौरान शारीरिक यंत्रणा देना एक दस्तूर हो गया है। कतिपय चिन्तकों के मतानुसार गरीब लोग, अभावग्रस्त वर्ग के लोग महिलायें और राजनीतिक कार्यकर्त्ता पुलिस की क्रूरता के शिकार होते हैं।

18.2 पुलिस अधिकारियों के लिए आचार संहिता

विधिक नियमों के अतिरिक्त कर्तव्य और उत्तरदायित्व के संदर्भ में पुलिस अधिकारी विशेष आचार संहिता से प्रतिबद्ध हैं। यह आचार संहिता केन्द्र सरकार द्वारा तैयार की गयी है। सरकार इस तथ्य से वाकिब है कि अधिकारी कानून के तहत कार्य निष्पादित करते हैं बहुत शक्तिशाली हो जाते हैं। इसलिए राज्य का फर्ज है कि वह नागरिकों के लिए शान्त और निर्भय वातावरण का होना सुनिश्चित करें क्योंकि पुलिस के व्यवहार से व्यक्ति और समाज का जीवन प्रभावित होता है।

सन् 1960 में, पुलिस महानिरीक्षकों के सम्मेलन में, इस संहिता को व्यावहारिक रूप में स्वीकार किया गया। (डिप्टी सेक्रेटरी, गृह मंत्रालय द्वारा पत्र सं. VI-24021/97/84-जीपीए दिनांक 4 जुलाई 1985 के द्वारा विभागों की जानकारी हेतु परिसंचालित किया गया।) इसी के कुछ प्रासंगिक अंश यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं। उपर्युक्त आचार संहिता के पूर्ण पाठ के अध्ययन हेतु देखें। (कम्पेडियम ऑफ गाइडलाइन्स इश्यूड बाई दी गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऑन द फंक्शनिग ऑफ स्टेट पुलिस, जी.ओ.आई.बी.पी.आर एण्ड डी., नई दिल्ली, 1995 पृष्ठ 1/पुलिस ऑर्गनाइजेशन इन इंडिया (सम बेसिक इन्फर्मेशन) कोमनवेल्थ हयूमन राइट्स इनिशियेटिव न्यू देहली, 2002 पृ. 24-26)

नेशनल पुलिस कमीशन द्वारा इसका अन्तिम रूपेण अनुशंकित ड्राफ्ट भारत सरकार द्वारा स्वीकृत हुआ तथा सभी राज्य सरकारों के हित में 1985 में जारी किया गया। इसके मुताबिक पुलिस का मुख्य कर्तव्य अपराधों की रोकथाम और शान्ति व्यवस्था कायम करना है। पुलिस की दक्षता का मापदंड यही है कि समाज में न तो जुर्म हो न अव्यवस्था हो। फिर जाहिरा तौर पर पुलिस एक्शन के प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं होगी। इस वजह से आग्रह पुलिस द्वारा जुर्म की रोकथाम वाले पक्ष से है। यह अवधारणा है कि सामाजिक जीवन में अशान्ति होना पुलिस की असफलता है। शान्ति और व्यवस्था कायम करने के लिए पुलिस समझाइश, सलाह और चेतावनी जैसे व्यावहारिक उपायों का इस्तेमाल करें। समाज की मानसिकता के मद्देनजर उपर्युक्त आचार संहिता पुलिसकर्मियों को यह स्मरण कराती है कि धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक राज्य के सदस्यों के रूप में व्यक्तिगत कुंठाओं और दुराग्रहों से ऊपर उठकर धार्मिक, भाषायी, आंचलिक क्षेत्रीय, वर्गगत भेदभाव को छोड़कर भाईचारे की भावना का और एकजुटता का संदेश प्रदान करें और उन गतिविधियों को त्याग दें जिनसे महिलाओं और समाज के दुर्बल वर्ग की इज्जत पर आँच आती हो। पुलिस नागरिकों के गरिमामय जीवन की पक्षधर हो।

18.3 पुलिस हिंसा के आयाम

- यातना (अ) मानसिक (ब) भौतिक
- लिंग / सैक्स आधारित प्रताड़ना
- बलात्कार

- मृत्यु

टोर्चर इन इंडिया सीरीज ने भारत में हिंसा और देहिक यंत्रणा के मद पर व्यापक रूप से प्रकाश डाला है। अब तक भी भारत सरकार शारीरिक यंत्रणा और हिंसा की मनोवृत्ति को खत्म नहीं कर पाई है। मात्र 4 वाक्यांशों में, सन् 2008 में देहिक यंत्रणा विरोधी बिल लाया गया। एशियन सेन्टर फॉर हयूमन राइट्स ने वैकल्पिक तौर पर 24-25 जून 2009 को आयोजित राष्ट्रीय सम्मेलन में 'देहिक यंत्रणा विधेयक 2009 ' प्रस्तुत किया। जब 6 मई 2010 में लोकसभा ने प्रीवेन्शन ऑफ टोर्चर बिल प्रस्तुत किया तो भारत सरकार यह विधेयक राज्यसभा की संसदीय चयन समिति को सोंप दिया, जिसकी अध्यक्षता अश्विनी कुमार, योजना के राज्यमंत्री अश्विनी कुमार ने की। प्रीवेन्शन ऑफ टॉर्चर विधेयक 2010 जो संसदीय चयन समिति द्वारा कतिपय अनुशंसाओं के साथ एशियन सेन्टर फॉर हयूमन राइट्स द्वारा गठित नेशनल कान्फ्रेन्स द्वारा स्वीकृत हुई।

जैसा कि इस रिपोर्ट से संकेत मिलता है, चार से ज्यादा लोग हर दिन 2001 से 2010 के दशक में मारे जा चुके हैं। इसी प्रकार के तथ्यों का पता टोर्चर इन इंडिया 2008: ए स्टेट ऑफ डिनायल से लगा और यह राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय खबर हो गयी। इससे साफ जाहिर है भारत में देहिक यंत्रणा की घटनाओं में कमी नहीं हुई है।

18.4 यातना की परिभाषा

प्रवेन्शन ऑफ टोर्चर बिल 2010 में धारा 3 के अन्तर्गत प्रावधान है कि कोई भी व्यक्ति जो स्वयं लोक सेवक है या लोक सेवक द्वारा उकसाया जाता है या उसकी सहमति से और आज्ञा की अनुपालना में जानबूझ कर किसी अन्य व्यक्ति से कोई अपराध कबूल करवाने हेतु अथवा कोई जानकारी हासिल करने हेतु

(i) चोट पहुँचाता है या

(ii) उसके जीवन, स्वास्थ्य या शारीरिक अवयवों को खतरा उत्पन्न करता है, मानसिक या देहिक रूप से आहत करता है तो यातना देता है।

यह प्रावधान है कि किसी कानून या नियम की आड़ में किसी को चोट पहुँचाने, खतरनाक तरीके से पेश आने या शारीरिक कष्ट देने की कार्यवाही को उचित नहीं ठहराया जा सकता।

इस संदर्भ में भारतीय दंड संहिता की धारा 21 के अंतर्गत लोक सेवक से तात्पर्य किसी भी राज्य सरकार या केन्द्र सरकार के अधिकारी से है जो कार्य निष्पादन के लिए अधिकृत हो।

18.5 हिरासत में यातना / हिंसा

पुलिस हिरासत में मृत्यु, यातना, बलात्कार घोर चिन्ता के विषय हैं। पिछले दो दशकों से हिरासत में हिंसा के मामले नागरिक अधिकारों के संगठनों के कार्यक्रमों पर छाये रहे हैं तथा वे सब रिपोर्ट्स इत्यादि जिनमें हिंसा के मामलात दर्ज है और जिनमें इस प्रकार की घटनायें जो पुलिस के लिए दस्तूर हो गयी हैं, हिरासत में हिंसा की वारदात के खिलाफ अभियानों में सशक्त माध्यम बन गयी है। हालांकि राज्य सरकारें भी इस तथ्य को स्वीकार करती हैं फिर भी राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने राज्यों को निम्नांकित निर्देश जारी किये है :

24 घंटों के अन्दर-अन्दर हिरासत में मृत्यु की घटना की रिपोर्ट राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को प्रस्तुत की जावे।

शव-परीक्षण कार्यवाही का विडियोटेप तैयार किया जावे अभी यह आंकलन करना कठिन है कि क्या इन निर्देशों के मद्देनजर हिरासत मे मृत्यु के मामलों मे कमी आयी है या नहीं। राष्ट्रीय मानवाधिकार

आयोग की रिपोर्ट्स के अनुसार प्रतिवर्ष हिरासत में मृत्यु के रिपोर्टेड मामलात में बढ़ोतरी हुई है। इसका कारण उपर्युक्त आयोग द्वारा यह बताया गया है कि ऐसे अपराधों की नहीं बल्कि प्रेषित रिपोर्ट्स की संख्या में वृद्धि हुई है। यद्यपि इस संदर्भ में और भी पड़ताल करने की जरूरत है।

जुर्म कबूल करवाने के लिए पुलिस हिरासत में यातना / हिंसा जो मारपीट से लेकर मृत्यु तक किसी भी तरह की घटना हो सकती है तथा साक्ष्य की तोड मरोड़ पुलिस के लिए कोई असामान्य बात नहीं है। जबकि आपराधिक न्याय की परिधि में शालीन और सभ्य प्रशासन के दृष्टिकोण का विकास हो रहा है, पुलिस का तफ्तीश करने और जुर्म कबूल करवाने का तरीका व्यक्ति के मानवीय अधिकारों को दरकिनार करता है और उसकी गरिमा को अपमानित करता है तथा वह उन लोगों के द्वारा अप्रत्याशित हिंसा और यंत्रणा का शिकार होता है जिनसे उसे रक्षा की उम्मीद अपेक्षित होती है।

भारत जैसे देश में जहाँ कानून और व्यवस्था की भावना सब कार्यो में अन्तर्निहित हो, जहाँ जीवन के अधिकार और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को प्रमुख मूलभूत अधिकारों में माना जाता हो, गैरकानूनी तरीके से हिरासत में लिए गये या रिमाण्ड पर रोके गये संदिग्ध आरोपियों के साथ हिंसा और यातना पर उतारू होना, पुलिस प्रशासन को कलंकित और बदनाम करता है। इस अवसादपूर्ण परिदृश्य में मानवीय अधिकारों का कोई महत्व नहीं रह जाता। अधिकतर तफ्तीश चुनिन्दा पुलिस अधिकारियों की यह धारणा है कि जब तक आरोपी पर जबरदस्त दबाव न हो, वह जुर्म को कबूल नहीं करता। सुप्रीम कोर्ट के भूतपूर्व जज वी.आर. कृष्णा अय्यर ने कहा है कि पुलिस हिरासत में हिंसा / यातना आतंकवाद से भी बदतर स्थिति है क्योंकि राज्य की शक्ति की शह इसके पीछे है।

जुर्म की तफ्तीश का फूहड़पन साक्ष्य के अपरिष्कृत होने के कारण माना जाता है। वैज्ञानिक उपकरणों की कमी तथा अन्वेषण में प्रशिक्षित स्टाफ की कमी के कारण जाँच पड़ताल उचित ढंग से नहीं हो पाती। माना कि यह भी एक कारक है-परन्तु यह प्रमुख कारक नहीं है। मुख्य समस्या तो यह है कि यातना का पीड़ित शिकार बरसों प्रतीक्षा करता है किसी दिन कोई जज उसके मामले पर कार्यवाही करेगा, परन्तु इस अर्से में क्रूर करतूत करने वाले की पदोन्नति हो जाती है और न्याय की अवधारणा ही दरकिनार कर दी जाती है।

पुलिस हिरासत में यातना मानवीय अधिकारों के साथ व्यापक और क्रूरतम खिलवाड़ है। भारत का संविधान, सुप्रीम कोर्ट, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग इत्यादि इसका निषेध करते हैं। परन्तु पुलिस इन संस्थाओं को तवज्जौ नहीं देती। इसलिए यह निहायत जरूरी है कि सामाजिक हितों और मानवाधिकारों के बीच समन्वयन कायम रखते हुए यथार्थ के धरातल पर जुर्म से संघर्ष किया जावे (जोगेन्दर कुमार बनाम उत्तर प्रदेश सरकार (1944) 4 एस.सी.सी. 260)

18.6 हिरासत यातना में मृत्यु: तथाकथित आत्महत्या

कई मामलात में पुलिस यह दावा करती है कि आरोपी ने हिरासत में आत्महत्या कर ली। आत्महत्या के इस अतिवादी कदम के रहस्य पर कभी पर्दा नहीं उठता: यह रहस्य ही बना रहता है कि जूतों के फीतों से, कम्बल और जीन्स की सहायता से आरोपियों द्वारा कैसे आत्महत्या की जा सकती है। यह भी कभी पुलिस द्वारा खुलासा नहीं किया जाता कि हिरासत में जहर, ड्रग, बिजली के तार, कैसे उपलब्ध हुए

18.7 हिरासत यातना में मृत्यु: तथाकथित मेडीकल जटिलतायें

अधिकतर पीड़ित आरोपी जो गिरफ्तारी के पूर्व स्वस्थ और प्रसन्नचित्त थे, गिरफ्तारी के बाद बीमार हो गये और मेडीकल जटिलता के कारण हिरासत में उनकी मौत हो गयी। हकीकत यही है कि

हिरासत में उनको घोर यातनायें दी जाती हैं और हत्या तक कर दी जाती है तथा चिकित्सकों की मिलीभगत का लाभ लेते हुए, मृत्यु को मेडीकल जटिलता के रूप में परिभाषित कर पुलिस बच निकलती है।

18.8 हिरासत में महिलाओं को यातना

भारत में पुलिस हिरासत में महिलाओं के साथ र्दुव्यवहार एवं बलात्कार के मामले प्रकाश में आते रहते हैं। कानून के रक्षकों द्वारा हिरासत में बलात्कार निकृष्टतम यातना है। पुलिस की गिरफ्त में आने के बाद महिला प्रकृति से दुर्बल है। यौन शोषण के कारण यातना की अति से हिरासत में महिलाओं की मृत्यु हो जाती है।

18.9 हिरासत में बालकों को प्रताड़ना

पूरे भारत में, बाल न्याय (बाल सुरक्षा एवं संरक्षण) अधिनियम 2000 के 2006 में संशोधित किये जाने के बाद भी इसका कार्यनिष्पादन उचित तरीके से नहीं हो रहा है। उपर्युक्त अधिनियम के अनुसार बाल-अपचारी को सुरक्षा एवं संरक्षण की जरूरत है और यह अधिनियम उसके अधिकारों की रक्षा करता है। परन्तु इस अधिनियम के ठीक से व्यवहार में न लाने की वजह से बालकों को गैरकानूनी तरीके से हिरासत में लिया जाता है या बन्दी बना लिया जाता है और उन्हें यातनायें दी जाती हैं।

18.10 रिश्वत न देने पर यातना

यदि आरोपी पुलिस द्वारा रिश्वत की मांग पूरी करने में असमर्थ होते हैं उन्हें यातना दी जाती है। वर्ष 2010 के दौरान राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा ऐसे अनेक मामले दर्ज किये गये। (संदर्भ ए.सी.एच.आर. रिपोर्ट 2010)

18.11 दण्ड के जोखिम का न होना

भारतीय दंड संहिता, 1973 की धारा 197 के तहत पुलिस कार्यवाही / अभियोजन के लिए सरकार की पूर्वानुमति लेनी पड़ती है। इस आशय का आर्म्ड फोर्सेज स्पेशल पॉवर्स अधिनियम भी 1958 है। प्रोटेकान ऑफ हयूमन राइट्स एक्ट की धारा 19 के मुताबिक राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग यातना पीड़ितों के मामलात की तफ्तीश नहीं कर सकता, न ही वह सशस्त्र बलों द्वारा मानवाधिकारों के उल्लंघन की जाँच पड़ताल करने में सक्षम है। परिणामस्वरूप राज्य सरकारें अनिवार्य रूप से हिरासत में मृत्यु, बलात्कार और मुल्जिम के फरार होने की घटनाओं में विधिक पूछताछ का आदेश नहीं देती जैसा कि भारतीय दंड संहिता की धारा 176 में प्रावधान किया गया है।

18.12 यातना के विरूद्ध विधिक हस्तक्षेप

कानून के निष्पादन करने वाले अधिकारियों द्वारा गैरकानूनी हत्याओं और यातनाओं के विरूद्ध निर्णयों में भारतीय न्यायपालिका की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भारत में यातना पीड़ितों की क्षतिपूर्तिके बारे में कोई कानून नहीं है। इसलिए कर्तव्यारूढ लोक सेवकों को अपने दुष्कृत्यों के कारण दंडित किये जाने का भय नहीं है। लेकिन न्यायालयों ने पीड़ितों को मुवावजा दिलाया है और आरोपियों के विरूद्ध फिर से सी.बी.आई. द्वारा तफ्तीश कराये जाने के आदेश दिये हैं। (संदर्भ-एन.एच.आर.सी. एण्ड ए.सी.एच.आर. रिपोर्ट)

18.13 हिरासत में यातना के विरूद्ध समाधान

हिरासत में यातना और इसके फलस्वरूप मृत्यु के विरूद्ध प्रावधान दो प्रकार के दृष्टिकोणों से प्रस्तावित हैं- 1. विधिक प्रणाली 2. न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों के आधार पर इन्हें निम्न प्रकार से समझाया जा सकता है।-

18.13.1विधिक प्रणाली

18.13.1.1 संवैधानिक सुरक्षात्मक उपाय

कई न्यायालयों के फैसलों में यह तथ्य उभर कर आया है कि कोई व्यक्ति जब हिरासत में हो गिरफ्तार किया गया हो या पूछताछ के लिए पुलिस थाने में रोका गया हो तो उसके मूलभूत अधिकारों से उसे वंचित नहीं किया जा सकता और इनके उल्लंघन की स्थिति में वह दोषी के खिलाफ संविधान की धारा 32 के तहत सुप्रीम कोर्ट में जा सकता है। हिरासत में व्यक्ति के मूलभूत अधिकार छीने नहीं जा सकते। (प्रभाकर पांडुरंग बनाम महाराष्ट्र सरकार, ए.आई.आर. 1966 एस.सी. 424, डी.बी. मोहन पटनायक बनाम आन्ध्र प्रदेश सरकार, ए.आई.आर. 1971 एस.सी. 2092)

पुलिसकर्मी बन्दी बनाये गये व्यक्ति को छोड़कर भाग नहीं सकते भले ही हिरासत की सीमा बहुत सकड़ी हो सकती है। (सुनील बत्रा (II) बनाम दिल्ली प्रशासन (1980) 2 एस.सी.आर. 557)

परन्तु बन्दीगृह इतना संकड़ा भी न हो कि बन्दी को जानवर की तरह उसे ठूँस दिया जावे और उसे यातना झेलनी पड़े।

धारा 9(5): क्षतिपूर्ति का मानव अधिकार

कोई भी व्यक्ति जिसे गैरकानूनी ढंग से गिरफ्तार किया गया हो या रोका गया हो, उसे क्षतिपूर्तिका बाध्यकारी हक है। (रूडालशाह बनाम बिहार सरकार)

धारा 10(1) वे सभी व्यक्ति जो हिरासत में हों, शालीनता और विनम्रता के व्यवहार के हकदार हैं क्योंकि वे भी इन्सान होते हैं। (मेनका गाँधी बनाम भारत सरकार)

धारा 10,2(1): आरोपी जो पूछताछ के लिए रोके गये हों, उन्हें अन्य कैदियों से सिवाय अपवाद स्वरूप परिस्थिति के पृथक रखा जाना चाहिए तथा उनके जीवन स्तर के अनुरूप उनके साथ बर्ताव होना चाहिए, क्योंकि वे सजायाफ्ता नहीं हैं। (सुनील बत्रा II बनाम दिल्ली प्रशासन)

धारा- 14. त्वरित कार्यवाही का अधिकार

सभी व्यक्ति न्यायालयों एवं प्राधिकरणों के समक्ष समान हैं। किसी भी व्यक्ति के विरूद्ध आपराधिक आरोप तय करते वक्त उसके अधिकार और कर्तव्यों को ध्यान में रखते हुए उसकी निष्पक्ष सुनवाई समर्थ, निष्पक्ष, न्याय सम्मत प्राधिकरण द्वारा की जानी चाहिए, जिसका वह हकदार है। धारा 14,3(4) इसके तहत बन्दियों को निशुल्क विधिक सहायता का प्रावधान है। (खत्री बनाम बिहार सरकार)

यह उस न्यायालय का जिसमें आरोपी पर अभियोग दर्ज है इत्तला देना कर्तव्य है कि उसे निशुल्क विधिक सहायता प्राप्त करने का हक है और यदि वह चाहे तो अपनी पसन्द का वकील चयन कर सकता है।

धारा 19(1) अभिव्यक्ति और भाषण की स्वतंत्रता का अधिकार

(ओ. राजगोपाल बनाम तमिलनाडु सरकार)

स्वास्थ्य का अधिकार (वीणा सेठी बनाम बिहार सरकार)

धारा 19(1)(a) के तहत व्यक्ति को भाषण एवं अभिव्यक्ति का अधिकार है। प्रो. राज गोपाल बनाम तमिलनाडु सरकार (आंटोशंकर अभियोग) पत्थर मार कर अनेक हत्यायें करने वाला एक अभियुक्त था, जो पुलिस और अपराधियों के सम्बन्धों, मदद के रवैये आदि का भंडाफोड़ करने के लिए अखबारों में कई लेख लिखना चाहता था। हालाँकि वह जेल में था पर उसे विचारों की अभिव्यक्ति का हक उपर्युक्त निर्णयों के तहत हासिल था।

धारा 20(1) यह धारा एक ही अपराध पर सजा का दुबारा प्रावधान का निषेध करती है।

(2) कोई भी व्यक्ति एक ही अपराध के कारण न तो दुबारा दंडित किया जा सकता है न उस पर दुबारा अभियोग चलाया जा सकता है।

(3) यह भी कानूनी प्रावधान है कि जिन लोगों पर अभियोग चल रहा हो उन्हें जेल अथवा पुलिस अधिकारी ऐसे किसी साक्ष्य के लिए जबरदस्ती दबाव नहीं डाल सकते, जिसके कारण आपराधिक राज खुल सकते हों।

धारा 21: इस धारा को भारतीय न्यायपालिका में आरोपी /अभियुक्त को यातना से मुक्त करने वाला उपाय समझा गया है। इसकी मूल धारणा यह है कि जीवन का अधिकार का आशय जानवर की सी जिन्दगी से नहीं बल्कि इंसान की गरिमामयी जिन्दगी से है। धारा 21 में जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता से तात्पर्य राज्य और उसके कारिन्दों द्वारा यातना, हिंसा और आक्रामकता के विरूद्ध गारंटी है। जो व्यक्ति हिरासत में हो उसकी सुरक्षा हेतु इससे बढ़कर और क्या प्रावधान हो सकता है जो राज्य सरकार की दुर्बलताओं के विरूद्ध कवच का काम करे। (डी.के. बसु बनाम पश्चिम बंगाल सरकार (1997) 1 एस.सी.सी. 416)

धारा-22: यह धारा कुछ मामलों में हिरासत एवं गिरफ्तारी के विरूद्ध बचाव करती है।

धारा 22 में यह प्रावधान किया गया है कि कोई भी व्यक्ति बिना इत्तला दिये न तो हिरासत में लिया जा सकता है न गिरफ्तार किया जा सकता है।

- व्यक्ति को हक है कि उसे गिरफ्तारी से पूर्व कारणों से अविलम्ब अवगत कराया जावे।
- उसे हक है कि वह अपनी पसन्द के वकील का पेरवी हेतु चयन कर सके।
- उसे गिरफ्तारी हिरासत के 24 घंटों के अन्दर-अन्दर मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जावे तथा उसके आदेश के बगैर इससे अधिक अवधि तक हिरासत में नहीं रखा जावे। गिरफ्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट के मुख्यालय तक की यात्रा का समय उपर्युक्त 24 घंटों में सम्मिलित नहीं है।
- जो आरोपी आर्थिक रूप से सक्षम नहीं है, उसके लिए निःशुल्क विधिक सहायता उपलब्ध कराये जाने का प्रावधान है।

धारा 25(1): इसके तहत अन्तःकरण की स्वतंत्रता, व्यवसाय की स्वतंत्रता, धर्म के अनुष्ठान, कर्मकाण्ड की स्वतंत्रता है। बन्दियों को भी धार्मिक स्वतंत्रता है।

धारा 39(A) राज्य के निर्देशक तत्व नागरिक को समान रूप से न्याय और विधिक सहायता की अनुमति देते हैं। निशुल्क विधिक सहायता निशक्तजनों तथा महिलाओं को भी उपलब्ध कराये जाने का प्रावधान है।

18.13.1.2 भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872

कोई भी स्वीकारोक्ति जो पुलिस अधिकारी के समक्ष किसी आरोपी के विरूद्ध किसी भी अपराध के सम्बन्ध में जबरदस्ती शारीरिक यातना के भय से या धमकी देकर करवायी जाती है, वह न्यायालय में आपराधिक अभियोजन में अप्रासंगिक है जैसा कि धारा (24) में उल्लिखित है। भारत में इस तरह

हिरासत में यातना का खुलेतौर पर विधिक निषेध तो नहीं है परन्तु जो साक्ष्य गैरकानूनी तरीके से जिसमें शारीरिक यातना भी शामिल है जुटाया गया है तो न्यायालय में स्वीकार्य नहीं है।

18.13.1.3 क्रिमिनल प्रोसीजर कोड 1973

क्रिमिनल प्रोसीजर कोड 1973 के पाँचवे अध्याय धारा 41 सी.आर.पी.सी. में बिना वारन्ट के पुलिस किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकती है। यह गिरफ्तारी कैसे की जाये इसका प्रावधान धारा 46 सी.आर.पी.सी. 47 में वर्णित है। गिरफ्तार किये जाने वाले व्यक्ति के स्थान का पता लगाकर धारा (50) के मुताबिक उसकी गिरफ्तारी के कारणों की उसे इत्तला दी जावे और उसके जमानत कराने के अधिकार से अवगत कराया जावे। धारा (51) सी.आर.पी.सी. के तहत तलाशी ली जावे। तत्पश्चात् धारा (54) सी.आर.पी.सी. के तहत उसका डाक्टरी मुआयना किया जावे। धारा (56) सी.आर.पी.सी. के तहत जिस आरोपी को पुलिस ने बिना वारन्ट गिरफ्तार किया है; जमानत की कार्यवाही हेतु मजिस्ट्रेट के समक्ष 24 घंटों के अन्दर-अन्दर पेश किया जाये। धारा (167) सी.आर.पी.सी. अध्याय 11 के तहत मजिस्ट्रेट के विशेष आदेश के बगैर आरोपी को हिरासत में नहीं रखा जावे। बिना वारन्ट गिरफ्तारी का परिप्रेक्ष्य संज्ञानीय अपराध के सिलसिले में होता है। संज्ञानीय अपराध में ही बिना वारन्ट आरोपी को हिरासत में लिया जाता है।

धारा (50 से 56) सी.आर.पी.सी. तथा नियम 22 धारा 54 में हिरासत में हिंसा, मारपीट और यातना का विवेचन है। इसके तहत बन्दी द्वारा पुलिस के दुर्व्यवहार (हिंसा /यातना) का आरोप लगाया जाता है तो मजिस्ट्रेट से अपेक्षा की जाती है, उसका डाक्टरी मुआयना कराया जावे और उसकी रिपोर्ट परिणाम और कारण सहित प्रस्तुत की जावे। ए.के. सहदेव बनाम रमेश ननजीशाह 1998 सी.आर.एल.आई. 2645 at 2650 (मुम्बई)

आरोपियों को अधिकार है कि वे न्यायालय (मजिस्ट्रेट) के समक्ष बतलाये। यदि हिरासत में उनके साथ यातना, हिंसा और मारपीट हुई हो और उनकी प्रार्थना पर डाक्टरी मुआयना कराया गया हो।

शकील अब्दुल गफार खान बनाम वसन्तरघुनाथ धोबले 2004(1) जी.सी.डी. 812 at 823 (एस.सी.)

न्यायालयों द्वारा एक ऐवजी वैकल्पिक प्रणाली व्यवहार में लाई जा रही है। जब कोई मजिस्ट्रेट हिरासत में यातना की शिकायत पर विधिवत् कार्य नहीं करता है तो सेक्शन 482 सी.आर.पी.सी. के मुताबिक हाई कोर्ट का हस्तक्षेप अपेक्षित है।

मुकेश कुमार बनाम सरकार 1990 सी.आर.एल.आई. 1923 at 1925

दूसरा महत्वपूर्ण प्रावधान जो हिरासत में यातना के कारण हुई मौत से जुड़ा है धारा 176 सी.आर.पी.सी. में निहित है। इसके अनुसार पुलिस हिरासत में मृत्यु होने पर मजिस्ट्रेट द्वारा अनिवार्य रूप से जाँच पड़ताल की जाती है ताकि दोषी पुलिसकर्मियों को अदालत के समक्ष लाया जा सके क्योंकि वे ही तथाकथित आरोपी को जो मर चुका है, हिरासत में लेने के लिए अधिकृत थे।

(भाई जसबीर सिंह बनाम पंजाब सरकार 1995 सी.आर.एल.आई. 285)

18.13.1.4 भारतीय दंड संहिता (आई.पी.सी.) 1860

विवादास्पद मथुरा बलात्कार केस (1979) 2 सेक्शन 43 के बाद एक संशोधन किया गया जिसके तहत सेक्शन 376 आई.पी.सी. 376(1) (b) यदि हिरासत में पुलिस अधिकरियों द्वारा बलात्कार किया जाता है तो वे दंड के भागी हैं। यह इस सेक्शन में सराहनीय संशोधन हुआ जो पदान्ध और मदान्ध

पुलिसवालों की काली करतूतों को दंडनीय घोषित करता है। जाहिरा तौर पर भारतीय दंड संहिता के सेमान 330,331,342 और 348 इसी आशय से संरक्षित किये गये हैं कि पुलिस अधिकारी को जो अपराधिक तफ्तीश में आरोपी की गिरफ्तारी और पूछताछ के लिए अधिकृत है, क्रूर और शारीरिक यातना के फूहड़ तरीकों से बाज आये।
मध्य प्रदेश सरकार बनाम श्यामसुन्दर त्रिवेदी (1992)4 एस.सी.सी. 262 at 273)

18.13.2 पूर्ववर्ती न्यायिक फैसले

शारीरिक यातना के विरूद्ध सुप्रीम कोर्ट मानवाधिकार का पथप्रदर्शक माना जाता है। वाकये में, 1990-2000 के दशक से ही हिरासत में यातना और हिरासत में मृत्यु के सम्बन्ध में दो नवीन विधिक उपाय किये हैं-एक तो हिरासत में यातना और मृत्यु के हादसे पर मुआवजे का हक और दूसरा हिरासत के अपकृत्यों की न्यायिक जाँच।

शीला बारसे बनाम महाराष्ट्र सरकार 1983 सी.आर.ए.आई. 1923 (दिल्ली) के अभियोग निर्णय ने गिरफ्तार व्यक्तियों, विशेषकर महिलाओं के हकों के बारे में निर्देश प्रदान किये हैं। न्यायालय ने इस मामले में यह भी आग्रह किया है कि गिरफ्तार महिलाओं / व्यक्तियों को हकों की जानकारी मजिस्ट्रेट द्वारा दी जावे।

गिरफ्तार व्यक्तियों के बारें में सुप्रीम कोर्ट ने डी.के. बसु बनाम पश्चिम बंगाल सरकार के मामले में निर्देश दिये थे। इनमें सबसे महत्वपूर्ण निर्देश यह था कि गिरफ्तार व्यक्ति का प्रति 48 घंटों के बाद डाक्टरी मुआयना हो और मुआयना करने वाला डाक्टर सरकार द्वारा चयनित पेनल में से होना चाहिए तथा सभी आवश्यक दस्तावेजों की प्रतियाँ सम्बन्धित मजिस्ट्रेट को भेजी जानी चाहिए। पूछताछ के दौरान गिरफ्तार व्यक्ति को अपने वकील से मुलाकात करने की इजाजत दी जानी चाहिए।

18.13.2.1 अन्य प्रामाणिक स्रोत

177वें लॉ कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार यह चिर प्रतीक्षित संशोधन क्रिमिनल प्रोसीजर कोड में समायोजित होना चाहिए कि हिरासत में व्यक्तियों को रखने वाले पुलिस अधिकारियों का उत्तरदायित्य है कि वह गिरफ्तार व्यक्तियों की सुरक्षा सुनिश्चित करे। यदि ये उन्हें सुरक्षा मुहैया नहीं करा पाते हैं तो वे स्वयं जिम्मेदार होंगे। तीस वर्ष हो गये परन्तु इस संशोधन को अभी तक निष्पादित नहीं किया गया है। हिरासत में पूछताछ के दौरान वकील की मौजूदगी की अनुशंसा की गयी है। 185वेंलॉ कमीशन की रिपोर्ट में गिरफ्तार व्यक्तियों के हक के संदर्भ में भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 के सेक्शन 27 में अनुशंसा की गयी है। मालीमाथ कमेटी की रिपोर्ट के मुताबिक यह आग्रह किया गया है कि गिरफ्तार लोगों के अधिकारों की संहिता तैयार की जानी चाहिए, जो आवश्यक है।

18.14 आपराधिक संज्ञान की सीमा

प्रिवेन्शन ऑफ टोर्चर बिल के 5वें सेक्शन में प्रावधान है कि-क्रिमिनल प्रोसीजर कोड 1973 की इबारत के बावजूद भी इस अधिनियम के तहत कोई अदालत जुर्म का संज्ञान नहीं ले सकती यदि इसकी शिकायत वारदात होने के छः महीने के अन्दर-अन्दर प्राप्त नहीं होती।

18.15 अभियोजन की अनुमति

वाक्यांश 6 भी अतिरिक्त रूप से बाध्यकारी है। बिना सरकार की अथवा नियोक्ता की अनुमति के लोक सेवक के विरूद्ध कार्यवाही नहीं की जा सकती जब तक लोक सेवक के बचाव का उपाय है तब

तक। लोक सेवक द्वारा आपराधिक यातना का कोई अर्थ नहीं है। क्रिमिनल प्रोसीजर कोड के सेक्शन 197 के तहत लोक सेवक के विरूद्ध अभियोजन से बचाव का पहले से ही उपाय है। हकीकत यही है कि लोक सेवक के खिलाफ अभियोजन सी.आर.पी.सी. की धारा 197 की आड़ में असंभव हो गयी है। आमतौर पर लोक सेवक के विरूद्ध अभियोजन है कि पूर्वानुमति ही नहीं मिलती या लाल फीताशाही के रवैये से अनावश्यक विलम्ब होता है। इससे लोक सेवक के दंडित होने की जोखिम से मुक्ति की संस्कृति निर्मित हो गयी है।

जहाँ तक लोक सेवक के विरूद्ध अभियोजन की पूर्वानुमति का सवाल है, सुप्रीम कोर्ट की राय के मुताबिक यह मामले में लागू नहीं होती। दूसरे शब्दों में, पुर्वानुमति सब मामलों को व्यापक रूप से कवर नहीं करती। लोक सेवक पर यातना के आरोपों में अभियोजन हेतु पूर्वानुमति सेमान 197 सी.आर.पी.सी. की परिधि से बाहर है चूंकि लोक सेवक द्वारा निष्पादित कार्य जो यातना के रूप में परिभाषित किया जाता है ऑफिसियल ड्यूटी से जुड़ा हुआ नहीं है। वाक्यांश 6 की इबारत अतिशय रूप में और अनुचित रूप में उदार है। यह वाक्यांश 6 सेक्शन 197 सी.आर.पी.सी. से जो लोक सेवक का बचाव करती है आगे बढ़ती है और तथाकथित अपराध जो लोक सेवक द्वारा ड्यूटी पर रहते हुए किया गया हो, उसके अभियोजन हेतु पूर्वानुमति की मांग करती है। ऐसा प्रतीत होता है कि मंत्रालय ने लोक सेवकों के हित में यातना के आरोपों के व्यापक बचाव करने का उपाय तलाश लिया है। हम सरकार को स्मरण दिलाना चाहते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार विधि और भारतीय संविधान में हिरासत में यातना को पूर्ण निषेध की बात की गयी है। सी.एच.आर.आई. की अनुशंसा है कि अनुच्छेद 6 को पूर्णरूपेण हटाया जावे और मांग की है कि यातना के मामलों में किसी भी लोक सेवक के विरूद्ध अभियोजन में कोई रोड़ा न अटकाया जावे। (संदर्भ-प्रिवेन्शन ऑफ टोर्चर बिल 2010 तथा सी.एच.आर.आई. रिपोर्ट)

18.16 हिरासत में हिंसा और क्षतिपूर्ति का अधिकार

UNCATकी धारा 14 में यह प्रावधान है कि प्रत्येक राज्य सरकार अपनी विधिक प्रणाली में हिरासत में हिंसा पीड़ितों को राहत देना सुनिश्चित करे और व्यावहारिक रूप में उचित क्षतिपूर्तिकरे। जिसमें पीड़ित का सामाजिक पुनःस्थापन भी शामिल है। परन्तु उपर्युक्त विधेयक में ऐसा कुछ प्रावधान नहीं है। यह क्षतिपूर्तिका अधिकार यातना के सब मामलों में लागू हो चाहे इसके लिए कोई व्यक्ति दोषी करार दिया जाता है या नहीं। यह प्रावधान लॉ कमीशन की अनुशंसा के अनुसार सुझाया गया है। 357-A भारतीय क्रिमिनल प्रोसीजर में हिरासत में किये गये अपराधों के लिए अनिवार्य रूप से क्षतिपूर्ति का प्रावधान किया गया है।

18.17 सारांश

हिरासत में यातना की शिकायत को लेकर न्यायालय को कोताही नहीं बरतनी चाहिए महज इसलिए कि शिकायत आदतन अपराधी द्वारा की गयी है। (डी.जे. वघेला बनाम कान्तिबाई 1985) सी.आर.एल.आई. 974 (गुजरात)यह शासन की स्थायी समस्या है। (नन्दिनी सतपती बनाम पी.एल. दानी (1978) 2 एस.सी.सी 424)

इसलिए यह निहायत जरूरी हो गया है कि राज्य सरकार ऐसी प्रणाली विकसित करे जिससे पुलिस द्वारा शन्ति और व्यवस्था भी कायम रह सके तथा जुर्म की रोकथाम और जाँच पड़ताल भी हो जाये तथा आरोपी के विधिक हक को भी नुकसान न पहुँचे। आम आदमी के तमाम हक सुरक्षित रहें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक ऐसी शासकीय प्रणाली की दरकार है जिससे पुलिस पर उचित नियंत्रण रहे ताकि वह निरंकुश तरीके से अपनी शक्तियों का दुरूपयोग करने से बाज आये। इसके साथ

ही यह भी आवश्यक है कि प्रभावशाली प्रणाली पीड़ित को राहत पहुँचाने का उपाय भी बने तथा पुलिस की ज्यादती की सटीक समीक्षा कर सके: यह वर्तमान समय की जरूरत है।

एस.सी. सरकार, सरकार कमेण्टरी ऑन कोड ऑफ क्रिमिनल प्रोसीजर (द्विवेदी लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 2005 पृ. 506)

सुप्रीम कोर्ट की चिन्तना के अनुसार हिरासत में यातना देना मानवीय गरिमा का घोर उल्लंघन है जो काफी हद तक मनुष्य के व्यक्तित्व का हनन करता है और नुकसान पहुँचाता है।

- **पहला बिन्दु-** हिरासत में यातना को जुर्म के रूप में परिभाषित किया जाना चाहिए। यह कार्य एक विशेष कानून बनाकर निष्पादित किया जा सकता है।
- **दूसरे बिन्दु-** हिरासत में हिंसा की कई घटनायें रोकी और टाली जा सकती हैं यदि कानून को लागू करने वाली संस्थायें गिरफ्तारी और हिरासत के वर्तमान कानूनों की निष्ठापूर्वक अनुपालना करें। सुप्रीम कोर्ट द्वारा स्थापित कानून अमल में लाया जाना चाहिए यद्यपि यह समस्या का सम्पूर्ण समाधान नहीं है। जो इसकी अनुपालना नहीं करते उन्हें दंडित किया जाना चाहिए।
- **तीसरा बिन्दु-** जनता, विशेषकर विशेषज्ञ व्यावसायिक समुदायों, मानवाधिकार के पक्षधरों तथा मीडिया को चाहिए कि वे पुलिस के कार्यो पर निगरानी रखें और यह सुनिश्चित करें कि सरकार की अपेक्षायें कार्यान्वित हो रही है या नहीं।राजनीतिक विपक्ष दल सरकार से आग्रह करे कि राज्य का डायरेक्टर जनरल पुलिस (डी.जी.पी.) इस आशय की अपनी रिपोर्ट विधान सभा में पेश करें जिसमें हिरासत में हिंसा और यातना तथा मृत्यु के तमाम मामलात की तफ्तीश का ब्यौरा दर्ज हो।
- **चौथा बिन्दु-** केन्द्र सरकार से आग्रह किया जावे कि वह संयुक्त राष्ट्रसंघ के उस सम्मेलन के निर्णयों की अभिपुष्टि करे जिसमें यातना, अमानवीय क्रूरता तथा अपमानजनक व्यवहार अथवा सजा के संदर्भ में विमर्श हुआ था। सरकार इस अभिसंधि से मिथ्या दलील देकर पीछे हट गयी कि हमारे यहाँ इन मदों से निपटने के लिए श्रेष्ठ विधिक प्रावधान है। परन्तु जाहिरा तौर पर ऐसा नहीं है। यदि सरकार की दलील सत्य होती तो स्वतंत्रता प्राप्ति के 60 वर्षो के अन्तराल के बाद, देशभर की अदालतों द्वारा जारी संशयी निर्णयों और निर्देशों के बावजूद, हिरासत में यातना की घटनायें निरंकुश और मनमाने ढंग से घटित नहीं होती जैसा कि आज हो रहा है।

18.18 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पुलिस हिरासत में यातना और मारपीट की घटनायें किस प्रकार समाप्त की जा सकती हैं?
2. हिरासत से क्या तात्पर्य है?
3. प्रोटेक्शन ऑफ हयूमन राइट्स एक्ट 1933 के अंतर्गत परिभाषित मानवाधिकारों की विवेचना किजिए।
4. पुलिस हिरासत में "पूछताछ" से क्या आशय है? कानूनी स्थिति स्पष्ट कीजिए।
5. गिरफ्तार किये गये व्यक्ति के क्या-क्या अधिकार हैं?

18.19 संदर्भ

- एशियन सेन्टर फॉर हयूमन राईट्स रिपोर्ट, 2009 तथा 2010
- नेशनल हयूमन राइट्स कमीशन रिपोर्ट्स
- अदालतों के फैसले
- कॉमनवेल्थ हयूमन राइट्स इनिशियेटिव (सी.एच.आर.आई.)

इकाई - 19
लोकतंत्र के पोषण में पुलिस की भूमिका

इकाई संरचना

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 लोकतंत्र के मूल सिद्धान्त

- 19.2.1 प्रतिनिधित्वपूर्ण शासन व्यवस्था
- 19.2.2 उत्तरदायी शासन
- 19.2.3 कानून का शासन
- 19.2.4 मानवाधिकारों का ज्ञान
- 19.2.5 जन-सहभागिता एवं जन-नियंत्रण

19.3 नियामकीय पुलिस तंत्र बनाम व्यवस्था निर्माण तंत्र

19.4 एक्जीक्यूटिव आर्म का पुलिस दर्शन एवं लोकतांत्रिक विकास

19.5 पुलिस व्यवस्था एवं लोकतांत्रिक दर्शन

- 19.5.1 लोकतांत्रिक पुलिस दर्शन की कानूनी घोषणा
- 19.5.2 स्वशासी लोकतांत्रिक पुलिस संगठन
- 19.5.3 जन नियंत्रण एवं जन जवाबदेहिता के संदर्भ में पुलिस व्यवस्था की लोकतांत्रिकता
- 19.5.4 पुलिस का महिलाकरण
- 19.5.5 मानवाधिकारों का ज्ञान

19.6 पुलिस थाने में शालीनता की संस्कृति

19.7 पुलिस तंत्र द्वारा लोकतंत्र का परिपोषण

19.8 सकारात्मक पुलिस की गाँधीवादी दृष्टि

19.9 प्राथमिक स्कूलों में अंकल पुलिस

19.10 महिलाओं की सहभागिता

19.11 पंचायती पुलिसिंग

19.12 सारांश

19.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

19.0 उद्देश्य

इस अध्याय के उद्देश्य निम्नांकित हैं-

- लोकतंत्र के मूल सिद्धान्तों से अवगत कराना।
- पुलिस तंत्र की गतिविधियों एवं दर्शन की लोकतांत्रिक विकास के संदर्भ में अध्ययन करना।
- पुलिस तंत्र द्वारा लोकतंत्र के परिपोषण सम्बन्धी ज्ञान से अवगत कराना।

19.1 प्रस्तावना

बहुधा यह उपमा दी जाती है कि एक नये पौधे को नई जमीन में उगाने और पनापने के लिए अनुकूल परिस्थितियाँबनाई जानी चाहिए अन्यथा वह मुरझा कर मर जायेंगे। भारत में लोकतंत्र वैसे तो 1909 से आज तक सौ वर्ष के आस-पास की उम्र पा चुका है पर इंग्लैण्ड से आयातित यह पौधा

भारत की प्रतिकूल जलवायु में अपनी जड़े जमाने के लिए अभी भी संघर्ष कर रहा है। लम्बे समय के मुगल शासन ने सामने और सैनिक संस्थाओं के माध्यम से पूरे भारतीय माहौल को इतना लोकतंत्र-विरोधी और बंजर बना रखा है कि लोकतंत्र की रट लगाने वाले भी शहंशाह और सम्राट बने रहना चाहते हैं। अंग्रेजी युग में जब तटीय भारत में शहरी सभ्यता फैलने लगी तो अंग्रेजी संस्थायें बनी तो सही, किन्तु ये देशी भारत और ब्रिटिश भारत के ग्रामीण आंचलों तक पहुँच ही नहीं सकी और 1935 के अधिनियम तक केवल सीमित, साम्प्रदायिक और अप्रत्यक्ष चुनावों से ही प्रान्तीय स्वराज्य चलाया जाना भी लोकतंत्र की विजय मानी गई। विभाजन और स्वतंत्रता के बाद एक लोकतांत्रिक संविधान में जिन संस्थाओं को भारत में सींचने या आरोपित करने का जो प्रयास किया गया वे ईमानदारी के प्रयासों के बावजूद भी भारतीय लोकतंत्र के इस विदेशी पौधे को मिट्टी, खाद, पानी और वातावरण की अनुकूलता नहीं दे सका है। सामाजिक सामन्तवाद और सांस्कृतिक अपरिजनवाद पूरे देश में इतनी गहराई से गठा हुआ है कि लोकतंत्र का पेड़ बिना जड़ों के मुरझाया हुआ और खोखला सा लगता है। यह वातावरणीय परिपोषण चाहता है। लोकतंत्र की यह 'नरचरिंग' सभी को करना है और पुलिस व्यवस्था भी इसका एक अहम् और केन्द्रीय हिस्सा है।

19.2 लोकतंत्र के मूल सिद्धान्त

लोकतंत्र के सिद्धान्तों, उद्देश्यों, प्रक्रियाओं और व्यवहारों पर लाइब्रेरियाँ भरी हुई है। ये एक दूसरे के पूरक हैं और आत्मविरोधी भी। भारत में ब्रिटिश व्यवस्था से जो संसदीय लोकतंत्र हमने लिया है, वह मूलरूप से पाँच सिद्धान्तों को मानकर हमारी राजनीतिक व्यवस्था को लोकतंत्रात्मक बनाता है। ये सिद्धान्त है-

19.2.1 प्रतिनिधित्वपूर्ण शासन व्यवस्था

प्रतिनिधित्वपूर्ण शासन व्यवस्था जो बालिग मताधिकार की चुनाव की व्यवस्था से हमारे शासन तंत्र को जनता के प्रतिनिधियों का शासन बनाती है। बिना किसी भेदभाव के दिया गया यह बालिग मताधिकार अगणित समस्याओं के हमारे देश में एक लोकतंत्र सुनिश्चित करना है और यही हमारी सात वर्षो की सबसे बड़ी उपलब्धि भी है।

19.2.2 उत्तरदायी शासन

लोकतंत्र की आत्मा उत्तरदायी शासन के विकास में ढूँढी जा सकती है। सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी रहने के लिए संसद के माध्यम से जवाब देती है और हटायी भी जा सकती है।

19.2.3 कानून का शासन

कानून का शासन जो संविधानवाद का एक सिद्धान्त है, कानून की दृष्टि में सबको सम्मान और निर्दोष मानता है। कानून को तोड़ने का अधिकार किसी व्यक्ति विशेष को नहीं दिया जा सकता और एक स्वतंत्र न्यायपालिका इस कानूनी व्यवस्था का संरक्षण करती है।

19.2.4 मानवाधिकारों का ज्ञान

यह स्थिति एक सीमित सरकार की स्थिति बनाती है जिसमें प्रत्येक नागरिक अपने मानवाधिकारों का उपयोग करता है। सभ्य समाज के ये मानवाधिकार लोकतंत्र के पर्यायवाची है और सरकार का कोई भी अंग तथा समाज का कोई भी वर्ग इन्हें किसी भी कारण से उल्लंघित नहीं कर सकता। इसका हनन लोकतंत्र का अपमान है।

19.2.5 जन-सहभागिता एवं जन-नियंत्रण

लोकतंत्रात्मक व्यवस्थायें जन-सहभागिता और जन-नियंत्रण से संचालित होती है। चुने हुए विधायक सांसद जनमत का सम्मान करें। सिविल समाज की शिकायतों पर जन-साधारण की समस्याओं का समाधान निकालें और जन-सहयोग की ऐच्छिक संस्थाओं के माध्यम से सरकार का लगातार दबाव बनायें जिससे सरकार और जनता के बीच की दूरियाँ अधिक न बढ़ सके।

यह संवैधानिक परिदृश्य एक मिली-जुली परिस्थिति है। सरकार, प्रशासन और समाज सभी को इस लोकतांत्रिक सिद्धान्तों व्यवहारों और संस्थाओं को सुदृढ़ करने में तरह-तरह से योगदान देना पड़ता है। विकासशील देशों में, जहाँ प्रशासन एक प्रबुद्ध जनमत का प्रतिनिधित्व करता है, यह आशा की जा सकती है कि प्रशासनिक अधिकारी कानून के शासन और मानव अधिकारों का सम्मान करेंगे जिससे लोकतांत्रिक संस्थायें लोकतांत्रिक मर्यादाओं में रहते हुए औपनिवेशिक शासन तंत्र को लोकतांत्रिक परिवेश में बदल सकें।

19.3 नियामकीय पुलिस तंत्र बनाम व्यवस्था निर्माण तंत्र

पुलिस प्रशासन को जन-साधारण और यहाँ तक कि पुलिस अधिकारी भी जब तक परम्परावादी भूमिका में देखते हैं तो उन्हें ऐसा लगता है कि यह नियामकीय व्यवस्था (Regulatory of System) लोकतंत्र की एक विकासमान व्यवस्था से जुड़ ही नहीं सकती, किन्तु जो लोग पुलिस व्यवस्था को पढ़ना और समझना चाहते हैं उन्हें लगेगा की लोकतंत्र की उक्त पाँचों विशेषतायें जितनी पुलिस प्रशासन द्वारा सम्भव बनायी जा सकती है, उतनी तथाकथित विकास प्रशासन द्वारा उत्पन्न की ही नहीं जा सकती। यदि चुनावों का दूसरा नाम जनतंत्र हैं तो निष्पक्ष, स्वतंत्र और स्वच्छ चुनाव किसी भी राज व्यवस्था में एक प्रभावी पुलिस प्रशासन चाहते हैं। पुलिस तो बनी ही कानून और व्यवस्था की स्थापना के लिए है। जिसे आज कानून का शासन कहा जाता है वह पुलिस के थाने से ही तो आरम्भ होता है। यदि एक पुलिस व्यवस्था देश के कानून का ईमानदारी और कठोरता से पालन नहीं करती तो वहाँ कानून का शासन केवल बड़े आदमियों का विशेषाधिकार बन कर रह जाता है। इसके विपरीत यदि कानून का सम्मान किया जाये तो वह समाज में स्वतंत्रता, समानता और न्याय को जन्म देता है। किसी भी समाज में मानव अधिकार उतने ही सुरक्षित और आदरणीय होते हैं जितनी वहीं की पुलिस उनका निष्ठा से पालन करती है और अन्य लोगों से भी करवाती है। लोकतंत्र में जो भी सरकारें मनमाना करती है, वे 'पुलिसतंत्र के दुरूपयोग' द्वारा ही ऐसा कर पाती है। यदि समाज के कानून भंजक पुलिस से डरते हैं और पुलिस उन्हें न्याय के कठघरे में खड़ा करती रहती है तो शासक और प्रशासक कभी गैर-जिम्मेदार बन ही नहीं सकते। एक लोकतंत्र में जन सहभागिता नाना प्रकार के विरोधों और टकरावों को जन्म देती रहती है। नागरिक स्वतंत्रता के अधिकार के अन्तर्गत सामान्य जन सरकारी की नीतियों का शान्तिपूर्ण एवं सामूहिक ढंग से विरोध करती रहती है। ये विरोधी स्वर हिंसक न बनें और लोकतांत्रिक सहभागिता निरन्तरता के साथ बनी रह सके, यह कार्य और दायित्व मूलत: पुलिस प्रशासन का ही है। यदि पुलिस अधिकारी इस दायित्व की गम्भीरता को नहीं समझते और सरकार के प्रति अपनी वफादारी को जन-विरोधी कार्यवाहियों में बदल देते हैं, तो लोकतांत्रिक प्रक्रियायें बाधित होने लगती हैं और एक निर्वाचित लोकप्रिय सरकार भी जन-विरोधी बन जाती है और अन्तत: तानाशाह लगने लग जाती है।

19.4 एक्जीक्यूटिव आर्म का पुलिस दर्शन और लोकतांत्रिक विकास

प्रोफेसर डैविड एच.बेली ने अपनी शोधपूर्ण पुस्तक Police and Political Development in India में यह प्रस्थापना विवेचित की है कि पुलिस भारत में "यथास्थिति बनाये रखने का एक औपनिवेशिक तंत्र रहा है किन्तु इसे राजनीतिक विकास या परिवर्तन का यंत्र बनाया जा सकता है। उनके अनुसार ब्रिटिश शासन अपने कानूनों की पालना के लिए "भारत में पुलिस के लिए Executive Arm' का दर्शन लेकर आया जिससे पुलिस जिला मजिस्ट्रेट (DM) के आदेशों को मानने वाली एक कार्यकारी भुजा मात्र बन कर रह गई। पुलिस मैन भारत के एक-एक गाँव में दिखाई देने लगा। खाकी वर्दी में उसे पहचानना आज भी आसान लगता है। उसे विवेकाधिकार दिये गये और शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने के नाम पर वह राष्ट्रीय आन्दोलन की गाँधी की आँधी से बड़ी बहादुरी के साथ लड़ सका। वेदों के जमाने से भारतीय पुलिस जैसी भी थी, वह सदैव शासकों की पुलिस रही और शासक जैसे भी अन्यायी या अत्याचारी थे वैसा ही पुलिस का चरित्र भी बनता चला गया।

अब एक लोकतंत्र में हम यह चाहते हैं कि यह पुलिस जनता की पुलिस बने और स्वयं जनतांत्रिक बन कर समाज और राजनीति को लोकतांत्रिक बनाने की पहल करे। यह कठिन उद्देश्य है पर असम्भव नहीं। रॉबर्ट पील ने ब्रिटेन में इस चुनौती को स्वीकार किया था और एक निहत्थे बॉबी की 'अनार्म्ड सिविल पुलिस' खड़ी करके उसे संसार की सर्वश्रेष्ठ पुलिस बना कर दिखला दिया। किसी पुलिस बल में अपार शक्ति, साहस, क्षमता और वफादारी के गुण होते हैं। यदि राजनीतिक शासन उसे देश हित और समाज कल्याण में बदलने की नीति बना सकें, तो कोई भी पुलिस व्यवस्था एक लोकतंत्र का सशक्त एवं स्थायी सम्बल बन सकती है।

यहाँ पर दो प्रश्न उत्तर चाहते हैं-

1. यदि भारतीय पुलिस का लोकतंत्रीकरण सम्भव हो सकता है तो उसे किस प्रकार से किया जाये?
2. यदि भारतीय पुलिस में लोकतंत्रीकरण की मात्रा बढ़ सकती है तो उसके द्वारा देश कीजनतांत्रिक व्यवस्था का परिपोषण और संस्थाओं का सुदृढ़ीकरण किस प्रकार किया जा सकता है?

19.5 पुलिस व्यवस्था एवं लोकतांत्रिक दर्शन

पुलिस सुधार लोकतांत्रिकता नहीं ला सके हैं। पहला प्रश्न स्वयं एक समस्या है क्योंकि पुलिस व्यवस्था के अधिकतम विश्लेषण और सुधारक यह मान कर चलते हैं कि लोकतंत्र का अर्थ 'स्वतंत्रता' और अनुशासन में रहने वाली और समाज में अनुशासन लाने वाली पुलिस स्वतंत्र कैसे हो सकती है? पुलिस सुधारों की सारी संकल्पना ही यह है कि पुलिस का प्रभावी, कार्य कुशल तथा परिणामोन्मुख कैसे बनाया जाये? धर्मवीर आयोग से लेकर रिबेरो कमेटी, पदमनाभैया समिति, मलिमथ समिति, सोली सोराबनी समिति तथा वीरप्पा मोयली आयोग सभी का एक समान 'थीम' यही है कि पुलिस की क्षमता कैसे बढ़ाई जाये, जिससे वह अपराधियों, आतंकियों और उपद्रवियों से प्रभावी ढंग से निपट सके। हमारे लोकतंत्र ने पुलिस का राजनीतिकरण कर उसे कमजोर बनाया है और यह माना जाता है कि यदि पुलिस में लोकतंत्र घुस गया तो वह और भी अधिक कमजोर हो जायेगी। अत: पुलिस के लोकतन्त्रीकरण की बहस कुल मिलाकर 'पुलिस कर्मियों की कल्याण की योजनाओ' और 'सकारात्मक पुलिसिंग' पर आकर समाप्त हो जाती है। पुलिस कार्यो की प्रभावोत्पादकता, कठोरता चाहती है, अत: जननियंत्रण एक राह

मंत्री की शक्तियों से आगे नहीं बढ़ता। पुलिस के हितैषी भी यह मानते हैं कि जब तक पूरे समाज के जीवन में न्यूनतम लोकतांत्रिक मूल्य नहीं आते, पुलिस की लोकतांत्रिकता एक भारी जोखिम भरी भूल होगी। पुलिस सुधार जारी रहे और जब अन्य सारी संस्थायें लोकतंत्र में दीक्षित हो जाये, तब अन्त मेंपुलिस व्यवस्था को जन-नियंत्रण को सौंपा जा सकता है। वर्तमान में तो पुलिस केवल जनता के लिए (For), कार्य करे,जनता द्वारा (By) पुलिस प्रबन्धन एक अव्यावहारिक स्थिति है, जिसके लिए देश को एक लम्बी प्रतीक्षा करनी होगी।

पर यहाँ पर एक आत्मविरोधी प्रस्थापना यह है कि औपनिवेशिक पुलिस ढाँचें और क्रूर पुलिस व्यवहार से क्या एक लोकतांत्रिक समाज हमारे देश में कभी भी बन सकेगा? प्रो. बेली राजनीतिक विकास या लोकतंत्र का पुलिस विकास का ही एक आयाम मानते हैं। यदि भारत की पुलिस स्वयं लोकतांत्रिक बनती तो वह भारत की समाज और अर्थ व्यवस्था को कभी भी लोकतांत्रिक नहीं बनने देगी। चुने हुए नेता पुलिस प्रशासन का दुरूपयोग करेंगे और एक नये प्रकार के सामन्तवाद को ही नया लोकतंत्र बतलाते रहेंगे। ये लोग पुलिस की क्रूरता से नागरिकों के मानव अधिकार छीनेंगे और कानून के शासन के नाम पर अपना व्यक्तिगत पुलिस राज चलाते रहेंगे। अत: ये लोकतांत्रिक प्रक्रियायें अलग-अलग नहीं चल सकती। सभी को लोकतांत्रिक बनना होगा और पुलिस की संरचना तथा कार्यप्रणाली में निम्न दिशाओं और स्तरों से लोकतांत्रिक दर्शन की शुरुआत की जा सकती है।

19.5.1 लोकतांत्रिक, पुलिस दर्शन की कानूनी घोषणा

हमें एक लोकतांत्रिक पुलिस फिलॉसफी की कानूनी घोषणा करनी होगी। वर्तमान कार्यवाही भुजा के (Executive Arm) दर्शन के स्थान पर लॉ एण्ड ऑर्डर का पुलिस दर्शन भारत की भावी पीढ़ी को देना होगा। शासक भी अपराधी हो सकते हैं और पुलिस का कार्य कानून की रक्षा करना है न कि अपराधी शासकों की सुरक्षा करना। यह सम्भव है और अंग्रेजों की इस विरासत से पुलिस को मुक्त कर 'एक स्वतंत्र देश की स्वतंत्र पुलिस' बनाने की शुरूआत हमें तुरन्त करनी होगी।

19.5.2 स्वशासी लोकतांत्रिक पुलिस संगठन

दूसरे ये लोकतांत्रिक पुलिस संगठन स्वशासी (Autonumous) बन सके इसके लिए इसे राजनीति और प्रशासन से इस प्रकार जोड़ा जाये कि तरह-तरह के व्यक्ति पुलिस के कार्य की समीक्षा कर सके। 'जापानी नेशनल सेफ्टी कमीशन' का मॉडल जिसे नये पुलिस अधिनियम 2005 का आधार बनाया गया है। इस दिशा में पुलिस बोर्ड बनाता है किन्तु यह पुलिस प्रशासन को एक ऐसे व्यावसायिक बोर्ड के अधीन नहीं लाता जिसमें न्यायाधीश, समाजशास्त्री, पुलिस प्रशासक तथा अपराध शास्त्री सदस्य हो और जो नीति-निर्धारण कर सके। ये राष्ट्रीय और राज्य पुलिस आयोग स्वशासी हो और पुलिस हर स्तर पर इनसे स्वीकृति ले और इनके प्रति जवाबदेह हो। कमिशनर प्रणाली शहर पुलिस के लिए इसी प्रकार का एक प्रयोग है जो अभी भारी सुधार चाहता है।

19.5.3 जन-नियंत्रण एवं जन-जवाबदेहिता के संदर्भ में पुलिस व्यवस्था की लोकतांत्रिकता

तीसरे पुलिस व्यवस्था की **लोकतांत्रिकता जन नियंत्रण और जन-जवाबदेहिता मांगती है।** सिटीजन चार्टर, लोकायुक्त, लायजन ग्रुप, मीडिया सहभागिता, मुहल्ला समितियाँ लोकतांत्रिकता का आरम्भ है। पुलिस के बल इनका सम्मान ही न करे वरन् इनके प्रश्नों का जवाब भी दे। एन.जी.ओ. दबाव समूह, हित समूह तथा खोजी पत्रकारिता पुलिस को जिम्मेदार बनाने में मदद करें। ये स्व सहायता जन समूह पुलिस को राजनीतिज्ञों और शासक समूह से बनायें। अपराधी जनता के कटघरे में खड़े किये

जाये। इस व्यवस्था का दुरूपयोग भी हो सकता है, किन्तु सूचना के अधिकार के साथ यह कुल मिलाकर सरकार के अधिकार घटाती है जिसमें पुलिस का दुरूपयोग भी शामिल है। पुलिस दुर्बल जनता से लड़ने के बदले अत्याचारी शासकों सेलड़ना सीखे और जनसंगठन पुलिस के बचाव के लिए आगे आये। न्यायपालिका भी इस क्षेत्र में एक सक्रिय भूमिका निभा सकती है।

19.5.4 पुलिस का महिलाकरण

देश की आधी जनसंख्या महिलाओं की है जिनके लिए आज की पुलिस व्यवस्था पूरी तरह अपर्याप्त है। यह महिला नागरिक आज भी अपनी शिकायत पुलिस थाने में दर्ज कराते समय झिझकती है। बिना किसी पुरूष सहयोगी के पुलिस थाने में प्रवेश तक नहीं ले सकती और पुलिस से न्याय या अधिकार मांगने के बदले अत्याचार सहना पसन्द करती है। लोकतंत्र उस दीन-हीन महिला को वाणी देने का दूसरा नाम है। अत: पुलिस का महिलाकरण उसके सच्चे अर्थो में लोकतंत्रीकरण है। यह केवल घरेलू हिंसा रोकने मात्र का प्रश्न नहीं है, बल्कि पूरे समाज में जो पुरूष प्रधान स्थिति है उससे पुलिस के समर्थन के साथ लड़ना है। स्वतंत्रता, समानता और न्याय तीनों ही महिला जीवन और महिला पुलिस से जुड़े हुए हैं। केवल महिला आरक्षण से भी यह स्थिति लोकतांत्रिक नहीं बनती, किन्तु यदि पुलिस व्यवस्था चाहे तो उल्लेखनीय परिवर्तन आ सकता है।

19.5.5 मानवाधिकारों का ज्ञान

पुलिस प्रशिक्षण (Training) में मानव अधिकार पढ़ाने मात्र से मानवाधिकार संरक्षित नहीं बनते और न ही न्यायालय और मानवाधिकर आयोगों द्वारा क्षतिपूर्तिदिये जाने से क्रूरताओं को घटाया जा सकता है। सिद्धान्तत: यह सब ठीक है, किन्तु एक लोकतंत्र में जब किसी का मानव अधिकार छिनता है और पुलिस के थाने में अन्वेषण के नाम पर अभ्रदता होती है तो लोकतंत्र की बातें करने वालों को शर्मिन्दगी उठानी पड़ती है। एक लोकतांत्रिक पुलिस संगठन अपराध के साथ सख्ती कर सकता है, किन्तु क्रूरता और हत्या करने का कोई भी अधिकार पुलिस को कभी भी नहीं दिया जा सकता। विदेशों में पुलिस की यह ज्यादती फारेंसिक विज्ञान की सुविधाओं ने घटायी है। हमारे यहाँ संदिग्ध (Suspect) और अपराधी (Convict) में अन्तर न होने से बड़े आदमी बच जाते हैं और साधारण आम नागरिक पुलिस के कोप का भाजन बनता है। यह कानून के शासन का अन्त है और मानव अधिकारों को एक ऐसे पुलिस अधिकारी को सौंपना है जो मानवाधिकार की परिभाषा भी नहीं जानता।

19.6 पुलिस थानों में शालीनता की संस्कृति

इसके लिए पुलिस थाने का वातावरण भयमुक्त और सकारात्मक बनाना होगा। यह कथन काफी हद तक सही है कि जब तक भारत में पटवारी और थानेदार रहेंगे लोकतंत्र गाँवों में आ ही नहीं सकता। ये मुगल सम्राट प्रशासन के अधिकारी पंचायती राज आने से भी नहीं सुधर सके हैं। इन्हें स्थायी रूप से विदा देनी होगी। पुलिस थाने में अपराधों की खोजबीन को ऊपर के स्तर पर डी.एस.पी. या एस.पी. कार्यालय के वरिष्ठ अधिकारियों को देनी होगी। सख्ती और ज्यादती यदि पुलिस कामों में आवश्यक है, तो उसे सिपाही, थानेदार जैसे छोटे अधिकारी नहीं कर सकते। थानों में महिला अधिकारी इन्चार्ज हो और उनका कार्य एफ.आई.आर. लिखना तथा विनम्रता से सिटिजन चार्टर के अनुसार काम करना होना चाहिए। पुलिस थाने का अधिकतर कार्य 'पॉजिटिव पुलिसिंग' से निपटाया जाये और जहाँ सघन जाँच अपेक्षित हो, वहाँ जूनियर आई.पी.एस. स्तर के अधिकारी ही न्यायालयों में जाये। वर्तमान में यह सुधार अव्यावहारिक लगता है, पर जिस प्रकार की व्यवस्था आज के हमारे पुलिस के थानों में है, वह

भी अधिक दिनों तक नहीं चल पायेगी। महिला पुलिस अधिकारी थानों को एक नई छवि दे सकती है। बच्चे और महिलायें बिना भय के पुलिस थानों में जा सकेंगे और खूँखार अपराधियों को वरिष्ठ पुलिस अधिकारी नजर ही नहीं देखेंगे वरन् उन्हें न्यायालय से कठोर सजायें भी दिलवा सकेंगे। इन लोकतांत्रिक पुलिस केन्द्रों के प्राप्त सैकड़ों पुलिस वालों का एक स्टैण्ड वाई पुलिस बल हो सकता है जिसे यथास्थिति या कानून और व्यवस्था के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है।

इस तरह पुलिस व्यवस्था में लोकतंत्र लाने के लिए एक ओर तो पुलिस थाने में मानव अधिकारों की शालीनता का वातावरण बनाना होगा, किन्तु दूसरी और जघन्य अपराधों से निपटने के लिए सनिये तंत्र को सक्रिय करना होगा और पुलिस को एक नये दर्शन और कानून के अन्तर्गत स्वायत्ता देनी होगी। यह एक लम्बी यात्रा है। पर सात साल की आजादी के बाद भी हमने अभी शुरूआत भी नहीं की है। हम चुनाव सुधारों से डरते-डरते यहीं तक आ गये हैं कि पूरी चुनाव व्यवस्था ही भ्रष्टाचार और अपराध के गर्त में घिर गई है। पुलिस सुधार तो और भी कठिन है। यदि इस क्षेत्र में भय और जोखिम के कारण अधिक देरी की गई तो पूरी लोकतांत्रिक व्यवस्था खोखली हो कर रह जायेगी। पुलिस का राजनीतिकरण, राजनीति में अपराधीकरण बढ़ा रहा है और यह यदि पुलिस अपराधीकरण में बदलू गया तो स्थिति गृहयुद्ध से भी अधिक विषम बन जावेगी। लोकतंत्र स्वयं लोकतंत्र की बुराईयों का इलाज है। लोकतंत्र की कमजोरियों का इलाज ज्यादा लोकतंत्र है न कि अधिक बलशाली पुलिस तंत्र। काश हम इस सामाजिक सत्य को समझ सकें।

19.7 पुलिस-तंत्र द्वारा लोकतंत्र का परिपोषण

पुलिस तंत्र यदि लोकतंत्रात्मक बन सके तो वह नाना प्रकार से देश के लोकतंत्र का परिपोषण कर सकती है। कानून और पुलिस का भय तथा सम्मान दोनों ही लोकतंत्र की विशेषतायें है। अंग्रेजी राज ने भय की अति कर पुलिस का सम्मान ही नष्ट कर दिया और जिस पुलिस का समाज में सम्मान नहीं हो उसके साथ समाज सहयोग नहीं करता और यह तो सभी जानते हैं कि जनता के ऐच्छिक समर्थन के बिना पुलिस किसी भी अपराधी को न्यायलय से सजा नहीं दिलवा सकती। परिणामत: पुलिस कानून के विरूद्ध स्वयं सजा देने लग जाती है, जिसे कोई भी व्यक्ति एक लोकतांत्रिक स्थिति नहीं मान सकता।

पुलिस, कानून तो नहीं बनाती पर कानून लागू करने की प्रक्रिया में 'कानून के प्रति सम्मान' और 'कानून में विश्वास' जगा सकती है। सम्मान (Respect) और विश्वास (Faith) भय (Fear) से पैदा नहीं होते। भारतीय पुलिस ने जनता को कानून से डराते-डराते ऐसे हालात पैदा कर दिए है कि सामान्य नागरिक न तो कानन से डरता है, न उसका सम्मान करता है और न ही उसका कानून की ईमानदारी में विश्वास बाकी बचा है। यह स्थिति 'अधिक भय' से और भी अधिक बिगड़ रही है और इसका सारा दोष राजनीति और जनतांत्रिक व्यवस्था को दिया जाता है। शासक सदैव कानून तोड़ते हैं और यदि वे पुलिस की पहुँच से बाहर हो तो उन्हें सजा कैसे दिलवाई जा सकती है। अत: 'शासकों की पुलिस' को 'जनता की पुलिस' बनाना कोरा आदर्शवाद नहीं है। यह कानून के शासन की एक पूर्व स्थिति है। यदि देश के राजनीतिक शासक देश के कानून और पुलिस से डरे और उनका सम्मान करें तो लोकतांत्रिक वातावरण बनता है और यह वातावरण ही लोकतंत्र की संस्थाओं को सींचता है जिससे वे पुष्पित और पल्लवित होती है।

19.8 सकारात्मक पुलिस की गाँधीवादी दृष्टि

सकारात्मक पुलिस व्यवस्था अपराध और अपराधियों के प्रति एक गाँधीवादी या सुधारवादी दृष्टि है। दण्ड का सारा दर्शन प्रतिशोध (Revenge) और विरोध (Detersent) से आगे आकर अपराधी

को बीमार मानता है। यह मानसिक बीमार व्यक्ति घृणा के बदले दया का पात्र है। किसी भी परिवार में पैदा होने से ये अपराधी वृत्तियाँ मनुष्य को अपना शिकार (Victim) बनाती है। अत: अपराध शास्त्र को क्रिमनोलॉजी की दृष्टि से न देखकर विक्टिमोलॉजी की दृष्टि से देखने की आवश्यकता है। अपराधी जाने-अनजाने अपराध का शिकार हो गया है और वह दूसरों को अपना शिकार बना रहा है। इस पर गुस्सा करने या मारने-पीटने से स्थिति नहीं सुधरती। पुलिस थाना और जेले सुधारगृह होने चाहिए जहाँ से अपराधी अच्छे इंसान बन कर निकलें। कुछ थोड़े से हिंसक अपराधों को छोड़कर पुलिस में आने वाले अपराध अधिकतर तुच्छ, साधारण या मामूली गलतियाँ मात्र होते हैं। पुलिस को नकारात्मक रवैया इन व्यक्तियों को अपने आचरण से 'कन्फर्मड क्रिमनल' बना देता है और अपराधों की एक श्रृंखला पूरे समाज में फैल जाती है। सकारात्मक पुलिस सहानुभूति का वातावरण बनाती हैऔर लोकतंत्र की जड़ी को सींचती है। अपराधियों को तो सजा मिलनी ही चाहिए किन्तु हेलमेट या बैल्ट न लगाने वाले का पीटना पुलिस का सम्मान घटाता है और कालान्तर में एक बड़ा अपराधी पैदा कर सकता है।

19.9 प्राथमिक स्कूलों में अंकल पुलिस

ब्रिटिश बॉबी का एक कर्त्तव्य यह भी है कि वह सप्ताह में एक दिन एक घण्टा प्राथमिक स्कूलों में बच्चों के साथ जा कर उन्हें खिलाये। ये सात-आठ साल के बच्चे 'अंकल बॉबी' को मैच में हरा कर खुश होते हैं और पुलिसमैन भी उन्हें यह महसूस करवाता है कि वह उनका मित्र है। उससे डरने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। मातायें बच्चों को स्कूल जाते समय पुलिस के फोन नम्बर लिख कर देती है, जिससे वह आपातकाल में अपने 'अंकल' को फोन कर सुरक्षित महसूस कर सके। बड़े होने पर यह अनुभव पुलिस की छवि सुधारता है और पुलिस वाला भी इन्हें सैल्यूट करता है, गोद में खिलाता है, बीमार पड़ने पर बच्चों से मिलने आता है। माँ-बाप उसे धन्यवाद देते हैं और पुलिस तथा समाज दोनों लोकतांत्रिक बनते हैं।

19.10 महिलाओं की सहभागिता

महिलाओं का सम्मान सारे संसार में एक सभ्य जीवन की आवश्यकता है। भारतीय पुलिस भी महिलाओं की सुरक्षा को अपना कर्त्तव्य मानती है। किन्तु लोकतंत्र महिला की सुरक्षा (Security) से अधिक उसकी समानता (Equality) है। पुरूष बल को पुलिस बल मानने वाली हमारी पुलिस महिलाओं को महान तो मानती है पर समानता नहीं देती। पुलिस की भर्ती, प्रशिक्षण, अनुशासन सब इस तथ्य से जुड़े हुए हैं कि पुलिसकर्मी पुरूष महिलाओं की रक्षा करेंगे अत: उन्हें पुलिस में भर्ती होने या नौकरी करने की क्या आवश्यकता है? यह विचार अपने आप में अलोकतांत्रिक है। पुलिस महिलाओं की रक्षा करे इसके लिए यह आवश्यक है कि महिलायें पुलिस कार्य में सहयोगी बनें, थानों में सब जगह नजर आयें, ट्रैफिक को कन्ट्रोल करें और महिला अपराधों में लिप्त सभी को जेल भिजवाये। यह समानता आधारित सहभागिता लोकतांत्रिकता है। पुलिस का महिलाकरण मानव अधिकारों के प्रति सम्मान जगाता है और जैण्डर-पुलिस समाज में केवल सैक्स अपराध ही नहीं घटाती, वरन् एक लोकतांत्रिक समाज और सरकार की आधार शिलाओं को भी मजबूत करती है। पौजिटिव पुलिसिंग महिला पुलिस से ही आरम्भ हो सकती है और स्कैन्डिनेविया की पुलिस इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। भारतीय पुलिस इस ओर बढ़ तो रही है परन्तु गति इतनी धीमी है कि इसे निराशाजनक कहा जा सकता है।

19.11 पंचायती पुलिसिंग

लोकतंत्र विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया ही पुलिस में अनुशासन बनाये रखने के लिए केन्द्रीकरण की बात की जाती है। किन्तु सुरक्षा को यदि आम आदमी तक ले जाना है तो विकेन्द्रीकरण के अलावा अन्य कोई विकल्प ही नहीं है। वर्तमान पुलिस तंत्र वी.आई.पी. सुरक्षा का तंत्र बनता जा रहा है। हजारों की संख्या में पुलिसकर्मी छोलदारी लगाये महामानवों की सुरक्षा में जुटे हुए हैं। इससे पुलिस बल का भारी अपव्यय (Wastage) होता है और पुलिस बलों की संख्या बढ़ाने के प्रस्ताव आते रहते हैं। यह सही है कि पुलिस कवरेज एक बड़ा बजट चाहता है किन्तु एक दूसरा लोकतांत्रिक रास्ता यह भी है कि पंचायतों को अर्द्ध पुलिस बल या होमगार्डो से लैस कर दिया जाये। प्राइवेट सुरक्षा एजेन्सियों का जाल बिछा दिया जाये और पुलिस पर आज जिस कार्य का भारी बोझ है उसे विकेन्द्रित पुलिस संस्थाओं को हस्तान्तरित कर हल्का किया जाये। कठिनाईयों और कीमत तो सभी रास्तों में है, पर सबसे सस्ता और सरल पुलिसिंग का तरीका यह है कि छोटे-छोटे कार्यो में पुलिस शक्ति का अपव्यय न किया जाये। यूरोप के बड़े-छोटे सभी देशो में 'काउन्टी पुलिस व्यवस्था' है। पुलिसकर्मी को अपनी स्थानीय शासन की इकाई पर नाज है और कानून तथा व्यवस्था के लिए स्थानीय जनता को अधिक ऊपर नहीं देखना पड़ता।

हम चाहे तो पंचायत समितियों से अर्द्ध पुलिस बलों का प्रयोग आरम्भ कर सकते हैं। थोड़े बहुत जोखिम और सावधानी के साथ यह प्रयोग थानों को ग्रामीण नेतृत्व से जोड़ सकता है और बड़े तथा भयानक अपराध राज्य और केन्द्र के पास रह सकते हैं। यह विकेन्द्रीकरण जनसहभागिता बढ़ा कर 'कम्युनिटी पुलिसिंग' को सार्थकता दे सकता है। ग्राम पुलिस का यह प्रयोग आगे पीछे हमें करना ही होगा। इसमें विलम्ब कर जैसे हम पंचायती संस्थाओं का गला घोंट रहे हैं उसी प्रकार ग्रामीण जनता को भी अपनी स्वयं की सुरक्षा के लिए अक्षम मान रहे हैं। ब्रिटिश इतिहास की यह विरासत पुलिस के विकेन्द्रीकरण और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को धीमा बना रही है और गाँवों का लोकतंत्र पटवारी और थानेदारों के चंगुल से मुक्त नहीं हो पा रहा है। एक नई पुलिस एक नये प्रयोग से गाँव के लोकतंत्र में चार चाँद लगा सकती है। आवश्यकता है पुलिस के लोकतंत्रीकरण और आधुनिकीकरण के प्रति राज्य सरकार की प्रतिबद्धता की।

भारतीय पुलिस भारतीय लोकतंत्र का पोषण करे इसके लिए पुलिस दर्शन, ढाँचे, कानून और कार्यप्रणाली में आमूल मूल परिवर्तन करने होंगे। अंग्रेजों ने यह ढाँचा एक कॉलोनी में साम्राज्यवाद चलाने के लिए बनाया था। इसके लिए जो I.P.C.,C.P.C. और IndianEvidence बनाये गये वे लोकतंत्र को पालने के लिए नहीं बने थे बल्कि इसलिए बनाये गये थे कि लोकतंत्र के 1919 और 1935 के प्रयोग सफल न हो जाये। आजादी के बाद संविधान ने राजनीतिक लोकतंत्र की व्यवस्था तो लागू कर दी पर सामाजिक लोकतंत्र के विषय में सोचा ही नहीं गया। अब हम मानवाधिकार, सूचना का अधिकार, जनलोकपाल और सिटिजन चार्टर की बातें करने लगे हैं। पंचायती राज का सविधानीकरण हो चुका है। महिलाओं और निशक्तों के शक्तिकरण की नीतियाँ आरम्भ हुई है। मनरेगा में रोजगार का अधिकार दिया जा चुका है। खाद्य सुरक्षा अधिनियम आने वाला है। इससे विकास और सामाजिक उथल-पुथल की असुरक्षा की लहरें उठने लगी। स्वाभाविक है कि नये-नये अपराधों के संदर्भ में कठोर पुलिस दल आवश्यक लग रहा है। लोकतंत्र के जनहित के उद्देश्यों के लिए पुलिस की सख्ती एक विरोधाभास है। सूचना का अधिकार यदि बिना पुलिस समर्थन के दिया जाता है तो वह जनता में निराशा फैलाता है। पुलिस सुधार के बिना समाज में जो अनुशासन आरोपित किया जाता है। उसके परिणाम भारतीय समाज भुगत रहा है। हमारा अभिजात वर्ग (Elite) पुलिस पर नियंत्रण कर लोकतंत्र की प्रक्रियाओं को बाधित

करता है और पूरे भारतीय समाज को ही लोकतंत्र के लिए अनुपयुक्त मानता है। यह एक गलत और खतरनाक अवधारणा है। यदि हम लोकतंत्र के काबिल नहीं हैं तो हमें इसके काबिल बनना है। यह सही हो सकता है कि "PeoplegetaPolicetheydeserve" किन्तु एक लोकतांत्रिक देश और समाज को जनता एक अधिक बेहतर पुलिस देती होगी "Sothat peoplebecomemoredeserving" लोकतंत्र एक स्वच्छ समाज, स्वस्थ्य राजनीति, सशक्त कानून और विकासशील अर्थव्यवस्था चाहता है और ये सारे कार्य सिवा पुलिस के और कोई कर ही नहीं सकता।

19.12 सारांश

लोकतंत्र एक राजनीतिक व्यवस्था मात्र न होकर पूरे समाज के नवनिर्माण की प्रक्रिया है। (1) बालिग मताधिकार, (2) चुनाव, (3) उत्तरदायी शासन, (4) मानवाधिकार एवं (5) कानून का शासन लोकतंत्र की स्थापना के लिए आवश्यक है, किन्तु इसकी सार्थकता इस पर निर्भर करती है कि पुलिस प्रशासन ईमानदारी से चुनाव करवाता है, जनता को आदरणीय मानकर नागरिक के व्यक्तित्व की गरिमा का सम्मान करता है और केवल शासकों की सुरक्षा को कानून और व्यवस्था नहीं मानता। पुलिस के एक्जीक्यूटिव आर्म के दर्शन ने भारतीय पुलिस को नकारात्मक बनाया है। जनता की पुलिस हो यह स्वयं पुलिस वाले भी नहीं मानते। पुलिस सुधार जो पुलिस को सशक्त और प्रभावी बनाने के लिए दिये जाते रहे है जनता से जुड़ाव के पुलिस सुधारों की प्राथमिकता नहीं देते। पुलिस का लोकतंत्रीकरण (1) एक नया दर्शन, (2) प्रभावी जननियंत्रण का नया तंत्र, (3) थानों के महिलाकरण तथा (4) पुलिस प्रशासन में बिना भेदभाव की शालीनता की संस्कृति चाहता है। पुलिस व्यवस्था को लोकतांत्रीकरण भारतीय शासन व्यवस्था को कानून का शासन दे सकता है। महिलाओं को सहभागी बना सकता है, बच्चों में पुलिस के प्रति आदर जगा सकता है और पंचायती पुलिस बल से पुलिस व्यवस्था का विकेन्द्रीकरणकर सकता है। एक जनता से जुड़ा पुलिसकर्मी पोजीटिव पुलिसिंग से पुलिस की छवि बदल सकता है और कानून के प्रति सम्मान और आस्था बढ़ा कर लोकतंत्र को परिपुष्ट बना सकता है। वर्तमान स्थिति से घबरा कर पुलिस की नकारात्मकता को मजबूत करना एक लम्बे संघर्ष के बाद प्राप्त किये गये हमारे अमूल्य लोकतंत्र को दुर्बल बनाना होगा।

19.13 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. लोकतंत्र का व्यापक अर्थ समझाते हुए समाज व्यवस्था और पुलिस व्यवस्था के अन्तरसम्बन्ध स्पष्ट कीजिए।
2. पुलिस व्यवस्था की नकारात्मकता लोकतांत्रिक समाज निर्माण में किस प्रकार बाधा उपस्थित करती है? उदाहरणों द्वारा स्पष्ट कीजिए।
3. पुलिस व्यवस्था को लोकतांत्रिक कैसे बनाया जाये? मानव अधिकारी और कानून के शासन के संदर्भ में समझाइये।
4. लोकतांत्रिक पुलिस 'पोजिटिव पुलिसिंग' से समाज में किस प्रकार की लोकतांत्रिक प्रतिक्रियायें पैदा कर सकती है। दुनिया के विकसित देशों के उदाहरणों से स्पष्ट कीजिए।

ISBN 13/978-81-8496-375-5